ISSN 2349-638x
Impact Factor 7.149

AAYUSHI INTERNATIONAL INTERDISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL

PEER REVIEW & INDEXED JOURNAL

Email id : aiirjpramod@gmail.com

www.aiirjournal.com

SPECIAL ISSUE No. 90

Volume - 01

# Literature, Society and Culture

Executive Editor
Dr. P. B. Patil
Principal
Karmveer Hire, Arts, Science, Commerce and Education College, Gargoti

Co-Editor
Mr. Rajratna S. D.
Dr. Dewale Y. D.
Dr. Desai S. B.
Mr. Chitrakar R. A.

Chief Editor
Prof. Pramod Tandale

SPECIAL ISSUE PUBLISHED BY
AAYUSHI INTERNATIONAL INTERDISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL
Peer Review & Indexed Journal I Impact factor 7.149
Email id : aiirjpramod@gmail.com
www.aiirjournal.com
Mob.8999250451

# Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)

**Peer Reviewed And Indexed Journal**

**ISSN 2349-638x**

**Impact Factor 7.149**

**Website :- www.aiirjournal.com**

## Theme of Special Issue

## Literature, Society and Culture

**(Special Issue No.90)**

## Chief Editor

**Mr. Pramod P. Tandale**

## Executive Editor

**Dr. P.B.Patil**

Principal,

Karmaveer Hire Arts, Science, Commerce and Education College, Gargoti

## Co-Editor

**Mr. S.D.Rajratna**

**Dr. Y.D. Dewale**

**Dr. S.B. Desai**

**Mr.R.A.Chitrakar**

No part of this Special Issue shall be copied, reproduced or transmitted in any form or any means, such as Printed material, CD – DVD / Audio / Video Cassettes or Electronic / Mechanical, including photo, copying, recording or by any information storage and retrieval system, at any portal, website etc.; Without prior permission.

**Aayushi International Interdisciplinary Research Journal**

ISSN 2349-638x

Special Issue No.90

27 th March 2021

**Disclaimer**

Research papers published in this Special Issue are the intellectual contribution done by the authors. Authors are solely responsible for their published work in this special Issue and the Editor of this special Issue are not responsible in any form.

# Volume 01


| Sr.No. | Name of the Aurhor | Title of Paper | Page No. |
|---|---|---|---|
| 1. | Mr. S.D. Rajratna | Socio-Political Issues in Margie Orford's Crime Novel, Like Clockwork | 1 |
| 2. | Chandrakant K. Chavan | The struggle and suffering in Hemingway's *'The old man and the sea'* | 5 |
| 3. | Dr. Madhavi Pawar | The Fractured Identity That Long Silence | 8 |
| 4. | Dr. Uttam Ramchandra Patil | Literature: A Gateway to Social Change | 10 |
| 5. | Dr. Prashant Kale | A Study of Reading Habits of B.Ed. Teacher Trainees | 13 |
| 6. | Dr. A. S. Arbole | Society and Symbols Depicted in the Novel *Train to Pakistan* | 17 |
| 7. | Mrs. Jadhav Jyoti Mohan | Provincial Customs and Attitudes Dictate the Future of Children in Anita Desai's Novel Fasting, Feasting: A Social Study | 20 |
| 8. | Mr. Sorate J.B. | Role Of Literature in Social Change | 23 |
| | | **Marathi Language** | |
| 9. | प्रा.डॉ.आनंद वारके | सामाजिक चळवळी आणि राजन गवस यांच्या कादंबऱ्या | 25 |
| 10. | प्रा. डॉ. सुभाष पाटील | मराठीतील आदिवासी साहित्य प्रवाह | 31 |
| 11. | डॉ. कुंडलिक चिंधू पारधी | सामाजिक चळवळी आणि आदिवासी साहित्य | 38 |
| 12. | डॉ. लता पां. मोरे | 'ज्याचा त्याचा प्रश्न'मधील स्त्रीवादी दृष्टिकोन | 42 |
| 13. | प्रा.चिंतामण दुंदा धिंदळे | सामाजिक चळवळी आणि आदिवासी कविता | 47 |
| 14. | डॉ. योगिता मारुती रांधवणे | नव्वदोत्तर ग्रामीण कादंबरीतील बदलेली ग्रामीण मानसिकता | 52 |
| 15. | प्रा. आशालता नारायण खोत | मराठी कादंबरीतील बदलते चित्रण (बनगरवाडी) | 55 |
| 16. | प्रा. सुजाता संजय चोपडे | 'सूड' कथेची नायिका जानकी चा ज्वालाप्रसाद पर्यंतचा प्रवास | 60 |
| 17. | प्रा. मोहन बाबुराव चव्हाण | सामाजिक चळवळी आणि ग्रामीण कथा | 65 |

| Sr.No. | Name of the Aurhor | Title of Paper | Page No. |
|---|---|---|---|
| 18. | प्रा.डॉ.आर.डी.कांबळे | 'झोंबी' कादंबरीतील ग्रामसंस्कृती आणि स्त्रीविश्व | 69 |
| 19. | प्रविणसिंह बहादूरसिंह शिलेदार | मराठी विज्ञानसाहित्याची चळवळ | 74 |
| 20. | प्रा.डॉ.यशवंत धनाप्पा हरताळे | साहित्यातून प्रतिबिंबीत होणारे अर्थशास्त्रीय विचार | 78 |
| 21. | प्रा. डॉ. दत्ता पाटील | बालविवाह व बालाजरठविवाह विरोधी सुधारणा चळवळ आणि मराठी नाटक (स्वातंत्र्य पूर्वकाळ) | 81 |
| 22. | डॉ. सविता अशोक व्हटकर | आण्णा भाऊराव साठे यांच्या कादंबरीतील उपेक्षितांचे ग्रामीण वास्तवदर्शी चित्रण | 90 |
| 23. | डॉ. युवराज देवाळे | चळवळीचे साहित्य: आवश्यकता स्वरूप व फलश्रुती | 95 |
| 24. | डॉ. शीला धम्मपाल रत्नाकर | 'अंत:स्थ' काव्यसंग्रहातील स्त्रीमनाचा आत्मशोध | 100 |
| 25. | प्रा. लक्ष्मी पवार | ग्रामीण साहित्य चळवळ आणि सामाजिक स्थित्यंतरे | 107 |
| 26. | डॉ.अशोक बंडा कांबळे | महात्मा फुले यांच्या शैक्षणिक कार्याचे सामाजिक विकासातील योगदान | 110 |
| 27. | अमर शामराव सकटे | दलित चळवळ आणि रंगभूमी | 113 |
| 28. | डॉ. मांतेश हिरेमठ | स्त्री धर्माची जाणीव आणि मराठी कविता | 119 |
| 29. | प्रा. मोहन बाबुराव चव्हाण | सामाजिक चळवळी आणि ग्रामीण कथा | 124 |
| 30. | प्रा. स्मिता कोंडिबा कालभूषण | आधुनिक मराठी नाटकातील राजकीय चित्रण | 128 |
| 31. | श्री शशिकांत शामराव चव्हाण | गांधीवाद एक अध्यात्मिक विचार प्रणाली | 132 |
| 32. | डॉ. सुनीता गोरख रोकडे | सामाजिक चळवळी आणि दलित साहित्य चळवळ सहसंबंध | 136 |
| 33. | साधना सुखदेव जाधव | सामाजिक व सांस्कृतिक विकासातील शिक्षणाची भूमिका | 140 |

# Volume 02

## Hindi Language


| Sr.No. | Name of the Aurhor | Title of Paper | Page No. |
|---|---|---|---|
| 34. | प्रा. डॉ. अजयकुमार कृष्णा कांबळे | नारी स्वतंत्रता में मीरा की भूमिका | 142 |
| 35. | डॉ.सरोज पाटील | फणीश्वरनाथ रेणु कृत उपन्यास 'मैला आंचल' में चित्रित राजनीति | 146 |
| 36. | जयश्री सुरेश बाबर | तौलनिक साहित्याभ्यासातील संस्कृती अभ्यासाचे महत्व | 150 |
| 37. | अशोक बाळू पाटील | विद्यानिवास मिश्रजी के 'गाँव का मन' निबंध संकलन में, 'मानवी समाज ' | 157 |
| 38. | डॉ.कल्पना किरण पाटोळे | 'ज्वार' में व्यक्त नारी का आत्मसंघर्ष | 160 |
| 39. | डॉ.सुनिल चव्हाण | मानवीय अधिकारों की ओर बढ़ते शब्द | 164 |
| 40. | lqJh-lqo.kk ujlq dkcGs | Ñ".kk lkcrh d miU;kl lkfgR; e :<heDr L=h | 171 |
| 41. | डॉ. एस. बी. देसाई | 21वीं सदी के दौर में बदलती भारतीय संस्कृति और हिंदी साहित्य | 174 |
| 42. | प्रा. डॉ. अशोक बळी कांबळे | हिंदी साहित्य में नारी की यथार्थ स्थिति का अंकन | 179 |
| 43. | डॉ. एकनाथ श्रीपती पाटील | 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' में किन्नर जीवन का दर्दनाक सच और स्वार्थी राजनीति | 181 |
| 44. | डॉ. श्रीकांत पाटील | दलित समाज की व्यथा-गाथा : 'सुअरदान ' | 186 |
| 45. | वर्षा गजानन पाटील | स्त्री-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में 'शेष कादम्बरी' उपन्यास | 189 |
| 46. | डॉ. शाहीन जमादार | मंजुल भगत की कहानियों में कामकाजी नारी जीवन | 192 |
| 47. | Mk-HkkLdj mejko Hkoj | pandkrk dh dgkfu;ks e fpf=r ukjh foe'k | 195 |
| 48. | डॉ. कुसुम विजयकुमार चौधरी | मधुराज मधु लिखित उपन्यासों के शीर्षक की यथार्थता | 198 |

| Sr.No. | Name of the Aurhor | Title of Paper | Page No. |
|---|---|---|---|
| 49. | डॉ. एस. पी. शिंदे | भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी उपन्याससाहित्य और समाज | 203 |
| 50. | डॉ . आर. एन. तहसिलदार | इतिहास और समय की दस्तक : कितने पाकिस्तान | 207 |
| **Other Papers** | | | |
| 51. | Arvind Jadhav<br>Shrikant Banda Desai | Numbers And Patterns of Women In Sub-Districts of The Kolhapur: A Gender Imbalance Evidence From Indian Census 2011 | 211 |
| 52. | Rajendra Sakharam Savekar | The Internet Based Open Access e- Resources for e-Learning | 216 |
| 53. | Sandeep Bajirao Bodke | Indian Society & Third Gender | 223 |
| 54. | Dr. M.V. Jadhav | Surnames Derived From The Names Of Arms – A Historical Study | 227 |
| 55. | Dr. Sagar R. Powar | Improvising Skill Development Through Higher Education In India | 229 |
| 56. | Mr. Rahul Anandrao Chitrakar | Role of Educational Technology in Improving Quality of Teacher Education | 234 |
| 57. | प्रवीण प्रकाश डांगे | साहित्यरत्न कॉम्रेड अण्णा भाऊ साठे यांच्या साहित्यातील मार्क्सवादी व डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरच्या विचाराचा मागोवा | 237 |
| 58. | ik- 'kyn ctjx xM<br>ik- foØe ckck I kk jkÅr | I kekftd fodk I kr f'k{k.kkph Hkfedk | 241 |
| 59. | Jh- foihu ukjk;.k ojkV | Lkekftd o I kLdfrd fodk I krhy f’k{k.kkph Hkfedk | 244 |
| 60. | प्रा. शारदा शामराव पाटील | सामाजिक परिवर्तनात शिक्षणाची भूमिका | 251 |
| 61. | डॉ. डी.आर पाटील | देश–कोकणचा रखवालदार : किल्ले प्रचितगड | 255 |
| 62. | प्रा. शुभांगी राहूल जाधव | सांस्कृतिक विकासातील शिक्षणाचे योगदान | 258 |
| 63. | प्रा. डॉ. प्रतिभा सदाशिव देसाई | स्त्रीवादी चळवळींमुळे स्त्रीची बदलती भूमिका व स्त्रीच्या सद्यस्थितीचा अभ्यास | 261 |

| Sr.No. | Name of the Aurhor | Title of Paper | Page No. |
|---|---|---|---|
| 64. | डॉ. आर. के. शानेदिवाण | अंधश्रद्धा निर्मूलन चळवळ आणि नरेंद्र दाभोलकरांची विचारधारा | 265 |
| 65. | सौ. सुप्रिया अ. शिंदे | कोरोना साथीचा (Covid 19) सामाजिक परीणाम | 270 |
| 66. | प्रा.गौतमी वसंत कांबळे | वासणोली धनगरवाड्याचे भौगोलीक, सामाजिक व सांस्कृतिक पैलु | 274 |
| 67. | डॉ. गोविंदराव शंकरराव कांबळे | सामाजिक व सांस्कृतिक विकासातील शिक्षणाची भूमिका | 279 |
| 68. | प्रा. प्रदीप बळवंत पाटील | समाज शिक्षणातील समूह संपर्क माध्यमांची भूमिका | 285 |

# Socio-Political Issues in Margie Orford's Crime Novel, Like Clockwork

**Mr. S.D. Rajratna**
Assistant Professor in English
K. H. College, Gargoti
Maharashtra State
Mob- 9850400504
Gmail - sdr4edu@gmail.com

**Abstract:**

*The researcher has attempted to analyze the major socio-political issues as reflected in Margie Orford's Like Clockwork in terms of its over happening effects on a socio-political system.*

*The study uses socio-political criticism which emphasizes its analysis of the socio-political context of the novel itself. The socio-political issues portrayed in the novels are analyzed in the light of the social and political issues such as corruption, exploitation, gender description, violence in modern society.*

*Margie Orford is regarded as 'the Queen of South African crime fiction also an award-winning journalist, photographer, film director, and children's author. Orford's Clare Hart series depict violence against women in contemporary South Africa. Elizabeth Fletcher (2013) argues that the Clare Hart series are amongst the very few contemporary South African crime novels with a female protagonist. Sam Naidu (2013) states that in 2003 Orford was a Mondi Prize finalist for her story on the trafficking of women for South Africa's sex industry.*

*The novel, Like Clockwork foregrounds contemporary South African issues. Like Clockwork functions as a device for socio-cultural and political consciousness.*

Key Words: Socio-Political issues, Crime Novel, Exploitation, Gender description, Violence Post-Apartheid Themes.

Popular fiction is an umbrella term, which covers crime fiction, thriller, riddle fiction, romance fiction, suspense fiction, science fiction, horror fiction, espionage fiction, western fiction, authentic fiction, fantasy fiction, and experience fiction, etc. The term 'Popular Fiction' is additionally known as 'Genre Fiction, 'which has made a rich and changed history within the convention of popular writing. The term Genre Fiction can be traded with well-known, modern, and category fiction that requests to masses. The fiction has a few vital subtypes: espionage, gothic, mental thriller, police procedural, whodunit, closed community secret, verifiable wrongdoing fiction, and science thriller, etc.

Jillian Dellit (2017) states that the term 'crime fiction' covers a wide range of sub-genres including thrillers, psychological thrillers, detective, 'cozy', courtroom, forensic, historical, hard-boiled, and para-normal to name a few. Crime Fiction as World Literature could be a culminating presentation and an essential content for understudies and researchers of crime fiction, as well as vital work for students and researchers of comparative and world literature."(Clues: A Journal of Discovery). Crime Fiction gives modern bits of knowledge not as it were into the genre itself but also the transnational flow of literature within the globalized mediascape of modern popular culture. (Louise Nilsson, David Damrosch, Theo D'haen, 2017).

Crime fiction opens up a space in which to depict more authentic and safe representations of traumatic experience to a willing and receptive audience. (Spring and King 2012 P.205). Crime fiction moves around crime, crime acknowledgment, their causes, and criminals. Crime creates uneasiness within the intellect of readers. To begin with, there's the crime, such as murder and its investigations by the detective either professional or non-professional; and at long last, the result is the criminal's death or punishment (John Scaggs, 2005, p-2). The eighteen-century literature covers crime and mystery components but it was generally created in the nineteenth and twentieth century. Within the

eighteenth century, crime writing has been created by numerous writers. Daniel Defoe's novel Moll Flanders (1722), his final novel Roxana (1724), and Henry Fielding's mocking daydream. Jonathan Wild (1743), John Gay's play, The Beggar's Musical drama (1728), is almost the elements of crime and mystery. Allan Poe plays a vital imaginative part within the improvement of detective short stories. The total incredible crime story wave that started within the final years of the nineteenth century is completely developed in the 1920s and 1930s. Thus crime fiction is certainly one of the foremost broad of all scholarly genres. The genre's history and advancement are associated with modernization and industrialization.

Crime fiction has become the most widely read literature in South Africa today. There have been arguments for South African crime fiction to be considered as bona fide South African literature. James McClure is the godfather of South African crime fiction. He wrote eight police procedurals between 1971 and 1991. His novels mock the Apartheid system through the figures of the Afrikaaner police lieutenant Tromp Kramer and his "Bantu" or Zulu sergeant, Mickey Zondi. Post-Apartheid has seen an outpouring of crime fiction by Deon Meyer, Margie Orford, Mike Nicol, and Roger Smith, among others. Margie Orford displays an engagement with major post-apartheid themes such as corruption, exploitation, and gender discrimination violence, and porn prostitution. Wessel Ebersohn created the figure of Yudel Gordon, a psychiatrist often called on to treat prison inmates and hence drawn into the investigation of crime. The contribution of African American women writers is as significant as that of black male writers. Toni Morrison in The Bluest Eyes, Maya Angelou in I Know Why the Caged Bird Sings, Louise Meri Whether in Daddy Was a Number Runner, and Paule Marshall in Brown Girl, Brownstones, and many other works all deal with the experiences of a black girl growing up in a hostile environment. Thus African crime fiction describes an African absence of dreams and aspirations.

The prologue of Like Clockwork serves as a clear illustration of antithetic characterization via a stark binary opposition that is engendered at the novel's start. Two divergent figures referred to as the "the man" and "the girl", act as the gendered poles, the two extremes of characterization. The prologue contrasts in every conceivable way the female captive, referred to as "the girl", to the male victimizer, "the man": The girl is as innocent, despairing, powerless, and, in a word, vulnerable as the man is culpable, callous and in control

Orford's novels represent amalgamations of different types of crime stories. (Horne K. S. 2015p-9) According to Naidu the portrayal of violence against women is very much present in Orford's novels. Orford's works are relatively quite extensive. Her vivid portrayal of sexual violence in her works focuses more on the threat and portrayal of crime and (violent) misogyny in South Africa and its literature than on the issue of literary genre in Orford's works. It is also thematically reflected in the evocation of the corrupt system/society of which the characters are part. Margie Orford's thesis entitled 'Crimes against women in Post-Apartheid South Africa' argues that South Africans averted a civil war but the "unspent violence was sublimated into a war against women" (Like clockwork, 2006, pp. 27–8).

Like Clockwork also harbors some of these features concerning its portrayal of the corrupted society of Cape Town. Orford's novels describe the fate of girls and women whose bodies are trafficked in the course of a highly organized, premeditated male-perpetrated crime. The victims are women who are lured from neighboring countries to be pimped in Cape Town's red-light district, the 'stock' of illegal brothels, and 'gentlemen's clubs. The economic reasons for this trade are mentioned but what Orford highlights is the brutal violence used to subjugate and silence these women. As Clare Hart investigates, the network of dominance is revealed and organized crime, or in other cases a pathological lone criminal, is vanquished.

Orford pays attention to the discovery of the bodies of victims of crime in all her novels. In Like clockwork, the murderer, Otis Tohar, positions the bodies in popular leisure areas, such as the Sea Point promenade, the rocks at Graaff's Pool, and on the beach close to a busy sushi restaurant. The bodies are on display in places he knows will be quickly discovered. He appears to want his crimes to be dramatically visible, understanding that his actions threaten the comfortable spatial organization of Cape Town's everyday geographies. Orford uses Tohar as a device as a pathological variant of the exhibitionary complex, in that the killer challenges the openly institutionalized law and order that mark the surface of post-apartheid South African life.

Orford's Like Clockwork takes up the themes of gendered and sexual violence. Clare Hart, the novel's criminal profiler protagonist, pursues a serial rapist and murderer of young women. The plot culminates in the arrest of the perpetrator, Otis Tohar, a local businessman whose ventures are spreading throughout the Cape Town setting of the novel. The narrative explores other forms of female subjugation: depicting female victims of human trafficking, and Clare's sister, Constance, who is brutalized in an attack. Clare Hart, Orford's fiction has been seen as part of the wave of crime fiction that is sweeping the South African literary scene.

Like Clockwork helps us to understand and appreciate the inevitability of this legacy and discomfort. It gives us strategies for managing the persistent social realities of violence. Like Clockwork portrays bodies that bear the lasting effects of violence somatically as well as psychologically. We see that how women's bodies are represented in the text: be they disfigured and maimed, or portrayed in the guise of a sexy corpse

The portrayal of violence against women is, as Naidu notes, very much present in Orford's novels. The most intimate locus of violence is the female body. In Like Clockwork the abuse of females is rampant. Orford's Like Clockwork engages in the aestheticization of sadistic violence and pain from the outset:

Two strides take him to the room where they have brought the new consignment. She looks at him, terrified. He finds this provocative. He holds out his hand to the girl. Conditioned to politeness, confused, she gives him hers. He looks at it. Then he turns the palm - secret, pink - upwards. He looks into her eyes and smiles. He stubs the cigarette out in her hand (Like Clockwork 1)

This episode highlights the vulnerability of the victim: she is merely a "consignment", one of many, treated as a commodity. She is "terrified", and infantilized, describe only as "the girl" – her identity stripped from her, reducing her to her sex. The erotic overtones of the scene are unmistakable. The attacker gains pleasure from the terror of his victim, finding it "provocative". The description of her palm as "secret, pink" has sexual allusions, and the mutilation of it foreshadows the sexual violence of women dealt with later in the novel. This is emphasized by Tohar's words to his last victim, 'No one is going to come. Nobody. It's just us here" (Like Clockwork 291-2)

Like Clockwork reveals the flaws in the society's own political and moral system. (Horne K. S. 2015p-18) Clare's thesis taps ongoing social anxieties, and the lasting effects of violence are explored in the texts themselves, through the bodies of the victims. The bodies that we encounter in Like Clockwork are indelibly marked by the suffering that they have gone through. In the case of Whitney, she has been stigmatized with the branding iron of the definition. Other bodies are marked by mutilation; in the case of Constance, the evidence of her attack is literally inscribed onto her body:

*"Criss-crossed with scars, her thighs and breasts carried the knife emblems of the gang that had used her to initiate two new members. On her back, illegible now, were brutal signatures where they had carved their initials" (Like Clockwork 45).*

In Like clockwork, Orford presents the reader with a character whose main quest is to end the violent war being waged against women's bodies. Orford's novels contain complex male characters, on both sides of the law. Orford's novels engage with this idea of gender-based violence as often being

the result of male reactions to the loss of dominance. Orford's novel describes the fate of girls and women whose bodies are trafficked in the course of highly organized premeditated male-perpetrated crime

The traits of the police procedural in Like Clockwork come across in the focus on the description of actual police work and the frustration concerning the politics. The silent understanding within the police department that the officers will "work the system to ensure the justice the courts will not ensure" (Panek, 169) also comes across in Like Clockwork. When Faizal tells Hart that the laboratory that the police works with has matched the DNA of a rapist in Johannesburg with the semen found on one of the murdered girls, Hart is surprised – not by the fact that the DNA from different towns and cases match, but by the effectiveness of the laboratory:

> *God, Riedwaan, how did you get the lab galvanized? They usually don't do anything unless the case is going to court.' 'Let's just say I had a favor or two to call in and somehow this got itself to the front of the queue.' (224)*

Orford represents domestic abuse as a central element of Like Clockwork. In Like Clockwork and both women and young girls are described as deeply affected by the misogyny they experience – physically, emotionally, and mentally. (Horne K. S. 2015p-74) In Like Clockwork (2006), Hart is approached by Kelvin Landman as she is getting into her car in a deserted area at the Waterfront in Cape Town. He grips her arm, and while she tries to struggle free, he "held her for a single menacing second, his physical power needing no other demonstration" (2006: 70). In Like Clockwork, Faizal tries to convince his boss, Phiri, to allow Hart to work on a murder case with him. The discussion between Faizal and Phiri is deliberately used by Orford to highlight aspects of Hart's character as an investigator, and also to draw attention to Faizal's belief that there is gender prejudice in the police service.

Hart's doctorate thesis "Crimes against Women in Post-Apartheid South Africa" (2006: 27) elaborates her premise that "unspent violence was sublimated into a war against women" in particular (27-28). This gives a gender inflection to the spaces of violence, and although some of Hart's colleagues, such as Senior Superintendent Phiri, are skeptical, the recognition that apartheid is given as a cause for crime in the country is plausible, and we see Orford shaping accepted academic logics for crime into a form that can accommodate her interest in the spaces allocated to women in South African society.

Results of this study indicate that the novel Like Clockwork exposes the various ways in which women are violated, abused, exploited, and annihilated in contemporary South Africa. Orford writes about crime, gender violence, politics and freedom of expression, and literature. Orford's novel describes the fate of girls and women whose bodies are trafficked in the course of highly organized, premeditated male-perpetrated crime.

**References:**

1. Kate, Every. (2016). "*Growing scar tissue around the memory of that day": Sites of Gendered Violence and Suffering in Contemporary South African Literature.* Journal of International Women's Studies, 17(2), 30-42.Retrieved 24th March 2021 from http://vc.bridgew.edu/jiws/vol17/iss2/4
2. Louise Vincent Samantha Naidu (2014) *Vrou is Gif2: The representation of violence against women in Margie Orford's Clare Hart.* African Safety Promotion Journal, Vol. 11, No. 2, 2013
3. Orford, M. (2006). *Like clockwork.* Cape Town: Jonathan Ball.
4. Samuelson, Meg. (2007)*Remembering the Nation, Dismembering Women? Stories of the South African Transition.* Scottsville: University of KwaZulu-Natal Press, Print
5. Spring, Michelle, and King, Laurie (2012) *The Arvon Book of Crime and Thriller Writing*, Bloomsbury Publishing, London.
6. Scaggs, John. (2005). *Crime Fiction New Critical Idiom*: Taylor & Francis Routledge: London
7. Horne K. S. (2015) *Margie Orford's Hybrid Narratives: Crime Fiction Subgenres and the Theme of Misogyny in Daddy's Girl and Like Clockwork.* Master Thesis, UiT The Arctic University of Norway.

# The struggle and suffering in Hemingway's *'The old man and the sea'*

**Chandrakant K. Chavan**
Assistant professor,
Department of English,
K.H.College Gargoti.
Corresponding Author- chavanchandu18@gmail.com

**Abstract:**

*This paper attempts to depict the struggle and suffering portrayed in Hemingway's Novel 'The old man and the sea'. Human life is presented as a struggle against the undefeatable forces of the world, and it is a struggle where man is destined to lose. The novel old man and the sea by Ernest Hemingway is a very simple story about an old man Santiago and his life struggle to survive. The author shows many positive characteristics through the character of Santiago who preserves through the ups and downs of life and yet maintained hisself-Pride. Hemingway has chosen Santiago to send this positive message that heroism can be demonstrated in your everyday life and action through perseverance and endurance against all adversary. Hemingway in his Novel presents an old, yet determined fisherman, Santiago who is adamant despite an 84 day streak of bad luck. His companion Manolin is restricted to fish with Santiago, because of his bad luck. Santiago sets out to fish without Manolin,farther than any other fishermen, even though he is alone. The events that occur both during and after the fishing trip, reveal the courageous mindset of Santiago. Through the protagonist Santiago, Hemingway portrays the themes of struggle and suffering, very accurately.*

*Keywords: struggle,suffering,courage,The old man and the sea, fisherman, Santiago, mindset, deformity, heroism, destruction etc.*

Ernest Hemingway, a famous American writer in his Novel 'The old man and The sea' describes its protagonist, Santiago as a man who faces deformity and pain of life by his mindset and individual life force. In the face of perseverance, dignity and willpower he alone faces the fate of failure and death. Santiago is described as a typical symbol of Hemingway's adventurous man. He believes that people can only be eliminated but cannot be defeated. In the novel, the old Santiago, failed to catch the fish for 84 days and on the 85th day he decides to go deep in the sea than any other fishermen. Santiago has the qualities of heroism. He has great patience and immense courage. He has not caught a single fish in 84 days and yet he goes out in the sea with the hope to catch a fish without any complaints. Instead he compares himself to his favorite baseball player, Joe DiMaggio of the New York Yankees who had a painful bone during his ball game. With great confidence and hope he goes deep into the sea to catch a fish. With great courage he catches a really big fish.

The novel is filled with the theme of struggle. Throughout the novel we see the struggle through Santiago, Marlin as well as Manolin. The greatest struggle we see through the battle between Santiago and the big fish Marlin. After hooking its mouth, he spends nearly 2 days attempting to kill the massive fish. However, this fight is characterized by endurance, respect, love and nobility. Determined to kill the fish Santiago represents great love and respect for the Marlin. Santiago recognizes that one of them will die in the struggle, but that death does not signify defeat, it only signifies physical destruction. At the climax of the novel, Santiago reaffirms this point," you are killing me, fish…. But you have right to…. Brother. Come and kill me. I do not care who kills who." Here Hemingway clearly describes the nature of this struggle as one of love. Santiago believes that sea creatures and human are bound together by the sea, and their fights for life and death are noble. The one who dies does lose their body, but they are not spiritually defeated. The fight, in itself, is a source of nobility and honor if it is conducted with respect.

Santiago ultimately survives, but he does not win. His objective was to catch a big fish, and bring it back home to sell. He failed in this aim, and though "he is destroyed, he is not defeated." His physical wellbeing is injured, but his moral strength has been fortified by this tremendous interaction with such a noble sea creature. In his time of struggle and hardship, his inner character was revealed. In a harmony with all sea creatures, Santiago has demonstrated endurance, honor and incredible courage. This struggle also shows Santiago's tremendous cunning and tolerance for pain. In Santiago's struggle to reveal the Marlin represents his unwavering hope.

Another struggle revealed by the relation between Manolin, the young boy and Santiago. Manolin wants to help Santiago and offered him 4 fresh sardines for his bait but Santiago refuses. But then later he accepts two of the sardines. Further on, we see that Santiago claims that he has dinner, yellow rice and fish when Manolin asks him but then accepts the food that the boy offered. Manolin later offers to sail with him on the boat but Santiago refuses to take his help because of his Pride. He knows that Manolin's parents don't like him helping Santiago. Santiago does not want to hurt his Pride by showing his need even though he knows he can use his help. He was too simple to wonder when he had attained humility.

Suffering is another major theme displayed in the novel. Both Santiago and Marlin, the fish suffer a lot. Hemingway conveys the message that to leave means to suffer. In the struggle for survival, lives are lost, bodies are broken and much pain is experienced. Even pleasure comes to man in the form of pain and vice versa. The greater the pleasure is, the harder the pain. In the baseball game DiMaggio, the baseball superstar endures much pain. But he does not give up the struggle and suffering but plays on. Santiago respects enormously the fighting spirit of the Marlin with whom he is wrestling. The conquest of Marlin put the old man in great suffering. The Reader pities both the man and the Beast because both of them bleed and are tired. Sometimes the suffering is psychological, for example the feeling of loneliness and boredom, anxieties and fears that comes in the mind of all fighters and Hunters- Man or beast. The danger of fighting in the dark is highlighted by Santiago. He wants to see The Big Fish so that he could know the danger of the problem that faces him. Santiago loses the fish to sharks so one could conclude that Santiago's suffering is meaningless: fruitless struggle. Suffering is an indispensable part of life. It teaches us important lessons. Santiago advises himself to learn from the fish which has suffered and endured much pains. Santiago's physical and psychological suffering bring the feeling of empathy in the reader. The Reader is moved with pity when the line cuts his hand and back, the cuts over his eyes and on his forehead, and Santiago feels faint and dizzy. His suffering arouses emotions of Pity and fear among the readers.

The novel is truly universal in its consideration of the plight of the old man struggling against age, poverty, loneliness and mortality to establish his identity and dignity to re-establish his reputation in the community, and ensure for all time his relationship with those he loves and to whom he hopes to pass on everything he values most. Ultimately, Santiago's struggle not only redeems himself but inspires and spiritually enriches those around him. The novel The old man and the sea delivers the message of human existence and dignity. Man, by its nature has the ability to survive in any situation. Man can be destroyed, but cannot be defeated. This term becomes a philosophical idea of human existence. The novel is a story with lot of didactic implications. It has become so fascinating classic literature to people because it displays a simple life of an old man struggling on the sea.

**References:**

1. Hemingway, J. (2012). Hemingway on Fishing: New York, Lyons press, 2000. Hopkinss David and Putnam Roger.Personal Growth through Adventure: New York, Rout Ledge.
2. Benzitouni, I. (2014). The Concept of Heroism in Ernest Hemingway's The Old Man and the Sea. An Unpublished Master Thesis. KasdiMerbah University, Ouargla.

3. Hemingway, E. (1979). The Old Man and the Sea. New York: The Free Press.
4. Rani, K.U. (2016).Theme of Alienation in Ernest Hemingway's *The Old Man And The Sea. International Journal of English Language, Literature and Humanities. IJELLH Vol. IV, Issue IV, April.*
5. https://www.enotes.com/topics/old-man-and-the-sea/critical-essays/essays-criticism
6. https://www.ukessays.com/essays/english-literature/analysis-of-hemingways-the-old-man-and-the-sea.php
7. https://bu.univ-ouargla.dz/master/pdf/BENZITOUNI-Imane.pdf?idmemoire=4311
8. https://www.academia.edu/33359585/Theme_of_Alienation_in_Ernest_Hemingway_s_T
9. https://studydriver.com/the-old-man-and-the-sea-life-struggle-to-survive/
10. https://medium.com/gopeer/the-old-man-and-the-sea-by-ernest-hemingway-critical-essay-7a1184e152c5

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com

# The Fractured Identity That Long Silence

**Dr. Madhavi Pawar**

The Indian literature has gifted several talented women novelists as Arundhati Roy, Shashi Deshpande, Anita Desai, Shobha De etc. the list is too long. They are known for the contemporary approach in their novels. Their novels are basically protest novels and an outburst of reservations & contaminations. Today women are not the puppets in the hands of men. They have realized that they are not helpless but are competent like men. They are not only confined to household works. They have established their identity in almost every walks of life. Their immense contribution to English literature in general & fiction in particular is worth noticing and praise worthy.

Indian English literature has developed over a period of time & writing in English took many years to flourish. Indian women novelist have given a new dimension to it. Most of the women writers had chosen the problems and issues faced by the women in today's male dominated world. They explore the world of women with stunning frankness. Their women protgagonists are the rebelious, self-confident to tackle their own problems. They explore the feminine subjectivity and apply the theme that ranges from childhood to complete womanhood. For them Feminism means putting an end to the women's sufferings. Most of contemporary women novelists have left their indelibte imprint on the readers of Indian fiction in English. Most of them are known for their bold views that are reflected in their novels. The Indian society which had been so conventional and tradition bound could not remain impervious to the new forces that had started impinging on the minds of people. The modern Indian fiction reflect man-woman, husband-wife relationship. This relationship is the dominant theme of the fiction of Shashi Deshpande. She reflects a realistic picture of contemporary Indian woman and her relationship with her husband.

**Modern Indian Woman:**

Shashi Deshpande's focus in her novel 'That long Silence' is essentially on women and her role in society. The novel also reveals the fate suffered by majority of women all over India. An increasing awareness of injustice done to them slowly made women raise their voices against inequality and oppression, female consciousness against male domination led to the birth of women's liberation Movement, which is a serious reform movement, aiming at an upliftment of women in society. In the words of Dr. G.D. Barche (1995) "The educated Indian Woman had started becoming conscious of her rights & responsibilities, her distress and destination. Accordingly, she had waged her war, too. This war is against many human elements like ego, greed, ambition, selfishness, sadism etc. She has miles to go before the goal is reached".

Shashi Deshpande's protagonist Jaya wishes to break and to search her own-self, her real individual. She is dissatisfied with her role model in marriage and her agony over her own acceptance of the type of life. The novel begins with the sensitive presentation of the loneliness of a woman and the haunting question, the purpose of her life in the context of her familial relationships. In the early days of marriage, Jaya wanted to create a fairy tale home. By over coming her fears, ambiguities and suspicious. She suppresses her own emotional needs. The fear of failure to confirm to the stereotyped model of ideal woman makes her restless. The protagonist is known by two names - Jaya & Suhasini. Jaya means victory a name given by the father. Suhasini means soft smiling. This name was given to her after her marriage. Both names symbolizes the major traits of personality. The former symbolize revolt and the later submission. The dreams of her childhood, to change the expected situation of woman into achieving her desired goals are shattered by the surrounding, the society that imposes all sorts of restrictions on woman.

## Self-Actualization:

In the early days of her marriage Jaya wants to create a ideal home by shutting out her fears, ambiguities and suspicious. She suppresses her own emotional needs while performing the role of wife, mother, friend etc. The suppression of self and emotions and worry to keep the exterior smooth, gradually create a strain in her. The repetitive nature of household chares & emotional loneliness generates monotony in her life and finds family life unendurable. She longs to be called an ideal wife. She revolts in silence. The readers are informed the life of Jaya through the flashback technique. Lying alone in the small house, her mind travels through the past & present and covers the whole span of her life. In the Indian context, once the girl gets married to a man, the husband takes complete control over her. If the husband follows the right path or the wrong, she has to follow blindly in his footsteps.

Jaya is basically a modern woman rooted in tradition, whereas her husband, a woman sitting before the fire, waiting for husband to come home and eat hot food is the real strength of a woman, but Jaya interprets it as nothing more than despair. She realizes the futility of a life which is built around the needs of a husband only. Her own career as a wife was in jeopardy. (24,25) However, freed from her daily burden of repetitive chores, she also experiences a strange sense of undulated freedom, as the woman's work within the house does not create anything permanent - it does not impart her any freedom either.

Jaya's relationship with Kamat is significant to the developments of the novel not only because it represents her need of emotional sharing, but also it enables her to analyze her individuality once again and have faith in her capability to transcend the social barriers in the pursuit of fulfillment. Kamat always encourages and motivates her writing skill. While living a life of solitude at Dadar flat Jaya reassesses her life with some objectivity. Long hours of contemplation lead her to a decision of giving up the role of a silent and passive partner and to clarify the misunderstandings and turbulence in her relationship with Mohan. Understanding of the motives behind one's deeds and acceptance of responsibilities for one's decisions alone can lead to a true uninhibited liberation of the self. In short self-actualization is possible if a woman decides to be 'herself', to exhibit the genuine significance of her free, innate personality in its totality.

## Conclusion :

Shashi Deshpande is not only writing about her protagonist, Jaya, who is trying to create long silence and engrossed with the problems of self-revelation and self-assessment but through the character of Jaya she wants to expose those unhappy victims who never broke their silence. When finally Jaya comes out of her emotional unheaval, she puts down on paper the entire suppressed feelings in her seventeen years silence. 'That Long Silence' puts into nutshell the history and evolution of women through four generations that Jaya has known & promises a better future for women. Deshpande in her novel reveals that women should accept their own responsibility for what they are, should see how they must have contributed to their own victimization, instead of putting the blame on everybody except themselves. It is only through self-analysis and self-understanding through vigilance and courage; they can begin to change their lives, fighting their own battles. Deshpande wants to show the changed society in her novel, but he predominating issues & themes in her novels emerge from the situations that focus on woman caught in the crisis of a traditional society where the shift is taking place from the conventional to the unconventional. Deshpande chooses the middle class woman, because she represents a larger part of the contemporary Indian society. The woman she portrays are unique because they represent neither old orthodox image nor the modern westernized version. She is 'every' woman of the Indian middle class society, the retainer of the traditions.

## References –

1- That long silence, London: Penguin Books,1988.
2- Bhatt, Indira. “That Long Silence: A Study, Indian Women Novelists set I Vol.V Dhavan R.K.Prestige Books, 1991

# Literature: A Gateway to Social Change

**Dr. Uttam Ramchandra Patil,**
Head,Department of English,
Rajarshi Shahu Arts and Commerce College,
Rukadi, Dist. Kolhapur [MS] uttamnayana@gmail.com

## Abstract

*Change is an indispensible part of life which bears nothing eternally immutable. In the course of time every thing with physical existence undergoes change naturally. Man is a social animal who lives in a society which operates on the basis of the ideologies which form the patterns of life to be followed by the members of the society with little objection. This may result into various discriminations such as gender, class, caste and injustice to the powerless as the ideologies are formed in the favour of those who are in power. Naturally those who do not get justice strive for it and in their strife literature plays a pivotal role of a gateway to social change. It can be seen that literature has been used as a tool to propogate the issues of the downtrodden and subsequently brings about a social change in favour of those who have been suffering unreasonably. The present paper is a modest attempt to present how Mulk Raj Anand's novel, 'Untouchable' becomes a gateway to social change.*

***Keywords:*** *social change, gateway, literature, discriminations, ideologies, justice*

Life is a school that educates with the help of experiences which can happen at both individial and mass levels. Most of the members of a society can have the experiences at the mass level. However, the individual experiences are restricted to that particular member. Literature is in a way a record of these experiences. It provides an individual point of view for the experiences at the the mass level and also presents the experiences at the individual level. In fact, literature has two functions. It aims to entertain as well as educate the readers. Literature is a reflection of culture. It covers not a single culture but presents a multicultural view of experiences. Accordingly, literature, as a part of a larger cultural body, is both instructive and entertaining, and has the power to facilitate personal understanding and encourage social cohesion. When it entertains it makes its reader forget the plights and anxieties of the mundane life. And when it instructs or propagates it becomes a gateway to the social change. Change is an essential element of life and it makes life liveable. It can be at the personal as well as social level. The social change is an outcome of the reaction of an individual or individuals to unjust treatment to an individual or a group of people. A society operates as per the ideologies which are formed for the advantage of those in the power. The ideologies protect the interests of the rulers. They are used to exploit the helpless powerless people. However, the when these hapless downtrodden become conscious of their rights and the injustice done to them, they stand against the inhuman system and become the cause of the social change. Literature contributes significantly in making the people aware of their status in the society. It inspires them to fight for their rights and break the shackles of degradation and subordination and make life harmonious and bearable for them.

Indian society was founded on the basis caste discrimination. The shudraswere treated inhumanly. They lived the life of neglect, humiliation and unbearable sufferings. They were deprived of the joys of the upper classes. They were not allowed to mix up with the upper classes. They were deprived of education, entertainment and all the common things of life which a normal human being cannot avoid. Under the influence of religion no one dared to talk against these callous customs and conventions that made some people of the same society hapless. The miserable life of the untouchables in India is beyond imagination. They lived the cursed life that kept them mere slaves. They were humans only biologically. Socially or culturally they were nonhumans. They needed freedom from this age-old infernal sufferings. If the British had not ruled India, the untouchables' life would have been even fuller of sufferings. The British made social reforms. They gave people education which created a group of social reformers in India. These reformers dedicated their lives for the upliftment of the untouchables. Along with the political freedom they worked for the social freedom, justice and equality. Mahatma Gandhiji, VitthalRamajiShinde, Dr.BabasahebAmbedkar and many others took

special efforts to uplift the downtrodden and tried to give them justice. They taught the downtrodden to be educated, to be unified and to struggle for their rights. They wanted a social change which was made possible due to the contribution of many literary artists. Anna BhauSathe in his famous song dedicated to the jagabadlaGaalaunaIGaavaIsaaMgaunaIgaolaomajaiBamaravaI).great national hero Dr.BabasahaebAmbedkar writes, 'Change the world with an onslaught, That is what me Bhimrao taught'(As far as literature is concerned, the issue of untouchability was made international by Mulk Raj Anand through his aptly entitled novel, ' Untouchable'. The present paper is a modest attempt to study how the novel records the plights of the untouchables and becomes a gateway to a great social change.

Mulk Raj Anand's contribution to the Indian English fiction ofsocial realism is undoubtedly great. He depicts the north Indian ruraland feudal society, especially that of Punjab authentically. He is India's most controversial novelist. His life and career can accessibly be divided into three parts: I) The early years in India until his departure for England (1905-1945), II) The years abroad(1925-45) and III) from 1946 – 2004 i.e.up to his death. This division is related to the different stages of his literary career. The first period presents the various components that go into the shaping of his mind and the influences that later bear upon his writing. The second period is the most important: it is about Anand's hard struggle to become a novelist. Eventually he became successful and 'the foremost Indian novelist'. As far as his literary achievements are concerned the third stage is disappointing. There is no doubt that Anand through his works stands before usas a champion of the downtrodden by articulating his sympathy for themost oppressed and the most exploited class of Indian society.

'Untouchable' (2003)is not only the first novel of Anand, but it is also the most popular,the most compact and well-knit novel that depicts the miserable life of Bakha, a sweeper. The novel was first published in 1935 and its material has been derived to a great extent from Anand's 'Confessions' written earlier. Moreover, it was Mahatma Gandhiji who had asked him in 1930 to write a pamphlet on untouchability and 'Untouchable' came into being. Anand had read an article in Young India by Mahatma Gandhiji. In this article Gandhiji had described how he met Uka, a sweeper boy who was in torn clothes and was hungry. Gandhiji took him into his ashram. Gandhiji's narrative was simple and austere. Anand found it truthful and he decided to write the novel.

'Untouchable' depicts the feelings of the untouchables. Bakha is the representative of the untouchables. The novel records the uneasy feelings of this eighteen year oldsweeper boy. Bakha's uneasiness is intensifiedwith a series of humiliations that he has to bear throughout the day.He represents a modern untouchable youth who wishes to break theshackles of evil religious traditions and customs. He has that ability.He is constantly abused and insulted but he is not allowed to strike back. The action of the novel takes place in Bulasha, a Cantonment town in Punjab. Naturally, the novel depicts the scenes and sights, customs and traditions, ideas and beliefs of Punjab.

The novel is an account of a single day in the life of Bakha, the central figure of the novel. He is woken up early in the morning by his father Lakha so that he may begin his daily routine of cleaning latrines. According to Jack Lindsay (1965),

Bakha works at cleaning latrines in the barracks, and the Tommies are the first persons outside his caste who treat him as a human being. The result is a shock which makes him reconsider what he has previously accepted as a natural and fixed order of things. Thus, by showing in one small case of the unintended but inevitable effect of British rule in dissolving the fixed caste or feudal relations which in other ways it has wished to preserve as the basis of its power, Anand reveals at the outset his mastery of method – his capacity to define the general in the particular. Not that Bakha is led at once to direct revolt; Anand never over-simplified the development of character. What has happened is that Bakha adores the soldiers and feels he has acquired some new sort of status with his suit of old European clothes, a gift from the barracks. Still the virus of change is at work in his being.

On this day a number things happen to Bakha. All these things contribute slowly to the changes in his spirit. He goes into the town to sweep the gullies in exchange for stale food. He has to accept the chapatti thrown by the high caste woman. He chances to jostle a little Hindu marchant, and is slapped and abused. A priest, PanditKalinath tries to molest his sister, Sohini. When Bakha peeps into the temple to see what is going on there, the Brahmins scream "polluted! Polluted! Bakha's father tells him how once when Bakha was suffering from fever, he could not go into the chemist's shop to buy medicine for fear of defiling the place, and had to stand by the roadside, pleading passers-by to bring

the medicine for him. All these episodes conspire to crush Bakha's self-confidence. They force him back into his hapless and hopeless caste-position and make him dimly but poignantly conscious of the forces determined to keep him in such a mean and cheap social position.

However, among all these ruthless impediments Bakha goes on meeting people who have what they think is a solution for the caste problem. At first he meets an English missionary who tells him that Jesus does not recognize caste and that He sacrificed his life especially so that untouchables like Bakha might be forgiven. The missionary intends to persuade Bakha to be converted to Christianity. Bakha does not understand all this. Still Bakha hangs there in the hope of getting a pair of white trousers. But when the missionary's wife emerges shouting at her husband, Bakha runs away and becomes a part of a crowd waiting for Mahatma Gandhi. He is impressed when he overhears people say that Gandhiji is a saint; an incarnation of Vishnu and Krishna. Then Gandhiji is welcomed with flowers and flags. Gandhiji in his speech says that the sweepers are men of God (Harijans) and they must keep themselves pure by eating only the right food and refusing the leavings of others. This again confuses Bakha. He returns home thinking about a poet's suggestion that water-closets and a proper drainage system would simply eradicate the whole problem of untouchability.

The oppression, injustice, humiliation to which Bakha is subjected during the course of this eventful day, is not peculiar to him alone. It has been the fate of these social outcastes since times immemorial. Bakha is a universal figure who symbolizes the exploitation and oppression which has been the fate of untouchables like him. His anguish and humiliation are not his alone but those of a whole class of people who are regarded as untouchables.

Though Bakha is illiterate, he is sensitive enough to feel the humiliation and to understand in his own inexperienced way the essentials of what is going on around him. He understands that as he is a sweeper/scavenger, the society is denying him his human status. He wishes that should be changed. When he comes in contact with Tommies, he is able to understand what human treatment means. He understands the value of what the Indian society has denied him. He wishes to be like Tommies. If the imitation of Tommies creates a false sense of superiority in Bakha, untouchability forced on him by tradition and history works in the opposite direction.

To conclude, 'Untouchable' gives us a view of a social order which is tradition-bound but in which the traditional order is being subjected to insist questioning from various quarters. Things are on the move, and it is this movement, this transition, which has been depicted through the story of Bakha. The novel does not accept the traditional Indian assumption that those who clean dirt are dirt. After the independence, with the Herculean efforts of Dr.BabasahebAmbedkar the outcastes have been being given justice. Bakha's ambition of becoming a man of status is being fulfilled. This is enough to prove that literature is a gateway to social change.

**References:**

1. Anand, Mulk Raj. (2003). Untouchable. Mehta Publishing House:Pune.
2. Lindsay, Jack. (1965). The Elephant and the Lotus: A Study of the Novels of Mulk Raj
3. Anand.Kutub-Popular: Bombay
4. Sathe Anna Bhau. (1995) Anna BhauSatheYanchyaPowadewaLawanya, Lokwangamaygruh, Mumbai

# A Study of Reading Habits of B.Ed. Teacher Trainees

**Dr. Prashant Kale**
Associate Professor,
Gokhale Education Society's College of Education & Research
Parel, Mumbai-12
Mobile: 9422234593
E-mail: pskale11@gmail.com

## Abstract

*Reading plays a very important role in personality development of an individual. Reading of good books reflects in thinking and behaviour of an individual. Students pursuing B.Ed. are future teachers and, this future can inculcate good reading habits among their students. This study reveals importance given by B.Ed. students for reading of books and their reading habits.*

## Introduction:

Books are true friends of a person. Books give us knowledge & wisdom. Reading habit is a very important habit & plays a great role in personality building. In the era of ICT every one is busy with different tasks. Students are also consuming a lot of time on watching television serials. It is observed that many students are playing games on mobile, watching videos.While some of the students are reading E books, E Newspapers & Audio books.

## Importance of Study:

As B.Ed. Students are future teachers. Teacher is a friend, philosopher,&, guide for the student. Teacher can inculcate good habits among children. Reading of good literature, books make a positive impact on one's life. From this study we will get trend among prospective teacher about their reading habits. These students will inculcate good reading habits to their students, who are future citizens of India.

## Objectives of the study:

For the present study the researcher had formulated following objectives.

1) To study the Reading Habits of B.Ed. Teacher Trainees
2) To suggest measures to improve the Reading Habits of B.Ed. Teacher Trainees.

## Methodology and Sample of the study:

For the present study the researcher has selected a survey method. The data is collected through GoogleForms. The GoogleForm was circulated through WhatsApp, Gmail and other social networking sites. For the present studyB.Ed.second year students of batch 2020-21 are considered. Data is collected from students of affiliatedcolleges of Mumbai, Savitribai Phule Pune, & SNDT Women's University.The researcher has received 153 responses from B.Ed. Teacher Trainees.

## Tool of the data Collection:

The researcher has prepared a questionnaire and used GoogleForm for the circulation of the questionnaire. There were 25 items constructed which are related to study of reading habits of B.Ed.Teacher trainees. In the 25 items questionnaire there was a freedom given to the trainees that if they do not want to attempt any particular question, they were free to do so. No question was compulsory.

## Statistical Techniques Used:

For the analysis of thedata simple statistical tool i.e., percentage is used. The data analysis is presented in the form of tables.

**Analysis of the Data**: On the basis of responses received following facts are revealed.

1) 94.8% students are reading books other than academic books, 5.2% students are not reading any book other than academic books. they only concentrate on academic books.
2) Students are mostly reading books in Marathi, Hindi, & English Language.
3) Time spent by students for reading in hrs per week

| 2 Hrs | 3 Hrs | 4 Hrs | More than 4 Hrs | Less than 2 Hrs | I don't read |
|---|---|---|---|---|---|
| **52%** | 12% | 2.7% | 18% | 28% | 4.7% |

Above table reflects that half of the students spend at least 2 Hrs for reading.18% students give more than 4 Hrs for reading. 4.7 % students do not spend any time on reading.

4) Do you read newspapers daily? For this question following are the answers given by B.Ed. Teacher Trainees.

| Yes | No | Sometimes | Rarely |
|---|---|---|---|
| **23.7%** | 14.5% | 54.6% | 7.2% |

Only 23.7% student read newspapers regularly.14.5% students don't readnewspapers at all. Most of the students readnewspapersometimes or rarely.

5) When students asked which type of books they like to read, following are the answers given by B.Ed. Teacher Trainees.

| Novel | Poem | Short stories | Comics | Drama |
|---|---|---|---|---|
| **55.6%** | 21.2% | 68.9% | 16.6% | 20.5% |

Most of the students like to read short stories &novel books. Other than these five types of books many students like to read following types of books
Religious,Fictnonal,Non Fictional, Spiritual,Patriotic, Mythology, Science fiction, Autobiography.

6) 74.3% Students read E- books. 25.7% students do not read E-books.
7) E-books are easily available, for this statement B.Ed. TeacherTrainees gave the following answers.

| Yes | No | Not Sure |
|---|---|---|
| **63.6%** | 12.6% | 23.8% |

More than 60% students get easy access to E-Books.Few students find it difficult to access & near about 23.8% students are not sure.

8) According to 77.1% students, hard copy of book is easy for reading.22.9% students find E-bookseasy to read. Most of the student feel that the Hard copy is better than E- Books.
9) Students get these books from College library, Public library, Online, E- books & book stores.

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal www.aiirjournal.com

10) Reading of books enhances our knowledge, for this statement following is response from B.Ed. Teacher Trainees.

| Strongly agree | Agree | Neutral | Disagree | Strongly disagree |
|---|---|---|---|---|
| **56.2%** | 28.8% | 7.2% | 0.7% | 7.2% |

From above table it seems that majority of the B.Ed. Teacher Trainees agrees that Reading of books enhances our knowledge. Few students do not believe on this statement.

11) Reading good books written by eminent authors is a good habit. For this statement B.Ed. Teacher Traineesresponded as follows

| Agree | **75.8%** |
|---|---|
| Disagree | 2.0% |
| Neutral | 22.2% |

Most of the student accepted that reading good books written by eminent authors is a good habit. Near about 22% students did not give their remark for this statement.Very few B.Ed. Teacher Trainees disagree with this statement.

12) 32% students have their own library at home.68% students do not have own library. 24.5% students have collection of more than 100 books. 75.5% students have less than100 books collection.

13) 75.5% B.Ed. Teacher Trainees gift or recommend books to their friends.25.5% students do not gift or recommend books to their friends.

14) Now a day's school children are watching television more and reading books less for this statement following are the responses of B.Ed. Teacher Trainees.

| Agree | Disagree | Neutral | Not to Say |
|---|---|---|---|
| **83.6%** | 3.9% | 8.6% | 3.9% |

Majority of the B.Ed. Teacher Traineesaccepted the fact that school children are watching television more and reading books less.

15) 21.2% B.Ed. Teacher Traineesare member of public library in their area or town. 78.2% students are not using public library services. 91.3% students feel that home library service from public libraries is beneficial for reader and saves time of the reader.

16) 93.4% B.Ed. Teacher Traineesbelieve that reading good books play a very important role in personality development of a person.

17) How many books a person should read in a year other than academic books? following are responses for this question

| No of Books should person read in year | Number of Studentsand Percentage |
|---|---|
| 10 | 51 (34.5%) |
| More than 10 | 63 (42.6%) |
| Less than 10 | 34(23%) |

18) 60.5% B.Ed. Teacher Traineesare aware about online audio books.39.5% B.Ed. Teacher Traineesare not aware about audio books. 82.9% B.Ed. Teacher Traineesknow about Google books, Amazon kindle. 17.1% students are not aware about this.

**Recommendations on the basis of above findings:**

On the basis of above findings following recommendations can be given.

- Compulsory two hours reading session should be included in weekly time table of B.Ed. Teacher Trainees.
- Bestreader award of the year shouldbegiven to B.Ed. Teacher Traineeswho read maximum books from college library.
- B.Ed. Teacher Educators and librarian should inform B.Ed. Teacher Trainees about good books &new books arrived in market and library.
- Teacher educators should give information about free on-line books available on internet, also they should give information & practical about Audio books and applications available on play store.
- Teacher should motivate students to read goodbooks. Also, they should encourage B.Ed. Teacher Traineesto write their reflection on read books.
- Teacher educator should give knowledge of copyright act and plagiarism to students. Also, they should give information about open educational resources.
- A platform should be available for B.Ed. teacher students to discuss about the latest or various books read by them.
- A culture should promote among B.Ed. students to exchange good books in between them.

**References:**

1. **Chauhan, P., & Lal, P.** (2012). Impact of Information Technology on Reading habits of College Students, International Journal of Research Review in Engineering Science and Technology. Retrieved on January 22, 2021 from: http://ijrrest.org/issues/?page_id=1
2. **Devendra,Kumar, Rajkumar Singh,, and Siddiqui, Jamal Ahmad,** (2011). Newspaper Reading Habits of University Students: A Case Study of Chaudhary Charan Singh University, India. Library Philosophy and Practice, 470.
3. **Quadri, G.O. and Abomoge, S.O.** (2013). A survey on internet use habits among undergraduate students in selected university libraries in Nigeria. Journal of Information and Knowledge Management. 3(11) Pp. 38-46.
4. **Hassell, S.H., &Rodge, P.** (2007). The leisure reading habits of urban adolescents. Journal of adolescent and Adult Literacy, 51(1), 22-33. Retrieved February 3, 2021 from www.reading.org/Library/Retrieve.cfm?
5. Clark, C., & Foster, A. (2005). Children's and young people's reading habits and preferences: The who, what, why, where and when. Retrieved January 25, 2021 from www.literacytrust.org.uk/Research/Reading_Connects_survey.pdf

# Society and Symbols Depicted in the Novel *Train to Pakistan*

**Dr. A. S. Arbole**
Head Department of English
Arts, Commerce and Science College, Kowad

The novel, *Train to Pakistan* illustrates the idea of partition in 1947 and how people get affected by the term of violence. Khushwant Singh describes that *Train to Pakistan* is the novel which represents that the black history of India through the partition of India and Pakistan. Moreover, Khushwan Singh represents the village, Mano Majra, as a microcosm which shows a large world, even it starts with micro, but it has the meaning itself. It also illustrates that the term 'microcosm' represents of both communal conflict and violence which is caused by the partition. Khuswant Singh uses the character of the Sikh boy, Juggat Singh, and the Muslim girl, Nooran which tell about the reality of situation upon the communities.

Mano Majra is tiny place. It has only three brick buildings, one of which is the home of the money lender Lala Ramlal. The other two are the Sikh temple and the mosque… the rest of the village is a cluster of flat roofed mud huts and low-walled courtyards which front on narrow lanes that radiate from the entre… there are only about seventy families in Mano Majra, and Lala Ramlal's is the only Hindu family. The others are Sikhs and Muslims, about equal in number… But there is one object that all Mano Majarans- even Lala Ramalal- venerate. This in a three -foot slab of sandstone that stands upright under a keekar tree beside the pond. It is the local deity, the Deo to which all the villages – Hindu, Sikh, Muslim or pseudo Christian – repair secretly whenever they are in special need of blessing.

The novel is set in Mano Majra, a fictional village located in India but on the border of Pakistan, where the population is mostly Sikh and Muslim. At the beginning of the novel most of the village's inhabitants are unaware of the religious and nationalistic violence happening in India and Pakistan, and live in peace across religious lines. This quickly changes when a train from Pakistan full of murdered Sikhs arrives in Mano Majra. The villagers of Mano Majra were ignorant enough to understand the meaning of partition. They were busy in their own lives. Hindus and Muslims used to live together peacefully. The arrival of train from Pakistan created rift between the villagers. The train carried almost fifteen hundred dead bodies. Passengers were charred to death. It was the trauma of Partition which was witnessed by the villagers of Mano Majra. People started to doubt on one another causing distrust among each other. This distrust was caused by the rumors where it was thought that Muslims were responsible for such terrible incidents. Thus, there were tension between communities like the Hindus and the Muslims. Villages like Mano Majra were considered as peaceful but here also the seeds of enmity were planted by the politicians. The community of the Sikhs and the Hindus were separated from the community of the Muslims after such incidents. In this increasing rift even women and children were not spared. Everywhere people were scared of the violence and the bloodshed. Women were considered as a tool to take revenge because they were seen as a property.

From the opening movements of Train to Pakistan to its last turn, community plays a central role in the novel's plot. When Jugga is framed for Lala Ram Lal's murder, there is disbelief, not because Jugga is a model citizen, but because the idea he would perform a dacoity in his own village is shocking. Mano Majra, like many other Indian towns, has a strict code of ethics when it comes to community and one's neighbors. The problem with the notion that Jugga murdered Lala Ram Lal isn't the act of the murder itself, but the person Jugga supposedly murdered. Had Jugga murdered someone from another village, the priest of Mano Majra himself would have gladly sworn on the Sikh holy book that Jugga had been praying in the gurdwara at the time of the murder. But because Lal was a member of the community, Jugga is condemned.

But it is Jugga who proves his sense of community and devotion to his neighbors at the novel's denouement. At first, it seems all members of Mano Majra live by their community creed. When the head constable announces that the Mano Majra's Muslims need to leave, the Sikh villagers protest,

saying "we could never say anything like that to our tenants, any more than we could tell our sons to get out of our homes" (Singh 174). Though there are religious differences, loyalty to a fellow villager is supposed to take precedence. However, despite this early posturing of Mano Majra's Sikhs, when their Muslim neighbors are targeted by a violent mob, it is only Jugga who gives his life to save them.

Deo, the local deity becomes the symbol of communal harmony like the goddess Kenhamma in Raja Rao's Kanthapur. But there is one difference: they in the independence movement, the Mano Majrans remain passive spectators to the entire scene of pre-independence struggle. They have heard the mane of the Mahatma but remain unmoved by his call to oust the firangis from their soil. Khuswant Singh has vividly described their passivity and stativity to the violence in the wake of partition: The summer before communal riots, precipitated by reports of the proposed division of the country unto a Hindu India and Muslim Pakistan, had broken out in Calcutta, and within a few months the death toll had mounted to several thousand… by the time the monsoon broke, almost at million of them were dead, all of the northern India was in arms, in terror or in hiding. The only remaining oases of peace were a scatter of the villages lost in the remote reseeds of the frontier. One of these villages was Mano majra. (Singh 1956: 1-2)

In stark contrast to the tranquil and sati environ of Mano Majra, the train serves as an important symbol of mobility. It stands for all that is dynamic. At the outset of the story, it acts as an almanac and a regulatory for the people of the hamlet. Later on, it acquires a sinister and formidably horrific dimension when its swift and placid tensor of life receives the shocking jolt of a bloody partition:

Trains become less punctual than ever before and many more started to run through at night. Some days it seemed as though the alarm clock had been set for the wrong hour. On other, it was as if no one has remembered to wind it. (Sing 1956: 92)

The irregularities of trains symbolize the disturbance in the smooth flow of life in Mano Majra. It presages chaos and disorder, riot and violence. Specially, the arrival of a train from Pakistan in the morning with heaps of mangled and mutilated corpses lets loose a reign of terror. Bestiality manifests in violence, revenge, mass rape of women in public, arson, infanticide and carnage. All these lead to the massacre of Mano Majrans and subsequently the Muslims' flight for Pakistan by train, i.e. the train to Pakistan. But this train to Pakistan reveals the humanity in Jugga, his sense of integrity in love and self-dedication. The train to Pakistan becomes a unique symbol in the novel. It is a symbol of motion in contrast to Amano Majra which is a static point in space.

The symbolic interpretations of the novel are its high point. In fact, Sing has clearly interlinked theme and symbol to a blend that few fictional masters are capable of. In this connexion, it would not be out of place to quote from Shyam M Asnani when he says that: the comic spirit, exploration of the world around and presenting it in all its nakedness and capacity to capture reality in all its magnificence and horror, the felicity of expression, stark originality, unique lightness of touch mingled with a touch of fantasy are precisely the qualities that are distinctly his own. (Asnani 1976:9)

Further, the train is symbolic of a rhythmic pattern in the novel. It is at the heart of Mano Majra, a village which has "always been known for its railway station" (Singh 1956:9). The villagers' activities are patterned by the to and fro movement of the train. It fills the villagers with the very pulse of life. This train of Muslim refugees passes over to Pakistan safely enough. But the protagonist Jugga is shot dead by his co-religionists. His heroic death is a sacrifice, an act self-immolation that unveils the hypocrisy and duplicity in which the so-called "civilized society" thrives. Khuswant Singh's genial, comic irony manifests itself in its unmasking the sham pretensions of the much acclaimed and glorified values of human life symbolized by the assassination of Jugga Singh. In another sense, the murder of Jugga symbolizes the culmination of the novelist's vision of life through love and dedication. With his intuitive understanding, the author depicts things as they are and not as they out to be. This transcription of life brigs into clear focus a note of verisimilitude of life since literal transcription of life is well nigh impossible.

Despite the note of utter despair bordering on nihilism, the novel is a message of hoip and compromise the nost basic of all instincts, i.e. man-woman love-sustains the sympatheticfally bitter tone or the novel. Jugga's sacrifice is an act of self-redemption; it is an identification of alienation. Train to Pakistan with its realistic and touching portrayal of characters lays bare the grimly tragic situation of the human context in which fictional people march towards the altar of self-immolation.

So much has been said by critics who have read into the deep symbolic act of Jugga's sacrifice. In that connection, one of the major critics, Prof. Shahane, hails the novel as a creative endeavor of KS, and continues: The art of Khuswant Singh is revealed in not merely probing deep into the real but in transporting the actual into symbol and image. His art of realistic portrayal cannot be described merely as an exercise in the book keeping of existence: in effect, it is a critical endeavor of transcending the actual, asserting the value of dignity of the individual, and finally, of expressing the tragic splendor of a man's sacrifice for a woman. (Shahane 1972:68)

Religious persecution is one of the driving forces in *Train to Pakistan*, and in the Partition of India as a whole. The Partition of India was the division of Muslim Pakistan from Sikh India. With this division, approximately 10 million people were suddenly in the "wrong" country, and people who had lived together for generations in the same villages became enemies overnight. Muslims fleeing India met rape, pillaging, and death and Sikhs fleeing Pakistan faced the same adversities. Though the differences between the religions are mentioned briefly in the novel, most of the strife between the two groups stems from acts of violence, both past and present, each side commits against the other. Singh never discusses in the novel what caused the political climate and violence between Sikhs and Muslims, or even what precipitated a need for the partition in the first place. All we know are the various prejudices various characters harbor against members of the opposite religion. For example, a young Sikh man from Mano Majra accuses Mano Majra's Muslims of "stealing their salt" for generations. These words suggest that some Sikhs view Muslims as intruders and as freeloaders. Meanwhile, some Muslims view Sikhs as "barbarous infidels with ill intent" because of their long hair, beards, and kirpans. Here, we can see that the basis of the religious animosity isn't the religions themselves but the characteristics of the people who practice each religion. Though Sikhs and Muslims have been able to bear with these characteristics for generations, by the start of *Train to Pakistan* this is no longer true.

On ultimate times, the novel is a tragedy of the human situation. There is no tragedy without transcendence and true to this theme, Jugga transcends criticizing the celebration of freedom with mass murder and bestiality and ingeniously delineating with pity and horror the two-nation theory. It is a nightmare with an exciting finish; yet one closes the novel with a sense of relief. The mastery of Khuswant Singh lies in the fact that he is full of an idealistic and affirmative tone. The Indian artistic attitude had usually been idea and positive since time immemorial.

**References:**

1. Asnani, S. M. 1976. "A Studt of Train to Pakistan". Rajastan Journal of English Studies. Vol. .2, Jan.1976:8-13
2. Dwivedi, A. N. (Ed.).1987. Studies in Contemporary Indian Fiction in English . Allahabad: Kitab Mahal.
3. Singh, Khuswant. 1956."Train to Pakistan". New Delhi: Ravi Dayal.
4. Jaydeep Sarangi. 2007. Seva Bharati Journal of English Studies. Vol.3 W.B.

# Provincial Customs And Attitudes Dictate The Future of Children In Anita Desai's Novel Fasting, Feasting: A Social Study

**Mrs. Jadhav Jyoti Mohan**
Sai-Govind, Shindewadi road, Shahu colony, Gargoti,
Tal- Bhudargad, Dist- Kolhapur
Contact No. 8275287778
Email Id:- jmj27101980@gmail.com

**Abstract: -**

*Today we are living in 21st century and in well developed modern, educated and civilised society. But still in many Indian families' girls and boys are treated differently, unequally.Though the situation is changing, but still the gender discrimination is seen in the society. It is not a new topic or new problem for the society.Gender inequality has been a social issue in India from centuries.In many parts of Indiabirth of girl child is not welcomed or celebrated as happily as boy child. In India, since long back, women were considered as an oppressed of the society and they were neglected foo centuries. Boys are encouraged to be tough and outgoing but girls are encouraged to be homebound and submissive. But now the situation is changing. The girls are now entering in each field with their talent and strengths. The power of woman her talent, her ability is not less than that of man. Still today many Indian families have thinking that, women are inferior to man. In today's world in every field woman have proven their iron and its very recent example is Kamala Harris, an Indian born woman. Today she is serving as a Vice-president of United States. And that it is happen first time in American history that, any Indian race person mostly woman serving at such prestigious post. Today women are equally empowered as that of man but still some so called educated families have that discriminative view. This discrimination starts from even before the girl child born. Our Indian patriarchal family system has marked as women are always inferior to men and that social issue is handled very prominently in Anita Desai novel Fasting,Feasting. The protagonist of novel Uma who is facing that gender discrimination and traditional attitude of her father Papa towards girl child. Papa educating his daughters Uma and Aruna in convent school and living in Bombay with his family. He has very old and primitive thoughts or views about his girls that they must learn the household work and cooking and other needed work for home. he has two girl child, yet he wishing to have a son. And after birth of his son 'Arun' he treated his daughters very differently.Uma became victim of all his treatment and superiority. Present paper studies the gender discrimination issue in the light of Anita Desai's novel Fasting,Feasting. Anita Desai depicted the realities of society very minutely. It seems real reflection of our society and issue of gender inequality.*
*Keywords: - Gender discrimination, Suppression of girl, Inequality, Provincial custom*

**Introduction: -**

Anita Desai's novel FastingFeasting is an expression of common girl Uma and her life. it is seems that the reality of many of Indian middle class families. Where values, rights and works responsibilities are different for girls and boys of same family. Even the behaviour of parents towards their children is different. We come to know that Uma's parents Mamma Papa have two girls,Uma and Aruna. But her father wanted one son and he was waitingfir his wish comes true. When Mama get pregnant he didn't bother about her health and order her to give birth to his son. There nothing was important than his desire.

**Objectives of study: -**

* To study gender inequality as a social issue in the novel FastingFeasting.
* To study the reflection of Indian family in the novel FastingFeasting.

**Methodology: -**

The analytical and interpretative will be used for the study.

**Discussion: -**

Anita Desai is one of the prominent Indian English novelists of the late 20s and early 21st century. Cry the Peacock is her first novel published in 1963. She has handled current cultural issues in her writing and expression of most of her characters are the reflection of society and its problem. She is one of the prominent feminist writers as well, she has given the voice to the problems of gender inequality. Her characters are not so heroic, bold and having some extraordinary qualities. Yet they reflect the reality of the society and we feel these are one of us and very nearer to our life. The present paper deals with her one of the best novel FastingFeasting published in 1999. The novel FastingFeasting is shortlisted for the Booker prize in 1999. The novel has two parts. The first part of novel deals with the life of protagonist Uma, her family, treatment of her mother and father towards her and her sister. And how she experiences discrimination in behaviour of her parents. While in second part the life of Uma's brother Arun, his experiences at American University are depicted very minutely. Also the American culture and life of Patton family is described. Anita Desai very keenly depicted the emotions of girl child when she gets treated differently by her parents. It is very common situation in most of Indian families.

The novel opens in the present day with middle aged and still unmarried Uma. There her parents Mama Papa are ordering her to prepare box of care goods to send to Arun, her younger brother who is studying in American University. It was her father's desire or a dream that his son must study in abroad. It was the issue of his status.Uma feels that her parents didn't have any awareness of her feelings and emotions. She started to recalling her childhood memories. Here she tells that her father is always being dominated in his family. Her mother didn't have separate existence other than her Papa. That's why throughout the novel we never seen the proper introduction or name of Mama is uttered. Mama is depicted as only wife of Papa and mother of her three children, other than that she didn't have her own identity and it is seen in orthodox Indian families. A boy or male in family is always given the more importance from their childhood and such a dominating attitude they have as theirbirth right. Uma remembers here,

'When her father was still a magistrate and the family had to make appearance at social gathering, he would tolerate joking with colleagues and inferior who jabbed at him- but always in a way that was harsh, establishing his superiority and social status (pg. no.10)

Uma's father was not thinking about likes and dislikes of children. He always oppressed them to accept his likes, views and choices. Here we can understand with the following,

'One could be forgiven for thinking Pappas chosen role was calling, Mama scolding since every adult had to have a role and these were their parents. the children did not question their choice at least not during their childhood.'

It is very common in every Indian family that parents mostly father taking the decisions in the family. Anita Desai very seriously focuses on the theme of gender and social role particularly referring the female characters of her novel. Male dominance as one of the dimension of gender discrimination is seen in the novel. Once Mama was sharing her childhood memories with Uma. She was telling that,girls of her family not allowed to eat sweets. It only allowed to the boys in their family. When Uma's mother has her late pregnancy and she wanted to terminate her unwanted pregnancy, Papa sets jaws because he wants son to perpetuate his race.

Here also seen that though that late pregnancy was dangerous to Mama,it was issue of status of Papa having son and he compelled her to give birth to his son Arun. When Arun born,Uma was going to Catholic convent school. She was interested in everything she studies, but after Arun's birth her grades in every subjects failing worsethan ever. Then Mama Papa told her that there is no point to going to school any longer, better than she must prepare herself in household and for marriage. And take care of Arun. When Mama Papa order Uma to stay at home for Arun, they were sacrificing Uma's

needs and desires in order to build better life for Arun. Both Mama and Papa making everything good for their son Arun. Indirectly they were ordering her to learn household work which is more important for a girl to become good wife. Male dominance or patriarchy in Indian families is outcome of gender discrimination. More importance and values are given to the male in family. It is also seen that Indian women are supporting that patriarchy. Sheaccepts the dominance of male as a wife of her husband.
he always thinking and being careful about the demands and wishes of her husband. Because it is a teaching of every elder and mature woman to every girl from her childhood. So automatically women became and remain suppressed. It is seen in the novel when Mama was sharing her childhood memories with Uma that girls in her family were not allowed to eat sweets, even they were not allowed to eat anything before males and boys of family feed properly. Because women are not so important as that of men, that her grandma telling to her. In this way the Indian women themselves are responsible for their inferiority. that teaching is also reflected in the novel. Mama was always thinking about likes and desire of Papa. there is not any individual existence of Mama is seen. she is also telling Uma to behave as her Papa wants. Even she told Uma to peel an orange and serve to her father by making it separate, so he can eat it easily. Here we see that one generation of women is automatically teaches to accept male superiority and female inferiority themselves. that provisional customs and traditional teaching make women suppressed. Again, the same attitude is seen about Anamika.Anamika's mother-in-law herself provoked her son to beat Anamika, which is very normal and regular thing in Indian families.' Mother-in-laws in families though they are women, they herself compelled their daughter-in-laws to obey the commands of their husbands and remains suppressed. here very minute expression of gender inequality is seen in the novel. it is reality of many of Indian families that mainly the girls have to sacrifice their education, their childhood to look after their youngers and if there is son, then, it became compulsory to those elder sisters to take good care of their brothers because the boys are real inheritors of their families. At one situation in the novel the event of eating an orange become a ceremony for Papa to submission of female in his family and it is expressed by Anita Desai very aptly. such a male dominance or rather importance of desire and wishes is more than of female is seen in the novel. Anamika the cousin sister of Uma, who was beautiful and clever she had the opportunity to study at Oxford University but her parents didn't allow her to go for further studies. Instead, they marry her off to the wealthiest and educated man they can find. but soon Uma and her parents hear that Anamika's husband and mother-in-law beat her and treat her like a servant. And one night the family hears that Anamika has been found dead, burnt to death. here also we see the gender inequality. ThoughAnamika was clever and beautiful, married in rich family she also became victim of male dominated mentality.

**Conclusion: -**

Thus the study of Anita Desai's novel FastingFeasting is the reflection of gender inequality in the society. Gender discrimination is one of the burning issue of the society which is prominently expressed by author Anita Desai in her novel.

**References: -**

1. Desai, Anita, Fasting, Feasting; London: Chatto & Windus, 1999.
2. Bhatnagar, Manmohan K., Rajeshwar. M. The Novels of Anita Desai: A Critical Study, Delhi, Atlantic; 2004.
3. Fasting, Feasting by Anita Desai Plot Summary | LitCharts
4. https://www.enotes.com/topics/fasting-feasting

# Role of Literature in Social Change

**Mr. Sorate J.B.**
M. A. B. Ed. D. B. M. SET (English)
E-mail-jbsorate82@gmail.com
Mobile no.-8698496592.

**Abstract:**

*With the creation of the universe, all human beings started to develop themselves.With the development of human beings different civilizations came into being.As civilizations started to develop,there came into existence different arts. In all towns and cities ,there are collection of statues pictures and books.The mere existence of these objects shows that art is an element in the life of civilized man. Literature is one of the fine arts. Literature has had a major impact on the development of society.It has shaped civilizations,changed political systems and exposed injustices. Literature gives us a detailed preview of human experiences,allowing us to connect on basic levels of desire and emotions.Literature opens a door through which we can observe the effects of social evils on people.It can aware us to the wounds of poverty,of social stigma and injustice.It can fuel our empathy and broaden our world view.Thus in many ways role of literature is vital in connection with social change. From ancient times, literature played different roles making aware of human beings about the surroundings and environment they lived in. So many great writers and literary works have had great appeal to reform. Literature sometimes explicitly and sometimes implicitly gives us a moral lesson or makes us aware about good and evil. Thus in changing society the role of literature is vital.*

***Key words:*** *Civilization, society, art, literature & fine art.*

**Introduction:**

The present paper-'The role of literature in social change' focuses on the role of literature in connection with social change. Many literary creations have had its impact on society. Many social movements were the result of literature. Literature influenced people . As a result some great men came forward and they started to make awareness about social evils and bad practices. As a result societies also changed and there is a development of human beings. This has the proof of literary works which have been discussed in this paper.

**Objectives:**

The objectives of the present paper are as follows-

1.To study select representative literary works and its impact on society.

2.To analyze literary works and find out literary elements that compelled social change.

**Methodology:**

The researcher has used analytical method. Exploration and assessment method has also been used to find out the role of literature in social change.

**Definition of social change:**

Social change involves alteration of the social order of a society.It may includes changes in social institutions, social behaviour or social relations. 'Social change may refer to the notion of social progress or socio-cultural evolution, the philosophical idea that society moves forward by evolutionary means. It may also refer to a paradigmatic change in the socio-economic structure, for instance the transition from feudalism to capitalism or hypothetical future transition to same form of post-capitalism.

**The classical books or literary works that influenced society –**

The main purpose of literature is – to delight, to instruct and also didactic. Both these functions literature serves at its best. On one side literature delight us and on the other side it also instructs.Thus, pleasure and instruction are the functions of literature.Great classical epics have had its influence on society. Our Indian epics-'Ramayana' & 'Mahabharata' has lasting impression our society. Struggle

between Good and Evil and the victory of good at the end is the gist of these epics. This has great appeal since times immemorial. This has changed religious and moral base of society .Social units changed and flourished into new realistic basics of religion.

If welook at the great books of the past ,we will come to know that they had their impact on society. These books played vital roles in changing socities. Chaucer in his 'Canterbury Tales' portrays characters from all walks of life. Here he comments on religious men and institutions. He exposes evils of the religion and religious men. This realistic picture of society compels us to think about the vices of religious institutions and reform them.

The best example is William Congreve's 'The Way of the World' This play by Congreve is a restoration comedy or comedy of manners. Here in this play Congreve has made fun of marriage, love intrigue is the main theme of restoration comedies and the play is the best proof of it. By laughing at the follies ,Congreve satirizes the restoration society.The Way of the World reflects the social life of the restoration age in England.Here the playwright try to give moral lesson to change social behaviourof London society.

Another best example is Indian writer Mulk Raj Anand's 'Untouchable'.The principle theme of the novel deals with the major problems of untouchability in India.It describes the plight of outcasts, especially the untouchables of our country living in mud and mire of hundreds of years.Here Anand has also suggested solutions to improve society.Mulk Raj Anand has a set purpose in his mind behind writing novels.In a way he has undertaken certain commitments as a writer. Most of his themes are meant to expose some social evil and to face the problem he even goes on the tract of propaganda literature.

Feministic movement in this connection is most important. Many female writers started writing independently .They started to present their problem in their own terminology.The women were presented in literature as meek, submissive and inferior as compared to male. This very situation in modern age changed .It is possible because of literature. In many different regions ,women have been victims of male domination. Basically every society is male dominated and several restrictions have been imposed on women by such socities.Many philosophers have expressed these thoughts alike along with several writers like Rousseau who suggested that women should be educated in order to be useful to men. Even at the turn of the 20thcentury ,the situation was not much different and women had little or almost no 'Say' outside their respective homes.In course of time women became conscious of their injustice ,exploitation and suppression which caused into Women's Liberation Movement in the beginning of the 20thcentury.A political movement was started in England in 1903 and its main purpose was to get voting rights to women.This awareness created among women by literature. The woman presented by male writers was not at all praiseworthy. So the result was women's liberation movements.From social point of view , this was great change, it is only because of awareness created by literature.

**Conclusions:**

From the beginning of the literature to the contemporary period, writers have presented society. The society presented by writers is inclusive of good and bad or evil. Thus presenting the society realistically,literature tried to change society. From the above discussion, we can conclude that literature has to play vital role and and literature has played it positively.It has contributed to social reform.The social units, religious institutions changed and flourished in different forms. Some politicalideologies changed. They wholly rested on human rights The Political leaders came to know the importance of human rights. Each and every society underwent radical changes.

**Reference:-**

1.History of English Literature with social background - Dr.RaghukulTilak.
2.Canterbury Tales – Geoffrey Chaucer.
3.The way of the World- William Congreve.
4.Untouchable – Mulk RajAnand.
5.en.m.wikipedia.org>wiki>

# सामाजिक चळवळी आणि राजन गवस यांच्या कादंबऱ्या

**प्रा.डॉ.आनंद वारके**
मराठी विभाग
दूधसाखर महाविद्यालय बिद्री
anandawarake60869@gmail.com

**सारांश :**

*राजन गवस यांच्या 'चौडकं', 'भंडारभोग', 'कळप' या कादंबऱ्यात स्पष्टपणे देवदासी चळवळीचे संदर्भ आले आहेत. देवदासी चळवळ हीच त्यांच्या 'चौंडकं', 'भंडारभोग', 'कळप' या कादंबरींच्या लेखनामागील प्रेरणा आहे. 'चौंडकं', 'भंडारभोग', 'कळप' या वाङ्मयीन कृतीद्वारे ते देवदासी प्रथा निर्मूलनासाठी प्रामाणिकपणे प्रयत्न करताना दिसतात. उपेक्षीत जीवन जगणाऱ्या देवदासींच्या शोषणमुक्तीचा विचार मांडतात. 'चौंडकं', 'भंडारभोग', 'कळप' या कादंबऱ्यातून ते देवदासी चळवळीविषयीची स्वत:ची वैचारिक भूमिका मांडताना दिसतात. सामाजिक चळवळीच्या प्रेरणेतून निर्माण झालेल्या राजन गवस यांच्या कादंबऱ्या सुधारणा करणे, परिवर्तन घडवून आणणे, अन्याय व अत्याचाराला विरोध करणे, समानता निर्माण करणे, जन जागृती करणे, सामाजिक न्याय निर्माण करणे हे सामाजिक चळवळीविषयी समाजशास्त्रज्ञानी सांगितलेले हेतू पूर्ण करताना दिसतात.*

*उद्दिष्ट : सामाजिक चळवळी व राजन गवस यांच्या कादंबऱ्यांचे स्वरुप शोधणे*

*मर्यादा : हा शोध राजन गवस यांच्या सामाजिक चळवळीशी संबंधीत कादंबऱ्यांच्या आधारे घेतलेला आहे.*

*की वर्ड : सामाजिक चळवळी– राजन गवस– कादंबऱ्या*

आदिम काळातील मानव भटकंती करीत होता.त्याच्या बुद्धीचा व भाषेचा विकास झाल्यानंतर तो हळूहळू स्थिर होऊ लागला.एकत्र राहू लागला.यातून समाज निर्माण झाला.मानवी समाज कधीही स्थिर असू शकत नाही.मानवी समाजात हळूहळू किंवा काही वेळेला जलदगतीने परिवर्तन होत असते.या संदर्भात समाजशास्त्राचे अभ्यासक चंद्रकांत रघुनाथ खंडागळे म्हणतात,'' समाजातील लोकांचे सामाजिक वर्तन व सामाजिक संबंध,सामाजिक संस्था व संघटना, सामाजिक नियमने व मूल्य, श्रद्धा व कल्पना तसेच जीवनपद्धती इत्यादींमध्ये परिवर्तन होत असते. ''१

रामायण महाभारतकालीन समाज जीवन, संत कालीन समाज जीवन व आधुनिक समाज जीवनामध्ये आमुलाग्र बदल होत आले आहेत.आधुनिक काळातील समाज जीवन तर काही काही वर्षांनी झपाट्याने बदलताना दिसत आहे.मानवी समाज जीवनात होणाऱ्या या बदलास त्या त्या काळात उदयास आलेल्या सामाजिक चळवळी कारणीभूत झालेल्या दिसतात.या सामाजिक चळवळीमुळे मानवी जीवनमान उंचावण्याचा प्रयत्न झालेला आहे.

विल्यम स्कॉट,हॉर्टन आणि हंट,हर्बट ब्लुमर,रुडाल्फ हेबर्ले,जॉन विल्सन अशा काही समाजशास्त्रज्ञांनी सामाजिक चळवळी विषयीच्या व्याख्या सांगितलेल्या आहेत.यातील हॉर्टन आणि हंट यांनी'' समाज किंवा समाजाच्या सदस्य होणाऱ्या परिवर्तनास चालना देण्यासाठी किंवा विरोध दर्शविण्यासाठी केलेले सामूहिक प्रयत्न म्हणजे सामाजिक चळवळ होय''२ अशी व्याख्या केली आहे.तर हर्बट ब्लुमर यांनी '' जीवनात नवीन सामाजिक सुव्यवस्था प्रस्थापित करण्यासाठी केलेले सामूहिक साहस म्हणजे सामाजिक चळवळ''३ अशी व्याख्या केलेली आहे.

थोडक्यात समाज परिवर्तन होण्यासाठी सामूहिकरित्या केलेले प्रयत्न किंवा विरोध म्हणजे सामाजिक चळवळ असे म्हणता येईल.समाजात वेगवेगळ्या चळवळी निर्माण होतात त्या परस्परांशी संबंधित असतात.आर्थिक,राजकीय,धार्मिक व सांस्कृतिक चळवळी परस्पर पूरक असतात.प्रबोधन काळात महात्मा जोतिराव फुले,न्यायमूर्ती म.गो.रानडे,राजाराम मोहनरॉय, महर्षी धोंडो केशव कर्वे,महर्षी विठ्ठल रामजी शिंदे, छ.शाहू महाराज,डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर यांनी वेगवेगळ्या चळवळी

निर्माण केल्या.महात्मा गांधी यांची सर्वोदय चळवळ,विनोबा भावे यांची भूदानाची चळवळ अशा अनेक चळवळी त्या काळात निर्माण झाल्या होत्या.त्या धार्मिक,सामाजिक,राजकीय,शैक्षणिक असे समाज परिवर्तन करणाऱ्या होत्या.त्या परस्परपूरक अशा होत्या.त्या एकाच वेळी वेगवेगळ्या प्रकारचे प्रबोधन व परिवर्तन करीत होत्या.

स्वातत्र्यपूर्वकाळात बालविवाह प्रतिबंध चळवळ,सतीप्रथा बंदी चळवळ,विधवा पुनर्विवाह चळवळ,अस्पृश्यता निर्मूलन चळवळ,स्त्री शिक्षणाची चळवळ, शेतकरी चळवळ अशा काही सुधारणावादी चळवळी झाल्या.त्यांचा योग्य असा उपयोग तत्कालीन समाज परिवर्तन होण्यासाठी झालेला आहे.या सर्व चळवळी सुधारणावादी होत्या.या संदर्भात चंद्रकांत खंडागळे म्हणतात,‘‘ समाजाच्या मूलभूत समाज रचनेत बदल न करता केवळ समाजातील अनिष्ट रीतीरिवाज,प्रथा, परंपरा, मूल्ये, श्रद्धा तसेच सामाजिक संस्थांमधील दोष इत्यादींचे निर्मूलन करून समाजात सुधारणा घडवून आणण्यासाठी केलेल्या चळवळीला सुधारणा चळवळी असे म्हणतात.’’४

एकोणिसाव्या शतकामध्ये म्हणजेच ब्रिटिश काळापासूनच समाज सुधारणांना सुरुवात झालेली आहे.समाजातील अनिष्ट रूढी, परंपरा,अंधश्रद्धा,स्त्रीशिक्षण व उद्धार या समस्यांसाठी प्रार्थना समाज,ब्राह्मो समाज, सत्यशोधक चळवळ अशा चळवळी निर्माण झालेल्या आहेत.

आधुनिक काळामध्ये कामगार चळवळ,राजकीय चळवळी,स्त्रीमुक्ती चळवळ,दलित चळवळ,आदिवासी चळवळ,पर्यावरणवादी चळवळ अशा काही चळवळी निर्माण झालेल्या आहेत. याच बरोबर काही छोट्या चळवळीसुद्धा स्वातंत्र्योत्तर भारतामध्ये निर्माण झालेल्या आहेत.या सर्व चळवळी सामाजिक प्रश्न किंवा समस्या सोडविण्याचा प्रयत्न करीत असतात.

सुधारणा करणे,परिवर्तन घडवून आणणे, अन्याय व अत्याचाराला विरोध करणे, समानता निर्माण करणे,जनजागृती करणे, सामाजिक न्याय निर्माण करणे, सामाजिक नियंत्रण प्रस्थापित करणे हे या चळवळींचे उद्देश आहेत.सामाजिक चळवळींचे हे उद्देश लक्षात घेतले तर या चळवळीचे महत्त्व लक्षात येईल.सामाजिक चळवळीचे महत्त्व सांगताना समाजशास्त्रज्ञ विजय मारुलकर व दयावती पाडळकर म्हणतात,‘‘ सामाजिक चळवळीमुळेच मानवी जीवन सुरळीत चालणे व समाजव्यवस्था टिकून राहणेसाठी उपयुक्त ठरतात.एकात्म समाज निर्मितीसाठी, सुसंघटीत समाज रचनेसाठी निकोप समाजासाठी अशा सामाजिक चळवळी महत्त्वाच्या असतात.’’५

स्वातंर्त्र्यपूर्व व स्वातंत्र्योत्तर काळात निर्माण झालेल्या वेगळ्या प्रकारच्या या चळवळींचे महत्व अधोरेखित करताना डॉ.प्रल्हाद लुलेकर म्हणतात, ‘‘या चळवळीतून सामाजिक भान असलेले नवे समूहमन तयार झाले.चळवळीतून शोषण करर्णाया व्यवस्थेला नकार देणारा,आपल्या जगण्यातील वेदनांच्या कारणांचा शोध घेणारा आणि सारी व्यवस्थाच संपूर्णत: बदलून टाकण्यासाठी विद्रोह करणारा नवा आविष्कार घडला.’’६

**देवदासी प्रथा निर्मूलन चळवळ :**

**देवदासी प्रथा :**

कर्नाटक राज्यातील बेळगाव जिल्ह्यात सौंदत्ती या ठिकाणी श्री रेणुका देवी देवस्थान आहे.या देवीची पूजा अर्चा,भक्ती भावना यातून काही जटिल समस्या पश्चिम महाराष्ट्र परिसरात १९७० ते १९८० च्या दरम्यान निर्माण झाल्या.अशिक्षितपणामुळे,अज्ञानामुळे व श्रद्धांमुळे या देवीच्या भक्त समूहामध्ये विशेषत: स्त्रिया, देवदासी, तृतीय पंथीय हिजडे यांच्या जीवनात काही जटिल समस्या निर्माण झाल्या.विशेषत: देवीच्या नावावर केवळ जोगवा मागून जीवन जगणे, देवीच्या संकेताप्रमाणे आचरण न केल्यास देवीचा शाप लागेल,अघटीत घडेल,वाईट घडेल असे भीतीदायक वातावरण निर्माण होणे,देवी अंगात येणे,मुलीच्या अजाण वयातच तिचे कौमार्य कुसकरून टाकणे.देवदासी व जोगती यांच्यातील अनैतिक

संबंधामुळे बेवारस संतती निर्माण होण,त्यांच्या पालन पोषणाचा प्रश्न निर्माण होणे,मुलींना देवीला सोडणे,त्यांना विवाह प्रपंच करण्यावाचून रोखणे,जट वाढवणे,नियमित जट व देवीची पूजा करणे,तृतीय पंथीयांनी देवीला वाहून घेणे अशा विविध समस्या कोल्हापूर जिल्यातील चंदगड,गडहिंग्लज,आजरा,कागल,राधानगरी परिसरातील लोकांच्या जीवनातील निर्माण झाल्या.अज्ञानामुळे कमकुवत मनामुळे किंवा वडिलधाऱ्यांच्या धाकामुळे काही स्त्रिया,कुमारिका, लहान मुले व काही पुरुष देवीला शरण जात.या प्रथेमुळे मुली,लहान मुले,तृतीयपंथी जोगते किंवा हिजडे आणि स्त्रिया यांचे शारिरीक व लैंगिक शोषण होत होते.

**देवदासी प्रथा निर्मूलन चळवळ :**

या प्रथेमुळे परिसरातील लोकांचे सामाजिक जीवन धोक्यात येऊ लागले.हे लक्षात येताच या परिसरातील काही सुशिक्षित प्रबोधनकारांनी या समस्या निर्मूलनासाठी देवदासी मुक्ती चळवळ निर्माण केली.१९७५ साली ज्येष्ठ समाजसवेक बाबा आढाव यांनी गडहिंग्लजला या संदर्भात मोठी परिषद भरविली होती.या परिषदेत देवदासी प्रथा निर्मूलनासाठी काही ठराव केले होते.त्यात देवदासींना सरकारी मदत मिळावी,देवीला मुली सोडणाऱ्यांच्या विरोधात खटले भरणे,देवदासींच्या मुलांना शाळा सुविधा मिळाव्यात;असे काही ठराव होते.या चळवळीत गडहिंग्लजचे कै.विठ्ठल बन्ने हे आघाडीवर होते.त्यांनी या सामाजिक चळवळीला मोठी गती दिली.याचबरोबर या चळवळीत गारगोटीचे मा.गो.माळी,डॉ.आनंद वास्कर, राजन गवस तसेच निपाणीचे डॉ.अच्युत माने हे विचारवंतही होते. हे सर्व जण या परिसरातील गावागावात जाऊन लोकांचे प्रबोधन करून जट निर्मूलन कार्यक्रम घेत होते.एकाच जटा निर्मूलन कार्यक्रमात अनेक देवदासी व जोगत्यांच्या जटांचे निर्मूलन केले जात होते. अशा देवदासींसाठी सरकारने मानधन किंवा पेन्शन द्यावी यासाठी सरकारी कार्यालयांवर मोर्चे काढले जात होते.यातूनच या परिसरात देवदासी प्रथा निर्मूलन,लहान मुली व स्त्रिया देवीला सोडणे,देवीला जोगता सोडणे,जोगवा मागून राहणे यासारख्या प्रथांना प्रतिबंध करणारी देवदासी प्रथा निर्मूलन ही सामाजिक चळवळ निर्माण झाली.या चळवळीने १९७५ ते २००० या पंचवीस वर्षात देवदासी, जोगते,हिजडे यांच्या जीवनात मोठे सामाजिक परिवर्तन घडवून आणले.

**राजन गवस यांच्या 'चौंडकं','भंडारभोग' व 'कळप' कांदबऱ्या :**

राजन गवस यांनी देवदासी चळवळीच्या प्रेरणेतून कादंबरी लेखन केले आहे.या चळवळीतून प्रेरणा घेऊन त्यांनी 'चौंडकं'व 'भंडारभोग' या कांदबऱ्या लिहिल्या आहे.या चळवळीचा भाग 'कळप' या कादंबरीतही आलेला आहेत.या शिवाय त्यांनी दलित चळवळ,वाङ्मयीन,शेतकरी चळवळीवर भाष्य करणाऱ्या कादंबऱ्या लिहिल्या आहेत.शोध निबंधाच्या मर्यादेचा विचार करता येथे केवळ देवदासी प्रथा निर्मूलन या सामाजिक चळवळीच्या अनुषंगाने विचार व्यक्त केले आहेत.

राजन गवस यांनी कोल्हापूर जिल्ह्यातील गडहिंग्लज,चंदगड,आजरा, भुदरगड, या तालुक्यातील श्री.रेणुकादेवी भक्त देवदासी या अनिष्ट प्रथेवर भाष्य करणाऱ्या 'चौडकं','भंडारभोग' व 'कळप' या तीन कादंबऱ्या लिहिल्या आहेत.या कादंबऱ्यात देवदासी प्रथेतून निर्माण झालेल्या समस्येचा बिमोड देवदासी प्रथा निर्मूलन चळवळीतून कसा झाला याचा शोध घेता येईल. 'चौंडकं' या कादंबरी त्यांनी देवदासी किंवा जोगतिणीचे तर 'भंडारभोग' या कादंबरीत त्यांनी जोगती किंवा हिजड्यांचे जीवनदर्शन घडविले आहे.

'चौंडकं' ही राजन गवस यांची १९८५ साली प्रकाशित झालेली पहिली कादंबरी.'सुली'ही या कादंबरीची नायिका आहे.ती समस्त देवदासींचे प्रतिनिधित्व करणारी आहे. बेळगाव जिल्ह्यातील सौंदती येथील देवी श्री.यलम्मादेवीच्या नावावर अज्ञानामुळे काही गैर समजुती निर्माण झाल्या.त्यातून समाजातील खालच्या वर्गातील लहान मुली,वयात आलेल्या मुली,स्त्रिया व नवऱ्याने सोडलेल्या,नवऱ्याच्या व्यसनाधिनतेमुळे विभक्त राहणाऱ्या स्त्रिया यांचे सामान्य जीवन जगणे संपून अभावग्रस्त व समस्याग्रस्त अनिष्ट जीवन त्यांच्या वाट्याला आले.या कादंबरीत राजन गवस यांनी 'जोगतीण देवाची मालकी गावाची' या

ग्रामीण भाषा बोलीतील म्हणीच्या आधारे जोगतिणीचे जीवन साररुपाने मांडले आहे. हालाखीचे जीवन जगणाऱ्या समस्त देवदासींचे जीवन या कादंबरीत आले आहे.सुलीच्या रुपात येथे सगळ्या देवदासींच्या जगण्यातील भोग यातना,समाजात त्यांची होणारी ससेहोलपट,त्यांच्या देहाची लूट,त्यांच्या एकूणच जीवनाची झालेली होरपळ या कादंबरीत आलेली आहे.अज्ञान,अंधश्रद्धा व दारिद्र्य यातूनच समाजातील खालच्या वर्गातील मुलींच्या वाट्याला असे जीवन येत असते हे राजन गवस यांनी या कादंबरीतून दाखवून दिले आहे.लहानपणी गरिबीमुळे केसांना तेल पाणी मिळाले नसल्यामुळे,आजारी असल्यामुळे केस विंचरले नसल्यामुळे सुली या मुलीच्या केसात जट तयार होते.अज्ञानामुळे तिच्या आईला वाटते की ही कोणीतरी करणी केली आहे.मग ती त्या मुलीला जोगतिणीकडे जाते.तर रुढी व श्रद्धेमुळे सुलीला रेणुका देवीला सोडून देण्यास सांगितले जाते.सुलीच्या वडिलांचा विरोध असूनही काय उपयोग होत नाही.शेतावर कर्ज काढून ते सुलीवर विधी संस्कार करतात.येथेच सुलीच्या भीषण जीवनाला सुरुवात होते.जोगवा मागताना बबन्याच्या प्रेमात पडून ती गरोदर राहते.घराची अब्रू गेली म्हणून वडील तिला मारहाण करतात.सुली घर सोडते.लग्न करुन घर करुन देण्याचं वचन देणारा बबन्याही तिला टाळायला लागतो.आई धरणीला पडल्यावर पाहायला आलेली सुली देवीचा जग उकिरड्यावर फेकून देते.देवीचा भंडारा खाऊन गर्भपात करवून घेते. येथे या लहान मुलीची कोणतीही चूक नसताना तिला अंधश्रद्धेला बळी पडावे लागते.देवीला सोडल्यामुळे ती लग्न करु शकत नाही.वयात आल्यामुळे तारुण्यसुलभ भावना आवरु शकत नाही.भोग घेणाराही तिच्याबरोबर विवाह करु शकत नाही.मग अघोरी उपायाने तिला गर्भपात करुन घ्यावा लागतो.देवदासींच्या जीवनात एकातून एक अशा अनेक समस्या निर्माण होऊन त्यांचे जगणेच मुश्किल बनते.देवदासींच्या शोषणाचे अत्यंत परिणामकारक असे जीवनदर्शन राजन गवस यांनी या कादंबरीतून घडविले आहे.

'भंडारभोग' या कादंबरीचा नायक तायाप्पा तृतीयपंथी,जोगता आहे.त्याला हाताशी धरुन देवदासी प्रथा,जोगती प्रथा समूळ नष्ट करण्याचा चंग या कांदबरीतील सुधारक प्राध्यापकाने बांधलेला आहे.यासाठी ते काही विद्यार्थीनाही या चळवळीत सहभागी करुन घेतात.गावातील काही व्यक्तीही त्यांच्या सोबत हे काम करायला तयार होतात.सरकार देवदासींना मदत करणार आहे असे सांगूनही तायाप्पा भितीपोटी आपला व्यवसाय सोडायला तयार होत नाही.तो भावनेपोटी रुढी व परंपराधीन झालेला आहे.जोगतिणींच्या पोरांनी जोगवा मागत नाही तर चौंडकं वाजवत फिरायचं? या प्राध्यापकांच्या प्रश्नामुळे मात्र तो गंभीर होतो.आपली मानसिकता बदलायला तयार होतो.प्राध्यापकांच्या प्रबोधनात्मक चळवळीत सहभागी होतो.जोगतिणींना शरीरभोगासाठी वापरल्या जातात,शहरात वेश्या व्यवसायासाठी विकल्या जातात. जोगता व जोगतिणीच्या अनैतिक संबंधातून जन्मलेले मूल चिखलात फेकले जाते. सुधारक प्राध्यापक अशी देवदासींच्या जीवनातील भीषण वास्तवाची जाणीव तायाप्पाला करुन देतात.स्त्री मग ती कोणत्याही वर्गातील असो आणि मग जर ती देवदासी असेल तर वेश्या म्हणून तिचा उपभोग घेतला जातो.असे भीषण वास्तव या कादंबरीत येते.हे वास्तव मोरे या प्राध्यापकाच्या व्यक्तिरेखेतून उतरते.पण मोरे प्राध्याकांच्या कार्याला वर्तमानपत्रात प्रसिद्धी मिळते.पण ही प्रसिद्धी चळवळीतील काहींना सहन होत नाही.आपल्यालाही संघटनेत काय तरी पद हवे या हव्यासापोटी या चळवळीतील कार्यकत्यांमध्ये दुफळी निर्माण होते.प्रबोधन चळवळीचे नेतृत्व करताना येणाऱ्या अडचणीही या कादंबरीत आल्या आहेत.प्रसारमाध्यमातून मिळणाऱ्या प्रसिद्धीच्या हव्यासापोटी चळचळीत अशी मानसिकता निर्माण होताना दिसते.या कादंबरीत रकमा या मांग समाजातील तरुण जोगतिणीचीही अवहेलना लेखकाने मांडली आहे.जोगतीण असली तरी तिला तारुण्यसुलभ भावना आहेत.ती आपल्या जातीतील तरुणाशी शरीर संबंध ठेवते.मेळ्यातील चौंडकं वाजविणाऱ्या जोगत्यालाही तिच्याशी संबंध ठेवायचे असतात.तिचे इतरांशी असलेले शरीरसंबंध त्याला सहन होत नाहीत.तिला मेळ्यातून काढून टाकले जाते.शेवटीला तिला झुलवा लावाङ्गला सांगितले जाते.पण ती तयार होत नाही.त्यामुळे भर पावसात गावकरी तिला गावाबाहेर काढतात.अशा रितीने या कादंबरीत एका तरुण जोगतीणीच्या देहाची विटंबनेचे वर्णन

आले आहे.ही विटंबना या जोगतिणी निमूटपणे सहन करताना दिसतात.तायाप्पाशी संबंध ठेऊन राहणाऱ्या रत्नव्वालाही अशा प्रसंगाला सामोरे जावे लागते.धार्मिक कार्यक्रमाला आलेल्या तायाप्पा व रत्नव्वाचा गावातील वासनांध तरुणाकडून वेशीबाहेर पाठलाग केला जातो.त्यांना रत्नव्वाकडून शरीरभोग हवा असतो.

राजन गवस यांची ही देवदासी सामाजिक चळवळीची दृष्टी 'कळप' या कादंबरीतही आलेली आहे.प्रा.सनमाडीकर देवदसी प्रथा निर्मूलनाची चळवळ उभी करतात.ते सर्व देवदासींना शोषणातून मुक्त करण्याचा प्रयत्न करतात.येथेही काही विश्वासघातकी लोक आले आहेत.त्यांनी केवळ समाज सुधारणेचा बुरखा पांघरलेला असतो.दगडाच्या देवाला जिवंत स्त्रिया कशाला हव्यात? हा लेखकाचा मुख्य प्रश्न या कादंबरीत आहे.याशिवाय या देवीमुळेच गरिबांच्या मुलीबाळी भोगण्याचा परवाना पुरुषांना मिळाला आहे हे स्त्री जीवनातील दुर्दैवही लेखकाने या कादंबरीत मांडलेले आहे.रघू चिलमीच्या आत्मनिवेदनातून या कादंबरीतील कथानक साकारते.तो समाजातील खालच्या स्तरातील विशेषत: देवदासी,डोंबारी या समाजाबद्दल सजग आहे.तो देवदासींच्या प्रश्नाकडे अतिशय गंभीरपणे बघतो.सामाजिक बांधिलकीचे सजग भान आलेला हा तरुण जोगतिणीच्या जीवनासंबंधी म्हणतो,''एक जोगतिण एक कादंबरी.जोगतिणीचे डोळे एक कविता.जोगतिणीचा देव्हारा एक नाटक.कशाला वाचायची पुस्तकं? फक्त ही माणसं वाचता आली तरी चिक्कार!''७ राजन गवस यांची ही साररुप भाषा जोगतिणीचं सगळं जगणं मांडते.या संदर्भात महेंद्र कदम म्हणतात,'' रघू प्रामाणिक असल्याने देवदासीच्या प्रश्नांविषयी तो अतिशय जागृत बनतो.म्हणूनच तो शंकऱ्याबरोबर दुसरी संघटना बांधू पाहतो.जोगतिणींच्या जगण्याविषयी त्याने प्रकट केलेले चिंतन अतिशय परिणामकारक आहे.''८ प्रा.सनमाडीकर व रघू चिलमी यांच्या प्रयत्नावर पाणी फिरविणाऱ्या प्रवृत्तींचे चित्रणही राजन गवस यांनी या कादंबरीत केले आहे.ते चळवळीचा उद्देश देवदासी,जोगते यांच्यापर्यंत पोहचू न देण्यासाठी प्रयत्न करतात.त्यामुळे चळवळीतील ताकद कमी होते.या जोगतिणी त्यांच्या वाट्याला आलेल्या जीवनाला वैतागलेल्या आहेत.कळप कादंबरीतील गोजा जोगतीण आजीने चालविलेली देवीची गादी चालवायला रांडा भाड्यांनी मला देवी सोडली आणि हे जोगवा मागण्याचं जीवन वाट्याला आलं असा वैताग व्यक्त करते.

**निष्कर्ष :**

अशा प्रकारे राजन गवस यांच्या 'चौंडकं', 'भंडारभोग','कळप'या कादंबऱ्यातून देवदासी प्रथा निर्मूलन चळवळीचे पडसाद उमटले आहेत.या संदर्भाने काही निष्कर्ष नोंदविता येतील.राजन गवस यांच्या 'चौंडकं','भंडारभोग','कळप' या कादंबऱ्यात स्पष्टपणे देवदासी चळवळीचे संदर्भ आले आहेत. देवदासी चळवळ हीच त्यांच्या 'चौंडकं','भंडारभोग','कळप' या कादंबरींच्या लेखनामागील प्रेरणा आहे. 'चौंडकं','भंडारभोग','कळप'या वाङ्मयीन कृतीद्वारे ते देवदासी प्रथा निर्मूलनासाठी प्रामाणिकपणे प्रयत्न करताना दिसतात. उपेक्षीत जीवन जगणाऱ्या देवदासींच्या शोषणमुक्तीचा विचार मांडतात. 'चौंडकं','भंडारभोग','कळप' या कादंबऱ्यातून ते देवदासी चळवळीविषयीची स्वत:ची वैचारिक भूमिका मांडताना दिसतात. सामाजिक चळवळीच्या प्रेरणेतून निर्माण झालेल्या राजन गवस यांच्या कादंबऱ्या सुधारणा करणे,परिवर्तन घडवून आणणे, अन्याय व अत्याचाराला विरोध करणे, समानता निर्माण करणे,जन जागृती करणे,सामाजिक न्याय निर्माण करणे हे सामाजिक चळवळीविषयी समाजशास्त्रज्ञानी सांगितलेले हेतू पूर्ण करताना दिसतात.

**संदर्भ :**

१. भारतातील सामाजिक चळवळी, प्रा.चंद्रकांत रघुनाथ खंडागळे, प्रकाशक सौ माया चंद्रकांत खंडागळे,सांगली,जुलै २०१९, पृ. क्र.५
२. तत्रैव,पृ.७

३. तत्रैव,पृ.७

४. तत्रैव,पृ.१९

५. भारतातील सामाजिक चळवळी,मारुलकर विजय,पाडळकर दयावती,फडके प्रकाशन, कोल्हापूर, सप्टेबर २०१९,पृ.क्र.१३

६. लुलेकर प्रल्हाद,साठोत्तरी साहित्य प्रवाह,सायन पब्लिकेशन्स प्रा.लि.पुणे,प्रथमावृत्ती,२०१४,पृ.३८

७. कळप,राजन गवस, शब्दालय प्रकाशन,आ.१ ली, श्रीरामपूर, १९९१,पृ.५१

८. कादंबरी : सार आणि विस्तार ,डॉ.महेद्र कदम,अक्षरदीप प्रकाशन, कोल्हापूर, प्रथमावृत्ती,नोव्हेंबर २००७,पृ.१०१

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com

# मराठीतील आदिवासी साहित्य प्रवाह

**प्रा. डॉ. सुभाष पाटील**
प्रमुख, मराठी विभाग
श्रीमती कस्तुरबाई वालचंद
कॉलेज, सांगली.

**प्रस्तावना :-**

स्वातंत्र्योत्तर काळात विशेषतः साठ नंतरच्या दशकात मराठीत आदिवासी साहित्याची निर्मिती झालेली दिसते. दलित, ग्रामीण आणि स्त्रीवादी साहित्य प्रवाहांप्रमाणेच मराठी भाषेत आदिवासी साहित्य चळवळीतून पुढे आले आहे. सह्याद्री, सातपुडा, विंध्य या पर्वतरांगांमध्ये, दऱ्याखोऱ्यात आदिम जीवन जगणाऱ्या आदिवासींच्या विविध जाती-जमाती स्वातंत्र्यानंतरच्या काळात सुधारणेच्या प्रक्रियेत आल्या, आदिवासी चळवळ या सुधारणेला प्रवृत्त करणारी ठरली आहे. या चळवळीचा एक भाग म्हणून आदिवासीच्या साहित्याचा विचार करावा लागेल. आपल्या आदिम जीवनातील नैसर्गिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक प्रेरणा घेऊन आदिवासींनी साठोत्तरी काळात बरेच लेखन केले आहे. आतापर्यंत नऊ आदिवासी साहित्य संमेलने, दोन आदिवासी साहित्य परिषदा, अनेक साहित्यिक मित्र मेळावे अशा साहित्यिक उपक्रमाच्या माध्यमातून, व्यासपीठावरून अनेक कवी, कथाकार, कादंबरीकार लिहिते झाले. या कवी, लेखकांनी मराठीत आदिवासी साहित्याचा प्रवाह रूढ केला आणि एक उपेक्षित जीवन साहित्याच्या केंद्रवर्ती आणले. मराठीतील या आदिवासी साहित्यातील कविता, कादंबरी, कथा आणि नाटक या प्रकारात जे लेखन झाले आहे त्याचा इथे परामर्श घेण्याचा प्रयत्न केला आहे.

**आदिवासी कविता :-**

आदिवासी कवितेच्या विवेचनापूर्वी आदिवासांच्या संदर्भातील मध्ययुगीन काळातील काही काव्याचे संदर्भ पहावे लागतील. मध्ययुगीन काळात गोंड वंशातील महापराक्रमी महाराज संग्रामसिंह (१५३७) यांनी संस्कृत भाषेत 'रस रत्नमाला' या नावाची श्लोकावली निर्माण केल्याचा संदर्भ सापडतो. त्यात २३३ श्लोक आहेत. यासंबंधी विस्तृत परिक्षणात्मक लेख ६ ऑक्टोबर १९५२ रोजी कलकत्ता येथील एका पत्रिकेत प्रसिध्द झालेला पहावयास मिळतो.[१] पुढे याच घराण्यातील गोंडराजे 'निजामसिंह' यांचा प्रतिभावान कवी म्हणून उल्लेख सापडतो. या काळात 'गजेंद्र मोक्ष', 'प्रेम दीपिका', 'जयचंद्रिका' या काव्यग्रंथाची निर्मिती झालेली दिसते. पुढे ब्रिटीश राजवटीच्या काळात शहीद क्रांतीवीर शंकरशहा या गोंडवंशातील राजाने काही काव्यलेखन केल्याचे आढळते. जुलमी इंग्रजी शासनाचा विनाश व्हावा अशा आशयाची स्तवन-गीत रचना त्यांने केलेली होती. मातृभूमीच्या रक्षणार्थ लढता लढता हा राजा शहीद झाला होता. इंग्रजांनी शंकरशहा आणि त्याचा पुत्र 'रघुनाथशहा' यांना तोफेच्या तोंडी दिले होते. पुढे आधुनिक मराठीच्या प्रारंभकाळी सर्वप्रथम महात्मा फुलेंनी आदिवसींच्या दुःखाला काव्यात स्थान दिले. ते म्हणतात -

**गोंड भिल्ल क्षेत्री होते मूळधनी !**
**इराणी मागूनी आले येथे ।।**
**कोळी भिल्ल शूर शरांनी तोडीले ।**
**हाकलून दिले रानोवनी ।।**(महात्मा फूले समग्र वाङ्मय)

आपल्या शब्दातून आदिवासी हेच या देशाचे मूळधनी व क्षेत्रपती असल्याने सांगून त्यांच्या दुःखाचे, दुर्दशेमागचे कारणही स्पष्ट केले आहे. पुढे स्वातंत्र्योत्तर काळात राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज यांनी आपल्या ग्रामगीतेत २९ व्या अध्यायात 'दलित सेवा' या

मथळ्याखाली लिहिलेल्या कवितेत आदिवासींच्या व्यथा–वेदनांची आस्थेने दखल घेतली आहे. आदिवासीच्या जमातींची स्थिती पाहून व्यथित झालेले राष्ट्रसंत आपल्या कवितेत म्हणतात.....

**गरीब, जंगली आदिवासी जाती । झाडपालेचि नेसोनि राहती ।**
**झाडाखालीच असते वसती । कित्येकांची ।।**

आदिवासींमध्ये सुधारणा व्हावी म्हणून ते कर्त्या सुधारकांना आवाहन करतात ते म्हणतात –

**काहींनी करावा आदिवासी सुधार । जावोनि रानी खेड्यांवर ।**

आदिवासींच्या काव्य कर्तृत्वाचा प्रारंभ म्हणून वरील संदर्भाची दखल घ्यावी लागेल. पण खऱ्या अर्थाने आदिवासी जाणिवेने लिहिलेली आदिवासी कविता म्हणून स्वातंत्र्योत्तर आदिवासी कवितेचा विचार करावा लागेल. स्वातंत्र्योत्तर काळात आदिवासी कविता विविध अंगाने विस्तारली. विविध चळवळींच्या रेट्यांमुळे आदिवासी समुहामध्ये जाणीव जागृती झाली. वैचारिक जागरण सुरू झाले. याचा परिणाम म्हणून आदिवासी जीवनाचे सामाजिक वास्तव काव्यबध्द होऊ लागले. मराठी काव्यप्रांतात आदिवासी काव्याने आपले स्वतंत्र स्थान निर्माण केले. यादृष्टीने अ. ना. देशपांडे यांच्या 'कोरकू' (१९५५) या खंडकाव्याचा येथे आवर्जून उल्लेख करावा लागतो. या खंडकाव्यातून कोरकूंच्या जीवनाचे वास्तव दर्शन घडते.

स्वातंत्र्यानंतरच्या काळात काही आदिवासी विचारवंतानी स्वयंस्फूर्तीने वृत्तपत्रे व मासिके सुरू केली. त्यातून काही आदिवासी काव्य मराठी हिंदी, गोंडी, परधानी, हळबी यासारख्या भाषांतून स्फूटरूपाने प्रसिध्द झाले व होत आहे. या दरम्यानच्या काळात तुरळक, स्फूट स्वरूपाच्याच रचना पहावयास मिळतात. काही आदिवासी संतकवींनी या काळात प्रबोधनात्मक काव्य लिहिले. त्यामध्ये 'लोकसंत रघूराज महाराज मडावी' व 'संत मंगशुजी महाराज गेडाम' यांचा उल्लेख होते. अध्यात्मिक अधिष्ठान असलेले प्रपंचबोध अशा स्वरूपाचे हे काव्य आहे. हे सर्व संदर्भ आदिवासींच्या काव्यकर्तृत्वाचा प्रारंभ काळ म्हणूनच विचारात घ्यावे लागतील. आधुनिक आदिवासी कविता अथवा आदिवासी जाणिवा विषद करणाऱ्या कविता खऱ्या अर्थाने साठोत्तर काळातच लिहिल्या गेल्या. नोव्हेंबर १९७९ मध्ये भद्रावती (चंद्रपूर) येथे पहिले आदिवासी साहित्य संमेलन भरले. या निमित्ताने आदिवासी साहित्यिकांना एक व्यासपीठ मिळाले. त्यातून एक नवे वैचारिक आंदोलन उभे राहिले. याचा परिणाम म्हणून तसेच आदिवासी साहित्य चळवळीने जोर धरला. आदिवासी साहित्याला नव्या जाणिवा व प्रेरणांचे भरीव पंख लाभले. याच पार्श्वभूमीवर महाराष्ट्रातील आदिवासींचा पहिलावहिला काव्यसंग्रह 'मोहोळ' १९८२ साली वणी (यवतमाळ) येथे संपन्न झालेल्या दुसऱ्या आदिवासी साहित्य संमेलतनात प्रसिध्द झाला. विविध कविंच्या ३३ कविता या संग्रहात समाविष्टआहेत.हा आदिवासींचा प्रतिनिधिक कविता संग्रह होय. या संग्रहापूर्वी १९६५ साली 'मेटा पुगांर अर्थात पहाडी फुल भाग १ व २' ही माजी आमदार सुकदेवबाबू उईके यांची काव्यरचना प्रसिध्द झाली. आदिवासींच जागृतीच्या वेगवेगळ्या वाटा शोधण्याचा प्रयत्न यामध्ये केला आहे. आदिवासींच्या व्यापक परिवर्तनाचे सामाजिक भान या कवितेतून व्यक्त होते. यानंतरच्या काळात भुजंग मेश्राम यांचा 'आदिवासी कविता' (१९७५) हा गोंडी भाषेतील काव्य संग्रह प्रसिध्द झाला. यामध्ये पारंपरिक धर्म, अध्यात्म यासंबंधातील समजूती, आख्यायिका, नशिब यासारख्या संकल्पना नाकारून बंडखोर भूमिका घेतलेली दिसते. भुजंग मेश्राम यांचा 'उलगुलान' (१९९५) हा दुसरा कविता संग्रह होय. अलगुलान म्हणजे सर्व पातळ्यावर एकाच वेळी केलेला उठाव होय. उलगुलान मुंडारी शब्द असून भगवान बिरसा मुंडा यांनी दिलेली ती ललकारी आहे.[२] मेश्राम यांच्या कविता गोंडी, परधानी, वऱ्हाडी, गोरमाटी या विविध बोलीभाषेतून प्रकटते. हेच तिचे वेगळेपण होय. या संग्रहातील कविता 'अस्मितादर्श' या नियतकालिकातून पूर्वप्रसिध्द झाल्या आहेत. मेश्रामानंतर आदिवासी कवितेच्या वाटचालीत 'वाहरू सोनवणे' यांचे नाव घ्यावे लागते. 'गोधड' (१९८७) हा त्यांचा पहिला काव्यसंग्रह होय. आदिवासी कविंच्या पिढीतील ते एक महत्त्वाचे कवी आहेत. प्रस्तुत काव्यसंग्रहाने 'वाहरू सोनवणे' यांना अमाप यश मिळवून दिले. त्यांच्या कवितेमध्ये शोधकता, साधना, श्रध्दा, निर्भिडता, वैचारिकता असे विशेष पहावयास मिळतात. मराठी आणि भिल्ली या दोन्ही भाषांवर त्यांची चांगली पकड आहे.

डॉ. विनायक तुमराम यांचा 'गोडवन पेटले आहे' (१९८७) हा पहिला काव्यसंग्रह होय. या संग्रहातील 'वनपुत्रांची नेदना', 'मी वनवासी' या कविता गाजल्या. विनायक तुमराम यांच्या कवितेबद्दल कवि भुजंग मेश्राम असे म्हणतात..... "आदिवासी

साहित्यामधला अत्यंत महत्त्वाचा शीर्ष कवी म्हणून विनायक तुमराम यांचा उल्लेख करावा लागतो. त्यांच्या गोंडवन पेटले आहे या काव्य संग्रहाने अभिजनांच्या चिरेबंदी किल्याला सुरूंग लावण्याचे काम केले आहे."[३] महादेव कोळी या समाजातून पुढे आलेले आदिवासी कवी रामचंद्र जंगले पहिल्या पिढीतील एक द्रष्टे कवी व विचारवंत आहेत. 'धिक्कार' (१९९५) आणि 'इखारलेल्या ललना' (२००६) असे दोन कविता संग्रह त्यांच्या नावावर आहेत. त्याचबरोबर त्यांचा अलिकडच्या काळात 'विरप्पा गौंडर' (२००७) हा एक दीर्घ काव्य आणि पाऊसपाणी (२०१०) हा संग्रह नुकताच प्रसिध्द झाला आहे.

प्रा. माधव सरकुंडे हे आणखीन एक प्रतिभासंपन्न आदिवासी कवीहोत. 'मनोगत' (१९९७) 'रानपाखरांची संसद' (२००५) आणि 'ब्लॅक इज ब्युटीफुल' (२००९) असे कविता संग्रह त्यांच्या नावावर आहेत. नव्वदच्या दशकानंतर आदिवासी मराठी कवितेचा विस्तार विपुल प्रमाणात झाला. संख्यात्मक वाढीबरोबर गुणात्मक वाढही मोठ्या प्रमाणात झाली. त्यामध्ये पुढील कविंचा उल्लेख होतो. डॉ. गोविंद गारे 'अनुभूती' (१९९४) प्रा. वामन शेळमाके 'जागवा मने पेटवा मशाली' (१९९१), पुरूषोत्तम शेळमाके 'वणसुर्य' (१९९१) चामुलाल राठवा – 'माझी सनद कुठ आहे' (२००४) जेष्ठ कवयित्री उषाकिरण आत्राम यांची 'म्होरकी' (१९९७) एक झोका आनंदाचा हा बालगीतसंग्रह, 'लेखणीच्या तलवारी'(२००१) हे संग्रह प्रसिध्द आहेत. याचबरोबर दुसऱ्या आदिवासी कवयित्री कुसुम आत्राम यांच्या नावावर 'रानआसवांचे तळे' (१९९७) व 'रानपाखरांची माया' (२०००) असे दोन काव्यसंग्रह प्रसिद्ध आहेत.

आदिवासी कविंच्या दुसऱ्या पिढीतील दमदार कवी म्हणून कृष्णकुमार चांदेकरांचा 'पतुसा' (१९९९) तर सुनिल कुमरेंचा 'तिरकमढी' (१९९९) यांचा उल्लेख करावा लागतो. याशिवाय डॉ. उत्तमराव धोंगडे 'वनदासी' रवि कुरसंगे 'इंद्रियारण्य' वसंक कुरसंगे 'अस्मितादर्श' हे कवी आणि त्यांच्या कविता सशक्त स्वरूपाच्या आहेत. पुढे एकविसाव्या शतकाच्या पहिल्या दशकात विपुल कवी लिहिते झाले आहेत. त्यामध्ये वाल्मिकी शेडमाके 'मी उदध्वस्त पहाटेच्या शुक्रतारा' वसंत कनाके – 'सुक्कासुकुम', विनायक तुमराम संपादित 'शतकातील आदिवासी कविता'गणेश परतकी 'जगण्याचे संदर्भ', भुजंग मेश्राम 'अभुजमाड' उषाकिरण आत्राम – 'लेखणीच्या तलवारा', बाबाराव मडावी – 'पाखर' मारूती उईके – 'गोंडवनातला आक्रंद' या संदर्भाचा उल्लेख महत्त्वाचा आहे.

**आदिवासी कवितेचे विशेष :–** आदिवासी कविता विविध आदिवासी भाषामधून प्रकटली आहे. गोंडी, भिल्ली, मराठी, परधानी अशा भाषांतून ती प्रकट झाली आहे. आदिवासी तरूण जागा होत आहे. सभोवतालचे सामाजिक वास्तव, विषमता यांची जाणीव झाल्यामुळे तो अस्वस्थ, आक्रमक होताना दिसतो आहे. याचे प्रतिबिंब आदिवासी कवितेतून उमटते आहे. या कवितेबद्दल विनायकतुमराम म्हणतात, ...... "स्वातंत्र्य, समता आणि न्याय या त्रयींसाठी विद्रोह, हा या काव्याचा उद्घोष आहे. ही काव्यधारा अनर्थ विरोधी व रचनात्मक अशा दोन्ही भूमिका मांडताना दिसते. आदिवासी जीवन, त्यांच्या धर्म, त्यांची अर्थपूर्ण संस्कृती, यांच्या देवदेवता, त्यांच्या विकट–विक्राळ समस्या, प्रश्नांची उकल करताना ही कविता आढळते. स्वजनांच्या सर्वांगिण विकासाबरोबरच समकालीन समदुःखी समुहांचाही ती कैवार घेते. आदिवासींच्या पाड्या, टोल्यांवर रमतानाच ती बाहेरील दारिद्र्यांशीही संवाद साधते. एकूणच 'स्व' आणि 'समष्टी' या दोहोचाही विचार मांडताना ती दिसते."[४]

दलित साहित्याप्रमाणेच आदिवासी कविंनीही आपल्या अस्तित्वाचा शोध जोरकसपणे कवितेतून घेतला आहे. आदिवासी जाणिवांची चळवळ उभी करण्याचे श्रेय या कवितेलाच जाते.

**आदिवासी कादंबरी :–** आदिवासींचे जीवन आणि त्यांच्या नैसर्गिक हक्काच्या संदर्भात मराठीमध्ये स्वातंत्र्यपूर्व काळापासूनच कादंबरी लेखन झालेले आहे. आदिवासींच्या वारली, कातकरी, पावरी, डांगी, ठाकर, कोरकू, गोंड, माडिया अशा विविध जमातींवरील साहित्य प्रसिध्द आहे. त्यातून या विविध जमातींची जीवनशैली, रूढीपरंपरा, निसर्ग आणि बाह्यसंस्कृतीशी चालेला संघर्ष, शासकीय घोरणे, नक्षलवाद असे अनेक विषयांच्या प्रश्नांचा वेध आदिवासी कादंबरीने घेतलेला आहे. स्वातंत्र्यापूर्व काळापासूनच या प्रकारच्या कादंबरी लेखनास सुरूवात झालेली पहावयास मिळते पण या कादंबरी लेखनात दोन भाग संभवतात.

१) आदिवासीएतरांचे आदिवासी जीवनावरील कादंबरी लेखन.
२) आदिवासीचे आदिवासी जीवनावरील कादंबरी लेखन.

स्वातंत्र्यपूर्व काळापासून आदिवासी जीवनावर अनेक लेखकांनी कादंबरी लिहिली आहे. पण या लेखनात आदिवासी बद्दलची सहानुभूती, उत्सुकता, रंजकता अशा अंगाने चित्रणे केलेली पहावयास मिळतात. र. वा. दिघे, शं. रा. भिसे, वि. वा. हडप, वा. ब. कर्णिक, ना. आ. शेंडे, वि. श. पारगावकर, गो. नि. दांडेकर यासारख्या कादंबरीकारांनी आदिवासींच्या जीवनावर लेखन केले आहे. पण या लेखकांच्या कादंबरी लेखनातील वर्णन पाहिल्यास या लेखकांची आदिवासी कादंबरी वास्तवाच्या किती जवळ आणि किती दूर असा प्रश्न पडतो. तरी देखील आदिवासी कादंबरी लेखनाच्या वाटचालीत या कादंबऱ्याचा उल्लेख करणे गरजेचे आहे.

मराठी कादंबरीच्या वाटचालीत आदिवासी जीवनाचे चित्रण करणारी पहिली कादंबरी म्हणून र. वा. दिघे यांच्या 'सराई' (१९४३) कादंबरीचा उल्लेख प्रथमदर्शनी करावा लागतो. कातकरी-ठाकर या जमातीच्या जीवनावर ही कादंबरी आधारित आहे. सह्याद्रीच्या डोंगर रांगात राहणाऱ्या या दोन जाती, त्यांचे प्रश्न-समस्या, सांस्कृतिक संदर्भ यांचे वेधक पण रंजक वर्णन या कादंबरीत केले आहे. दिघेंची रोमॅंटिक शैली या कादंबरीबाबत ही जाणवते.

आचार्य शं. रा. भिसे यांची 'जंगलातील छाया' (१९४५) ही कातकरी जीवनावरील एक अप्रतिम कादंबरी होय. या कादंबरीचे स्वरूप हे आत्मकथनात्मक असे आहे.

वि. वा. हडप यांची 'गोदाराणी' ही कादंबरी १९४७ साली प्रसिध्द झाली. ठाणे जिल्ह्यातील वारली जमातीवर आधारित ही कादंबरी आहे. सेठ-सावकार, जमीनदार यांनी चालवलेल्या अन्याय-अत्याचार विरूध्द वारली लोकांचा संघर्ष या कादंबरी चित्रित केला आहे. 'अन्नदाता उपासी' (१९४७) ही हडपांची दुसरी कादंबरी. वारली आदिवासी शेतकऱ्यांचे दुःख कर्जात बुडालेले जीवन त्यांच्या संस्कृतीसकट या कादंबरीमध्ये चित्रित केले आहे. वारली जमातीच्या संघर्षावरआधारित प. त्रि. सहस्त्रबुध्दे यांनी 'पहिली सलामी' (१९४८) ही कादंबरी लिहिली. गुलामीची शृंखलातोडण्यासाठी वारल्यांनी जी क्रांतीकारी वाटचाल केली. त्याचे चित्रण या कादंबरीत आहे. वारली जमातीवर वा. ब. कर्णिक यांची 'वाडगीणं' ही आणखी एक कादंबरी होय. ठाणे जिल्ह्यातील वारली जीवन यात चित्रण केले आहे.

दुर्गा भागवत यांची 'महानदीच्या तिरावर' (१९५३) ही कादंबरी मध्यप्रदेशातील रायपूर परिसरातील 'गोंड' जमातीचे दर्शन घडविते. या जमातीच्या समजूती, श्रध्दा, अंधश्रध्दा यांचा वेध या कादंबरीत घेतला आहे.

ना. आ. शेंडे यांची 'तांबडा दगड' (१९५७) ही कादंबरी भंडारा जिल्ह्यातील आदिवासींचे जीवन चित्रण घडविते. शिक्षणाशिवाय विकास नाही हे सूत्र कादंबरीमध्ये सूचकपणे मांडल आहे. याचबरोबर वि. शं. पारगांवकर यांची 'निगुडा' गो. नि. दांडेकरांची 'जैर रे जैत', 'भिल्लवीट कलिंग', नलिनी सहस्त्रबुध्दे यांची 'राणी दुर्गावती', अनिल सहस्त्रबुध्दे यांची 'अहिनकुल', दशरथ दळवी यांची 'एकलव्य' याशिवाय केतकरांची 'गोंडवनातील प्रियंवदा' दिघे यांची 'पानकळा' अनंत मनोहर यांची 'अरण्यकांड' शंकरराव खरात यांची 'पारधी', बाबा भांड यांची 'तंट्या' या कादंबऱ्यांचा उल्लेख आदिवासी कादंबरीच्या प्रवासातील आदिवासीएतर लखेकांनी लिहिलेल्या कादंबऱ्या म्हणून करावा लागतो.

आदिवासी जीवन चित्रण जरी या कादंबरीमध्ये असले तरी त्यातवास्तवाला भिडण्याची, विषमता, अन्याय यांचे भेदक चित्रण करण्याची क्षमता यांचा अभाव जाणवतो. स्वप्नरंजन आणि सवंग लोकप्रियता यांचा प्रभाव काही प्रमाणात जाणवतो.

**आदिवासींचे कादंबरी लेखन :-** १९६० नंतरच्या काळात आदिवासी चळवळ व साहित्य प्रवाह जोर धरू लागला. आदिवासींच्या जाणीव जागृतीला बळ मिळू लागते. याचा परिणाम म्हणून आदिवासींच्या सर्व साहित्य प्रकारामध्ये सामाजिक वास्तवाचे जागृतीला बळ मिळू लागते. याचा परिणाम म्हणून आदिवासीच्या सर्व साहित्य प्रकारामध्ये सामाजिक वास्तवाचे भान प्रखर होऊ लागले. याचाच भाग म्हणून आदिवासी बद्दल शासनाचे धोरण, आदिवासींचे लैगिक, आर्थिक शोषण, आदिवासी समुहातील नैतिक-लैंगिक, स्वातंत्र्य, निसर्गनिष्ठ जीवन, रूढी-परंपरा-संस्कृती, विस्थापन, बदलत्या जीवनशैलीमुळे अस्तित्वाचा निर्माण झालेला प्रश्न, यासारख्या असंख्य प्रश्नांनी आदिवासी लेखक कादंबरी लेखनाकडे वळले. आदिवासी जाणीव मध्यवर्ती ठेवून कादंबरी लेखन करणारे अनेक आदिवासी लेखक पुढे आले. या प्रवाहात समाविष्ठ होणाऱ्या लेखिका म्हणून नजुबाई गावीत या साम्यवादी आदिवासी कार्यकर्तीचा उल्लेख करावा लागेल. 'तृष्णा' ही त्यांची पहिली कादंबरी १९९५ साली प्रकाशित झाली. आत्मवृत्त स्वरूपाची ही कादंबरी 'मावची' आणि 'भिल्ल' या जमातींचे जीवन भेदकपणे साकारते. 'बोढरीपाडा' हे भिल्ल-मावची आदिवासींचे नाव, तेथील लोकजीवन रूढी, प्रथा, परंपरा यांचे

सूक्ष्म वर्णन कादंबरीत केलेले आहे. या कादंबरीत नजुबाईंनी भिलोरी, अहिराणी भाषांचा प्रभाव धारण करण्याची लोकगीते वापरली आहेत. श्रमनिष्ठा, भिल्ल-मवाची यांचे समग्र चित्रण करण्यात कादंबरी यशस्वी होते.

आदिवासी कवी, कार्यकर्ते प्रा. माधव सरकुंडे यांची 'वाडा' (१९९६) कादंबरीही तितकीच समृध्द आहे. आदिवासींच्या 'आंध' जमातीवर ही कादंबरी आधारित आहे. स्वतः लेखक याच जमातीमधून असल्यामुळे या जमातीची बोलीभाषा, संवाद, घटना, तपशिल, पर्यावरण इ. सर्व तपशील कादंबरीत जीवंतपणे उतरण्यात यशस्वी होतो.

आदिवासी विचारवंत, साहित्यिक बाबाराव मडावी यांची 'टाहो' (१९९८) ही कादंबरी देखिल याच परंपरेतील होय. सदर कादंबरीत सावकार-जमिनदार यांनी चालवलेली आदिवासांची छळवणूक-पिळवणूक, वेठबिगारी यांचे रेखाटन केले आहे. चळवळीचे कार्यकर्ते आता या अन्यायाविरध्द 'टाहो' फोडताना दिसत आहे. कादंबरीत संघर्ष हाच केंद्रबिंदू आहे. या परंपरेला साजेसे लेखन करणारे मधुकर वाकोडे 'झेलझपाट' (१९८८) दिनानाथ मनोहर 'आंदोलन' (१९८८) सुरेश व्दादशीवर यांची 'हाकमी' (१९८९), दिनकर दाभाडे 'बिलामत' (१९९४) विलास मनोहर 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' एकनाथ साळवे यांची 'एनकाऊंटर' दिनानाथ मनोहर याची 'मन्वंतर' या कादंबऱ्या उल्लेखनिय आहेत.

**आदिवासी कादंबरीचे विशेष :-** आदिवासी कादंबरीकारांच्या लेखनातून काही समान सूत्र-विशेष जाणवतात. आदिवासी कादंबऱ्यातून आदिवासी समूहाचे, धर्म-वंश-परंपरा, त्यांची जीवनशैली, राहणीमान, लोकगीते, लोकतत्त्वे, निर्वाहाची साधने, वेशभूषा, भाषा, भूवैशिष्टये यांचे विशेष जाणवतात. परंपरागत जीवन जगणारी आदिवासी माणसं निसर्ग चक्राशी तसेच रिवाजाशी पक्की बांधलेली आहेत ते आपल्या निसर्गनिष्ठ जीवनशैलीला कुठेही तडा जाऊ देत नाही. परंपरेला सोडत नाहीत. हे सर्व विशेष बहुतेक सर्व कादंबऱ्यातून प्रकटलेले आहेत. एकूण मराठी कादंबरीच्या प्रवाहाला अनभिज्ञ असलेला विषय आदिवासी कादंबरीने उजेडात आणून दाखवला आहे. त्यामुळे मराठी कादंबरी आशय-विषयाच्या बाबतीत आणि एका दुर्लक्षित प्रांताला आपल्या कवेत घेण्याच्या बाबतीत परिपूर्णतेकडे झुकताना दिसते.

**आदिवासी कथा :-** आदिवासी कथालेखनाच्या वाटचालीत इतर वाङ्मय प्रकाराप्रमाणे आदिवासींवर लिहिलेल्या इतर लेखकांच्या कथा आणि आदिवासींनी आदिवासी जीवनावर लिहिलेल्या कथा असे दोन भाग सांगता येतात. पैकी सुरूवातीच्या काळात आदिवासाएतर लेखकांनी आदिवासींच्या विविध जमातीवर लिहीलेल्या कथांचा विचार करू.

आदिवासीच्या जीवनावर आधारित शेख सलीम अहमद यांचा 'रानातली माणसं' (१९८३) पां. गो. गांगल व योगिनी गांगल यांचा 'कथा वनवासींच्या व्यथा सर्वांच्या' (१९८९) सुरेशचंद वाघडे यांचा 'अरण्यपुरूष' (१९९६) या तीन कथासंग्रहाचा विशेषत्वाने उल्लेख करावा लागेल. पुढे दलित लेखक योगेंद्र मेश्राम यांचा 'हाहाकार' (१९९४) कथासंग्रह प्रसिध्द झाला. बंगाली लेखिका महाश्वेतादेवी यांचा मूळ कथेचे 'इतवा मुंडावे लढाई जिंगली' असा सुधा नरवणे यांनी मराठीत अनुवाद केली. श्री. म. माटे यांचे भटक्या विमुक्तांच्या जीवनावर 'उपेक्षितांचे अंतरंग' प्रसिद्ध झाले यातील 'बन्सीधर तू आता कुठे रे जाशील ?' ही कातकरी आदिवासींचे जीवन चित्रण करणारी कथा लक्षवेधी ठरली आहे. विदर्भातील लेखक ना. आ. शेंडे याचा 'डोंगरमाथ्यावरील दिवा' हा कथासंग्रह आदिवासींच्या सांस्कृतिक संदर्भासह मुखर होतो. बस्तरच्या निबिड अरण्यातील भिल्ल-माडियांचे लोकजीवन हा या कथेचा विषय आहे. के. ज. पुरोहित यांचा 'लाटा' हा गाजलेला कथासंग्रह 'गोंड' या जमातीवर आधारित आहे. बाबुराव बागुलांच्या ‛मरण स्वस्त होत आहे' मधील 'भूक' ही कथा 'भागू कोळीनीची' कथा तिच्या व्यथा-वेदनांचे दर्शन घडविले. दे. शि. दुधलकर यांच्या 'काळोख' (१९७८) मधील 'सूड' ही कथा गोंड जमातीवरील अन्याय-अत्याचाराचे दर्शन घडविते. साने गुरूजींच्या 'शबरी' ने ही आदिवासी जीवन मुखर केले आहे. पुढे आदिवासी साहित्य चळवळीतून पुढे आलेले लेखक आपल्या समुहाच्या जाणिवा आपल्या कथांतून विशद करू लागले.

**आदिवासीचे कथालेखन :-** आदिवासी साहित्य चळवळीतील एक कथाकार उषा किरण आत्राम यांचा 'अहेर' (१९९६) कथासंग्रह प्रसिद्ध झाला. आदिवासी 'गोड' जमातीवर जमिनदाराकडून होणारा अन्याय यातून साकार केला आहे. माधव सुरकंडे यांचा 'सर्वा' (२०००) हा संग्रह 'आंध' या जमातीचे वास्तव दर्शन घडविते. स्वतंत्र कथासंग्रहाशिवाय काही वृत्तपत्रे, नियतकालिके यामधूनही काही कथा प्रसिद्ध झाल्या आहेत. त्यामध्ये उषाकिरण आत्राम यांची 'आक्रोश' मारूती कुळमेथे यांची 'देवकी पोटवडली', रायसिंग महाराज

यांची 'जादू गाडी' कुडलिक केदारी यांची 'आदिवासी साहेबांची बायकु', जीवन गेडाम यांची 'होऱ्या रे होऱ्या', लक्ष्मण ढवळू टोपले यांची 'आकाशी झेप घे रे पाखरा', विश्राम वळवी यांची 'जुलूम भूक' कुसुम अलाम यांची सुरंग स्फोट या कथांचा आवर्जुन उल्लेख करावा लागतो.

खरेतर आदिवासी साहित्यिकांना आदिवासी विरांच्या ऐतिहासिक कर्तुत्वाची फार मोठी प्रेरणा आहे. आदिवासींचे लढे त्यांच्या कथा निर्मितीला प्रेरणास्थान ठरू शकतात. आदिवासींच्या संस्कृतीवर होणारे परकीय आक्रमण हा चिंतेचा विषय आहे. हे सगळे आदिवासी साहित्याचे विषय होऊ शकतात. यासंदर्भात श्रीमती उषाकिरण आत्राम म्हणतात..... "भारताच्या समृध्द प्रदेशातील आदिवासी हेच मूळ निवासी होत. या मूळ निवासींची भाषा-लिपी, धर्म-संस्कृती आर्यांच्या आक्रमणामुळे नष्ट झाली. आदिवासीत वर्णव्यवस्था नाही, समता-बंधुत्व, निसर्गपुजा हीच जीवनमुल्ये आहेत. आर्य पुरूषप्रधान तर आदिवासी मातृशक्तीचे पूजक आहेत. आदिवासींचे देव कपोलकल्पित नाहीत, निसर्ग व वंशज अशी त्यांची वस्तुनिष्ठ दैवते आहेत."[५] आदिवासींचा हा गौरवशाली भूतकाळच त्याच्या सकस साहित्य निर्मितीचा भाग ठरू शकतो.

**आदिवासी नाटक :-** आदिवासी साहित्य प्रवाहामध्ये कविता-कादंबरी-कथा यांच्या तुलनेत नाटक हा वाङ्मयप्रकार तितकासा रूजला नाही. खरेतर आदिवासी जीवनामध्ये नाट्यलेखासाठी म्हणून आवश्यक असणारे विपुल संदर्भ असताना देखील हा वाङ्मय प्रकार विस्तारला नाही. आदिवासींमधील धैर्यवान, शूर, हुतात्मे-क्रांतीकारक, त्यांचे कतृत्व, आदिवासींची संस्कृती, पारंपारिक लोकजीवन, त्यांच्या समोरील आव्हाने असे कितीतरी विषय समोर असताना हे घटक नाट्य बीज ठरू शकत नाहीत. कदाचित नाट्यलेन तंत्राची जाण, त्याचा अविष्कार करण्याची उर्मी लवकर मूळ धरू न शकल्यामुळे या नाट्य लेखनाचा अभाव जाणवतो. तरी देखील आदिवासी नाट्यलेखनाचे काही महत्त्वाचे संदर्भ इथे विचारात घ्यावे लागतील.

इतर वाङ्मय प्रकाराप्रमाणे नाटकाच्या बाबतीतही झाले आहे. आदिवासीएतर लेखकांचे आदिवासींच्या जीवनावर नाट्य लेखन झाले आहे. ही निर्मिती आदिवासींच्या बद्दलची सहानुभूती आणि उत्सुकते पोटी झालेली दिसते.

१९७२ साली विश्वनाथ खैरे याचें 'एकलव्य' हे तीन अंकी नाटक प्रसिध्द झाले. एकलव्य ही सर्वपरिचित अशी पुराणातील व्यक्तीरेखा सदर नाटकाचा विषय आहे. पुराणातील एकलव्य वर्तमानाच्या संदर्भात पाहण्याचा प्रयत्न इथे केलेला आहे. या नाटकातील पुराणातील एकलव्याला वर्तमान संदर्भात पाहण्याचा खैरेंचा प्रयत्न नाविन्यपूर्ण वाटतो.

विजय तेंडुलकर यांचे 'कमला' (१९८५) हे दोन अंकी नाटक एका आदिवासी स्त्रीची संघर्षकथा म्हणून साकारते. बिहार राज्यातील आदिवासींच्या जीवनाचे दर्शन या नाटकात घडविले आहे. सोशिक, मवाळ, परिस्थितीला शरण जाणारी अशी नायिका या नाटकात उभी केली आहे. आदिवासी समाजाची एक उपेक्षित प्रतिनिधी म्हणून'कमला' चे व्यक्तिमत्व सशक्तपणे चित्रित व्हावयास हवे होते, पण तसे झाले नाही.

'आदिलिला'-प्रत्यक्ष जीवन की नाट्य ? हे वारली जीवनावर रमेश कुबल यांनी लिहिलेले संशोधित नाटक होय. कुबल यांनी वारल्यांच्या पारंपारिक धर्म, श्रध्दांसकट एक संघर्ष नाट्य सिध्द केले आहे. 'मरीमायचा भूत्या' (१९९०) हे व्ही. आर. पाकलवार यांचे वास्तवदर्शी नाटक आहे. ८०-९० च्या दशकात याचे अनेक प्रयोग झाले. भूतखेत, मंत्रतंत्र, जादूटोणा, भगत, पुजारी, पशुबळी, नरबळी, गावबांधणी अशा चक्रव्यूहात सापडलेल्या जमातींचे चित्रण यामध्ये केलेले आहे. सदर नाटक तीन अंकी असून माडिया जमातीचे सूक्ष्म जीवनदर्शन यातून घडविले आहे. याचबरोबर रत्नाकर मतकरी यांच्या 'लोककथा' (१९९९) या नाटकाचा इथे उल्लेख करावा लागेल. वरील सर्व नाटके आदिवासीएतर लेखकांची निर्मिती होय. आदिवासी चळवळ आणि साहित्य प्रवाह यांचा जोर वाढला तसे पुढे आदिवासी जीवनातील संदर्भावरून आदिवासी जाणिवेतून सशक्त नाट्य लेखन करणारे आदिवासी लेखक लिहिते झाले.

**आदिवासींचे नाट्य लेखन :-** आदिवासींनी आदिवासी जीवनावर लिहिलेले नाट्य लेखन तसे संख्येने अल्पच आहेत. पण जे प्रयत्न झाले ते कौतुकास्पद आहेत. श्री. तोडसाम यांचे 'सोनेताकुर्स' हे एक गोंडी भाषेतील नाटक प्रसिद्ध झाले आहे. विठ्ठलराव कन्नाके यांचे 'जय बुळहालपेन' हे गोंडी भाषेतील नाटक प्रकाशनाच्या वाटेवर आहे. महान क्रांतीसेनानी भगवान बिरसा मुंडा यांच्या जीवनावर दशरथ मडावी यांचे 'महासूर्य बिरसा' आणि वामन शेळमाके यांचे 'महाबिरसा' ही दोन नाटक प्रसिद्ध झाली आहेत.

आदिवासीच्या उदयोन्मुख नाटककारांमध्ये कुंडलिक केदारी यांचे नाव अलिकडच्या काळात चर्चेत आहे. 'आली रंगात राणी' (१९९९), 'आक्रोश' (२००३) आणि 'कथा इंद्रपुरीची' (२००५) ही तीन नाटके त्यांच्या नावावर आहेत.

आदिवासी नाटाकबरोबरच आदिवासी एकांकिकाही अलिकडच्या काळात लिहिल्या गेल्या आहेत. त्यामध्ये प्रामुख्याने रमेश कुबल यांची 'निष्पर्ण वृक्षावर' (१९८७) जगतकुमार पाटील यांची 'आसाचा फेरा' विनोद मोरांडे यांची 'स्पेशल ॲक्शन प्लॅन' याचबरोबर कुंडलिक केदारी याचें 'भागोजी नाईक' हा एकांकिकाचा संग्रह १९९५ मध्ये प्रसिध्द झाला. त्यामध्ये 'भागोजी नाईक', 'छळ', 'विरह', आणि 'शापित' अशा चार एकांकिका समाविष्ट आहेत. याशिवाय नियतकालिकांमधून काही एकांकिका प्रसिध्द झाल्या आहेत. 'हाकाटा' या त्रैमासिकात अनिल सहस्त्रबुध्दे यांची 'कातळी निखार', तसेच भुजंग मेश्राम यांची 'सवारी','मातामाय' आणि 'सोंग' या एकांकिका प्रकाशित झाल्या आहेत. याच त्रैमासिकात रायसिंग महाराज यांची देज ही एकांकिका प्रसिद्ध झाली आहे.

याप्रमाणे आदिवासी नाट्य इथे वाङ्मय आपले अस्तित्व हळू हळू सिध्द करीत आहे. तुलनेने अल्प असले तरी ही निर्मिती सकस स्वरूपाची आहे. आदिवासींच्या व्यथावेदनांना तिने मुखर केले आहे.

**निष्कर्ष :–**

आदिवासी साहित्यासंदर्भात इथेकाही प्रश्न मांडावेसे वाटतात. 'आदिवासी जाणीव' ही आदिवासी लेखकांच्या साहित्य लेखनामागची भूमिका मद्यभागी आहे. ही आदिवासी जाणीव आदिवासींच्या लोकसंस्कृतीतील दैवते, मिथळे , धर्म, श्रध्दा, निसर्ग निष्ठा यांच्याशी संबंधीत आहे. पण हेच घटक आदिवासींच्या सामाजिक चळवळीत आता जटील प्रश्न बनले आहेत. एका बाजुला आदिवासींची परंपरा, लोकसंस्कृती यांचे त्यांच्या जीवनातील स्थान आणि दुसऱ्या बाजुला सुधारणावादी भूमिका यांच्यामध्ये गुंता निर्माण झाला आहे. यासंदर्भात प्रमोद मुनघाटे असे म्हणतात, – "आदिवासींच्या लोकसंस्कृतीमधील दैवते, मिथहे , धर्म आणि श्रध्दा या संदर्भात आदिवासींच्या सामाजिक चळवळीत निर्माण झालेले प्रश्न जटील आहेत. ते प्रश्न सोडविण्याच्या अनेक भूमिका आहेत. राजकारण आणि समाजकारणच्या सीमारेषांवरील आदिवासींचे पुढारी मात्र ज्या भूमिका घेतील त्याचा निश्चितच परिणाम आदिवासींच्या साहित्यातील सर्जनशीलतेवर होणार आहे. कारण वैदिक संस्कृतीची सूत्रे आदिवासी संस्कृतीवर अतिक्रमण करीत आहे. या संस्कृती संघर्षात एका बाजूला आदिवासींच्या प्राचीन धर्मसंकेताना खुणावणारा वैदिक धर्म आहे. दुसरीकडे फुले–आंबेडकरांनी केलेली आर्य–अनार्य व्दंव्दाची चिकित्सा करणारा शुद्धीवाद आहे."[६] याच पार्श्वभूमीवर आणखीन काही संकटे या समुहासमोर आहेत. ती म्हणजे आदीवासींचे वनवासी करण करणारी हिंदुत्ववादी संघटनांनी कुटील निती, ख्रिस्ती मिशनऱ्यांची सेवाभावाच्या नावाखाली चालवलेली धर्मांतराची चाल, विस्थापन तसेच विविध शासकीय स्वरूपाची धोरणे या समस्यांच्या विळख्यात हा समुह गुरफटलेला आहे. या सर्व पार्श्वभूमीवर आदिवासी साहित्यिकांसमोर आणि चळवळीसमोर मोठे आव्हान उभे आहे.

**संदर्भ ग्रंथ**

१) विनायक तुमराम, 'आदिवासी साहित्य दिशा आणि दर्शन', स्वरूप प्रकाशन, औरंगाबाद, पृ. क्र. ३८.
२) तत्रैव पृ. क्र. ४७.
३) तत्रैव पृ. क्र. ५१.
४) तत्रैव पृ. क्र. ४४.
५) 'मराठी आदिवासी साहित्य स्वरूप व समस्या', संपादक, प्रमोद मुनघाटे, प्रतिमा प्रकाशन, पुणे, पृ. क्र.८.
६) तत्रैव पृ. क्र. ६.

# सामाजिक चळवळी आणि आदिवासी साहित्य

**डॉ. कुंडलिक चिंधू पारधी**
न्यु आर्ट्स,कॉम्स&सायन्य
कॉलेज शेवगाव जि.अहमदनगर
Email-kundliksir@gmail.com

## प्रास्ताविक

सामाजिक विकासाकरिता स्वातंत्र्य, समता व बंधुतेची अत्यावश्यकता असते. या तीन तत्त्वांचा अवलंब करणारा समाज आदर्श समाज होय. ज्या समाजात ही तिन्ही तत्त्वे अव्हेरून उलट तत्त्वांची म्हणजे गुलामी विषमता आणि भाऊबंदकी ही विरोधी तत्त्वे कार्यान्वित होतात त्या वेळी या विरोधी तत्त्वांचा मुकाबला करण्याकरिता समाज सुधार चळवळी उदयास येतात. ही समाजविघातक तत्त्वे उद्भवण्याची कारणे विषम समाजरचना,वर्णाश्रमपध्दती जातिभेद आणि समाजव्यवस्थेची उतरंडी ही आहेत. परंतु आदिवासी समाजाच्या बाबतीत जातिभेदा पेक्षा त्यांना रानटी, लुटारू, चोर अशा प्रकारच्या विषमतेला तोंड दयावे लागले आहे. त्यामुळे आदिवासी चळवळ ही आत्मसन्मानाची राहिलेली आहे. त्याचे पडसात आदिवासी साहित्यात उमटलेले आहेत.

## महाराष्ट्रातील आदिवासींच्या चळवळी-

सन १८१७ मध्ये धुळे जिल्ह्यातील भिल्ल समाजाने पहिली चळवळ उभी केली.इंग्रजांविरुध्द समर्थपणे तोंड देण्यास सन १८५७ च्या स्वातंत्र्यायुध्दात बऱ्याच आदिवासी पुढाऱ्यांनी नेतृत्व करून हौतात्म पत्करले; परंतु त्यांचा कुठेही उल्लेख नाही. चंद्रपूर जिल्ह्यात मोलसपल्लीचा जमीनदार बाबुराव पुलेश्वर बापू पेंदीर राजगोंडा आणि नागपूर गोंड घराण्यातील सरदार शंकरशहा आणि रघुनाथशहा यांनी इंग्रजांविरूध्द उठाव केल्यामूळे सन १८५८ साली त्यांना प्राणासमुकावे लागले. याच काळात तंट्या भिल्ल, विष्णू गोंड आणि कंगला माझी यांनी या चळवळीत सक्रिय योगदान दिले होते. मेजर ल्युसी स्मिथ यांचेकडे आदिवासींच्या संरक्षणाचे नियम बनिवण्याचे काम सोपविले होते. आदिवासींच्या साहित्य- संस्कृतीचे संकलन करून स्मिथना देण्याचे कार्य चंद्रपूरच्या गोंड राजाचे मंत्री याच वणी शहराचे निळकंठराव ठुमे यांचेकडे सोपविले होते. सन १८६५ते ९३ मध्ये त्यांनी आदिवासींच्या जीवनदर्शनाची वखर स्मिथाना दिली होती. सन १८७४ साली सावकारी विरूध्दच्या चहवळीचे पहिले निशाण पुणे जिल्हयातल्या आंबेगाव तालुक्यातल्या सांगोरी गावाच्या श्री होनाजी भानुजी केंगले नावाच्या क्रांतीकारक आदिवासीने उभारले. त्यांनी ही चळवळ जुन्नर, आंबेगाव आणि कर्जत या भागात पोहचवली. याचा परिणाम होवून दुरवरच्या भागातील आदिवासी जागृत झाले.परंतु सन १८७६ साली त्याला फासावर चढविण्यात आले. सन १८८९ च्या दुष्काळात आदिवासींची बरीच उपासमार झाली, या परिस्थितीचा फायदा घेउन जमीनदांनी आदिवासींच्या जमिनी बळकावल्या. या विरूध्द रामा किरवा या महादेव कोळयांनी उग्र चळवळ उभारली होती. सावकारी विरूध्द उठाव म्हणून सरकारी खजिने लुटण्याची चळवळ पुणे विभागात बाळाजी पिचड यांनी उभारली होती. वेठबिगारी, शोषण व अमर्याद काम या विरूध्द महादेव कोळयांच्या सहाय्याने ठवळा भांगरे यांनी तीव्र स्वरूपाची चळवळ उभारली होती. यात ठाकर कातकरी व पावरा लोकांनी सक्रिय भाग घेतला होता. या सर्व असंतोषाचे निरक्षण करून इंग्रजांनी या जमातींना संरक्षण देण्याकरिता सन १९१९ साली पहिली इंडिया ॲक्ट तयार केला; पण त्याचा विशेष लाभ झाला नाही. सन १९१० मध्ये जागतीक मंदिची लाट आली तेव्हा सावकारांनी जमीनी गिळंकृत करण्याचा सपाटा चालविला. पुणे आणि ठाणे जिल्हयात त्यामूळे खळबळ माजली. तेव्हा श्री रामा मोरे व श्री दगडू निर्मळ यांच्या नेतृत्वाखाली महादेव कोळींना टोळी तयार केली व सावकारांचा बंदोबस्त करण्यास प्रारंभ केला. त्याच धरतीवर नाशिक व अहमदनगर जिल्हयात श्री सखाराम सातपुते व श्री हैबती खाडे यांच्या नेतृत्त्वाखाली सावकाराविरूध्द आंदोलन उभे राहीले.

शैक्षणिक विकासाशिवाय आदिंवासींना प्रगती करता येणार नाही हे लक्षात घेउन सन १९२३ साली नागपूर येथे कै. पंचमबाबू आत्राम, बालाराम मडावी, तुकाराम मडावी आणि पतिराम वट्टी यांनी शिक्षणसंस्था स्थापन करून गोंडसभा पाठशाळा सुरू केली पुढे यवतमाळचे गुंडारामजी मसराम यांनी आदिवासी शिक्षण प्रसारक मंडळ, आचार्य भंसाळी यांनी

वनवासी सेवामंडळ आणि चंद्रपूरचे श्री. ल.म मडावी यांनी शिक्षणक्षेत्रात आदिवासींना प्रवेश मिळविण्यास बरेच प्रयत्न केले होते. आदिवासी अभ्यासक मसराम लिहितात की,"सायमन कमिशन आणि गोलमेज परिषदेपुढे श्री. नारायण मास्तर मडावी, रामजी मास्त गेंडाम आणि आडकू वानोसा पेंदारे मास्त यांनी या दोन्ही परिषदांचे प्रशासकीय अधिकारी सर एच जे हट्टन यांचेकडे निवेदन दिले. त्यामूळे सन १९३५ च्या दुसऱ्या इंडिया ॲक्टमध्ये आदिवासींना जादा संरक्षण दिले. परंतु हे जादा संरक्षण फसवे वाटल्यामुळे वरील तिन्ही व्यक्तींनी सत्याग्रहाचे आव्हान केल्यामूळे सरकारने सन १९३८ साली ओ. एच.बी. स्ट्रॅट यांचेकडे आदिवासी प्रश्न सोपविले; परंतु त्यांनी कोणत्याच भरीव सूचना न केल्याने आदिवासींनी बंडाचे आव्हान केले. परिस्थिती वशेष चिघळू नये. म्हणून सरकारने मुंबई विभागासाठी सर वाय. डी. सेमिंग्टन व नागपूर विभागासाठी सर सी.यु. विल्स यांचेकडे आदिवासींचे प्रश्न सोपवून शेती सुधार मालकी हक्क याविषयी संरक्षण देण्याचे ठरविले."[१] वरील अभ्यासकांच्या मताचा विचार करता आदिवासींच्या संरक्षणासाठी अनेकांनी लढे दिल्याचे दिसून येते.

खानदेशाच्या आदिवासी भागात प्रथम मिशऱ्यांनी सेवाभावी वृत्तीने कार्याची मुहूर्तमेढ रोवली. ठक्कर बाप्पा यांच्या प्रेरणेने नानासाहेब ठक्कर व सहकाऱ्यांनी २० मार्च १९३८ रोजी नंदुरबार येथे पश्चिम खानदेश भिल्ल सेवा मंडळ या संस्थेची स्थापना केली आणि या संस्थेच्या माध्यमाने अनेक सेवाभावी मित्र, सहकारी जोडले. जनार्दन पोहऱ्या वळवी यांचा जन्म अक्राणी तालुक्यातील मुंदलवड गावी झाला. त्यांनी सातवीला असतांना १९४२ च्या आंदोलनात भाग घेतला. त्यांना समाजकार्याची प्रेरणा नानासाहेब ठकार यांच्याकडून मिळाली. "माणूस म्हणून जगायची शक्ति शिक्षणाशिवाय आदिवासींमध्ये येणार नाही' याची जाणीव त्यांना होती. प्रथम त्यांनी तरुणांची एक संघटना उभारली. आदिवासींचे अज्ञान, वेठबिगारी, व्यसनाधीनता, शोषण तसेच शेतीतील मागासलेपण या समस्यांचा त्यांनी अभ्यास केला.आदिवासी शिक्षणासाठी गावोगावी पायपीट करुन शिक्षणाचे महत्त्व पटवून दिले. आदिवासी बांधवांवर होणाऱ्या अन्यायाला दूर करण्यासाठी प्रयत्न सुरू केले. शिवाय जंगलातील नैसर्गिक संपत्तीवरील हक्कांची जाणीव करून दिली. जयवंत नटावदकर यांच्या सोबत आश्रमशाळा, माध्यमिक विद्यालये, छात्रालये सुरु केली. दुर्गम व डोंगराळ भागातील आदिवासी हरिजन व दुर्बल घटकांची शैक्षणिक उन्नती करण्याचे उदष्टि डोळयासमोरठेवून 'आदिवासी सातपुडा शिक्षण प्रसारक मंडळ' ही संस्था स्थापन केली."[२]सन १९३९ च्या सुमारास पुण्याच्या परिसरात श्री कोंडया हरी नवले यांच्या नेतृत्त्वाखालली सावकारांच्या विरोधात चळवळ करण्यात आली. ते सावकारांच्या घरावर धाड टाकुन रोख रक्कम व दाग-दागिने लुटत व नंतर ते सर्व खेडयात जावून गोरगरीबांमध्ये वाटून टाकत. सावकारी कागदपत्रांची व वहयाची होळी करीत. इ.स १९४५ च्या सुमारास आदिवासीकडून जबरदस्तीने मोठया प्रमाणावर व्याज वसुल करणारा परप्रांतीय व्यापारी व सावकार विरूध्द मोठया प्रमाणावर चळवळ उभी केली. ठाणे आणि नाशिकजिल्ह्यात वारली लोकांनी मानवी हक्काच्या प्राप्तीकरिता मुक्तिआंदोन सन १९४५-४६ मध्ये उभारले होते. या चळवळीला कॉमरेड गोदावरीताई परुळेकर यांचे सहकार्य लाभले होते. या चळवळीमुळे आदिवासींना नवजीवन लाभले हे विसरता येत नाही. तसेच श्री. अंबरसिंग सुरतवन्ती महाराज यांनी गैर आदिवासीकडून जमिनी परत मिळवून देण्यासाठी चळवळ उभी केली.श्री. काळूराम धोदडे यांनी पालघर विभागात आदिवासींना एकत्र करून जमिनी मिळविण्या भूमिसेना उभी करून चळवळ उभी केली आहे. श्री. नारायण उईके यांनी १९५२ -७२ च्या काळात चंद्रपूर जिल्हयात आदिवासीमध्ये जाणीवजागृतीचा प्रयत्न केला. तर श्री. सुखदेव उईके यांनी जबरनजोत चळवळ चालवून जमिनी हक्क प्राप्त करून देण्यासाठी प्रयत्न केले. तर ताराबाई मोडक यांनी कुरण शाळा व आदिवासीमध्ये शिक्षणाच्या सुविधा देण्यासाठी ठाणे जिल्ह्यातील बोर्डी व नंतर कोसवाड येथे शैक्षणिक चळवळ, व्यावसायिक शिक्षणाचा अवलंब केला.अनुताई वाघ यांनी ताराबाईच्या बालवाडी शिक्षण, प्रौढ शिक्षण व आदिवासी शिक्षणाच्या योजनांचा नेटोन प्रसार केला. आदिवासींच्या सामाजिक चळवळी विषयी मसराम म्हाणता की "शेवटी आदिवासींच्या प्रत्येक समाज सुधार चळवळीकडे बंड आणि क्रांतीच्या दृष्टिकोनातून न पाहता त्यांच्या रास्त मागण्यांकडे सहानुभुतीने पाहिल्यास विकासाचे मार्ग सापडतील अशी सूचना थोर मानववंशशास्त्रज्ञ डॉ.बेरियर एल्विन यांनी भारत सरकारला केल्यामुळे आदिवासींच्या मागण्यांना विद्रोह किंवा क्रान्तीचे रूप न देता आत्मसन्मानाची चळवळ म्हणून संबोधण्याचा पायंडा पडून आदिवासींच्या अशा निरंतर चळवळींतून आजचे अल्पसे सुधारित चित्र आपणास दिसत आहे. त्यामुळे भारतीय समाजिक चळवळीमधील आदिवासींच्या चळवळीचा हा फार मोठा विजय आहे हे मान्य करावे लागेल."[३]

**आदिवासी साहित्य चळवळ –**

आदिवासी साहित्य हे वनसंस्कृतीचे नातलग साहित्य असून ते रानावनातील वंचितांचे साहित्य आहे. ज्यांच्या प्रश्नांना भुतकाळाने कधी उत्तरेच दिली नाहीत, अशा दुर्लक्षितांचे हे साहित्य आहे. त्यामुळे आदिवासी साहित्य चळवळीची सुरुवात

खूप उशीराने म्हणजेच साधारण १९७९ साली भद्रावती येथील पहिल्या आदिवासी साहित्य संमेलना झाल्याचे दिसून येते. तसे पाहिले तर १९४७ ते १९७५ हा स्वातंत्र्योतर काळ आदिवासी नवकाव्याचा प्रारंभकाळ म्हणता येईल. आदिवासींचे क्रांतिकाव्य जन्माला येण्यापूर्वीचा हा काळ होय. आदिवासींच्या विकासाला नुकतीच सुरुवात झाली होती. शिक्षणाचा उपयोग प्रापंचिक गरजा भागवण्यासाठी करत असल्याचे या काळात वाङ्मयनिर्मिती अत्यल्प होत होती. पुढे चळवळी उभ्या राहील्या आणि आदिवासी आपल्या आत्मसन्मानासाठी लढू लागला त्यातून काही विचार पुढे आल्याचे आदिवासी साहित्यीकांच्या लेखनातून दिसून येते. त्यामुळे विनायक तुमराम सारख्या अभ्यासकांचे मत विचारात घेण्यासारखे आहे. ते म्हणतात की, "आदिवासींच्या चळवळींना संघर्षाच्या विविध छटा आहेत. एकाच प्रकारच्या सामाजिक आणि राजकीय जाचातून त्यांचा विद्रोह जन्माला आलेला नाही. काही आदिवासी जमातींनी आत्मसन्मानाच्या चळवळी राबविल्य, काहींनी आपल्या धर्म-संस्कृतीवर होणारे परकीयांचे आक्रमण थोपविण्यासाठी उठाव केले, तर काहींनी शोषणाविरुध्द, विषमतेविरूध्द लढे उभारले. त्यावरून, आदिवासींच्या ध्येय- धोरणांचा व अस्मितेच्या दिशेने झेपावणाऱ्या त्यांच्या युध्दस्वी प्रवृत्तीचा आपणास परिचय होतो. हे ऐतिहासिक वास्तव विसरून चालणार नाही."[४]वरील अभ्यासकांचे मत विचारात घेता आदिवासी साहित्याच्या प्रेरणान विषयी जेव्हा प्रश्न उपस्थित केला जातो, तेव्हा ते म्हणतात की,"कित्येक सामाजिक वादळी परिवर्तने झालीत, मात्र हे जीवन अविचल राहिले आहे. या जीवनातील सामाजिक एकात्मता काळाच्या तुफान प्रवाहात अभंग राहिली आहे. तेव्हा या जीवनामागील प्रेरणा कोणती असावी, हा प्रश्न उद्भवणे स्वाभाविक आहे. संस्कृती हीच या जीवनाचा एकमेव आधार व प्रेरणास्त्रोत आहे, हेच या प्रश्नाचे समर्पक उत्तर ठरेल."[५] वरील अभ्यसकांच्या मताचा विचार करता, आदिवासी सामाजिक चळवळीचा परीणाम आदिवासी साहित्यावर होणे स्वभाविक आहे. त्यामुळेच बिरसा मुंडा यांच्या जीवनावर अनेक छोटेखानी पुस्तके प्रसिध्द झाली आहेत. 'धरती आबा-महान शहीद बिरसा मुंडा' एल.के.मडावी यांनी १९९८ साली लिहिले आहे. 'अमर शहीद वीर बिरसा मुंडा' मंसाराम कुमरे २००४, आदिवासी साहित्यिकांचे काही चरित्रग्रंथ प्रसिध्द झाले आहेत. डॉ. गोविंद गारे यांचे 'आदिवासी बंडखोर' २००२, 'स्वातंत्र्यलढ्यातील आदिवासी क्रांतिकारक' २००८, ॲड सी.बी. मडावी यांचे 'आठवणीतील बाबुरावजी मडावी' डॉ. तुकाराम रोंगटे यांचे 'आदिवासी ऑयकान्स' पी.सी. झांबाडे यांचे 'स्वातंत्र्यलढयातील आद्य क्रांतीनायक' यासारखी पुस्तके प्रकाशित झाली आहेतर नाटकांमध्ये 'तंटया भिल्ल', 'रान भूल', 'महाराणी दुर्गावती''महासूर्य बिरसा', 'महाबिरसा' ही नाटके सामाजिक चळवळीच्या प्रभावातून आलेली असल्याचे दिसून येते.आदवासी क्रांतीवीर बिरसा मुंडा विषयी हेमलता जोहारापूरकर म्हणतात की, " अन्याय सहन करण्यालाही सीमा असते. ही सीमा ओलांडली की दुबळा मनुष्यदेखील आपले दुबळेपण पणाला लावून या अन्यायाचा प्रतिकार करण्यासाठी बंड केले, उठाव केले. त्यांना दोन पातळयांवर लढावे लागले. त्यांचा एक शत्रू होता सावकार,जमीनदार, मालगुजार, सामंत, पुरोहित, व्यापारी, महाजन वगैरे संस्कृतीचे ठेकेदार आणि दुसरा शत्रू होता ब्रिटीश राज्यकर्ते. या दोन्ही दिक्कुंशी लढणाऱ्या व शहीद होणाऱ्या वीरांमध्ये तिलका, मांझी, सिध्दु कान्हू, बाबूराव सेडमाके, तंट्या भिल्ल, चैनशहा, भीमा गोंड, वीर नारायणसिंह, प्रविणचंद्र भंजदेव इत्यादी होते. दुर्दैवाने या वीरांच्या कर्तृत्वाचा सुसंबध्द इतिहास उपलब्ध नसल्याने त्यांचे कर्तृत्त्व भारतीयांसमोर आले नाही. बिरसा मुंडा हा असाच एक दुर्लक्षित आदिवासी वीर आहे. तो आदिवासींचा धरती अबा, भगवान आहे. त्याच्या कर्तृत्वाचा आलेख या चरित्राच्या रुपाने लोकांसमोर मांडण्याचा स्तुत्य उपक्रम लेखक प्रा. डॉ. विनायक तुमरामानी केला. १ मे १९९१ रोजी भारताचे पंतप्रधान राजीव गांधी यांची हत्या झाल्यावर त्यांना भारत सरकारने मरणोपरान्त 'बिरसा मुंडा पुरस्कार' जाहीर केला. त्यामुळे देशाच्याच नव्हे, जगाच्या कानाकोपऱ्यात बिरसाचे नाव जऊन पोहले."[६]तर भुजंग मेश्राम यांची 'सवारी' ही एकांकिका पूर्वी गावची कोतवालकी परधानांनाच मिळत असे. याचे अनेक पुरावे देता येतील. तर रायसिंग महाराज यांची 'देज' ही एकांकीका भिल्लांमधील देजप्रथा, वर्तमानातील पुढारलेल्या समाजामध्ये सर्रास सुरू असलेल्या प्रथेहून किती भिन्न आणि हितावह आहे, ही या एकांकिकेची मध्यवर्ती कल्पना खूप काही सांगून जाणारी आहे. आत्मसंमानाची चळवळीच्या जवळ जाणारी आहे. बोहाडा, जान्याकाका, कातकरी परतले, रतन, सोमा, रान पळाले, कष्टया, चाललो जगायला, सुगीचा हंगाम, आणि सरपंच फास घेता, अशा या कथा वारली कातकरी कोकणा, ढोरकोळी,पारधी या आदिवासींच्या दु:खाला त्यातुन कळाकाराने वाचा फोडली आहे. त्यांच्या दैनंदिन बोलीतील शब्द व जगण्यातील दु:खवेदना घेऊन सलीम सलीम शेख यांनी हा कथासंसार मांडला आहे.'सावकारी हिशोब' विठ्ठल पाडेकर यांची ही कथा आहे. ठाणे जिल्ह्यातील पालघर तालुक्यात वारली ही आदिवासी जमात बहुसंख्येने राहते. त्यांच्या शोषणाचे चित्रण करणारी ही कथा आहे. 'रक्तखिळा' ही माधव बावणे यांची कथा आदिवासींच्या शिक्षणातील समस्या मांडणारी आहे. आदिवासी चळवळीतील एक कथाकार म्हणजे उषाकिरण आत्राम होत. 'अहेर' हा त्यांचा कथासंग्रह असून त्यामधील

'अहेर', 'बाजा', 'जनी', 'संघर्ष', 'परवर्तन', 'भूक', अशा सहा कथा या संग्रहात आहेत. विवाहाच्या पहिल्याच रात्री जमिनदाराकडून लुटल्या जाणारी देखणी आदिवासी गोंड तरूणी 'अहेर' या कथेत आहे. 'जनी' या कथेत एका अशिक्षित व गरीब आदिवासी स्त्री 'जनी' हिच्यावरील बलात्काराचे व अन्याय-अत्याचाराचे यथार्थ चित्रण आलेले आहे. तर 'बाजा' या कथेत कर्जात बुडालेल्या व वेठबिगारीची बळी ठरलेल्या आदिवासी व्यथा या कथेत साकारली आहे. सेठ-सावकार व जमिनदार 'बाजा' चे कसे हाल करून त्याला मारतात, हृदय पिळवटून टाकणारे चित्रण या कथेत आहे.'सर्वा' हा माधव सरकुंडे यांचा कथासंग्रह आहे. "समाज मनावर संस्कार करण्याचे फार मोठे सामर्थ्य साहित्यात असते. समाजजीवनाला सावरण्याचे, प्रेरणा देण्याचे, एवढेच नव्हे तर समाजक्रांती करण्याचे सामर्थ्य साहित्यात असते. साहित्य नवसमाजनिर्मितीची क्रांती घडवू शकते"[७] वरील अभ्यासकांच्या मतावरून आदिवासी कथा ही समाकि चळवळ उभी करणारी असल्याचे स्पष्ट होते.

आदिवासी साहित्याचीपायाभरणी आदिवासी कवितेने केलेली आहे. समाजिक चळवळीचा विचार केला असता असे लक्षात येते, की आदिवासी कवी हे सामाजिक चळवळीतील कार्यकर्ते असल्याने त्यांच्या अनेक कवीता हया चळवळीचे गीत गाणाऱ्या आहेत. त्यामुळे त्यांच्या काव्यातून आदिवासीचे प्रश्न, समस्या, संघर्ष,स्त्रीयांवरील अन्याय-अत्याचार, वेठबिगारी, कुपोषण, भूक, दारीद्रया, शोषण, यासारखे विषय आलेले आहेत. वाहरू सोनवणे, भुजंग मेश्राम, विनायक तुमराम, कुसुम आलाम, उषाकिरण आत्राम, वामन शेळमाके, चामुलाल राठवा, सुनिल कुमरे, संजय लोहकरे, यासारख्या सच्चा कार्यकर्त्योच्या कविता हया समाज जागृतीसाठी लिहिल्याचे दिसून येते. त्यांच्या कविता संग्रहाच्या नावावरूनच हे लक्षात येत. भुजंग मेश्राम यांचा 'उलगुलान'१९९५ , वाहरू सोनवणे यांचा 'गोधड'१९८७, विनायक तुमराम यांचा 'गोडवन पेटले आहे'१९८७, संजय लोहकरे यांचा 'आदिवासी लिलावाचा प्रजास्ताक देश' कुसुम आलाम, 'रानआवाचेतळे' उषाकिरण आत्राम, 'लेखणीच्या तलवारी' वामन शेळमाके, 'जागवा मने पेटवा मशाली' चामुलाल राठवा, 'माझी सनद कुठे आहे' सुनिल कुमरे, 'तिरकमठा' यासारख्या कविता संग्रहानी आदिवासी साहित्य चळवळी बरोबर सामाजिक भान जपत आपल्या समाजाच्या काव्यातून प्रबोधना बरोबरच सामाजिक चळवळ उभी करण्याचे महत्वाचे कार्य केल्याचे दिसून येते. "स्वातंत्र्याच्या सूर्योदयानंतरही अस्तित्व टिकवून असलेल्या काळोखाच्या विषारी दंशाने घायाळ झालेल्या आयुष्याचे दु:ख कवितेच्या रूपाने आज आकारात येऊ लागले आहे."[८]एकूण आदिवासी साहित्य चळवळ ही आत्मसन्माना बरोबरच स्व च्या शोधात असून, तिने आपल्या संस्कृतिचे जतन आणि संवर्धन करण्याचे महान कार्य केले आहे.

## समारोप-

समाजिक चळवळीचा विचार केला असता असे लक्षात येते. आदिवासी साहित्यीक हे प्रथम चळवळीचे कार्यकर्ते राहीले असून नंतर त्यांनी आपल्या चळवळीला साहित्यातून मांडण्यासाठी लेखनीचा आधार घेतल्याचे दिसून येते. स्वातंत्र्यानंतर आदिवीसी तरूणानी शिक्षण घेतले पाहिजे हा मुळ उद्देश ठेवून लेखक कवी लिहू लागल्याचे म्हणता येते. आत्मसन्मानाची आदिवासींनी आपली संस्कृती जपली पाहिजे ही माफक आपेक्षा साहित्यीकाची असल्याचे देखील स्पष्ट होते.

## संदर्भ ग्रंथ –

१. मसराम ऋषी, हाकारा एप्रिल- जून १९८३ पृ. १९.
२. गारे गोविंद, सातपुडयातील भिल्ल, कॉन्टिनेन्टल प्रकाशन, पुणे, पृ.२६९.
३. उनि. मसराम हाकारा. पृ. २०.
४. तुमराम विनायक, 'आदिवासी साहित्य: दिशा आणि दर्शन' स्वरूप प्रकाशन, औरंगाबाद प्र. आ. २०१२ पृ. ५.
५. तुमराम विनायक, 'आदिवासी सांस्कृतिक जीवनाची घडण', आदिवासी संशोधन पत्रिका- खंड ६, क्र. १ बी, मार्च १९८४, पृ. ३४.
६. जोहरापूरकर हेमलता 'धरतीअबा: जनचेतनेचे विद्रोही रूप', 'एका आदिवासी वीराची कर्तृत्वशोध' दै. देशोन्नती, नागपूर, दिनांक २ डिसेबर १९९९.
७. निंबाळकर वामन, मनोहर यशवंत, संपा. 'दलतांचे विद्रोही वाङ्मय' नागपूर, प्र.आ. १९८१, पृ. ९.
८. तुमराम विनायक, 'वैदर्भीय आदिवासी लेखक', स्मरणिका – ३६ वे विदर्भ साहित्य संमेलन, अहेरी, २० ऑक्टोबर १९८४, पृ. ३१.

# 'ज्याचा त्याचा प्रश्न'मधील स्त्रीवादी दृष्टिकोन

**डॉ. लता पां. मोरे,**
प्रमुख, मराठी विभाग.
राजर्षी शाहू कला व वाणिज्य महा. रुकडी.
ता. हातकणंगले जि. कोल्हापूर
ईमेल :- latapmore18@gmail.com

स्त्रीवाद ही १९६० नंतरच्या काळातील विचारप्रणाली आहे. ही विचारप्रणाली स्त्री-पुरुष समानतेचा आग्रह धरते तसेच या संदर्भातील पारंपरिक रूढ संकेत नाकारते, स्त्रीचा माणूस म्हणून विचारकरते.

'ज्याचा त्याचा प्रश्न' या कथासंग्रहामधील कथा मध्यमवर्गीय, उच्चमध्यमवर्गीय समाजातील कौटुंबिक जीवन व्यक्त करणाऱ्या आहेत. या निबंधामध्ये स्त्रीवादी दृष्टीकोन व्यक्त होत असलेल्या कथांचा अभ्यास केला आहे.

या कथासंग्रहातील 'आंघोळ', 'नवा गडी', नकटीच्या लग्नाला', या कथा स्त्रीवादी जाणीवा व्यक्त करणाऱ्या आहेत. या कथामधील नायिका माणूस म्हणून स्वतंत्रपणे आणि स्वाभिमानाने जगू इच्छितात. पुरुषी वर्चस्वाचा त्यांना तिटकारा आहे. पुरुषी छत्र छायेपेक्षा त्या एकाकी जीवन पसंत करतात. बाईपणाच्या नावाखाली मिळणाऱ्या दुय्यमपणाच्या वागणूकीविरुद्ध त्या बंड पुकारतात. म्हणूनच या नायिका स्त्रीवादी विचारसरणीच्या आहेत.

**प्रस्तावना :**

स्त्रीवाद ही १९६० नंतरच्या काळातील एक विचारप्रणाली आहे.१९७० नंतर या वादाने ठसठशीत रूप धारण केले आणि या प्रवाहाने सर्व जगाचे लक्ष्य वेधून घेतले. जीवनाच्या प्रत्येक क्षेत्रात स्त्रीला स्वतंत्र स्थान मिळाले पाहिजे यासाठी स्त्रीवादी विचारवंतानी लढा दिला. यासाठी भाषण, सभा, बैठका, मोर्चे, धरणे, निवेदने याबरोबरच चर्चासत्रे, कार्यशाळा, इ. माध्यमातून स्त्रियांना जागृत करण्याचे अनेक प्रयत्न झाले. शिक्षण आणि चळवळी यामुळे स्त्रियांचा आत्मविश्वास जागृत झाला. आपल्यावरील बंधनाची त्यांना जाणीव झाली. त्यामुळे त्यांनी स्वतःचे अनुभव आणि स्त्रियांचे प्रश्न साहित्यातून मांडायला सुरुवात केली. स्त्रीवादी चळवळ ही स्त्रियांसाठी चालवलेली चळवळ नसून तो मानव मुक्तीच्या चळवळीतील एक प्रवाह आहे. पाश्चात्य देशातील चळवळीच्या मानाने भारतात ही चळवळ खूप मागे आहे.

प्रारंभीच्या काळात स्त्रीसत्तेचा पुरस्कार म्हणजे स्त्रीवाद, बिन लग्नाचे राहून स्वैराचाराला मुभा देणे म्हणजे स्त्रीवाद, स्त्रियांनी निर्मिलेल्या वाङ्मयाची समीक्षा म्हणजे स्त्रीवाद अशा अनेक समजुती प्रचलित होत्या. सुरुवातीच्या काळातील हा अर्धवट अभ्यास आणि गैर समजुती तसेच स्त्रीवाद्यांतर्गत असणारा गोंधळ मागे पडून आता त्याची जागा डोळसतेने घेतली आहे. सध्या स्त्रीवाद ही एक जिवंत सामाजिक प्रक्रिया आहे हे स्पष्ट होत आहे.स्त्रीवाद ही स्त्रियांच्या जीवनाविषयी समाजापुढे निर्माण झालेल्या प्रश्नांची चर्चा करणारी विचारप्रणाली आहे. पितृसत्ता आणि लिंगवाद यांच्याशी पुकारलेल्या लढ्यातून स्त्रीवादी विचारसरणी निर्माण झाली.

**स्त्रीवादी विचारप्रणालीचे स्वरूप :** प्रस्थापित समाजामध्ये स्त्रियांबाबत शोषणाच्या प्रवृत्ती पुरुषी आक्रमकतेतून निर्माण झाल्या आहेत.अशा प्रवृत्तींना रोखणे, त्याना छेद देणे स्त्रीवादामध्ये अपेक्षिले आहे. या विचारप्रणालीमध्ये स्त्रीची पारंपरिक व्याख्या व स्वरूप बदलते. स्त्री म्हणजे अबला म्हणून तिने लाजावे, गोड बोलावे, सहन करावे, चूल-मूल यातच समाधान मानावे हे नाकारते. ही विचारप्रणाली स्त्री-पुरुष समानतेचा आग्रह धरते तसेच या संदर्भातील पारंपरिक रूढ संकेत नाकारते, स्त्रीचा माणूस म्हणून विचार करते. त्यामुळे तिच्यावर लादलेले बाईपण, मादीपण नाकरते. ही विचारसरणी स्त्रियांचा विकास साधते, स्वत्व संपादनासाठी प्रवृत्त करते. पण पुरुषांपासून फारकत घेऊन स्वत:चा सवता सुभा निर्माण करत नाही.

**स्त्रीवादी समीक्षा :** कोणतेही साहित्य केवळ स्त्रीने लिहिले आहे म्हणून ते स्त्रीवादी होत नाही. तसेच स्त्रीचा म्हणून खास अनुभव वर्णन केला आहे म्हणून ते स्त्रीवादी होत नाही. तर जाणीव जागृती, आत्मशोध, स्वअस्तित्वाचा शोध हा स्त्रीवादी समीक्षेचा मूळ आधार आहे. स्त्रीवादी समीक्षेसाठी केवळ स्त्रियांचे लेखनच अभ्यासले जात नसून पुरुषांच्या साहित्याचाही स्त्रीवादी दृष्टिकोनातून अभ्यास होऊ शकतो, केला जातो. पुरुषी मूल्य दृष्टीतून स्त्रीची प्रतिमा कशीरेखाटली आहे याचाही अभ्यास या समीक्षेमध्ये केला जातो.

स्त्रीवादी समीक्षा म्हणजे केवळ स्त्रीकेंद्री साहित्याची समीक्षा नसते कारण ही समीक्षा लिंग भेद नाकारणारी आहे. पुरुष सत्ताक कुटुंब पद्धतीतून जी बायकी आणि पुरुषी अशी विशेषणे आली आहेत ती विशेषणे ही समीक्षा नाकारते. कारण ही विशेषणे शरीर भेदानुसार नसतात. त्याला संस्कृतीने दिलेले काही अर्थही असतात. सिमॉन द बोव्हा म्हणतात त्याप्रमाणे 'कोणी बाई म्हणून जन्माला येत नाही तर तिला बाई बनवले जाते.' समाजात लिंग वैशिष्ठ्यामुळे व्यक्तीवर बाईपणाच्या कल्पना लादल्या जातात. उदा. बाई म्हणजे दुर्बल, अबला, चंचल, भित्री, नम्र, दयाळू,इ. आणि पुरुष म्हणजे पराक्रमी, बलदंड, बुद्धिमान, धीट, रांगडा, धसमुसळा, इ. हे सर्व भेद स्त्रीवादी समीक्षा नाकारते. स्त्रियांच्या सामाजिक शोषणाच्या सर्व बाजू स्त्रीवादाने स्पष्ट केल्या आणि त्यांना नकार दिला. स्त्रीवादी समीक्षेचे ध्येय स्पष्ट करताना डॉ. वंदना महाजन म्हणतात, "साहित्य, भाषा आणि समीक्षा यातील पुरुषी वर्चस्ववादाचा दुय्यम दृष्टीकोन स्पष्ट करणे आणि समतामय साहित्यप्रणालीच्या दिशेने वाटचाल करणे हे स्त्रीवादी समीक्षेचे ध्येय आहे." (स्त्रीवाद आणि मराठी साहित्य, पृ. क्र. ३५)

**स्त्रीवादी साहित्य समीक्षा :** स्त्रीवादी साहित्य समीक्षा साहित्यातील स्त्रीवादी जाणिवांचा शोध घेणारी समीक्षा पद्धती आहे. ही पद्धती धर्म, संस्कृती, समाजकारण, राजकारणापासून साहित्य पर्यंत प्रत्येक ठिकाणी स्त्रियांवर झालेल्या अन्याय, अत्याचाराची मीमांसा करते. या विषयी विद्युत भागवत म्हणतात, "स्त्रीवाद ही समाज परिवर्तन घडवू पाहणारी राजकीय जाणीव आहे......स्त्रीवादी जाणीव ज्ञानाच्या प्रत्येक क्षेत्राशी संलग्न विचार व कृती करण्याचा प्रयत्न करते." (मराठी वाड.मय कोश, खंड-४ संपा. विजया राजाध्यक्ष, पृ. क्र. ४११)

स्त्रियांच्या प्रश्नाविषयी अनेक लेखक आणि समाज सुधारक यांनीही खूप मोठे योगदान दिले हेही इथे नमूद करणे आवश्यक आहे. यातूनच स्त्रीवादी साहित्याची निर्मिती होऊ लागली. स्त्रीवादी लेखनाविषयी डॉ. अश्विनी धोंगडे म्हणतात, "जाणीव जागृती हा या चळवळींचा मुख्य आधार असल्याने अशा खास अनुभवांना आविष्कृत करणारे साहित्य हे स्त्रीवादी साहित्य होय." (स्त्रीवादी समीक्षा : स्वरूप आणि उपयोजन, पृ. ४४) प्रस्तुत निबंधामध्ये प्रिया तेंडूलकर यांच्या 'ज्याचा त्याचा प्रश्न' या कथासंग्रहाचा स्त्रीवादी दृष्टिकोनातून अभ्यास केला आहे.

**लेखक परिचय** : प्रिया तेंडूलकर यांनी आपल्या लहानशा आयुष्यात रंगभूमी, चित्रपट, दूरदर्शन, पंचतारांकित हॉटेलमध्ये वेट्रेस, एअर लाईन्समध्ये हवाई सुंदरी, मॉडेलिंग अशा अनेक क्षेत्रामध्ये नोकरी-व्यवसाय केले. त्यामुळे त्यांचे अनुभव विश्‍व समृध्द बनले होते. या क्षेत्रात काम करताना त्यांना जे जग पहायला आणि अनुभवायला मिळाले ते त्यांनी लेखनातून मांडले. 'ज्याचा त्याचा प्रश्न' (१९८७) हा त्यांचा पहिला कथासंग्रह असून त्यातील कथा प्रामुख्याने स्त्रीकेंद्री आहेत. स्त्रियांच्या दु:खाचे, समस्यांचे अनेक पदर या कथामधून प्रभावीपणे उलगडले आहेत. या कथा सामाजिक, सांस्कृतिक जीवनाशी निगडीत असून समकालीन वास्तवाचा वेध घेणाऱ्या आहेत. या कथांद्वारे लेखिकेने स्त्रीजीवनातील विविध प्रश्नाकडे लक्ष वेधले आहे. हा कथासंग्रह भारतामध्ये स्त्रीवादी विचारसरणी रुजत असतानाच्या काळातील आहे.

**अभ्यासाचे स्वरूप व मर्यादा** : 'ज्याचा त्याचा प्रश्न' या कथासंग्रहामधील कथा मध्यमवर्गीय, उच्चमध्यम वर्गीय समाजातील कौटुंबिक जीवन व्यक्त करणाऱ्या आहेत. या कथांमध्ये विवाह संस्थेमधून येणारे अनुभव, घटस्फोटीत आणि प्रौढ कुमारिकांच्या जीवनातील अनुभव, तारुण्यावस्थेत प्रेमाच्या जाळ्यात फसलेल्या स्त्रियांचे अनुभव, नोकरी-व्यवसाय करणाऱ्या स्त्रियांचे अनुभव व्यक्त झाले आहेत. पण या निबंधामध्ये स्त्रीवादी दृष्टीकोन व्यक्त होत असलेल्या कथांचा अभ्यास केला आहे.

**'आंघोळ'** या कथेची नायिका निर्मला वडिलांच्या अकाली मृत्यूनंतर कुटुंबाला आर्थिक स्थैर्य देण्यासाठी ॲडव्हरटायजिंगचा व्यवसाय सुरु करते. आपल्या इच्छा- आकांक्षा, हौस-मौज बाजूला ठेऊन लहान बहीण- भावांचे शिक्षण पूर्ण करते. त्यांना स्वत:च्या पायावर उभे करून त्यांचे वैवाहिक जीवनसुद्धा मार्गी लावते.

ॲडव्हरटायजिंगच्या व्यवसायात स्वत:ला झोकून देताना निर्मलाच्या मनात या उद्योगाचा हव्यास वाढतो. यामुळे तिचा पहिला प्रियकर तिला सोडून जातो. त्यानंतर अजय हा दुसरा प्रियकर तिच्या जीवनात येतो. पण तोही तिला विवाह करायचा असेलतर व्यवसाय सोडण्याची अट घालतो. तेंव्हा तिला अजयच्या मनातील पत्नीबद्दलच्या पारंपरिक विचारांची कल्पना येते.एरवी "तू गाडी चालवताना पुरुषी दिसतेस " असे म्हणणारा अजय जेंव्हा "लग्न झाल्यानंतर तिने ग्रेसफुली गाडी चालवत न्यायला यावे."अशी अपेक्षा करतो तेंव्हा त्याच्या रोमँटिक चेहऱ्यामागील पुरुषीवृत्ती तिला जाणवते.लग्नाआधी व्यवसाय बंद करण्यासाठी ती थोडा अवधी मागते तेंव्हाही तो तिला नकार देतो. तेंव्हा निर्मला त्याला " तू माझ्या ठिकाणी असतास तर काय केले असतास?" असा रोकडा प्रश्न करते. या प्रश्नामुळे अजयमधील पुरुषी अहंकार जागा झाल्याचे लक्षात येताच ती त्याला स्पष्ट नकार देते आणि पुरुषाशिवाय जगता येणाऱ्या आयुष्याचा स्वीकार करते. या कथेतून पुरुषीवृत्ती मधील पारंपरिक बंधने झुगारून देणारी, आपल्या व्यक्तीस्वातंत्र्यावर बंधने आणणाऱ्या जोडीदाराचा त्याग करणारी खंबीर नायिका दिसते.

**'नवागडी'** या कथेतील मनीषा घटस्फोटीत स्त्री आहे. तिने असिफ शेखशी प्रेमविवाह केला होता. परंतु तिला त्याच्याशी आणि त्याच्या घरच्यांशी जुळवून घेता आले नाही. त्यामुळे दीपक हा छोटा मुलगा पदरात असतानाही तिने घटस्फोट घेतला. त्यानंतर तिने स्वत:चा स्पेअरपार्टचा व्यवसाय सुरु केला. नंतर तिची सुरेश नावाच्या तरुणाशी तिची मैत्री झाली. तो तिला विवाह करण्याची इच्छा व्यक्त करतो. त्याच्या घरच्यानाही ती तिच्या मुलासह पसंत असते. परंतु आपल्या हट्टी आणि हेकेखोर स्वभावामुळे आपले त्याच्याशी फार काळ पटणार नाही अशी तिला शंका येते. सर्व बाबतीत तडजोड करणाऱ्या सुरेशची आपण फसवणूक करत आहोत असे वाटत

असतानाच तिला सुरेशचा स्त्रियांबद्दलचा पारंपरिक, दुय्यम दृष्टीकोन लक्षात आल्यानंतर भविष्यात आपल्याला या विचाराबरोबर जमवून घेता येणार नाही अशी खात्री पटते. म्हणूनच सुरेशसोबतची मैत्री लग्नापर्यंत जाऊ न देता ती तिथेच थांबवते आणि त्याला लग्नासाठी ठाम नकार देते. थोडक्यात नव्या गड्याबरोबर नवा डाव मांडण्यापेक्षा स्वतंत्रपणे जगण्याचा निर्णय घेणारी, स्वत:चा व आपल्या मुलाचा भार इतरावर टाकून उपकाराचे ओझे घेऊन न जगता स्वाभिमानाने जगू इच्छिणारी नायिका येथे दिसते.

**'नकटीच्या लग्नाला'** या कथेतील चंदा हवाई परिचारिका आहे. मध्यम वर्गीय कुटुंबातील ही तरुणी घराची जबाबदारी उचलण्यासाठी नोकरी करते. स्वत:ची हौस-मौज बाजूला ठेऊन घरी पैसे पाठविते. आपली मध्यमवर्गीय परिस्थिती मित्र मंडळींपासून लपवते. लोकांना ती आपण हवाई परिचारिका ऐवजी टुरिस्ट आहोत असे सांगते. घरातील मध्यमवर्गीय संस्कृती आणि नोकरीमधील इंटरनॅशनल संस्कृती या दोन्ही पातळ्यावर जगताना तिची मानसिक ओढाताण होते. त्यामुळेच तिचा होणारा नवरा निरंजन तिला या नोकरीत ती स्कीझोफ्रेनिक (छिन्नमनस्क) होत आहे असा निष्कर्ष काढतो. इंग्लंडमध्ये तिची रॉबर्ट नावाच्या तरुणाशी मैत्री होते. त्याच्याशी प्रेमसंबंध निर्माण होतात. पण ॲनाच्या घरी ॲना आणि रॉबर्ट यांचे संबंध, लगट ती पहाते तेंव्हा रॉबर्टच्या प्रेमाचा त्याग करते. एकूणच जगाच्या पाठीवर कुठेही गेले तरी पुरुषांचा स्त्रियांकडे बघण्याचा दृष्टीकोन भोगवादी आहे हे चंदाच्या लक्षात येते. निरंजनची पारंपरिक पुरुषी विचारसरणी खटकल्यामुळे त्याच्याशी ठरलेले लग्न ती सतत पुढे ढकलते. तिला बंधनात ठेवू इच्छिणारा निरंजन साठे नको आहे त्याबरोबरच अतिरिक्त स्वातंत्र्य उपभोगणारा रॉबर्टही नको आहे.तिला तिच्या व्यक्ती स्वातंत्र्याचा आदर करणारा प्रियकर हवा आहे.

**'इडियट बॉक्स'** मधील नायिका सुमाबाई पतीची आज्ञा, निष्ठा यात स्वत:ला बांधून घेणारी आहे. पण त्यांची सून नयन मात्र स्वतंत्र विचारांची आहे. कारण नवऱ्याच्या दारू पिण्याचा तिला मनस्ताप करावा वाटत नाही. नवऱ्याची जेवणासाठी वाट बघावी असे तिला वाटत नाही. तसेच मुलांचे पालन-पोषण करणे ही जबाबदारी एकट्या स्त्रीची आहे असे तिला वाटत नाही.

**'लग्न'** या कथेतील अनिता केळकर उच्चविद्याविभूषित असून परदेशात राहणारी तरुणी आहे. तिचा विवाह उद्योगपती जयरामशी झाला आहे. तो व त्याची आई पारंपरिक विचारसरणीचे आहेत. ते पूजा-अर्चा, सोवळे-ओवळे यांचे स्तोम माजविणारे आहेत. अनिताच्या सासूने तर सुंदर व सुशिक्षित अनिताचे खेडवळ, अजागळ तरुणीत रुपांतर केले. आपल्या मनाविरुद्ध घडणाऱ्या गोष्टींचा तिला संताप येतो. त्यामुळेच या विरुद्ध बंड करावे असे तिला वाटते. म्हणूनच संध्याकाळी मिठीत घेणाऱ्या नवऱ्याला ती ढकलून देते. पण हे तेवढ्यापुरतेच मर्यादित रहाते .

**'स्वारी फॉर लास्ट नाईट'** या कथेतील सुमा अगतिक आणि असहाय संसारी स्त्री आहे. लग्नापूर्वी चारित्र्य जपत तिने हवाई सुंदरीचे काम करून आपल्या गरीब बापाला आर्थिक हातभार लावला. पण सुमाने लग्न केल्यामुळे माहेरचा आर्थिक आधार नाहीसा झाला. त्यामुळे माहेरचे लोक तुटले. तर सासरी प्रेमविवाह केलेल्या सुनेचा नवऱ्याकडून होणारा छळ सासू - सासरे उघड्या डोळ्यांनी निवांत पहातात. चुकीचे वागणाऱ्या आपल्या मुलाला ते काहीच बोलत नाहीत. जीवनातील सर्व संकटाना एकटीला सामोरे जावे लागत असल्यामुळे सुमाच्या मनात बंडाची भावना निर्माण होते. त्यामुळे उच्च शिक्षित आणि लग्नापूर्वी स्वावलंबी असलेल्या पण लग्नानंतर

परावलंबी बनलेल्या सुमाला कोणाकडूनही आधार नसल्यामुळे हे सर्व सहन करावे लागते.परंतु येथे सुमाच्या ठिकाणी हे सर्व सोडून देऊन एकटीने जगण्याची उमेद नाही. त्यामुळे तिच्या वाट्याला सोन्याच्या पिंजऱ्यातील पक्षाप्रमाणे दु:ख आले आहे.

**'लग्न'** कथेतील अनिता आणि 'स्वारी फॉर लास्ट नाईट' मधील सुमा यादोघी नायिका स्वतःवरील अन्यायाची जाणीव झालेल्या आहेत. पण अन्यायाविरुध्द बंड करण्याची त्यांची ताकद कमी पडते. म्हणून या दोघी नायिका स्त्रीवादी विचारसरणीतील नाहीत. पण अशा निषेध नोंदविण्याच्या क्रियेविषयी डॉ. शोभा नाईक म्हणतात, "स्त्रीवादामध्ये निषेध नोंदविणे ही कृती अर्थातच परिवर्तन ह्या उद्देशाने होते. यातून सांस्कृतिक व सामाजिक आणि पर्यायाने साहित्यिक भान व्यापक होत जाते." (भारतीय संदर्भातून स्त्रीवाद, स्त्रीवादी समीक्षा आणि उपयोजन,पृ.९)

या कथासंग्रहातील 'आंघोळ', 'नवा गडी', नकटीच्या लग्नाला', या कथा स्त्रीवादी जाणीवा व्यक्त करणाऱ्या आहेत. या कथामधील नायिका माणूस म्हणून स्वतंत्रपणे आणि स्वाभिमानाने जगू इच्छितात. पुरुषी वर्चस्वाचा त्यांना तिटकारा आहे. पुरुषी छत्र छायेपेक्षा त्या एकाकी जीवन जगणे पसंत करतात. बाईपणाच्या नावाखाली मिळणाऱ्या दुय्यमपणाच्या वागणूकीविरुद्ध त्या बंड पुकारतात. म्हणूनच या नायिका स्त्रीवादी विचारसरणीच्या आहेत.

**निष्कर्ष :**

१) स्त्रीवाद ही एक जिवंत सामाजिक प्रक्रिया आहे.
२) स्त्रीवादी विचारप्रणाली स्त्री-पुरुष समानतेचा आग्रह धरणारी आहे.
३) 'ज्याचा त्याचा प्रश्न' या कथासंग्रहातील कथा स्त्रीकेंद्री आहेत.
४) या कथा भारतात स्त्रीवादी विचारसरणी रुजत असतानाच्या काळातील आहेत.
५) या कथामधून स्त्रियांच्या दु;खाचे, समस्यांचे अनेक पदर उलगडले आहेत.
६) या कथा सामाजिक, सांस्कृतिक जीवनाशी निगडीत असून समकालीन वास्तवाचा वेध घेणाऱ्या आहेत.
७) या कथांद्वारे स्त्रीजीवनातील विविध प्रश्नाकडे लक्ष वेधले आहे.
८)) या नायिका व्यक्तिस्वातंत्र्याचा आदर करणाऱ्या आहेत.
९)) या नायिका पुरुषी मानसिकतेला नाकारणाऱ्या आहेत.
१०) या नायिका उच्च विद्याविभूषित, नोकरी- व्यवसाय करणाऱ्या आहेत.
११) या नायिका आपल्यावरील अन्यायाचा शोध घेणाऱ्या आणि त्याविरुद्ध बंड करून उठणाऱ्या आहेत
१२) या नायिका खंबीर आणि कर्तृत्ववान आहेत.
१३) या नायिका स्वावलंबी आणि स्वाभिमानी आहेत.
१४) या नायिका कुटुंबाला आर्थिक आधार देणाऱ्या आहेत.

संदर्भ :-

१) खांडगे मंदा आणि इतर (संपा.), 'स्त्री साहित्याचा मागोवा खंड-३' साहित्य प्रेमी भगिनी मंडळ, पुणे, २००२.
२) धोंगडे अश्विनी (डॉ.), 'स्त्रीवादी समीक्षा : स्वरूप आणि उपयोजन', दिलीपराज प्रका.,पुणे, ३री आ., २००९.
३) नाईक शोभा (डॉ.), भारतीय संदर्भातून स्त्रीवाद, स्त्रीवादी समीक्षा व उपयोजन', लोकवाङ्मय गृह, मुंबई, २००७.
४) पाटील शोभा (डॉ.), 'स्त्रीवादी विचार आणि समीक्षेचा मागोवा', स्नेहवर्धन प्रका. पुणे,२००७.
५) महाजन वंदना (डॉ.), स्त्रीवाद आणि मराठी साहित्य', विजय प्रका., नागपूर, २री आ., २०१५.
६) राजाध्यक्ष विजया, 'मराठी वाङ्मय कोश खंड- ४, महाराष्ट्र राज्य साहित्य व संस्कृती मंडळ, मुंबई, २००२.
७) कणेकर प्रतिभा, 'प्रिया तेंडूलकरांच्या कथेतील स्त्री-पुरुष संबंध', अनुष्ठुभ दिवाळी अंक,२००३.

# सामाजिक चळवळी आणि आदिवासी कविता

**प्रा.चिंतामण दुंदा धिंदळे**
रयत शिक्षण संस्थेचे,
राधाबाई काळे महिला महाविद्यालयात
जि. अहमदनगर
एरळश्र- cddhindale@gmail.com

---

**प्रास्ताविक**

महाराष्ट्रातील ख्रिस्ती मिशनरीतर्फे संस्थेचे शैक्षणिक व आरोग्यविषयक कार्य, ठाणे जिल्हयातील 'कल्याण' चर्च ऑफ ब्रेदेरेन मिशन' या अमेरिकन संस्थेतर्फे रेव्हरंड ॲडॅम एबी यांनी इ.स.१९०३ साली वारली आदिवासींकरीता दवाखाना उघडला होता. याच मिशनतर्फे शिक्षणाचे कार्य सुरू झाले. याशिवाय पुणे,नाशिक,धुळे,विदर्भातील चंद्रपूर, गडचिरोली या सर्व प्रादेशिक भूभागात ख्रिस्ती मिशनरींनी सेवाभावी वृत्तीनी आदिम जमातींची सामाजिक गरज लक्षात घेऊन त्यांच्या उत्थानाचे कार्य केले. या सर्व प्रक्रियेतून कळत-नकळत आदिवासी जागृतीची चळवळ अधिक विकसित होत गेली. एतदेशियांपैकी नामदार गोपाळ कृष्ण गोखले (भारत सेवक समाज) पू. ठक्करबाप्पा (भिल्ल सेवा मंडळ) पालघरचे वि.वा ऊर्फ बाबासाहेब दांडेकर, बोर्डीचे आचार्य भिसे (आदिवासी सेवा मंडळ, मुंबई) बाळासाहेब खेर, म. गांधीजींची समाजसेवेची प्रेरणा घेऊन काकासाहेब बर्वे, शंकरराव ठकार, दादासाहेब बिडकर, भाऊसाहेब हिरे, डॉ. ए. के. मोरे, कोंडू मारती बोकड (जून्नर) गोपाळराव कडू, ओंकार होळक्या पाडवी, मारोती महादेव केंगले, नागपूर विदर्भाकडील पंचमबाबू मडावी.

भारतीय संविधानाने भारतीय नागरिकांना जे संरक्षण आणि हक्क दिले ते सर्वसामान्य आदिवासीलाही प्राप्त झाले. विशेष म्हणजे आदिवासींची विशिष्ट परिस्थिती लक्षात घेता त्यांना संविधानाव्दारे विशेष संरक्षण व अधिकारही मिळाले. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर व पू. ठक्करबाप्पा यांच्यासारख्या द्रष्ट्या नेत्याचे हे ऋण आदिवासी कधीही उतराई होऊ शकणार नाही. आदिवासी जंगली आणि अशिक्षित, अडाणी आहेत. त्यांना सर्व हक्क व आधिकार प्रदान करावेत की नाहीत ? त्यांना त्यांचा वापर करता येईल का नाही ? असाही त्याकाळी एक विचार प्रवाह होता. परंतु थोर नेत्यांच्या प्रयत्नांमुळे हा विचार प्रवाह निर्माण झाला तिथेच संपला. परिणामता संविधानाव्दारे आदिवासींची शैक्षणिक, आर्थिक आणि सामाजिक मागासलेपणातून सोडवणूक करण्याचे सर्व थरावर प्रयत्न सुरू झाले. हे जरी खरे असले तरी आदिवासींचे जे जटिल प्रश्न होते, विशेषत: जमीन,जंगल,सावकारी शोषण त्यांची तातडीने सोडवणूक होण्यासारखी परिस्थिती निर्माण होऊ न शकल्याने देशभर आदिवासींनी चळवळी, लढे आणि संस्था संघटनांव्दारे जन आंदोलने सुरू केली. जंगल आणि जमिनीवरील हक्क प्रस्थापित करण्यासाठी व अन्याय, अत्याचार आणि शोषणा विरूध्द आवाज उठविण्यासाठी स्वातंत्र्यपूर्व काळात अनेक चळवळी आणि लढे उभे राहिले. या चळवळीचा इतिहास आणि त्यावर आधारीत ललित साहित्याची निर्मिती हा खरं म्हणजे आदिवासी साहित्याचा ठेवाच ठरेल. त्यात प्रामुख्याने बिरसा मुंडाची चळवळ, बिहारमधील ताना भगत चळवळ, बस्तरच्या आदिवासींचा लढा, तेलंगणातील आदिवासी लढा, गोंड आणि कोलामांचा आदिलाबादमधील लढा, कोयांचा लढा, ओरिसातील कोरापूटचा लढा, नागाचा लढा, मुंडा आदिवासींची सरदारी चळवळ,मनिपूरचा लढा,मुंबई राज्यातील वारली लढा, सावकार जमीनदारांविरूध्द लाल बावटयांची चळवळ, जुआंग रिबेल्ट, जोरिया नाईक रिहोल्ट, १९३७ सालचा जंगल सत्याग्रह, गुजरातमधील भगत मुव्हमेंट आणि आप की जय अस्तीत्ववादी चळवळ, संताळ परगण्यातील संताळी लढे, लुशाई टेकडयातील मिझोंच्या चळवळी, चणकापूरचे बंड इत्यादींचा प्रामुख्याने उल्लेख करता येईल. विसाव्या शतकाच्या पूर्वार्धात झालेल्या या चळवळी आणि लढयांनी आदिवासींचे प्रश्न सुटले असे नाही. परंतु स्वातं स्वातंत्र्यानंतरच्या पूर्वार्धात हया चळवळीचा शोषभाग आणि नव्याने चळवळी उभ्या राहिल्या. अनेक आंदोलने झाली. त्यात आदिवासींची अस्मिता, अस्तित्व आणि प्रादेशिक स्वातंत्र्यतेचे लढे आणि चळवळी अग्रस्थानी होत्या. याशिवाय अलीकडील काळात आदिवासी जमातीत जन्म घेऊन समाजसेवेचा वसा घेणारे अनेक समाजसेवक व कार्यकर्ते यांनी आदिम जमातींना शैक्षणिक सुविधा पुरविल्या आहेत. महाराष्ट्रातील शासन संस्थेनेही आदिवासी उपाय योजनेच्या माध्यमातून त्यांचा

जीवनस्तर उंचावण्याचा प्रयत्न केला आहे. याशिवाय महाराष्ट्रातील डाव्या विचारसरणीच्या आश्रयाखाली येऊन धुळे येथील कॉ. शरद पाटील यांच्या मार्गदर्शनाखाली नजूबाई गावीत व वाहरू सोनवणेसारखी प्रतिभावंत लेखक मंडळी उदयास आली आहेत. वरील सर्वांच्या अथक परिश्रमातून, समाजसेवेतून आदिवासी मुक्ती चळवळ आणि पर्यायाने आदिवासी कविता निर्माण झाली आहे.

मराठी साहित्यात १९६० नंतर दलित व ग्रामीण असे साहित्य प्रवाह निर्माण झाले. त्यांच्याकडून आदिवासींच्या खूप अपेक्षा होत्या परंतु ते साहित्य त्या पूर्ण करु शकले नाही. त्यामुळेच आदिवासींची आपला वेगळा प्रवाहा निर्माण करण्याच्या दृष्टीने पावूल उचलून १० व ११ नोव्हेंबर १९७९ साली प्रा. विनयाक तुमराम यांच्या पुढाकाराने व भराणी दुर्गावती' वाचनालयाच्या वतीने पहिले आदिवासी साहित्य संमेलन चंद्रपूर जिल्यात भद्रावती' या गावी भरविण्यात आले. व या निमित्ताने आदिवासी साहित्याचे स्वतंत्र दालन मराठी साहित्यात उघडले गेले. त्यानंतर दुसरे आदिवासी साहित्य संमेलन श्री राजाभाऊ राजगडकर यांच्या पुढाकाराने २३ मे १९८२ रोजी यवतमाळ जिल्हयात भवणी' या गावी घेण्यात आले. या साहित्य संमेलनाच्या उदघाटन प्रसंगी चळवळी विषयी शिवाजीराव मोघे म्हणतात की, ''निसर्गाशी समरस होऊन आदिवासी आनंदात राहतो. वाघाशी मुकाबला करताना भित नाही. पण शहरातील उच्चभ्रू अधिकाऱ्यांची त्याला भिती वाटते. शेकडो वर्षापासून जपलेला साहित्यसाठा रानावनात आहे. साहित्य संमेलनापासून प्रेरणा घेऊन त्यातील अनिष्ट ते काढून सोज्वळ व चांगले साहित्य प्रकाशात आले पाहिजे आदिवासी साहित्य चळवळ ही केवळ साहित्यापुरती मर्यादित नाही तर ती आदिवासींच्या सर्वांगीण विकासासाठी आहे. त्याव्दारे मार्गदर्शन मिळाले पाहिजे.''१ स्वातंत्र्यनंतरच्या काळातच आदिवासीतींच्या शैक्षणिक विकासाचा वेग खऱ्या अर्थाने वाढलेला दिसतो. शिक्षणाचे महत्त्व पटल्यावरुन म्हणा अथवा सामाजिक सर्वकष मदतीसाठी ज्या शिक्षणसंस्था उभारलया त्या संस्थातून म्हणा, अनेक आदिवासी कार्यकर्त्यांनी शिक्षणसंस्था उभारल्या. त्या संस्थांमधून शिक्षण घेऊन बाहेर पडलेले शेकडो आदिवासी तरुण उच्च पदांवर असलेले आज पाहावयास मिळतात. डॉ. विनायक तुमराम हयांनी १९७८ साली ग्रंथाल्याची चळवळ उभारुन भद्रावती, जिल्हा चंद्रपूर येथे भराणी दर्गावती वाचनालय' नावाचे पहिले वहिले वाचनालय सुरु केले. तर १९८१ साली भएकलव्य शिक्षण प्रसारक मंडळ' स्थापन केले. १९८५ साली तेलवार येथे भगवान पेरसापेन ग्रंथालय' स्थापन केले. महिलांसाठी १९८६ साली,आदिवासी महिला विकास ग्रंथालय'अशा अनेक संस्था स्थापन करण्यात आल्यामुळे आदिवासी तरुणवर्ग वाचन आणि लेखनाकडे वळल्याचे दिसून येतो. यानंतर पाच वर्षांनी ६ व ७ जून १९८७ साली तिसरे आदिवासी साहित्य संमेलन नांदेडजिल्हयात किनवट' या गावी श्री. राम भिराशे यांनी आयोजित केले होते. त्यानंतर चौथेआदिवासी साहित्य समेलन १९८९ यावर्षी आदिवासी साहित्यिकांचे दोन मेळावे गडचिरोली येथे डॉ. सुभाष सावरकर यांचे अध्यक्षतेखाली १८ व १९ फेब्रुवारी १९८९ रोजी भरविला होता. तर दुसरा मेळावा पांढरकवडा येथे ८ मे १९८९ रोजी आदिम' चे लेखक डॉ. भाऊ मांडकर यांचे अध्यक्षतेखाली संपन्न झाला. या दोन्ही मेळाव्यांचे अध्यक्ष बिगर आदिवासी साहित्यिक व अभ्यासक होते. दुसऱ्या मेळाव्याचे उदघाटकही डॉ. जयंतराव धावडे हे बिगर आदिवासी होते. त्यामुळे ६ व्या आदिवासी साहित्य संमेलनाच्या अध्यक्षीय भाषणात कवी भुंजग मेश्राम म्हणतात की, ''आपल्याला आपली वाट, आपली दिशा निश्चत करणे महत्त्वाचे आहे. आदिवासी साहित्य कृतीशील बनवून त्यास आत्मसन्मानाच्या चळवळीशी जोडणे आवश्यक आहे. आम्हांला आदिवासीच्या आत्मसन्माची चळवळ तीव्र करायची आहे. आदिवासी साहित्य हे तिचे अविभाज्य अंग आहे.''२ भुजंग मेश्राम यांनी जे मत व्यक्त केले आहे त्याचा परिणाम आदिवासी कवितेवर नक्कीच झालेला आहे. त्यामुळेच वाहरु सोनवणे' यांच्या स्टेज' नावाच्या कवितेतून मांडलेले आहे. ते लिहितात.

''आम्ही स्टेजवर गेलो नाही.
आणि आम्हाला बोलावलही नाही
बोटाच्या इशाऱ्याने
आमची पायरी आम्हाला दाखवून दिली
आम्ही तिथंच बसलो.....
ते आले नि स्टेजवर गेले
आमचेच दु:ख आम्हाला सांगत राहिले
आम्ही चुळबुळलो.....

गप्प रहा नाहीतर

ते आले न स्टेज घेऊन गेले ''३

कवी वाहरु सोनवणे हे स्वत: चळवळीतील कार्यकर्ते असल्यामूळे त्यांनी चळवळीचा विचार स्विकारुन मांडणी केलेली आहे. असे वरील कवितेतून दिसून येते.आदिवासी साहित्य संमेलनाची सुरुवात विदर्भापासून झाली. पहिली तीनही साहित्य संमेलने विदर्भ व मराठवाडयात झाली.चौथे आदिवासी साहित्य संमेलन मात्र खानदेशात झाले. पाचव्या आदिवासी साहित्य संमेलनाचा मोर्चा पश्चिम महाराष्ट्राकडे वळला. ठाणे जिल्हयात पालघर या तालुक्याच्या ठिकाणी पाचवे आदिवासी साहित्य संमेलन २३ ते २५ डिसेबर १९९० रोजी संपन्न झाले. या समेलनात आदिवासी साहित्यीक वाहरु सोनवणे हे अध्यक्ष होते. या समेलनाचा परीणाम होऊन अनेक आदिवासी कवी लिहू लागले. वाहरु सोनवणे यांचा गोधड' हा काव्यसंग्रह प्रकाशित झाला. त्याच बरोबर विनायक तुमराम यांचा गोंडवन पेटले आहे' हा काव्यसंग्रहप्रकाशित झाला भुंजग मेश्राम याचा उलगुलान' काव्यसंग्रह प्रकाशित झाला. त्याच बरोबर विविध नियतकालीकातून नवोदित आदिवासी कवी लिहू लागले. त्यामध्ये प्रभु राजगडकर, वामन शेळमाके, सोपान सुरकुले, मारुती कुळमेथे, उषाकिरण आत्राम, कुसुम आलाम, यासारख्या कवींचा समावेश होता. त्यानंतर ९ वे आदिवासी साहित्य समेलन ७ व ८ मे रोजी नागपूर येथे संपन्न झाले त्या साहित्य समेलनाच्या अध्यक्ष होत्या उषाकरिण आत्राम तर स्वागताध्यक्ष मधुकररावजी पिचड, होते. २०११ पर्यत झालेल्या आदिवासी साहित्य समेलनाचे अध्यक्ष हे आदिवासी कवी असल्यामुळे वरील अभ्यासातून दिसून येते. संजय लोहकरे व तुकाराम रोंगटे यांच्या मार्गदर्शनातून आदिवासी फडकी फाऊण्डेशन' च्या वतीने वेगवेगळी जिल्हास्तरीय साहित्य समेलने आयोजित करण्यात आली. त्यामुळेच सिता भोजने सारख्या कवयित्री आदिवासी समाज्याला आणि मराठी साहित्याला दिल्या आहेत. तर डॉ. तुकाराम रोंगटे व डॉ. राधाकृष्ण पेढेकर यांनी स्थापन केलेल्याआदिवासी विचारमंच' यांच्या आगळया वेगळया उपक्रमातून आदिवासी सामाजिक कार्यकत्यांना जीनगैरव पुरस्काराने संन्मानित करण्यात आले आहे. त्यामुळेआदिवासी समाजात जागृती होऊन अनेक कवी पुढे आलेले आहे. त्याच बरोबर फडकी' सारख्या मासिकातून अनेक कविनी आपले काव्यलेखन करुन समाजातील प्रश्न, चळवळीचे विचार मांडलेले आहे. त्यामूळेच साहित्य हे एकाव वेळी व्यक्तिनिष्ठ आणि समूहाचे कसे असते याविषयी चळवळीच्या अंगाने मांडणी करतांना काळूराम धोदडे म्हणतात. की, ''लोकसमूहाचं साहित्य हे त्यांच्या निर्मितीक्षमता, सर्जनशक्तिचं प्रतिक असते. एकाबाजूने ते अत्यंत वैयक्तिक, व्यक्तिनिष्ठ असते पण व्यक्त होतांना वस्तुनिष्ठ जाणीवांच्या आधारानेच जन्म घेते आणि हया संदर्भाची बंधनं तोडून वेगळया पातळीवर पोहचंत. साहित्य एकाच वेळेला संस्कृतीची जाणीव देते आणि त्याच वेळी ते संस्कृतीचा एक भाग असते. हया जाणीवांना जाग आणताना आपल्या सर्जनशीलता दुसऱ्या पर्यत पोहचवण्यासाठी ते अर्थाचा एक नविनच आकृतिबंध तयार करते. साहित्य लोकसमूहाने घडवलेले असते आणि लोकसमूहही साहित्याने घडतो.''४अन्यातूनच साहित्य निर्मिती कशी होते आणि त्याला आदिवासी साहित्य चळवळ अपवाद नसल्याचे सांगताना विनायक तुमराम म्हणतात. की, '' जेव्हा जेव्हा, विषमता कायम ठेवून शोषणचा पिंड उरीपोटी कवटाळून, मानवमुक्ति व साहित्यपीठ निर्माण करण्याचा ज्यांनी ज्यांनी प्रयत्न केला, तेव्हा तेव्हा त्यांनी त्यांनी अप्रत्यक्षपणे कोणत्या ना कोणत्या वर्गावर अन्यायच केला आहे, हे ध्यानात ठेवलं पाहिजे ! कोणतंही साहित्य हेसमाजवादी दृष्टीने वाटचाल करणारं हवं. अशा साहित्याचा धर्म विभू आणि शाश्वत असावा लागतो. तो सर्वजीवनस्पर्शीही असावा लागतो. पण आजच्या काळात तो तसा नाही. महाराष्ट्रात ज्या अनेक साहित्यिक चळवळी अस्तित्वात आल्या त्या सर्व चळवळींच्या उदयाला कारण म्हणजे मराठी साहित्यातील, मानवकेंद्री वृत्तीचा अभाव होय. तथापि सगळयाच चळवळीतून आदिवासी जीवन लुप्तच होत गेलं आहे; हा आरोप हया संदर्भात चूकीचा नाही. तेव्हा बदलत्या काळाला अनुलक्षून, आदिवासी म्हणून रानावनात जगणाऱ्या वंचितांना साहित्याच्या दालनात न्यायाचा वाटा मिळावा, हयाच भूमिकेतू आदिवासी साहित्यपीठ निर्माण करावं लागलं, मराठी साहित्याचा तोच तो पणा झुगारुन वादळी निर्णयाने पुढे आलेल्या दलित साहित्यासारख्या ज्या इतरही चळवळी महाराष्ट्रात निर्माण झाल्या, आदिवासी साहित्याची चळवळ ही त्यापैकीच एक होय.''५ पुढेते म्हणतात.''आदवासींच्या चळवळींना संघर्षाच्या विविध छटा आहेत. एकाच प्रकारच्या सामाजिक आणि राजकीय जाचातून त्यांचा विद्रोह जन्माला आलेला नाही. काही आदिवासी जमातींनी आत्मसन्मानाच्या चळवळी राबविल्या, काहींनी आपल्या धर्म- संस्कृतीवर होणारे परकीयांचे आक्रमण थोपविण्यासाठी उठाव केले, तर काहींनी शोषणाविरूध्द, विषमतेविरूध्द लढे उभारले. त्यावरून, आदिवासींच्या ध्येय - धोरणांचा व अस्मितेच्या दिशेने झेपावणाऱ्या त्यांच्या युध्दस्वी प्रवृत्तीचा

आपणास परिचय होतो. हे ऐतिहासिक वास्तव विसरून चालणार नाही.''६ असे मत आदिवासी अभ्यासक विनायक तुमराम नोंदवतात वरील अभ्यासकांच्या मताचा विचार करुन आदिवासी काव्यातून चळवळीचे सूर येतात. आदिवासींच्या शिक्षणातील समस्या मांडतानां, कधी तरी भरणाऱ्या शाळेचे वर्णन पुरुषोत्तम आगाशे' आपल्या कवितेत करतात.

''ऐसी इथली शाळा
नाही खडू नाही फळा
हवेशीर इथल्या भिंती
छपराला लागते गळती
पोर इथं शिकायला जाती
कधीतरी मास्तर आल्यावरती..''७

आदिवासींच्या समस्या कवितेतून मांडण्यामागील प्रेरणा हया चळवळीच्याच असल्याचे लक्षात येते. म्हणूनच कवितेतून आदिवासी कुपोषन, दारिद्रय, आरक्षण, स्त्रियांवरील अन्याय, अत्याचाराचे चित्रण कविनी केल्याचे पाहावयास मिळते. आदिवासी कविता हा आदिवासी हा आदिवासी जीवनाचा आरसाच आहे. कवितेतून आदिवासी कवींनी सूचकपणे यथार्थवादी दृष्टिकोनातून आदिम भावना मांडून नवआदवासी कवींनी एक दिशाव प्रेरणा देण्याचे काम केले आहे. आदिवासी कवींची कविता अस्सल आदिमत्व प्रकट करते व ती विविध भाषिक सौंदर्यांनी नटलेली आहे. आदिवासी साहित्याबरोबरच आदिवासी संस्कृतीचे जतन व संवर्धन आदिवासी चळवळीने आवश्यक आहे. त्यासाठी आदिवासी कविनी प्रयत्न केले आहे. आदिवासींच्या शोषण मुक्तीचा विचार आदिवासी चळवळीनी मांडलेला आहे. त्याचा परिणाम, प्रभाव कवितेवर असल्याचे दिसून येते. नवसमाज निर्माण करण्यासाठीचे सामर्थ्य आदिवासी साहित्य परिषद व आदिवासी चळवळीत प्राप्त झाले आहे. त्यामुळे नवोदीत आदिवासी कविच्या काव्यातून नवा विचार पुढे येतो आहे. आदिवासी समाजातील मुक्या भावंनाना व्यक्त स्वरुप देण्यासाठी चळवळीनी प्रयत्नं केले आहे. अशा प्रकारे आदिवासी चळवळी आणि कवितेचा सहसंबध असल्याचे दिसून येते.

आदिवासी साहित्याची निर्मिती ही स्वातंत्र्योत्तर काळातील आहे. त्याअगोदर आदिवासी साहित्य नव्हते, असे नाही. मात्र, मुळातच हा समाज आणि साहित्य स्वातंत्र्यापूर्वी आणि स्वातंत्र्यानंतरही मोठया प्रमाणात उपेक्षित राहिला आहे. अर्थातच जाणूनबुजून उपेक्षित ठेवले, हे या उपेक्षित राहण्यामागचे कारण आहे. १९७५ पासून आदिवासी साहित्य खऱ्याअर्थाने पावले टाकत आलेला पहावयास मिळतो. आदिवासींच्या धार्मिक व सामाजिक रूढी परंपरागत निसर्गपूजेतून निर्माण झाल्या आहेत. निसर्गातील जे जे निरनिराळे गूढ, अनाकलनीय ते सर्व पूजनीय असं ते मानतात. आकाशात चमकणारी वीज, चंद्र, सूर्य, प्रचंड वृक्ष, वाघ, सिंह, साप, विंचू अशा निसर्गनिर्मित सजीव-निर्जीव वस्तुंची आणि प्राण्यांची ते पुजा करतात, त्यांच्यात हिरवा, हिमाई, वनदेव, बडादेव, गावदेव, कणसरी, धरतरी, वाघदेव, वाघिया, चित्ता, डोंगरदेव अशा निसर्गातून झालेल्या देवतांचीही पूजा केली जाते. त्यामुळेवास्तविक 'आदिवासी साहित्य' हे खऱ्या अर्थाने. साहित्याचे मूळ आहे. त्याचा कर्ता कोण हे कोणाला सांगता येत नाही. वेदाचा कर्ता कोण हे कुठे सांगता येते कुणाला ?वेद ब्रहम्याच्या मुखातून प्रगट झाले असे सांगतात, म्हणून ते परिपूर्ण आहे असे मानले जाते. 'वेद वाक्य प्रमाण' असे मानण्याचा प्रघात जनमाणसांत त्यामुळेच रूढ झालेला आहे. आदिवासींच्या अभिजात जनसाहित्याच्या विशेषत: आदिवासींच्या लोककथा, लोकगीते, जानपदगीते, गुराखी गीते, देव-देवतांच्या, मनुष्य - प्राण्याच्या उत्पत्ती आणि मरण्याच्या कथा, जनव्यवहाराचे वाद संवाद, घात-प्रघात, बोलण्या-चालण्याचे अडाखे, म्हणी आणि वाक्प्रचार हा आदिवासी साहित्याचा आद्य प्रकार म्हणता येईल. त्यांचा उगम कुठे झाला, केव्हा झाला, त्याचा कर्ता कोण हे कुणाला सांगता येणार नाही. आदिवासी मात्र अनादी काळापासून या साहित्यावर जगाला आहे. अनादी काळापासून त्यांचे हे मौखिक साहित्य एका पिढीकडून दुसऱ्या पिढीकडे केवळ मौखिक परंपरेने चालत आलेले आहे. खरेतर त्यांचे हे साहित्य अक्षरवाड्मय आहे. परंतु आजचे आदिवासी साहित्यिक त्याला विसरून गेले आहेत. या निमित्ताने त्याची आठवण मी करून देऊ इच्छितो. या मौखिक वाड्मयाचा शोध घेण्याची, विकास करण्याची, त्यातील शब्द सौंदर्य, लालित्य, भावना प्रधानता, शृंगार, प्रेम आणि निसर्गाशी विलीन होण्याची व त्यात स्वत:ला विसरून जाण्याची किमया

साहित्य प्रेमींना सुस्पष्ट झाली पाहिजे आणि हे उत्तरदायित्व आजच्या आदिवासी साहित्य संमेलनाला जमणाया साहित्यिकांवरआहे.आदिवासी कवितेच्या प्रेरणा शोधतांना,निसर्ग हीच पहिली प्रेरणा असल्याचे सांगता येईल. प्रस्थापित भौतकदृष्ट्या प्रगत अशा संस्कृतीपासून अलिप्त असलेला, निसर्ग ज्याच्या जीवनाचा अविभाज्य भाग आहे, कृत्रिम, तथाकथित सुसंस्कृत वातावरणापासून दूर राहून स्वाभाविक नैसर्गिक जीवन व्यतीत करणारा आणि किमान प्राथमिक गरजांपासून वंचित ठेवण्यात आलेला जो आदिवासी समाज आहे त्या समाजातून जिद्दीने प्राप्त परिस्थितीशी संघर्ष करीत आदिवासींच्या व्यथा-वेदनांची दाहकता आदिवासी कविते तून मांडली आहे.

**समारोप-**

स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक चळवळीचा विचार केला असता. आदिवासी साहित्य प्रवाहाची सुरुवात ही आदिवासी कवितेनी झालेली आहे. नव्या जगाची नवीन अनुभवविश्वाची भर घातली गेली आहे. अन्याय, अत्याचार विरुध्द आवाज उठवला आहे. आदिवासी कला, संस्कृती, निसर्ग यांची ओळख येथील प्रस्थापित समाजाला करून देण्याचे काम कथा, कविता, कादंबरी आणि नियतकालिकांनी केले आहे. त्यामुळे मराठी साहित्य समृद्ध होण्यास नक्कीच मदत झाली आहे.

**संदर्भ आणि टिपा -**

१. वाल्हेकर ज्ञानेश्वर,आदिवासी साहित्य:एक अभ्यास, स्वरूप प्रकाशन औरंगाबाद. प्र.आ. २००९. पृ. २५.
२. वाल्हेकर ज्ञानेश्वर तत्रैव. पृ. २५.
३. सोनवणे वाहरु, गोधड, सुगावा प्रकाशन पुणे. प्र.आ. १९८७.
४.धोदडेकाळूराम,'आदिवासी साहित्याचा आदिवासी चळवळीशी समन्वय', हाकारा, जानेवारी- जून १९९१ पृ. ३९.
५. तुमराम विनायक, 'साहित्याचा युगप्रवास' हाकारा, जुलै-सप्टेबर १९८३. पृ. १७.
६.तुमराम विनायक, आदिवासी साहित्य : स्वरूप आणि संकल्पना स्वरूप प्रकाशन, औरंगाबाद प्र.आ. १५नोव्हेबर २०१२.पृ.५
७. आगाशे पुरुषोत्तम, 'हाकारा', जुलै-सप्टें. १९९५. पृ. १७.

# नव्वदोत्तर ग्रामीण कादंबरीतील बदलेली ग्रामीण मानसिकता

**डॉ. योगिता मारुती रांधवणे**
रयत शिक्षण संस्थेचे
राधाबाई काळे महिला महाविद्यालय, अहमदनगर
ईमेल- yogitarandhavane9@gmail.com

## प्रास्ताविक

ग्रामीण अर्थव्यवस्थेचा कणा असलेली शेती ही सुरुवातीपासूनच संकटात आहे. शेतकऱ्याचे वर्षाचे उत्पन्न आणि शेतीचा व जगण्याचा खर्च याचा ताळेबंद आजपर्यंत जुळलेला दिसत नाही. याशिवाय खाऊजा अर्थनीतीमुळे ग्रामीण शेतकऱ्यांच्या जीवनावर अनिष्ट परिणाम झाले आहेत.याचाच परिणाम मराठी ग्रामीण कादंबरीतून येणाऱ्या समकालीन शेतकरी जीवन चित्रणावर झालेले आहे. आत्महत्येच्या वाटेवर चालणारा शेतकरी, वांझोटया ठरलेल्या शेतकरी चळवळी, शहर खेडे यांच्यात रुंदावलेली दरी गावातील नवतरुणांत वाढत चाललेले शहराचे आकर्षण, यामुळे मोडत चाललेली ग्रामसंस्कृती, नात्यात येत असलेला फोलपणा स्वत:पुरते पाहण्याची वाढत चाललेली वृत्ती, प्रामाणिक माणसाची होणारी दमछाक, पैशाला आलेले देवपण हे सारे जागतिकीकरणाचे देणे असून त्याचा परिणाम ग्रामजीवनावर खूपच पडलेला आहे. या सर्व घडामोडीचा प्रभाव मराठी ग्रामीण कादंबरीवरही पडलेला असून त्याचे प्रतिबिंब या दशकातील कादंबरीत रेखाटले आहे.

## नव्वदोत्तरग्रामीण कांदबरी वाटचाल व वेगळेपण :-

भारतासारख्या कृषीप्रधान देशाने १९९१ मध्ये नवे आर्थिक धोरण स्वीकारले. त्याचा ग्रामीण साहित्यातील कथा, कविता, नाटक साहित्याप्रमाणे मराठी, ग्रामीण कादंबरीवरही जागतिकीकरणाचा प्रभाव पडलेला आहे. त्याचे कारण म्हणजे ग्रामीण लेखक ग्रामीण समाजजीवनात वावरत असताना त्यांना अलेले अनुभव, ग्रामीण संस्कृती, रूढी, परंपरा, ग्रामनिष्टा कृषिसंस्कृती, ग्रामीण माणसांचे राहणीकमान, त्याची केशभूषा, वेशभूषा, त्याचे सण-उत्सव खेडयाची रचना, व्यापार, उद्योग, रोजगार अशा विविधांगी घटकांचे ग्रामीण कादंबरीच्या माध्यमातून चित्रण केले आहे. मुक्त अर्थव्यवस्थेची स्वीकार व त्यामुळे जगाला आलेले एक मोठया खेडयाचे स्वरुप या शहरी आणि ग्रामीण माणसाच्या जगण्यात अमुलाग्र बदल झाले. शहरे बदलली तशी खेडीही बदलली याचे प्रतिबिंब तत्कालीन साहित्यात बरोबरच कांदबरीत पहावयास मिळते. १९९० नंतर रा.रं बोराडे, बाबाराव मुसळे, संदानंद देशमुख, अशोक कोळी, राजन गवस, रंगनाथ पठारे, विश्वास पाटील, किशोर सानप, पुरुषोत्तम बोरकर, प्रवीण दशरथ बांदेकर, जी. के. ऐनापुरे यांच्या ग्रामीण कादंबऱ्यातून खाजगीकरण, उदारीकरण आणि जागतिकीकरणाचे होणारे चांगले, वाईट परिणाम मांडण्यात आलेले आहेत. याशिवाय मराठी ग्रामीण कादंबरीकाराच्या कादंबऱ्यातून 'खाऊजा' अर्थनींतीचे आजतागायत चित्रण केले जात आहे. त्यामुळे जागतिकीकरण आणि मराठी ग्रामीण कादंबरीची वाटचाल आज २१ व्या शतकातही सुरुच आहे. सदानंद देशमुख यांच्या 'बारोमास ' या कादंबरीतील जागतिकीकरण संदर्भात प्रा. शेटकार रामशेट्टी असे म्हणतात की, "बारोमास या कादंबरीत जागतिकीकरणामुळे शेतकऱ्याच्या मुलाला म्हणजे एकनाथाला दु:खाचे जीवन जगावे लागत आहे. तो एम.ए . बी. एड प्रथम श्रेणीत उत्तीर्ण होऊनही त्याला नौकरी मिळत नाही. तो शेतीत काम करीत असल्यामुळे त्याची पत्नी त्याच्यासोबत राहत नाही. त्याच्या स्वप्नांच्या चुराडा होतो. 'बारोमास' या कादंबरीत मांडलेल्या एकनाथ या एका शेतकऱ्याच्या मुलाची कहाणी नसून संबंध देशातील शेतकरी मुलांची कहाणी आहे. प्रत्येक शेतकऱ्यांच्या नशिबी बेकारीचा प्रश्न 'आ' वासून उभा राहिलेला आहे. म्हणजेच, सर्वसामान्य शेतकरी हा आर्थिक विवंचनेत दिवस काढत आहे."[१]

शेतकऱ्याच्या मुलांची होणारी फरफट ग्रामीण कादंबरीतून चित्रित होताना दिसून येते.राजन गवस यांनी 'कळप' व 'तणकट' या कादंबरीतून शहर व गाव यातील नेमके अंतर प्रभाविपणे व्यक्त केले आहे. किशोर सानप यांच्या 'पांगुळवाडा' या कादंबरीतून खेडयातून शहराकडे जाणाऱ्या लोकांची मानसिकता, ग्रामीण जीवनाचे होणारे 'स्थित्यंतर' या कादंबरीत टिपले आहे. तर रमेश इंगळे यांनी 'निशाणी डावा अंगठा' २००५ या कादंबरीतून आजची बदलत चालेली ग्रामव्यवस्था, शाळा, दवाखाने याचे यथार्थ चित्रण केलेले आहे. तर प्रतिमा इंगोल यांची बुढाई, अप्पासाहेब खोत यांची गाव पांढरीच्या वाटेवरी, प्रशांत पोखरकर यांची गाव ढासळत आहे, भारत काळे यांची ऐसे कुणबी भूपाळ, प्रकाश देशपांडे यांची बारदान, कृष्णात खोत यांची रौंदाळा, अशोक कोळी - कुंधा, महेंद्र कदम- धुळपावल, कैलास दौंड – कापूस काळ, पांडुरंग कुंभार– गावकूस, पाणधुई, मोहन पाटील- साखरपेरा, हया कादंबऱ्या नव्वदोत्तरी ग्रामीण कादंबरीची वाटचाल सांगणाऱ्या आहेत.

**बदलेली ग्रामीण मानसिकता :-**

पारंपरिक ग्रामीण अर्थव्यवस्थेत ग्रामीण माणूस, ग्रामीण शेतकरी हा सुखी-समाधानी होता. परंतु जागतिकीकरणाने ग्रामीण पारंपरिक अर्थव्यवस्था बदलून नवी अर्थव्यवस्था वसत आहे. आज शेती करणे परवडण्याजोगी राहिली नाही. जागतिकीकरणामुळे सामान्य माणसाच्या हातात नवे तंत्रज्ञान आले. मोबाईलव्दारे घरात बसून शेतीतील मोटरपंप चालु किंवा बंद करता येईल, असे तंत्रज्ञान विकसित झाले. शिक्षणाच्या माध्यमातून नोकरी उद्योगात शिरकाव झाल्यामुळे खेडेगावातील नव्या पिढीचे राहणीमान बदलले. गावातील प्रत्येक घरावर टि. व्हि. डिश. लावलेल्या दिसू लागल्या, मॉल संस्कृती वाढीस लागली, प्रसारमाध्यमाच्या प्रसारामुळे जगात घडणारी प्रत्येक गोष्ट क्षणात सर्वत्र पसरु लागली. दुसरीकडे बहुराष्ट्रीय कंपन्यांच्या मुक्त संचारामुळे शेतकऱ्यांच्या शेतात पिकलेली फळे, भाजीपाला, धान्य हे कवडीमोल भावाने विकले जाऊ लागले. तोच माल आकर्षक पॅकिंगमध्ये या कंपन्या बाजारात आणून जास्त किंमतीत विकून मोठया होऊ लागल्या. नव्या तंत्रज्ञानाच्या आगमनासोबत अवर्षणासारख्या आपत्तीमुळे अपेक्षाभंगाचे दुःख वाढून कर्जाचे ओझे शेतकऱ्यांच्या मानगुटीवर वाढायला लागले. असह्य होणाऱ्या ताणाची परिणीती शेतकऱ्यांच्या आत्महत्येस होऊ लागली. "शेती नीट पिकत नसेल तर ती विकून टाकावी आणि त्या पैशात पोटापाण्यासाठी दुसरा उद्योगधंदा बघावा दुकान टाकावे किंवा पाण्याची व्यवस्था करुन बागाईत करावी अर्थात बागायती शेती करुन शेतीमालाला भाव मिळत नसेल तर मग सरळच विकून टाकावी. अशीही भयंकर मानसिकता ग्रामीण भागातील शेतकरी कुटुंबातून निर्माण झाली"[२] आधुनिकीकरण व जागतिकीकरणाची ही दुसरी बाजूही विचारात घ्यावी लागेल. या सर्वाचे दर्शन या कालखंडातील ग्रामीण कादंबरीतून घडत गेले. अशोक कोळी यांच्या 'पाडा' (२००६) सुरेंद्र पाटील यांच्या चिखलवाटा (२००७) अशा काही कादंबऱ्यातून हे नव्या यंत्राचे आधुनिकतेचे वारे आणि त्याच्या झंझावात वाहून जाणारा ग्रामीण समाज याचे चित्रण आलेले आहे.

**भ्रष्टाचाराचा भंयकर विळखा :-**

ग्रामीण भागात या कालखंडात भ्रष्ट व्यवस्थेचा शिरकाव होत गेला. शिक्षण संस्थामधून नवशिक्षतांची पिळवणूक होऊ लागली. साखर कारखाने, दुध संस्था, सहकारी सोसायटयां मध्ये मक्तेदारी वाढीस लागली. या संस्था आपल्याकडे टिकवून ठेवण्यासाठी राजकारण गलिच्छ थरावर पोहोचले पैशातून सत्ता व सत्तेतून पैसा असे नवे समीकरण उद्यास आले. गुंडाचा शिरकाव झाल्यामुळे राजकारणातील स्वच्छ चारित्र्याची माणसे बाजूला गेली. सामान्य माणूस या भ्रष्ट व्यवस्थेत भरडला गेला. शेती करणारे, व्यवसाय करणारे नोकरी करणारे असे सारेच या व्यवस्थेतील सत्तास्थानाचे गुलाम झाले. या सगळया परिस्थितीचा परिणाम म्हणजे शेतकऱ्यांची आर्थिक स्थिती कमालीची खालावली. त्यामुळे यांचे पडसात ग्रामीण कादंबरीवरती पडणे साहाजिक होते. शेतकऱ्याच्या आर्थिक परिस्थिती विषयी लिहिताना देशपांडे म्हणतात की, " ग्रामीण जनतेवरील म्हणजे मुख्यत्वे शेतकऱ्यांवरील कर्जाचे

ओझे वाढले. भारतातील बहुसंख्य शेतकऱ्यांना दारिद्रयामुळे विविध गरजा भागविण्यासाठी वेळोवेळी कर्ज काढावे लागले. मग त्या गरजा कृषीसंबधी असोत की अनुत्पादक स्वरुपाच्या (लग्न ,धार्मिक सणसभारंभ अथवा कार्य ) असोत कर्जाचा उपयोग उत्पादक कार्यासाठी करुनही त्यांची आर्थिक स्थिती विशेष न सुधारल्यामुळे कर्जाचा व त्यावरील व्याजाचा भार सतत वाढतच जाऊन ग्रामीण जनता ऋणग्रस्त होते."[३] तसेच राजकीय लोक स्वार्थासाठी समाजाची विभागणी गटागटात करतात. त्यामुळे सामान्य माणूस आपआपसात भांडत बसतो. देश स्वतंत्र होऊनही त्याच्या नशिबी पारतंत्र्यच आहे. "स्वातंत्र्यानंतरचा समतेचा लढा इथेच उभारला गेला. शेतकऱ्यांच्या हक्कासाठी संघर्ष घडले ते इथेच अमेरिकन मिशनंन इथ शैक्षणिक व सामाजिक सेवेचा आदर्श उभा केला. इथल्या सेवाभावी कार्यकर्त्यानी शिक्षण संस्थाचे जाळ गुफलं आणि खेडयापाडयापर्यत ज्ञानाचे पाझर पोहोचले"[४] आर्थिक दारिद्रय त्यातून व्यसनाधिनता आजार अशा समस्यांच्या गर्तेत ग्रामीण समाज ओढला गेला. सारी ग्रामव्यवस्थाच रसातळाला जाऊ लागल. एकविसाव्या शतकातील ग्रामीण कादंबरीत हेच चत्रित व्हायला लागले. व. बा. बोधे यांची 'पाननिवळी' (२००७ ) आणि सुरेशकुमार लोंढे यांची 'शाळा आणि माती' (२००७) अशा काही कादंबऱ्या याद्दष्टीने महत्त्वाच्या ठरतात.

**वाढती बेकारी :-**

ग्रामीण भागात शिक्षणाचा प्रसार वाढल्यामुळे नवीन पिढी शिक्षित झाली. शिक्षणाच्या काळात त्यांची शेतीकामाची सवय मोडते. पदवीधर झालेले हे तरुण शेतीकाम करीत नाही. दुसरीकडे एवढे शिक्षण घेतलेल्या या तरुणांना नोकऱ्या मिळत नाहीत. त्यांनी घेतलेले शिक्षण निकामी ठरते. शिकवण्यासाठी आई बापांनी केलेल्या खर्च वाया जातो. अनेकांनी शेती विकून कर्ज काढून मुलांना शिकवलेले असते. काहीनी कष्ट करुन मुलांना शिकवलेले असते. त्यांच्याही आशा फोल ठरतात. नवशिक्षितांची ही नवी पिढी सैरभैर झालेली आहे. मुले शिकली तरी नोकरी मिळत नसल्यामुळे बेकारी वाढते. काही शेतात काम करतात. उपवर मुलींचे बाप आपल्या मुलींचे लग्न अशा नोकरी नसलेल्या मुलांबरोबर करण्यास तयार होत नाहीत. लग्नासाठी नोकरी मिळणे महत्त्वाचे होऊ लागले आहे. सदानंद देशमुख यांच्या (बारोमास ) २००२ या कादंबरीत याचे चित्रण येते.

**समारोप :-**

शेतकऱ्याला बारा महिने शेतात राबावे लागते. श्रम हेच त्यांचे भांडवल असते व त्याचीच गुंतवणुक करावी लागते. नवी पिढी शिकल्यामुळे तिला हे श्रम नको वाटतात त्यातून आर्थिक समस्या निर्माण होतात व त्यांना आत्महत्येसारख्या वाईट मार्गाला जावे लागते. वाढता खर्च कमी उत्पन्न यामुळे ग्रामीण भागातील माणसाला संसाराचा भार सहन होत नाही. तो आत्महत्येकडे वळतो. आज नवनविन तंत्रज्ञान येत आहे परंतु त्यासाठी पैसा शिल्लक राहत नाही. निसर्गाची अवकृपा, अतिवृष्टी, दुष्काळ शेतमालाला भाव न मिळणे, वाढती महागाई यामुळे शेतकरी हवादिल झालेला दिसतो व या सर्व परिस्थितीचे वर्णन या कालंखडातील कादंबऱ्यातून आलेले आहे.

**संदर्भ ग्रंथ : -**

१. नाईकवाडे शेषराव, (संपा) 'जागतिकीकरण समकालीन बदलते संदर्भ', अलंकार प्रकाशन, उमरी, प्र. आ. २०१२ पृ. १६९.
२. पाटील मोहन, 'ग्रामीण साहित्य आणि संस्कृती' स्वरुप प्रकाशन, औरंगाबाद प्र. आ. २००२ पृ.८४.
३. देशपांडे स.ह, 'मराठी विश्वकोश', खंड ०५ वा (संपा) जोशी लक्ष्मणशास्त्री (प्रकाशन) म.रा.सा.सं.मंडळ मुबई १९७७ पृ. ३६१.
४. शेवते अरुण (संपा) ७० वे अखिल भारतीय मराठी साहित्य संमेलन, गडाख यशवंतराव व्दितीय आवृत्ती ०३ जानेवारी पृ. ७, ८.

# मराठी कादंबरीतील बदलते चित्रण (बनगरवाडी)

**प्रा. आशालता नारायण खोत**
मराठी विभाग
देवचंद कॉलेज, अर्जुननगर
ई-मेल: ashalatakhot@gmail.com

**प्रस्तावना -**

साहित्य आणि समाज यांचा अतूट असा संबंध असलेला आपल्याला दिसून येतो. साहित्याची निर्मिती ही समाजातच होत असते. माणूस हा समाजप्रिय प्राणी आहे. त्यामुळे समाजाशिवाय त्याचे अस्तित्व असूच शकत नाही. माणसाच्या सर्व भावना ह्या भोवतालच्या सामाजिक वातावरणातून निर्माण झालेल्या असतात. सामाजिक बदलांची नोंद साहित्यातून घेतलेली दिसून येते. सामाजिक प्रेरणेतूनच साहित्य निर्मिती होत असते. सामाजिक पर्यावरणातील विविध घटनांमुळेच साहित्य निर्मितीला चालना मिळत जाते. कारण लेखक, वाचक, समीक्षक हे सुद्धा समाजाचेच एक महत्वाचे घटक असतात. समाजात होणारे विविध बदल साहित्यातून चित्रित होऊ लागले. त्यामध्ये पूर, भूकंप, दुष्काळ यासारखी निसर्गनिर्मित संकटे आणि त्यातून उद्ध्वस्त झालेला समाज यांचेही वर्णन साहित्यातून होताना दिसते.

काळ बदलत गेला तसे सामाजिक पर्यावरणात बदल होऊ लागले. आणि हेच बदल साहित्यीकांनी साहित्यातून चित्रित केले. साहित्याच्या आशय, शैली, घाट, भाषा, रचना, निवेदनपद्धतीत बदल होत गेला. वाढत्या औद्योगिकरणामुळे खेडी उद्ध्वस्त होत आहेत. शहरे बकाल होत चालली आहेत. बदलत्या जीवनमानाचे, राहणीमानाचे स्वरूप,बदल विशेषतः १९६० नंतरच्या साहित्यातून येऊ लागले. कादंबरी या वाङ्मयप्रकारातून बदलती खेडी, निसर्ग, त्याचा लोकांच्या मनावर, जीवनावर झालेला परिणाम या सर्वांचे वर्णन होऊ लागले. त्यातूनच साहित्य आणि समाज यांचा अतूट असा असलेला संबंध दिसून येतो.

१९६० नंतरच्या काळात एकूण भारतीय जीवनात अनेकविध स्वरूपाचे बदल झाले. महानगरांचा अतिशय वेगाने विकास सुरु झाला आणि ग्रामीण जीवनात मात्र पडझड सुरु झाली. नव्या यंत्रयुगाने खेडयात प्रवेश केला. अनेक नव्या सोयी-सुविधा, सुधारणा ग्रामीण भागात आल्या आणि या सगळ्यांमुळे ग्रामीण भाग पूर्णतः ढवळून निघाला. औद्योगिकरणामुळे खेड्यातून शहराकडे ओघ सुरु झाला. खेडी ओस पडण्याची शक्यता निर्माण झाली. शहरे बकाल होऊ लागली. त्यातूनच शहरातील झोपडपट्टीचे प्रमाण वाढू लागले. नव्याने येणाऱ्या यंत्रसामुग्रीकडे कोणत्या दृष्टीने पहावे हा निराळाच

प्रश्न निर्माण झाला. ग्रामीण भागातही यंत्रसंस्कृतीचे आगमन होत आहे. आधुनिकीकरण आणि पारंपरिक जीवनसरणी यांच्यातील संघर्ष वाढत आहे.

**विषय विवेचन -**

स्वातंत्र्योत्तर काळात विकास आणि नियोजन हे शब्द परवलीचे झाले. विकास कोणाचा आणि कसा होतो याचा वेध कादंबरीकारांनी घेतलेला दिसतो. वास्तवतेकडे पाहण्याची सूक्ष्म दृष्टी, सामाजिक स्थितीचं व गतीचं योग्य ज्ञान, घटनांचं व प्रसंगांचं चित्रात्मक वर्णन कादंबरीतून आलेले दिसते. औद्योगिकरणामुळे खेड्यातून शहराकडे ओघ सुरु झाला. त्यामुळे खेडी ओस पडू लागले. शहरे बकाल होऊ लागली. शहरातील झोपडपट्टीचे प्रमाण वाढू लागले. ग्रामीण भागातही यंत्रसंस्कृतीचे आगमन झाले. आणि आधुनिकीकरण आणि पारंपरिक जीवनसरणी यांच्यातील संघर्ष वाढू लागला. जागतिकीकरणामुळे खेडी व्यापार उद्योगांशी जोडली जातात. परंतु त्याचा शेती उत्पादनावर परिणाम होऊ लागतो. पर्यायाने निसर्गावर विपरित परिणाम होऊ लागला. बदलत्या निसर्गाचा, निसर्गातील बदलांचा एकूणच परिणाम हा मानवी जीवनावर फार मोठया प्रमाणावर होत असतो. 'बनगरवाडी' मधून (१९५५) व्यंकटेश माडगूळकर यांनीही कादंबरीतून निसर्गातील बदलत्या घटकांमुळे गाव कसे उद्ध्वस्त झाले याचे वर्णन केले आहे.

'कृषिसंस्कृती' हा ग्रामीण संस्कृतीचा मूळ पाया आहे. त्यामुळेच ग्रामीण कथा, कादंबरीतून निसर्ग, पर्यावरण, विशिष्ट प्रदेशाचे चित्रण याचे वर्णन दिसून येते. 'बनगरवाडी' मध्ये लेखकांनी दुष्काळामुळे उजाड झालेले गाव, तिथली माणसं, त्या माणसांची जीवन जगण्यासाठी चाललेली धडपड, त्यांचा संघर्ष हा विषय प्रामुख्याने चित्रित केला आहे. लेखकांनी चित्रित केलेल्या या खेडयात शिक्षण, दळणवळण या सोई-सुविधा येऊन पोहोचल्या नाहीत. या गावातील वस्ती ही प्रामुख्याने धनगरांची वस्ती आहे. त्यामुळे 'मेंढरे पाळणे' हाच त्या गावातील लोकांचा प्रामुख्याने केला जाणारा व्यवसाय आहे. त्याचबरोबर थोडेफार शेतकरी शेती करूनही आपला उदरनिर्वाह करतात. पण इथली शेती हीदेखिल निसर्गावर अवलंबून आहे. त्यामुळेच निसर्गाच्या लहरीवर जगणारी आणि केवळ जगणे एवढेच उद्दिष्ट असणारी माणसे 'बनगरवाडी'मध्ये दिसून येतात.

'बनगरवाडी ' मध्ये व्यंकटेश माडगुळकर यांनी दुष्काळामुळे उजाड झालेले गाव, तिथली माणसं, त्यांची जीवन जगण्यासाठी चाललेली धडपड, संघर्ष चित्रित केलं आहे. शिक्षण, दळणवळण, बाहेरच्या जगाशी संबंध यांचा स्पर्शही या खेड्याला नाही. या गावात प्रामुख्याने धनगरांची वस्ती आहे. त्यामुळे अर्थातच मेंढरे पाळणे हाच त्यांचा प्रमुख व्यवसाय आहे. शेती करणारे थोडे शेतकरीही इथे दिसून येतात. पण निसर्गाच्या लहरीवर जगणारी आणि केवळ जगणे एवढेच उद्दिष्ट असणाऱ्या माणसांचे गाव हेच बनगरवाडीचे स्वरूप दिसते.

निसर्गक्रमामुळे गावात जे बदल होतील तेच गावाचे बदल होत. निसर्गचित्रण, व्यक्तीचित्रण, प्रदेशचित्रण या कादंबरीतून येते. ऐन पावसाळ्यात शेकूचा बैल निकामी होतो. त्यामुळे पेरणीच्या वेळी

शेकुची अडचण होते. अशा वेळी कामाचा खोळंबा होऊ नये म्हणून शेकुची बायकोच एका बैलाचे काम करते. बनगरवाडीतून येणारे पर्यावरणाचे चित्रण, निसर्गचित्रण हा बनगरवाडीच्या लोकांच्या जगण्याचा एक भागच असलेला दिसून येतो. पाऊसमान कमी, जमिनीची प्रत हलकी त्यामुळे केवळ जमिनीच्या मशागतीवर लोकांचा उदरनिर्वाह होणे अवघड असते. बनगरवाडीतील निसर्गाचा एकूणच मानवी जीवनावर फार मोठा परिणाम झालेला दिसून येतो.

निसर्गातील विविध रूपांचे दर्शन बनगरवाडीतून दिसून येते. त्या निसर्गावर अवलंबून असणाऱ्या धनगरांच्या जीवनातील चढ-उतार ह्या कादंबरीतून लेखकाने मांडले आहेत. पावसाअभावी निर्माण झालेली परिस्थिती, दुष्काळाचे सार्वजनिक दिसणारे परिणाम प्रभावीपणे रेखाटले आहे. तालीम, शाळा ओस पडत आहेत. पशु, पक्षी, प्राणी यांचे चारा, पाणी याअभावी प्राण जात आहेत. या सर्व परिस्थितीमुळे तिथले लोक त्रस्त झाले आहेत. त्या गावातील धनगर, रामोशी पोटासाठी गाव सोडून दूर निघून जातात. निसर्गातील झाडे-झुडपे, प्राणी, किटक यांचे अतिशय मार्मिक असे वर्णन लेखकांनी या कादंबरीतून केले आहे. सृष्टीचे अस्तित्व हे निसर्गात घडणाऱ्या बदलांवर अवलंबून असल्याचे बनगरवाडीतून दिसून येते.

'बनगरवाडी' मध्ये सामुहिक जीवनाचे विविधांगी चित्रण केले आहे. गावातील उजाड रान, निष्पर्ण सृष्टी, दुष्काळ तेथील सण, उत्सव, रूढी, परंपरा, तिथल्या लोकांच्या जीवनातील चढउतार ह्या सर्व गोष्टी सूक्ष्म बारकाईने मांडल्या आहेत. बनगरवाडीच्या परिसरात पडणारा दुष्काळ हाच ह्या कादंबरीतला नायक असलेला दिसून येतो. सुगीच्या काळातील त्या गावातील लोकांचे जगणे आणि दुष्काळ पडल्यानंतरची त्यांची झालेली वाताहत कादंबरीत दिसून येते. बनगरवाडीतील माणसे, त्यांचे पाळीव प्राणी, जीवनव्यवहार, परंपरा, समजुती, व्यवसाय, दारिद्र्य या सर्वच गोष्टीतून लेखकांनी विशिष्ट अशा प्रदेशाचे वर्णन केले आहे.

'बनगरवाडी'तील निसर्गाचा तिथल्या व्यक्तींवर परिणाम होताना दिसतो. काकूबा धनगर हा त्या निसर्गातीलच एक घटक होऊन जातो. त्याला मेंढीपालन करणे याशिवाय दुसरे कोणतेही काम येत नाही. परंतु तो मेंढीपालन करता-करता बसल्या जागीच झोप घेतो. मेंढराचे वंशज अचूक ओळखतो. हे कसब त्याला नैसर्गिकतेमुळेच लाभलेले आहे. म्हणूनच तो दुष्काळातही आपले गाव, वाडी सोडायला तयार होत नाही. कारण त्याला वाटते की ह्याच झाडाच्या सावलीत माझी गुरंढोरं, मुलं, माणसं बसतात. त्यामुळे तो झाड तोडायला तयार होत नाही. अशा पद्धतीची निसर्गावर प्रेम करणारी माणसे आपल्याला या कादंबरीतून दिसतात. बनगरवाडीवर निसर्गाची कृपा नसली तरीही जगण्यासाठी तिथल्या लोकांची धडपड चालू आहे. आणि त्यातूनच त्यांची सोशिक वृत्ती तयार झालेली दिसून येते. निसर्गावर अवलंबून असलेली माणसे इथे दिसून येतात.

पाऊस पडला नाही; त्यामुळे तिथल्या शेळ्या-मेंढ्यांना, गायी-वासरांना, जनावरांना काही खायला मिळत नाही. ती सर्व रोड होतात. माणसांच्या तोंडावरील कळाही नाहीसी होते. बनगरवाडीत मोकळ्या

माळावर उगवणारी खुरटी झुडपे,या झुडपांवर अवलंबून असलेल्या शेळ्या-मेंढरं यांचे अस्तित्व पावसाअभावी धोक्यात येते. एखादया वर्षी पाऊस पडला नाही तरीही तिथली लोकं सैरभैर होतात. कारण माणसांचे आणि मेंढरांचे पोत भरणे त्यामुळे अवघड होऊन जाते. दुष्काळामुळे त्यांना पोटभर खायला मिळत नाही. मेंढरांना अनेक प्रकारचे रोग होतात. त्यामध्ये काही मेंढरं मरून जातात. तिथले रामोशी दारू गाळतात. परंतु गिऱ्हाईक मिळत नाही, तसेच भुकेअभावी ते दारूची नाश करतात असा परिणाम दुष्काळामुळे झालेला दिसून येतो.

दुष्काळामुळे बनगरवाडीतील समाज अबोल होतो, खिन्न होतो. शेवटी पोट भरण्यासाठी त्यांना स्थलांतरीत व्हावे लागते. म्हणजेच पावसाचा प्रत्यक्ष आणि ताबडतोब झालेला परिणाम इथे दिसून येतो. बनगरवाडीत जर पाऊस असेल तरच तिथे आनंद आहे. अन्यथा तिथला समाज पावसाअभावी उद्ध्वस्त होताना दिसतो. बनगरवाडी हा प्रदेश दुष्काळ सोसणारा प्रदेश आहे. त्यामुळे त्यांच्या रूढी,परंपरा,समजूती,त्यांचे सांस्कृतिक जीवन हे निसर्गावरच अवलंबून असते. म्हणजेच जर पाऊस पडला,पिके चांगले आली तर ते आनंदाने उत्सव साजरा करतात, ढोल,लेझीम वाजवतात. सुगीनंतर निवांत वेळ मिळतो त्यावेळी ते त्यांचे कलात्मक जीवन आनंदाने जगतात. अशा पद्धतीने 'बनगरवाडी'मधून लेखकांनी तिथल्या लोकांचे जीवन निसर्गावर कसे अवलंबून असते, ह्याचे वर्णन केले आहे.

पाण्याची समस्या ही एखादया राज्याची,देशाची नव्हे तर समस्त जगाची समस्या बनत चालली आहे. भारतासारख्या चारच महिने पाऊस पडणाऱ्या देशात पाण्याच्या उपलब्धतेसाठी बऱ्याच आव्हानांचा सामना करावा लागतो. 'बनगरवाडी'मधूनही अशाच पद्धतीने पावसाअभावी लोकांना करावा लागणारा संघर्ष दिसून येतो. प्रदेशाचा आणि निसर्गाचा लोकजीवनावर परिणाम होत असतो. १९६० ते १९७५ या काळातील कादंबऱ्यांमधून परिवर्तनामुळे निर्माण झालेल्या समस्या चित्रित झालेल्या दिसून येतात. जसे की दि.बा. मोकाशींनी 'देव चालले' हया कादंबरीतून 'पळस' गावची भौगोलिक पार्श्वभूमी चित्रित केली आहे. तसेच ग्रामीण संस्कृतीचा होत चाललेला ऱ्हास,व्यक्ती आणि परमेश्वर यांच्यातील अतुट नात्याची,श्रद्धेची कथा चित्रित केली आहे.

१९७५-८० नंतरच्या लेखनामुळे ग्रामीण जीवनातील विशेषतः शेती आणि शेतीशी संबंधित प्रश्न साहित्यातून येवू लागले. दुष्काळ,अतिवृष्टी इ.प्रश्न साहित्यातून चित्रित होऊ लागले. तसेच वाढते शहरीकरण,औद्योगिकरण, अधिक प्रमाणात खतांचा वापर यामुळे नदयांना प्रदूषणाचा विळखा बसत आहे. शेतीसाठी वापरलेली खते पाण्यावाटे ओढयात, नदीत मिसळतात. त्याच पाण्याचा वापर पिण्यासाठी केल्यास त्याचा शरीरावरही परिणाम होत असलेला दिसतो. या सर्वांचे वर्णनही कादंबरीतून, साहित्यातून होऊ लागले. 'बनगरवाडी'मधूनही 'दुष्काळ' ही समस्या प्रभावीपणे मांडलेली दिसून येते.

**निष्कर्ष :-**

१. माणसाच्या सर्व भावना ह्या भोवतालच्या सामाजिक वातावरणातून निर्माण झालेल्या असतात. सामाजिक बदलांची नोंद साहित्यातून घेतलेली दिसून येते.

२. साहित्याच्या आशय, शैली, घाट, भाषा, रचना, निवेदनपद्धतीत बदल होत गेला.

३. 'बनगरवाडी' मध्ये सामुहिक जीवनाचे विविधांगी चित्रण केले आहे. गावातील उजाड रान, निष्पर्ण सृष्टी, दुष्काळ तेथील सण, उत्सव, रूढी, परंपरा, तिथल्या लोकांच्या जीवनातील चढउतार ह्या सर्व गोष्टी सूक्ष्म बारकाईने मांडल्या आहेत.

४. १९७५-८० नंतरच्या लेखनामुळे ग्रामीण जीवनातील विशेषतः शेती आणि शेतीशी संबंधित प्रश्न साहित्यातून येवू लागले. दुष्काळ,अतिवृष्टी इ.प्रश्न साहित्यातून चित्रित होऊ लागले.

५. बनगरवाडी हा प्रदेश दुष्काळ सोसणारा प्रदेश आहे. त्यामुळे त्यांच्या रूढी, परंपरा, समजूती, त्यांचे सांस्कृतिक जीवन हे निसर्गावरच अवलंबून असते.

६. . बनगरवाडीच्या परिसरात पडणारा दुष्काळ हाच ह्या कादंबरीतला नायक असलेला दिसून येतो. सुगीच्या काळातील त्या गावातील लोकांचे जगणे आणि दुष्काळ पडल्यानंतरची त्यांची झालेली वाताहत कादंबरीत दिसून येते.

७. प्रदेशाचा आणि निसर्गाचा लोकजीवनावर परिणाम होत असतो. १९६० ते १९७५ या काळातील कादंबऱ्यांमधून परिवर्तनामुळे निर्माण झालेल्या समस्या चित्रित झालेल्या दिसून येतात.

**संदर्भ ग्रंथ :-**

१. कादंबरीविषयी - हरिश्चंद्र थोरात , पद्मगंधा प्रकाशन, पुणे, प्रथमावृत्ती जून २००६

२. मराठी कादंबरीतील प्रादेशिकता - डॉ. भास्कर शेळके ,स्नेहवर्धन पब्लिशिंग, पुणे, द्वितीयावृत्ती ऑगस्ट २००४

३. मराठी कादंबरीची आस्वादयात्रा - संपा. विजया राजाध्यक्ष ,पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, प्रथमावृत्ती २००८

# ‘सूड’ कथेची नायिका जानकी चा ज्वालाप्रसाद पर्यंतचा प्रवास

**प्रा. सुजाता संजय चोपडे,**
कर्मवीर भाऊराव पाटील कॉलेज
उरूण, इस्लामपूर
प्रमुख मराठी विभाग.
Email ID- sujatachopade68@gmail.com

**प्रस्तावना -**

१९५६ धर्मांतराच्या नंतर दलित साहित्य चळवळीला प्रारंभ झाला. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांनी बौद्धधर्म स्वीकारण्यापूर्वी दलित साहित्य सर्वत्र रूढ होत गेले होते. भारतीय वर्णव्यवस्थेत ‘दलित’ या शब्दाला विशिष्ट अर्थ प्राप्त झालेला आहे. मागास, उपेक्षित, शुद्र, बहिष्कृत असे अनेक शब्द काळानुरूप वापरले गेले. भारतीय समाज व्यवस्थेच्या दृष्टीने डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांचे कार्य अनन्यसाधारण आहे. गौतमबुद्ध, महात्माफुले, शाहू महाराज यांचे कार्य सुध्दा प्रभावी स्वरूपाचे आहे. महाडचा चवदार तळ्याचा सत्याग्रह, मनुस्मृतीदहन, बौध्द धर्माचा स्वीकार या सा-या घटनांचा परिणाम दलित समाज मनावर होऊन जाणिव जागृती झाली. पशुमूल्य भयावह व घृणास्पद अनुभवांचे चित्रण मराठी साहित्यात अपवादानेच आले होते. दलित लेखक जेव्हा लेखन करू लागला तेव्हा आपल्याच वास्तवाला उद्‌गार देऊ लागले. दलितांच्या जीवनाचे यथार्थ दर्शन घडविणारे साहित्य ते दलित साहित्य अशी संकल्पना उदयास आली.

दलित म्हणजे कोण? दलित म्हणजे मोडलेले, भरडलेले, चुरडलेले, तुडविलेले, गांजलेले, दबलेले आणि व्यवस्थेकडून दाबलेले असे अनेक प्रतिशब्द योजले जातात. समाज व्यवस्थेच्या जाचाने वाकलेले, त्यांच्या धिक्काराने मोडलेले, समाज व्यवस्थेने तुडविलेले म्हणजे ‘दलित’ म्हणता येतील.

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर म्हणतात, फक्त आर्थिकदृष्ट्या पिळला गेलेला वर्ग म्हणजे दलित नाही तर भारतीय समाज समाजरचनेतील धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक व राजकीय दृष्टीने पिळला गेलेला वर्ग म्हणजे अस्पृश्य वर्ग होय.

**दलित साहित्यांचे वेगळेपण -**

दलित साहित्याचे प्रचलित मराठी वाङ्‌मयात खूप मोलाचे योगदान दिले आहे. त्यामुळे मराठी साहित्यात एक नवे अनुभवविश्व निर्माण झाले आहे. दलित साहित्य हे समाज व्यवस्थेने ज्यांना दूर ठेवले, कनिष्ठ, नीच मानून माणूसपण हिरावले अशा समाज घटकांचा विचार वर्तनाचा शब्दरूप अविष्कार असतो. वास्तविक पाहता सर्वजण असतील आणि स्वार्थी हितसंबधांतून काहींना समाज

बहिष्कृत केले असेल, धार्मिकतेने दाबले असेल अशा मानवी समुहांच्या दु:ख वेदनेला दिलेली प्रतिक्रिया म्हणजे दलित साहित्य होय.

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांच्या लेखनात ‘दलित’ हा शब्द मूकनायक (१९२०) मनोगतात आला. त्यांनी बहिष्कृत समाज, अस्पृश्य वर्ग असा सुध्दा शब्द प्रयोग केला. Depressed classes, Despised castes, untouchable अस्पृश्य हा शब्द पूर्वी दलित या अर्थानेच वापरला जायचा. दलित साहित्याची व्याख्या अनेक विचारवंतानी केल्या आहेत. त्यापैकी बाबूराव बागूल - ‘माणसाच्या मुक्तीचा पुरस्कार करणारे, माणसाला महान मानणारे, वंश, धर्म, जाती, श्रेष्ठत्वाला विरोध करणारे जे साहित्य ते दलित साहित्य’ ही व्याख्या अधिक समर्पक वाटते.

**दलित साहित्याच्या प्रेरणा** -

**बुध्द तत्वज्ञान -** दलित साहित्य निर्मितीमागे बुध्दतत्वज्ञान आहे. प्रत्येक घटनेमागे काहीतरी कारण असते असे बुध्दाने सांगितले. ‘विश्वात काहीच अविकारी, चिरंतन, स्वयंभू नाही’ असे सांगितले ते क्रांतिकारक होते. बुध्दांच्या क्रांतिकारी विचारामुळेच वर्णव्यवस्था, आत्मा, मोक्ष, यज्ञ, मोक्ष स्वर्ग-नरक यातल्या श्रध्दा संपल्या. डॉ. बाबासाहेबांना बौध्द तत्वज्ञान जवळचे वाटले. आणि यातूनच भारतीय समाजपरिवर्तनाला वेग मिळाला.

**फुले तत्वज्ञान** - चातुवर्ण्यावर हल्ला चढविणारे फुले दलित साहित्याच्या प्रेरणास्थानी मानले जातात. त्यांनी सत्यधर्माची शिकवण दिली. धार्मिक गुलामगिरीमुळे येणारे अज्ञान, अज्ञानामुळे होणारी पिळवणूक फुल्यांनी सांगितली. जाती व्यवस्था ही मानव निर्मित आहे हे सांगून स्वार्थातून निर्णाण झालेल्या व्यवस्थेला फुल्यांनी विरोध केला.

**मार्क्सवादी तत्वज्ञान** - कार्लमार्क्सने भांडवलशाहीचे विश्लेषण केले जगण्यासाठी पोट भरण्यासाठी कष्ट करणारा कामगार आणि भांडवलशहा या दोन वर्गातील संघर्ष मार्क्सच्या विचारातून पुढे आला. शोषक आणि शोषित या वर्गातला हा संघर्ष आहे. भांडवलशाही आणि राजव्यवस्था या दोन्हींना नाकारून मार्क्स श्रमिक वर्गाला महत्व देतो.

**आंबेडकरी तत्वज्ञान** - दलित साहित्याला खरी उर्जा दिली ती डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर तत्वज्ञानाने त्यांचे विचार आणि कार्य दलित साहित्याकांनी आधिक जवळचे मानले प्रखर विज्ञाननिष्ठा आणि कधी प्रमाण्यावर आधारलेले आंबेडकरी तवज्ञान विशुध्द मानवता मानते. सामाजिक लोकशाही आंबेडकरवादाच्या केंद्रस्थानी आहे.

दलित साहित्यिक बाबुराव बागुल यांची ‘सूड’ ही दीर्घ कथा दलित कथेचा आरंभबिंदू ठरली त्यांची ही कथा जीवनाला आणि व जगाला प्रामाणिकपणे उजाळून टाकते. एका स्त्री देहाची किती ससेहोलपट व्हावी याचे जिवंत उदाहरण म्हणजे बाबूराव बागुल यांची ‘सूड’ कथा एकदा जन्म

घेतल्यावर मरेपर्यंत या नरक यातनातून सुटका नाही, या दु:खातून सुटका नाही आपण मरेपर्यंत असेच राहू काय? हा प्रश्न ह्या कथेची नायिका जानकीला सतत पडत असतो.

जानकी मुरळीची पोर तिने जिवंतपणी या नरक यातना भोगल्या यातून तिला सुटका हवी आहे म्हणून आपले स्त्रीत्व टाकते आणि पुरूषत्व स्विकारते. (बाह्यरूप -पोषाख)

जानकी दलित मुरळीची पोर तिच्या व्यक्तिरेखेतून तिच्या वाट्याला आलेले दलित समाजातील जीवन दिसते. 'सूड' कथित प्रचंड करूणा आणि चीड यांची सांगड घातली आहे. झोपडपट्टीत राहणारी माणसं किड्यामुंग्याप्रमाणे वर्तन करतात. ती हाडामासाची माणस आहेत हेच विसरली आहेत. जानकीच्या सानिध्यात येणारी प्रत्येक व्यक्ती वासनांध आहे, राक्षसी आहे कथेतील पात्रे अमानूष आहेत, कधी दुबळी आहेत.

जानकी वास्तवात असणारी पण वास्तवतेपासून दूर जाणारी आहे. ती वयात आल्यापासून तिच्यावर लैंगिक अत्याचार व मानसिक अत्याचार होत आहेत. ही मुरलीची पोरगी, दलितांची तिला कसली आलीय अब्रू असा सवाल तिच्या भोवतीचे जग उपस्थित करते. जगाचे सोडाच पण तिची जन्मदाती आई सुध्दा तिच्याशी तसेच वर्तन करते. म्हणून जानकीला हे जीवन नकोसे आहे. तिला मुरळीचे जीनं नको असते पण आजूबाजूचे लोक तिच्यावर ते लादतातच. स्त्री-तिची संस्कृती, तिची अब्रू हे सारे श्रीमंताचे चोचले ते गरिबांना आणि त्यातल्या-त्यात मुरळीच्या पोरीला कसे परवडणार? संस्कृती ही फक्त न फक्त श्रीमंत वर्गाची मिरासदारी. जानकीने धंदा करावा (वेश्या व्यवसाय) म्हणून तिची आई तिला जंग जंग पछाडते. ससूलने जानकीला ठेवलेले असते कारण त्याचे मटणाचे दुकान असते. त्या मटणाची उधारी झालेली असते पैसे द्यायला नको तर तो जानकीला रखेलीप्रमाणे दोन वर्ष वापरतो. पण त्याने सुध्दा तिच्या भावनांची कदर केली नाही. त्याने तिला विकली आणि मग वेश्या म्हमून तिच्या नाजूक देहाची परवड होत राहते. तिच्या इच्छा काय आहेत? याकडे कोण लक्ष सुध्दा देत नाही म्हणूनच तिला आपल्या स्त्रीत्वाची चीड येते. ती या सर्व अत्याचारामुळे एका निर्धाराने स्वत:ला पुरूष म्हणवून घेते. पुरूषाप्रमाणे पोषाख करते. स्त्री सौंदर्यास कारणीभूत असणारे सुंदर काळेभोर केस कापते डोक्याचा गोटा करते. स्त्रीत्वाची प्रचंड चीड येवूनच स्त्रीत्व नाकारून ती बाहेर पडते आपण पुरूष असल्याचा अट्टाहास बाळगते आणि तसेच दर्शविते. गुरू शोधण्यासाठी पुरूषी वेशात जानकी निघते.

जानकी दलितांची असल्यामुळे असले अमानुष अत्याचार फक्त दलितांवर होतात. दलित स्त्री त्यातल्या त्यात मुरली मग ती कुणाच्याही मालकीची असते. तिचा भोग कोणही घेवू शकतो. 'सूड' मधून माणूसकी बद्दलची जिद्द, अन्यायाबद्दलची चीड, त्वेष, संताप बागुलीच्या या कथेतून दिसून येतो.

या कथेला एवढी टोकदार धार लाभली आहे कारण बाबूराव बागुल प्रत्यक्षात दलितांचे जीवन जगले आहेत, अनुभवले आहे, पाहिले आहे म्हणूनच.

**जानकीचा उद्वेग -**

जानकी आपले स्त्रीत्व लपविण्यासाठी पायघोळ भगवी कफनी, डोक्याचा तुळतुळीत गोटा, हातात तांब्याचा भला मोठा त्रिशूल, कंबरेला एकटांगी धोतर, पायात चामडयाचे चढाव, अंगाभोवती गुंडाळलेली धोंगडी, बगलीत झोळी अस गंभीर आणि खंबीर रूप जानकी घेते. तिला स्त्री असल्याचे, तिच्या सौंदर्यावरून कालीचरणने ओळखलेले असते पण तिने मात्र निर्धार केलेला असतो. आपल्याकडे कोणी आसुसलेल्या नजरेने पाहिले तर त्याला किंवा तिला स्त्री समजणा-याला फाडून टाकावे, तोडून टाकावे आणि त्याच्या रक्तात थयाथया नाचावे असे वाटते. मरेपर्यंत आपण असेच राहू काय? हा प्रश्न तिला भेडसावत राहतो.

'गुळावर माशा बसाव्या तशा तिच्यावर वेगवेगळ्या वयाच्या पुरूषांची झुंबड येवून पडू लागली.' तशी ती दोन-तीन वेळा जीव द्यायला तयार झाली होती. दोनही वेळचे प्रयत्न फसले, तेव्हा ती आपल्याकडे आलेल्या प्रत्येक पुरूषाला आपल्याला या नरकातून सोडविण्याची विनंती करते पण तिची कोणालाही दया येत नव्हती.' अशी जानकीची पिंज-यात सापडल्याप्रमाणे अवस्था झाली होती.

**जानकीचे ज्वालाप्रसाद मध्ये रूपांतरण -**

गुरू तिला नवे नाव देतात. ज्वाला - ज्वालाप्रसाद. आता ती स्वत:ला ती समजत नाही आता ती तो आहे असे समजते. स्वामींच्या शुध्द आणि स्पष्ट शब्दोच्चाराने भारावून जाते. "गुरूदेव मला भीक पाहिजे" एवढ्या तरूण वयात तू विरक्त कसा झालास सर्व सोडून बाहेर कसा आलास. तू थोर आहेस, वंदनीय आहेस.'

'कुठं निघालास ?, देवाकडं, नाहीतर मृत्यूकडं.'

'तू एवढे काय पाहिले आहेस बेटा, की तुला संन्यास घ्यावासा वाटला?'

'देव आणि मृत्यू यांचा लोभ कुणाला सुटला आहे?' त्यानंतर गुरूने विचारलेल्या प्रश्नावर त्याने उत्तर फार मार्मिक दिले आहे. 'देव भेटला तर काय मागशील?' 'नाश' या सवर्ण समाजाने इतका त्रास दिला आहे की जणू त्या सर्वांचा नाश करायचा आहे.

गुरू तिला समजावणीच्या सुरात म्हणतात, "बेटा, छोड दे भूल जा रडू नको, बेटा तू कोण? स्त्री या पुरूष". "मी स्त्री होते आता नाही मी माझे स्त्रीत्व गंगेला अर्पण केले आहे आता मी स्त्री नाही, कधीच होणार नाही. मला पुरूष होता आले नाही तर मी जीव देईन." मी स्त्री पूर्वी होते आता नाही.

गुरूंना 'ज्वाला' हे नाव स्फुरले. 'ज्वालाप्रसाद' आणि तेव्हापासून जानकीचा ज्वालाप्रसाद झाला आणि जानकी स्वत:ला पूर्णपणे बदलते. जानकीचा ज्वालाप्रसाद म्हणून प्रवास सुरू होतो. तिच्या वर्तनातून सुध्दा स्त्रीत्व टाकून द्यायचे असते. स्वामीनी भोजन करायला सांगितले तर ठामपणे नकार देते. जानकी स्वत:ला स्वयंपाकापासून दूर ठेवते.

जानकीने अत्यंत भयानक परिस्थितीला तोंड दिले असल्यामुळे आता आपल्याकडे स्त्रीत्वाच्या खुणा नको आहेत. अगदी स्त्रीत्वाच्या खुणा म्हणजे रजस्वाला होणं हे सुध्दा नको वाटतं, एकटं कोंडून

स्वत:ला घेते याचे सुंदर चित्रण बाबुराव बागुलांनी केले आहे. परंपरेने आपल्यावर स्त्री म्हणून लादलेले आणि समाजव्यवस्थेने लादलेले फेकून द्यायचा बंडखोरपणा जानकी मध्ये आला आहे. जानकीने झाल्या प्रकारचे दु:ख भोगले आहे की तिच जीवनच नकोसे झाले. आपण ते नाकारू शकत नाही मग आपल्या हातात काय आहे तर स्त्रीत्व नाकारायचं आणि पुरूषाप्रमाणे जगायचे. याही मार्गावर अडचणी आहेत पण ती धीराने पार करते.

एकीकडे जानकीची होरपळ चित्रिली आहे आणि दुसरीकडे जावालाप्रसादाची धीरोदात्त वाटचाल रेखाटली आहे.

'गधडी, तुला देवानं काय दिलं?' त्याच्या नावानं की रड, त्या मडयान तुला दिलय काय? जमीन हाय? जात हाय? कुळ आहे? काय हाये? मिळालय फक्त भोर कातड, बाजारात चालणार मिळवं खाय ले नेस अन मग मर, सडूनच मरशील मी चालले गावच्या कुलकर्ण्याकडे. गॉड धॉड खाईन, गादीवर झोपेन अन वर पैसे भी आनीन.... रड देवानं दिलेले दु:ख भोग'

या रंगूच्या बोलण्याने समाजातील जळजळीत प्रश्न आपल्यापुढे बाबुराव बागुलांनी ठेवले आहेत. मुरळी देवाला सोडलेल्या स्त्रीला काय असतं, तिला देवान तर काहीच दिलेल नाही ना जमीन, ना जात ना कुळ...... ? हा खरा प्रश्न आहे. या कथेच्या माध्यमातून बाबूराव बागुलांनी समाजाच्या डोळ्यात झणझणीत अंजन घालण्याचा प्रयत्न केला आहे.

खरच समाजात अशी अवस्था १९६९-७० ला होती पण आज २०२१ साली सुध्दा या 'मुरळी' असणा-या स्त्रियांचे प्रश्न आजही तसेच आहेत.

**निष्कर्ष** -

1) दलित साहित्याची चळवळ ही सुरू असून त्यातून अनेक प्रवृत्त होवून पेटून उठताना दिसतात.
2) समाजाने लादलेले फेकून दयायचा प्रयत्न करतात
3) जानकी अत्याचाराने पेटून उठते आणि स्त्रीत्वावरच सूड उगवते.

**संदर्भ** -


1) 'सूड' - बाबुराव बागुल
2) दलित साहित्य उद्‌गम आणि विकास - यागेंद्र मेश्राम
3) दलित साहित्य प्रवाह आणि प्रक्रिया - गो.म. कुलकर्णी
4) कृष्णा किरवले - दलित साहित्य आणि चळवळ
5) डॉ. म.ना. जानखेडे - प्रस्तवाना 'सूड'

# सामाजिक चळवळी आणि ग्रामीण कथा

**प्रा. मोहन बाबुराव चव्हाण,**
लक्ष्मीबाई भाऊराव पाटील महिला महाविद्यालय,
सोलापूर

सामाज जीवन आणि साहित्य यांचा फार घनिष्ठ संबंध आहे. साहित्यिकाची जडणघडण समाजातच होत असते. समाजात घडत असणाऱ्या घटनांचा परिणाम साहित्यिकाच्या मनावर होत असतो. सामाजिक जीवनात अनेक प्रश्न, समस्या असतात. या सोडविण्यासाठी समाज सतत प्रयत्नशील असतो. यासाठी तो संघटीत होऊन न्याय हक्कासाठी मोर्चे, आंदोलने, चळवळी करीत असतो. भारत हा खेड्यांचा देश आहे. देशाच्या राजकीय, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवनात प्रचंड उलथापालथी झाल्या. याचा परिणाम खेड्यांच्या जीवनावर झाला. स्वायत्त असणारी खेडी परावलंबी झाली. यातून अनेक समस्यांची भर पडत गेली. एकंदर याच पार्श्वभूमीवर सामाजिक जीवनाला क्रांतिरूप प्राप्त झाले.

## भूमिका :

समाजिक चळवळींचा परिणाम साहित्यावर होणे अपरिहार्य आहे. ग्रामीण कथा साहित्यावर अनेक चळवळींचा प्रभाव असलेला दिसून येतो. या चळवळींच्या यशापयशाचा वेध घेण्याचे काम ग्रामीण साहित्याने केले आहे. याचबरोबर ग्रामीण साहित्याने अशा चळवळींना बळ देण्याचे काम केले आहे. सामाजिक चळवळी आणि ग्रामीण कथा यांच्या सहसंबंधाची चर्चा या शोधनिबंधात करण्यात येणार आहे.

## उद्दिष्ट्ये :

१. समाजिक चळवळींची पार्श्वभूमी समजून घेणे.
२. समाजिक चळवळी आणि ग्रामीण साहित्य यांच्या सहसंबंधाचा शोध घेणे.
३. ग्रामीण साहित्यातील चळवळींचा आशय जाणून घेणे.
४. ग्रामीण साहित्याची सामाजिक चळवळीविषयाची भूमिका स्पष्ट करणे विषय.

## विवेचन :

समाज जीवन हे परीवर्तनशील असते. इंग्रजी सत्तेतील शिक्षण आणि विज्ञानाच्या परिचयातून इथल्या समाजात आत्मभान येऊ लागले. आपल्या समूहाचे हितसंबंध जोपासण्यासाठी बदलाचा, परिवर्तनाचा विचार अनेकांच्या मनात निर्माण होतो. या समविचारी मनाच्या एकोप्यातून बहुसंख्य गटसमूह एकत्र येतो. आपल्या न्याय हक्काच्या जाणिवेतून चळवळ आकाराला येते. समाज परिवर्तनाची प्रक्रिया गतिमंद असते. बोधन्-भावन आणि कृतिप्रवण ही क्रमवारिता इष्ट दिशेच्या सामाजिक परिवर्तनालाच अवश्यक मानली जाते. कोणताही सामाजिक बदल हा मूलत: व्यक्ती-व्यक्तींच्या वर्तणुकीतून घडत असतो. मनं बदल्याशिवाय वर्तणूक बदलत नाही. व्यक्तीचे मन बदल्याशिवाय समष्टीमनाचा बदल अपेक्षित करता येत नाही. ज्या ज्या जाणीवपूर्वक परिवर्तन घडवून आणणाऱ्या चळवळी झाल्या, अन्य प्रयोग अथवा योजना आखल्या गेल्या; त्या त्या चळवळी योजनांचे दीर्घ स्वरुपी यश-अपयश बदलाच्या इच्छाशक्तीवरच आधारलेले असते. प्रथम ह्यदय परिवर्तन, मग जीवनपरिवर्तन आणि त्यानंतर समाजपरिवर्तन असे विविध परिवर्तनसूत्र विनोबांनी मांडले आहे.'' (भूमी आणि भूमिका, पृ. १९) सामाजिक परिवर्तनाच्या मूळाशी व्यक्तीगत मानसिकेतत बदल होणे अत्यंत महत्त्वाचे असते. हा बदलाला वैचारिक

मूल्य प्राप्त व्हावे लागते. अन्यथा चळवळ अपयशी होण्याचे धोके निर्माण होतात. समाज जीवनात अशा अनेक चळवळी निर्माण झाल्या. चळवळीची वैचारिकता, नेतृत्व, कार्यकर्ते, दिशा, सातत्य आणि निष्ठा या घटकांवर चळवळीचे यशापयश आवलंबून असते.

प्राचीन कालखंडापासून भारत हा जगाच्या पाठीवर एक समृद्ध देश होता. देशातील सत्ताधिशांच्या अंतर्गत संघर्षाचा अनेक परकीयांनी फायदा घेतला. मुसलमान, फिरंगी, डच, पोर्तुगीज, इंग्रज या परकीय सत्ताधिशांनी भारतीयांचे शोषण केले आहे. सत्ता परकीय असो अथवा स्वकीय असो. या सर्वांनीच समाजाचे सर्वांगाने शोषण केले आहे. सामाजिक जीवनातील वर्णव्यवस्था, वर्गव्यवस्था, अर्थव्यवस्था, जातीव्यवस्था आणि धर्मव्यवस्था यांच्यातील उतरंडीतून खालच्या घटकांवर अन्याय झाला आहे. पुरुषसत्ताक सामाजिक जीवनात स्त्रियांचे दुयमत्व आणि तिच्यावर अनेक प्रकारचे अत्याचार झाले आहेत. यांच्या मुक्तीसाठी सामाजिक चळवळी निर्माण झाल्या. ग्रामीण भागातच भारतातील बहुसंख्य लोकसंख्या विखुरलेल्या अवस्थेत असलेली दिसून येते. देशात स्वातंत्र्यपूर्व आणि स्वातंत्र्योत्तर काळात अनेक चळवळी उभा राहिल्या. यात 'ब्राम्हो समाज', 'प्रार्थना समाज', 'आर्य समाज', 'सार्वजनिक सभा', थिऑसॉफिकल सोसायटी', आणि 'सत्यशोधक समाज' यांचा उल्लेख करता येईल. या सामाजिक प्रबोधनासाठी निर्माण झालेल्या चळवळीत 'सत्यशोधक समाजा'चे कार्य तळगाळातील लोकांसाठी होते. ग्रामीण भागात विशेष कार्य या समाजाने केले आहे. म. फुले, कृष्णराव भालेराव, मेघाजी लोखंडे यांनी सत्यशोधक समाजाचे कार्य खेड्यापाड्यात विस्तारीत केले. कष्टकरी, दलित, पीडित, सामान्य स्त्री यांच्या शोषणाविरोधात सत्यशोधक समाजाने कृतीशील कार्य केले आहे. म. फुले आणि त्यांच्या सहकार्यांनी वाङ्मयलेखन, वृत्तपत्रलेखन, आंदोलन, सभा, चर्चा, बैठका घेऊन उच्चवर्णयांच्या विरोधात जावून होळपरणाऱ्या सामान्यांना जागे करण्याचे काम केले आहे. स्त्री-शूद्रांसाठी ज्ञानाची केंद्रे उभा केली. 'इशारा', 'गुलामगिरी', 'शेतकऱ्यांचा असूड', 'तृतीय रत्न' या कलाकृतीतून शेतकरी, कष्टकरी, दलित, स्त्रिया यांच्यावर होणाऱ्या अन्यायाची जाणीव करून दिली. याचबरोबर असंख्य सत्यशोधकांनी ग्रंथलेखन, जलसे, मेळावे यातून ग्रामीण जीवनातील जनतेला जागृत करण्याचे काम केले आहे.

इंग्रजी सत्ता उलथून टाकण्यासाठी या लोकांचा सहभाग म. गांधींजींना महत्त्वाचा वाटू लागला. त्यांनी 'खेड्याकडे चला' हा नारा दिला. यामुळे अनेकांचे लक्ष खेड्याकडे गेले.

म. गांधी यांचे विचार लोकांना पटत गेले. आपल्यावर होत असणाऱ्या अन्यायाची जाण लोकांच्या मनात निर्माण झाली. अहोरात्र राबणारा शेतकरी आणि कष्टकरी, दलित, शोषित यांचा सहभाग यातून वाढत गेला. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांनी अन्यायी व्यवस्थेच्या विरोधात आवाज उठविण्यास सुरुवात केले. गुलामी स्वीकारलेल्या दलित बांधवांना न्याय-हक्काची जाणीव करून दिली. आंबेडकरांनी बहुजनांच्या हितासाठी अनेक चळवळी उभ्या केल्या. शेतकरी, कामकार, दलित यांना संघटीत करून आपल्या प्रश्नाविषयी जागृत करण्याचे काम आंबेडकरांनी केले आहे. वि. रा. शिंदे यांनी शेतकऱ्यांच्या प्रश्नांची समग्र आणि शास्त्रशुद्ध मांडणी केली. त्यांनी शेतकरी परिषदा आणि आंदोलने केली. दलित, आदिवासी, भटके, स्त्रिया या ग्रामसंस्कृतीचा गाभा असणाऱ्या घटकांसाठी कार्य केले आहे. स्वातंत्र्यपूर्व काळात अनेक संघटनांनी ग्रामीण लोकांच्या समस्या सोडविण्यासाठी काम केले आहे. स्वातंत्र्योत्तर काळात लोकांच्या अपेक्षांची उपेक्षाच झाली. गरीब-श्रीमंत दरी अधिक वाढत गेली. या बदलत्या जीवनात लोकांच्या जगण्यामरण्याचे प्रश्न निर्माण झाले. दुष्काळ, बेकरी, भ्रष्टाचार यामुळे ग्रामीण जीवन उद्धवस्त झाले. शेतकरी, कामगार, आदिवासी, भटके, दलित, महिला, बेकार यांच्या संघटना निर्माण होऊन अनेक चळवळी निर्माण झाल्या. शरद जोशी यांनी 'शेतकरी संघटना' स्थापन करून शेतकऱ्यांचे, कष्टकऱ्यांचे असंख्य प्रश्न मांडले. जागतिकीकरणानंतर ग्रामीण भागात यंत्रावतराचा प्रवेश झाला. स्वातंत्र्यपूर्व

काळातील इंग्रजी माल आणि जागतिकीकरणानंतर जागतीक बाजारपेठेतील मालामुळे इथले ग्रामीण जीवन उद्धवस्त झाले. हे असंख्य प्रश्न आणि यातून निर्माण झालेल्या चळवळी यांचा परिणाम साहित्यावर पडणे स्वभाविक आहे.

आधुनिक मराठी साहित्याला शाहू-फुले-आंबेडकर यांच्या विचारांची पार्श्वभूमी आहे. पुरोगामी महाराष्ट्रात समतेचे चक्र गतिमान करताना, सामाजिक न्याय प्रस्थापित करताना, महाराष्ट्र हा फुले-शाहू-आंबेडकरांचा आहे. त्यांच्याकडून स्वातंत्र्य, समता, संधी समानता व न्याय या तत्त्वांचे प्रबोधन 'बंधुता'कडून सातत्याने केले आहे. या बाबतीत सर्व घटकांशी संवाद-सुसंवाद साधताना ह्या समाज परिवर्तनाच्या लढ्याला मिळणारे बळ पाहता त्यांचे कार्य फार मोलाचे समजले जाते.'' (ग्रामीण-दलित साहित्य : चळवळ आणि समीक्षा, पृ.९६) फुले यांचा 'शेतकऱ्यांचा असूड' हा ग्रंथ शेतकऱ्यांचा धर्मग्रंथ आहे. आंबेडकरांचे ग्रंथिक विचार सामन्यांना लढण्याचे बळ देणारे आहेत. राजर्षी शाहू महाराजांचे समतावादी राजकीय धोरण ग्रामीण जीवन बदलवणारे आहे. कालखंडाच्या समांतर निर्माण झालेल्या साहित्यात त्यात्या कालखंडाचा प्रभाव पडलेला आहे. समकालीन ग्रामीण कथेच्या स्वरूपात बदल झाला तो १९६० नंतर ग्रामीण साहित्याचा एक स्वतंत्र प्रवाह निर्माण झाला. त्यावेळी खऱ्या अर्थाने ग्रामीण समस्यांवर प्रकाश पडला. त्या समाजासमोर मांडणे काळाची गरज होती. सामाजिक समस्यांचे सदंर्भ घेऊन ग्रामीण कथेचे पारंपरिक रूप बदले. १९४५ नंतर प्रयोगशीलता या वैशिष्ट्यानी तिचा रूपाचा कायापालटच केला. कथाकार आपले अनुभव प्रामाणिकपणे व संवेदनशील मनाने लिहू लागले. मध्यमवर्गीय जीवनाचे विश्व साकारले. या साहित्याच्या रूपाने समाजात ग्रामीण साहित्य चळवळच उभी राहिली मानवी अस्तित्व विषयांनी ग्रस्त असणाऱ्या विषयांना प्राधान्य मिळाले. यांत्रिकीकरणाचे आक्रमण, महानगरीय संस्कृतीचा वाढता प्रभाव या गोष्टीनां महत्त्व आले. त्यामुळे ग्रामीण अस्वस्थता, मानवी मनाचे एकाकीपण, सामाजिक विषमता असे अनेक विषय कथांमधून आविष्कृत झाले आहेत. प्रारंभीच्या काळात श्री. म. माटे, बी. रघुनाथ, अण्णा भाऊ साठे, व्यंकटेश माडगूळकर यांच्या कथांत सामाजिक चळवळीचे संवेदनात्मक दर्शन घडते. या कथाकारांच्या कथेत ग्रामीण कथाकारांनी ग्रामीण जीवनाचे चित्रण केले आहे.

साठोत्तरी साहित्य ग्रामीण साहित्य चळवळीने अनेकांना लेखनाची उर्मी दिली. या कालखंडात आनंद यादव, रा. रं. बोराडे, उद्धव शेळके, चारुता सागर, सखा कलाल, रणजीत देसाई, चंद्रकुमार नलगे, द. ता. भोसले यांच्या कथांतून सामाजिक जाणिवा अधिक प्रकल्भ झाल्या. ग्रामीण कथा चळवळीच्या पातळीवर उतरली. ती चळवळीची भाषा बोलू लागली. भास्कर चदंनशीव यांची कथा चळवळीची भाषा बोलते. खेड्यापाड्यातील शेतकरी, कष्टकरी, बेकार, स्त्रिया, दलित यांच्या मनातला आक्रोश त्यांच्या कथेतून व्यक्त झाला आहे. 'आंगरमाती', 'बिरडं' या संग्राहातील कथा चळवळीची, आंदोलनाची, मोर्चाची भाषा करते. येथे कोणताही उद्रेक, भडकपणा भाषेत नाही. ही आंदोलने राजकारणी, अधिकारी चिरडण्याचा प्रयत्न करतात. परंतु आजची अन्याय सहन करणाऱ्यांची भाषा बदलत आहे याची जाणीव या कथांमधून येते.

लक्ष्मीकांत देशमुख यांच्या 'पाणी! पाणी!!' या कथासंग्रहात दुष्काळग्रस्त शेतकरी, मजूर आणि दलित स्त्री जाणिवा अधोरेखित झाल्या आहेत. यांच्या कथासंग्रहातील कथेची पार्श्वभूमी माणदेश आणि मराठवाड्यातील दुष्काळ ही आहे. सिंचन योजनेच्या क्षेत्रातील शेतकरी आणि राजकारणी यांच्या विरोधात माणदेशातील अन्याय झालेला दुष्काळग्रस्त शेतकरी आपला राग व्यक्त करताना दिसतो. सिंचन भागातील पाण्याची नासाडी आणि पिण्याच्या पाण्यासाठी संघर्ष करणारे लोक या परस्परविरोधी घटकांचे चित्रण त्यांच्या कथेत येते. दारिद्र्य, भूकबळी, दलित स्त्रियांवरील लैंगिक अत्याचाराच्या विरोधात ही कथा चर्चा करताना दिसते.

राजन गवस यांची कथा देवदासी प्रथा आणि स्त्री परिवर्तनाच्या चळवळीत उद्धवस्त होणाऱ्या स्त्रियांवर प्रकाश टाकते. या दृष्टीने त्यांचे 'आपण माणसात जमा नाही', 'रिवणावायली मुंगी' हे कथासंग्रह महत्त्वाचे आहेत. याचबरोबर अनेक सामाजिक परिस्थितीतून येणाऱ्या स्त्रीजीवनावर त्यांनी लेखन केले आहे. यांच्या कथेतील

नायिका अनेक अमिषाला बळी पडलेल्या आहेत. पुरुषी वासनेच्या शिकार झाल्या आहेत. एकंदर गवस यांची कथा देवदासी प्रथेवर भाष्य करून त्यांच्या मनात परिवर्तन घडविणारी आहे. याचबरोबर पुरुषी वृत्तीला आव्हान देणारी आहे.

सदानंद देशमुख यांनी शेतकरी आणि तरुणांच्या जीवनातील समस्यांचा वेध आपल्या कथांतून घेतला आहे. 'महालूट', 'लचांड', 'उठावण', 'गाभूळगाभा' हे कथासंग्रह ग्रामीण जीवनातील विविध समस्यांचा वेध घेणारे आहेत. विदर्भातील कापूस उत्पादक शेतऱ्यांचे अनेक प्रश्न त्यांनी कथांतून मांडले आहेत. तरुणांच्या वाढत्या बेकारीवर त्यांनी भाष्य केले आहे. योग्य हमी भाव मिळावा यासाठी शेतकरी आंदोलनाचा विचार करताना दिसून येतो. तरुणांच्या मनातील उद्रेक त्यांच्या कथांतून व्यक्त होतो.

ग्रामीण जीवनात सतत परिवर्तने होत आहेत. या परिवर्तनात ग्रामीण जीवनातील समस्या कमी न होता, वाढतच आहेत. १९७५ नंतरच्या लेखकांमधून परिसर आणि व्यक्ती यांचे आज परस्पर असणारे नाते व व्यक्तिमत्त्वाच्या जडणघडणीत असणारा त्याचा सहभाग यांची जाणीव वाढत गेलेली दिसते. याचे दुसरे कारण असे की, या काळातील लेखकांना वास्तवाचे भान अधिक आले आहे. (ग्रामीण कथा : स्वरुप आणि विकास, पृ.२१४) नागनाथ कोत्तापल्ले, श्रीराम गुंदेकर, वासुदेव मुलाटे, मनोहर तल्हार, गणेश आवटे, सोपान हळमकर, बाबाराव मुसळे, मोहन पाटील, किरण गुरूव, वामन जाधव, कृष्णा इंगोले, बालाजी सुतार यासारख्या अनेक जुन्यानव्या पिढीतील कथाकारांनी ग्रामीण जीवनातील समस्यांवर प्रकाश टाकला आहे. आजची ग्रामीण कथा मनोविश्लेषणात्मक पातळीवर उतरली आहे. ग्रामीण जीवनातील विविध प्रश्नांवर संघटीत शक्ती कियाशील होत आहेत. याचे चित्रण ग्रामीण कथेत आले आहे.

## निष्कर्ष :

सामाजिक चळवळीला समांतर राहून ग्रामीण साहित्याने या चळवळींची मुळे समाजात रूजविण्याचे काम केले आहे. सामाजिक चळवळीच्या अगोदरही ग्रामीण कथा चळवळीची भाषा करते आहे हे येथे स्पष्ट करावे लागेल. सामाजिक चळवळींचा परिणाम साहित्यावर आणि साहित्याचा प्रभाव सामाजिक चळवळींवर पडल्याचे अनेक संदर्भ ग्रामीण कथासाहित्यातून अधोरेखित झाले आहेत. सामाजिक चळवळींचा विस्तार साहित्यातून करण्याचे काम चळवळीतील लोकांनी केले आहे. ग्रामीण कथालेखकांनी चळवळीसाठी लेखन केले आहे असे म्हणता येणार नाही. त्यांनी सामाजिक जाणिवेतून लेखन केले आहे. हे लेखन सामजिक चळवळींना पोषक ठरले आहे.

## संदर्भ :

१. 'भूमी आणि भूमिका', श्रीराम गुंदेकर
२. 'ग्रामीण कथा : स्वरुप आणि विकास', डॉ. वासुदेव मुलाटे
३. 'ग्रामीण-दलित साहित्य : चळवळ आणि समीक्षा', डॉ. मधुकर मोकाशी

# 'झोंबी' कादंबरीतील ग्रामसंस्कृती आणि स्त्रीविश्व

**प्रा.डॉ.आर.डी.कांबळे,**
मराठी विभाग,
कला, वाणिज्य आणि विज्ञानमहाविद्यालयए कोवाड,
ता. चंदगड,जि. कोल्हापूर-
मेल rkrd 262@gmail.com

स्वरूप:

मानवजातीच्या विकासाबरोबर स्त्रीचे समाजातील स्थान आणि तिच्याकडे पाहण्याची दृष्टी बदलत गेलेली दिसते. स्वातंत्र्य, समता या लोकशाही मूल्यांच्या संकल्पना स्त्रीविकासाला पूरक ठरल्या. समाज, कुटुंब यातले आपले अस्तित्व शोधणारी स्त्री साहित्यातून प्रकट झाली. स्त्री ही पायाची दासी आहे व पायातील वहाण पायातच राहिली पाहिजे' ही विचारसरणी रूढ झाली. त्यामुळे स्त्रीला गौणत्व प्राप्त झाले होते; पण नंतरच्या काळात हीच स्त्री सजग बनली. तीला तिच्या साम सामर्थ्याची जाणीव झाली. सामाजिक स्त्रीची अवस्था समाज सुधारकांनी शब्दबद्‌ध केली. त्यासाठी १९ वे शतक उजाडले. या काळात म.गो. रानडे, म. फुले, लोकहितवादी, आगरकर आदी सुधारकांनी स्त्री जीवनविषयक विषयांना प्राधान्य देऊन त्यांची दुःखं, समस्या मुकर केली.

म. फुले यांनी स्वतः सावित्रीबाईंना शिक्षणाचे धडे देवून स्त्री शिक्षण चळवळ गतिमान केली. पुढच्या काळात म. फुलेंचे सामाजिक सुधारणावादी विचार ग्रंथ रूपाने मार्गदर्शक ठरले. ग्रामीण जीवनाच्या चित्रणाचा स्पर्श मराठी साहित्य परंपरेला म. फुले यांनी बहाल करून ग्रामसंस्कृती व ग्रामीण जीवनावर प्रकाश टाकला, म्हणूनच म. फुले यांना आनंद यादव यांनी आधुनिक देशी मराठी साहित्याचे आद्‌य जनक मानले; पुढे आनंद यादव यांनी तोच ग्रामीण लेखनाचा वारसा लेखन प्रपंचातून जपला; आणि ग्रामीण साहित्य चळवळ मराठी साहित्य परंपरेत नव्याने घट्ट रोवली. खर्या अर्थाने ग्रामीण साहित्य ग्रामसंस्कृतीचे दर्शन वेगळया अंगाने प्रकट करण्याला आरंभ झाला; त्यातून ग्राम, गावगाडा, तिथले सण समारंभ, उत्सव, जत्रा, भाऊबंदकी, पाटीलकी, स्त्री जीवन, मानवी नाते संबंध, तिथल्या समाजमनातील गुंतागुतीचं प्रकटन ग्रामीण साहित्यातून प्रकर्षाने प्रकट होऊ लागले.

**वाङ्मयीन कार्य:**

डॉ . आनंद यादव यांचा जन्म ३० नोव्हेंबर १९३५ , मृत्यू २७ नोव्हें. २०१६ त्यांनी कविता, कथा, कादंबरी, समीक्षा ललित अशा अनेकविध साहित्य प्रकारांचे लेखन करून ग्रामीण साहित्य चळवळ खर्या अर्थाने वैश्विक स्तरावर नेण्याचे महत्वाचे कार्य केले. कागल या ठिकाणी त्यांचे बालपण गेल्यामुळे त्यांचे सारे बालपण शेती, कृषिजीवनात गेले. शालेय जीवनातच त्यांना लेखनाचे संस्कार जडले. ते ग्रामीण लेखनाचे. पुढे नोकरीच्या निमित्ताने शहरात रहात असले तरी त्यांना गावकुसाबाहेरील जनसामान्यजनाची अत्यंत ओढ होती. तसेच गाव, घर, गोतावळयाला विसरले नव्हते, म्हणूनच ते अगदी शेवटच्या क्षणापर्यंत गाव, घराशी संपर्क ठेवून त्यांच्याशी सलोख्याचे स्नेहबंध जपले. त्यामुळेच त्यांनी बंगल्यातला संसार उभा करता करता गावाकडेही घर उभे केले.डॉ. आनंद यादव यांची 'झोंबी' (१९९७ ) मधील एक महत्वाची अस्सल ग्रामीण बाज असणारी आत्मचरित्रात्मक कादंबरी आहे. आनंद यादव यांच्या 'झोंबी' (१९८७ ), नांगरणी (१९९० ), घरभिंती (१९९२ ) व काचवेल (१९९७ )

या कादंबबर्यातून त्यांनी एका तरूणाच्या बालपणापासून ते तारूण्य व वृद्धापकाळाचे चित्रण केले आहे. त्यातील अनेक घटना, प्रसंग हे ग्रामजीवनातील संदर्भ तिथला, मानवी जीवनसंबंध, नाते-संबंध, दारिद्र्य, उपासमार, धडपड, जगण्यासाठी चाललेला जीवघेणा संघर्ष, निसर्ग, माणूस यांच्यातील संघर्ष, स्त्री व माणूस यांच्यातील हेवेदावे, अशा अनेकविध प्रसंगाने समृद्ध असा साहित्य प्रपंच आढळतो. सर्व कलाकृतीतून ग्रामीणत्व प्रकर्षाने जाणवते.

अर्वाचीत मराठी साहित्यातील एक आघाडीचे ग्रामीण लेखक म्हणून त्यांना साहित्य प्रातांत सर्वोच्च स्थान प्राप्त झाले आहे. त्यांच्या लेखनामुळे ग्रामीण साहित्याची ओळख नव्याने झाली, मंदावलेल्या लेखन चळवळीला गती देण्याचे; नव्या लेखकांना त्यामुळे प्रेरणा स्थान होते. त्यांचं लेखन ग्रामसंस्कृती, प्राणीसृष्टी, निसर्गसृष्टी, दिन-दुबळयांबद्दल कणव व दारिद्र्य,शेतकरी जीवन, त्यांचचं जगणं हे साहित्य निर्मितीचं केंद्र होतं. त्यांच्या सर्व साहित्य विश्वातून त्याचा प्रत्यक्ष प्रत्यय येतो. कृषिजीवनाबरोबर स्त्रीजीवनाचा विचार त्यांच्या साहित्यात प्रकर्षाने जाणवतो. स्त्रीही ख खर्या अर्थाने जीवनाची आदिशक्ती आहे, पुरूष व प्रकृती हे सृष्टी निर्माण करणारे युगुल आहे. तसेच उद्योगसंस्कृतीतील जीवनाचा विचार त्यांच्या सर्व साहित्य प्रकारात होताना दिसतो. स्त्रीला देवता मानण्यापेक्षा माणूस म्हणून तिची प्रतिष्ठा प्राप्त व्हावी म्हणून शहरी-ग्रामीण लेखकांच्या लेखनीला धार येऊ लागली. गुलामगिरीतून तिची मुक्तता व्हावी, ती ही एक माणूस आहे म्हणून विचार व्हावा यासाठी आनंद यादव यांनी लेखनातून प्रयत्न केला. पुरूषप्रधान संस्कृतीने लादलेले सारे बंधफाश तीने तोडावे व तीनेही मुक्तपणे आपलं जीवन व्यथित करावे असे मनोमन त्यांना वाटते. तसेच हतबल झालेल्या स्त्रीला भावुकपणे, जगता यावे, वेगवेगळया नाते संबंधाची वीण घट्ट व्हावी, जगताना तीने साÚया प्रसंगाचा सामना धीरोधात्तपणे करावे म्हणून त्यांच्या साहित्यातील स्त्री ही कृषिजीवनात रममाण होते. तसेच आपले दुःख ती करत न बसता धाडसाने प्रत्येक प्रसंगाचा सामना करून प्रसंगी ती समर्थपणे लढण्यास सजग बनते. ती कधी आईच्या रूपात, बहिणीच्या रूपात तर कधी पत्नीच्या भूमिकेत वावरते. अशा नाना रूपातून ती वावरताना आढळते. प्रस्तुत शोध निबंधात 'झोंबी' या कांदबरीतील ग्रामसंस्कृतीतील स्त्रीजीवनाचा विचार आणि 'तारा'च्या रूपातून शोध घेतला जाणार आहे.

**स्त्रीजीवनविश्व:**

झोंबीतील 'तारा' ही व्यक्तिरेखा ग्रामसंस्कृतीतील स्त्री संपूर्ण कादंबरीत प्रत्येक प्रसंगानुसार आढळते. एका कुणबी कुटुंबातील ताराचा बाप दारूडा आहे. तो पोटापाण्याच्या प्रश्नानं चिंतेत आहे; म्हणून शेती फाळयाने करतो पण तेही धान्य त्याला मिळत नाही. त्याचबरोबर हा संसाराचा रहाटगाडा त्याला पेलवत नाही. रोज रोजंदारीवर जाणे, मिळालेल्या रोजंदारीतील दमडीतील काही रक्कमेची दारू पिणे व उरलेले पोराबाळांसाठी आणून कसं बसा संसार चालवतो. बालवयात ताराचा बाप लग्न ठरवून ठेवतो. ती तारा बापाकडे १२ वर्षापर्यंत घरात राहते. तीही हातभार लावत असते. एके दिवशी बाप ताराच्या गळयातील 'पुतळया' दारूसाठी विकतो. त्यावेळी ताराच्या सासÚयाने खूप मारहाण केली. तेव्हा तारानेच बापाला सासरयाच्या तावडीतून सुटका केलेली असते. अशातच एक दिवस आई सोडून जाते. आईच्या निधनानंतर तारा भावाला मायेची उणिव जाणवू देत नाही. आईच्या मढयावरच लिंगाप्पाला ती आईचं दूध पाजते. आई सोडून जाते न जाते तोच दारूडा बापही एक दिवस मरण पावतो. त्यामुळे ती एकाकी पडते. पण ती कुटुंबाचा आधारवड बनून सर्व कुटुंबाची काळजी घ्यायला तयार होते. त्यावेळी मात्र ती बापालाच जपते.

भाऊ लग्नाच्या वयाचा झाल्यावर त्याला कोणी पोरगी देत नाही, त्यावेळी गल्लीतील बायका अनसा व लिंगाप्पाच्या विजोड जोडीबद्दल सांगतात. नाजूक देखण्या पोरीचा विचार कर, पण तारा त्यांना म्हणते, "न देऊन काय करू सांगा, त्येचा पाय थारा न्हाई आज हितं तर उद्या तिथं गडी म्हणून जातोय. जोगतिनी, देवदासी, हुंगत गावभर हिंडतोय. संसाराला कवा लागायचा त्यो?" १ (पृ.५४ ) आपला भाऊ कोणत्याही वाममार्गाला लागू नये म्हणून ती सतत काळजी घेते.

एके दिवशी हाच भाऊ तिला भेटायला येतो तेव्हा ताराच्या नवऱ्याला ते खुपतं. तो म्हणतो, "रांडं! भावासंग गुलगुलू गोष्टी करत बसलीस" २ (पृ. १२१ ). सुख दुःखाच्या गाठीभेटी घेण्यासाठी आलेल्या भावाशीही बोलायला तिला दिलं जात नाही. एका बाजूला भाऊ तर दुसऱ्या बाजूला नवरा अशा द्विधा अवस्थेत तारा जगत असते. ते जगणं केवळ भावासाठी व नवऱ्याच्या भीतीपोटी सहन करते. ती त्यावेळी भावालाच समजावून म्हणते, "तू नि पोरंबाळं बसून तिकडंणच जावा, आलास बरं झालं. भेट हेच रग्गड झालं बघ."३ (पृ. १२१ ) तारा हे सारं सहन करत नाते संबंधांना जपत राहते.

लिंगाप्पा व आनसाचा सुखी संसार पाहून तीला आनंद वाटतो. आनसाच्या आजारपणात मात्र मदत करणे तिला अशक्य होते आणि एके दिवशी आनसाचा मृत्यू होतो. तिला या घटनेचे खूप दुःख होते. हतबल व हताशपणे ती आपल्या भावाच्या मोडलेल्या संसाराला पुन्हा उभं करण्यास तयार होते आणि एक दिवस पुन्हा दुसरं लग्न लिंगाप्पाचं करते. भावाच्या सुखात आपलं सुख पाहून स्वतःला धन्यता मानणारी तारा म्हणते, "दादाचा संसार तिकडं सुरळीत चाललाय, माझी मी कशी का असंना प्रपंच कराय लागलोयच. अशा वक्ताला मी का तुलाच एकटयाला अंगाला राख फासून बाबा हो म्हणणार हाय? तुझा येलइस्तार वाढाय नगं? तुझं सुख ते माझं सुख"४ (पृ.२६१ )

सुनेच्या वाटयाला येणारा सारा जाच ताराच्या वाटयालाही होता, छोटया सुनेला हाताखाली घेऊन सासू सारी कामे करून घेत असे. नंणदाही ताराशी भांडत असतात, तसेच नवराही सारखा मारबडव करत असतो. नुकतीच लग्नानंतर सासरी येते तेव्हा तिचा होणारा हा छळ पाहून ती माहेरी जायचा प्रयत्न करते. तेव्हाही तिला सासूरवास होतोच. पहिल्या व दुसरया बाळंतपणात ताराला मुली झालेल्या पाहून सासूने केलेला त्रागा खूप मोठा आहे. ती चिडून म्हणते, "आता माझ्या लेकाच्या पोटाला ऽ पोरींचच लेंढार गं ऽऽ बाई एकुलता योक रत्नासारखा जपलेला माझा ल्योक, त्येचा वंस बुडणार!"५ (पृ. ११ )

ताराच्या साससासर्‍याने देखील वारंवार त्रास देऊन ताराला हैराण केले होते. त्याला कारण म्हणजे ताराच्या बापाने पुतळया दिल्या नव्हत्या. याचे कारण पुढे करून घर दार तिला छळत होते, तिच्या पाठीवर कोयंडयाचे वळ उठत. प्रत्येक माराच्या वेळी नवरा म्हणायचा, "जा म्हायारा जा नि आण माझ्या पुतळया" ६ (पृ.१० ) हा छळ तिचा कायमचाच होता.

तब्येतीनं किरकोळ असलेली तारा, सासरच्या कामात थकून जाई. कधी कधी तर ती माहेरच्या घरी पळून गेलेली आढळते. पण पैलवानी प्रकृतीच्या नवऱ्याची भीती सारखी तिला वाटत असे. जर नवऱ्याने टाकली तर काय करावे या विचाराने ती घाबरून जात असे, ती देवाचा आधार घेते, उपास तापास करून देवापुढे आक्रोश करते, "देवा माझ्या नशिबाच्या कष्टाचं, छळाचं, माझ्या वनवासीपणाचं मला काय वाटत न्हाई, पर हया खेपंला

माझ्या पदरात पोरगी बांधू नगं, न्हाईतर दोन्ही पोरींसकट तुझ्या गावमुखाशेजारी डोस्कं फोडून घेऊन जीव देईन" ७ (पृ.१५ )

ताराचं ही भयावह आयुष्य ती मुग गिळून जगत होती. कारण मागे पुढे कोणीच आपलं असं नाही. म्हणून तिला या यातनेतून जावं लागत होतं. तिचा नाईलाज होता. पोरांच्या तोंडाकडे पाहून सारं ती सहन करत होती.नवÚयाच्या कामचुकारपणामुळे तिच्या घरातील दारिद्रं काही कमी होत नाही. अशातच पोरांचं लेंढार वाढत जातं. घरात पोरांना काय खाऊ घालायचं ३५ शीच्या आत ८ पोर झाल्यामुळे ताराच्या शरीराची अवस्था चिपाडासारखी दिसत होती. राब राबताना नवÚयाला म्हणजे, "बसून नुसती पोरं काढायला पाहिजेत, राबायला नगं, आयतं बसून खायला पाहिजे. हयेच्या त्येच्यावर डोळं वटारलं, दणकं दिलं की झाला हयेचा बापईपणा" ८ (पृ. ७८ ).

संसाराच्या रहाटगाडयाच्या चक्रात अडकलेल्या ताराच्या पोरांना मळयात कामं करावी लागतात. नि नवरा मात्र कामचुकारपणा करतो. त्यामुळे तारा वैतागते अशातच आनसा आजारी पडते तिला दवापाणी तारा करू लागते पण रतनू पोरीकडे ढुंकूनही पाहत नाही. म्हणून रागावून तारा नवर्यावर भडकते. "एवढी पोरं काढून ठेवलीस. त्येचं वेळपर्संग पडला तर निस्तराय नगं? पळपुटयासारखं मळयात तोंड घेऊन बसता व्हय? तुम्हांस्नीच राबून राबून पोरांनी किती घालायचं? त्येंचं कुणी बघायचं?"९ (पृ. २५० )

सांसारिक सहजीवन ताराच्या वाटयाला कधीही येत नाही. उलट अमानुषपणे तिच्यावर अत्याचार होतो, नवरा तर तिच्या मनाविरूद्ध पोरांना जन्म देऊन जणू बलात्कारच करतो. कितीही यातना, भोगाव्या लागल्या तरी भारतीय नारी तीही खेडयातील स्त्री ही नवÚयाचे घर कधीच सोडायला तयार होत नाही.

**सारांश :**

आनंद यादव यांच्या झोंबीतील ताराचे जीवनचित्र विविध पैलूच्या माध्यमातून मांडले आहे. एका अडाणी, ग्रामीण, कष्टाळू, प्रेमळ, संसारी, अगतिक स्त्री मनाच्या कथा-व्यथा ताराच्या चित्रणातून व्यक्त होते. जगातील कोणतीही स्त्री शोषणातून मुक्त नाही. पुरूषी वर्चस्वातून ती सुटलेली नाही, तारा असो की कोणत्याही वर्गातील, देशातील स्त्री असो तिचे दुःख, अजूनही सुखाचा, मुक्तीचा मार्ग शोधताना दिसते. तीने मुक्तीच्या वाटा स्वतःनेच शोधली तरच स्त्री मुक्त होईल. अशी मुक्ती स्त्रीला हवी. बापाच्या घरातून आलेली पोरगी नवÚयाच्या धावणीला कायम बांधली जाते. 'दिल्या घरी तू सुखी रहा' असे सांगितले जाते. कितीही संकटे आली तरी नवरयाच्या घराचा उंबरठा ती ओलांडून बाहेर पडू शकत नाही, आणि जर पडलीच तर कायमची या जगाचा निरोप घेतल्यावर. तीही तिरडीवरून अशा संस्कृतीत वाढलेल्या ताराला घर, कुटुंब, संस्कार, नातेवाईक अशा अनेक गोष्टीना बंधनाना जपावे लागते. समाज काय म्हणेल, त्यासाठी ती सामाजिक बंधनाला जपते कारण ती ग्रामीण स्त्री आहे.

**संदर्भटिपा:**

१ आनंद यादव; झोंबी, मेहता पब्लिकेशन, पुणे. पृष्ठ .७४
2 तत्रैव, पृष्ठ.१२१
3 तत्रैव, पृष्ठ .२२१
4 तत्रैव, पृष्ठ .२६१

5 तत्रैव, पृष्ठ .११

6 तत्रैव, पृष्ठ.१०

7 तत्रैव, पृष्ठ .१५

8 तत्रैव, पृष्ठ.७८

9 तत्रैव, पृष्ठ .२५०

**संदर्भग्रंथ सूची:**

१ आनंद यादव; ग्रामीणता: साहित्य आणि वास्तव, मेहता प्रकाशन, पुणे.

2 अश्विनी घोंगडे; स्त्रीवादी समीक्षा, स्वरूप आणि उपयोजन, दिलीपराज प्रकाशन, पुणे.

3 लीला पाटील; भारतीय स्त्री जीवन, मेहता पब्लिकेशन, पुणे.

4 आनंद यादव; साहित्य आणि वास्तव, मेहता पब्लिकेशन, पुणे.

5 रवींद्र ठाकुर; मराठी ग्रामीण कादंबरी, मेहता पब्लिकेशन, पुणे.

# मराठी विज्ञानसाहित्याची चळवळ

**प्रविणसिंह बहादूरसिंह शिलेदार**
सहा.प्राध्यापक,मराठी विभाग
देवचंद कॉलेज,अर्जुननगर

**गोषवारा**

इग्रंजीत ज्याला सायन्स फिक्शन असे म्हणतात त्यालाच मराठीत विज्ञानसाहित्य हा प्रतिशब्द रूढ झाला आहे. मराठीत हा साहित्यप्रकार अलिकडे म्हणजेच १९८० नंतर प्रकाशात आला. या वाङ्मय प्रकारावर पाश्चत्य विज्ञानसाहित्याचा प्रभाव आहे. पाश्चात्य देशातील औद्योगिक क्रांतीने विज्ञानाचे महत्त्व अधोरेखित केले. याची जाणीव संवेदनशील साहित्यिकांना झाली. इंग्लिश वाङ्मयात मेरी शेली यांनी ‘फ्रॅकेस्टाईन’ ही १८१८ साली विज्ञान कादंबरी लिहिली. तिला आद्य विज्ञान कादंबरी मानले जाते. मराठीत १९६० नंतर आलेल्या विविध वाङ्मयीन प्रवाहांच्या पाटोपाठ विज्ञानसाहित्यातही जाणीवपूर्वक लेखन होऊ लागले. यासाठी अनेक साहित्यिकांनी परिश्रम घेतले.

**प्रास्तविक**

विज्ञान तंत्रज्ञान हे मानवी जीवनाचे अविभाज्य भाग बनले आहेत. त्याशिवाय मानव जगूच शकत नाही अशी अवस्था निर्माण झाली आहे. विज्ञान तंत्रज्ञानाच्या वेगाने मानसाचे जीवन त्याच्या एका पिढीतच मोठ्या प्रमाणावर बदलू लागले. १९८० नंतर तरी हा बदलाचा वेग वाढला. वीस पंचवीस वर्षाच्या अंतरातच मानवी जीवनात मोठ्या प्रमाणात बदल घडून येऊ लागले. इतक्या वेगाने बदलणा-या जीवनाचा भविष्यातील वेध घेणे, अंदाज बांधने सुरू झाले. मानव आपल्या भविष्याबद्दल स्वप्न रंजनात राहू लागला. याचा परिणाम अनेक साहित्यिकांच्यावर झाला. Liturechar is the mirror of the society असे म्हणतात. समाजाचे वास्तव प्रतिबिंब साहित्यात उमटलेले असते. तसेच या आरशातून भविष्यातील समाजजीवनाचे प्रतिबिंबही उमटलेले असते. प्रा. विद्या सप्रे म्हणतात, ‘आजच्या विज्ञानकथा या द्रष्ट्यांची उद्यासंबंधीची स्वप्नंच असतात. सोप्या शब्दात विज्ञानकथा म्हणजे भविष्यातील संभाव्य जीवनाचा आरसा असही म्हणता येईल.’ ( (विज्ञान कथा स्वरूप आणि विशेष’ महाराष्ट्र साहित्य पत्रिका अंक क्र. २७४ पृ. ६५) प्रा. विद्या सप्रे यांनी विज्ञानसाहित्याला भविष्यातील जीवनाचा आरसा असे म्हंटले असले तरी आज वास्तवातील विज्ञान तंत्रज्ञानाचा परिणाम साहित्यातून दाखवणा-या आरशालासुध्दा विज्ञान साहित्यच म्हणावे असे वाटते. डॉ. शिवकुमार सोनाळकर म्हणतात, ‘विज्ञान आणि मानवीजीवन यांचे ऐक्य पाहता विज्ञानसाहित्य हेच जीवनसाहित्य बणनार आहे.’ (सोनाळकर (डॉ.) शिवकुमार, प्रास्ताविक, ‘मराठी साहित्य अवकाशातील संदर्भ’, प्राचार्य डॉ. प्रकाश कुंभार गौरव ग्रंथ, संपा. मोहन पाटील, पृ. २१९) ते खरेच आहे. विज्ञानसाहित्य हे जीवनसाहित्यच आहे. असे आज म्हणायला काहीच हरकत नाही. अशा जीवन साहित्याकडे साहित्यिकांची दृष्टी वळणे नैसर्गिकच आहे. मानवी जीवनाचा भाग झालेल्या विज्ञानावर आधारित विज्ञान विषयक साहित्याची निर्मिती अशा प्रतिभावान लोकांकडून होऊ लागली. ‘प्रकाश बुरटे यांनी विज्ञान काव्याला भावनात्मक आणि करणात्मक संकल्पना मानतात.’ (बुरटे, प्रकाश; ‘युगाणि आणि त्यांची भूमिका’ चर्चा सत्यकथा, ऑगस्ट,१९७७, पृ.५८) बुरटेंच्या मताचा विचार करता असे म्हणता येईल की,

ललितसाहित्याचे वैशिष्ट्य 'भावनात्मकता' आणि विज्ञानाचे वैशिष्ट्य 'कारण' यांच्या मिलनातून विज्ञान साहित्याची निर्मिती झाली आहे. असा एक नवा प्रवाह मराठी भाषेत निर्माण झाला तो प्रवाह म्हणजे 'विज्ञानसाहित्य' होय. इंग्रजीमध्ये ज्याला 'सायन्स फिक्शन' म्हणतात त्याला मराठीत 'विज्ञान साहित्य' असे म्हटले जाते. सायन्स फिक्शन या संज्ञेला मराठीत पर्याय म्हणून विज्ञानसाहित्य हे नाव स्विकारले गेले. हे नाव मराठी विज्ञान परिषद आणि मंबई विद्यापीठाचा मराठी विभाग अशा मोठ्या व मान्यताप्राप्त संस्थांनी स्विकारल्यामुळे हे नाव मराठीत सहजरित्या रूजले. आज विज्ञानसाहित्य हे नाव मराठीत पूर्णपणे रूळलेले आहे.

**विज्ञानसाहित्याचे वेगळेपण**

साहित्य ही संज्ञा सर्जनशील साहित्य या अर्थाने वापरली जाते; तसेच ती कथात्मक साहित्य म्हणूनही वापरली जाते. काव्य, कथा, कादंबरी, नाटक हे सर्व प्रकार यात समाविष्ट होतात. सर्जनशील साहित्यकृती ही सदैव स्वतंत्र, स्वयंपूर्ण आणि परिपूर्ण कृती असते. आणि असायला पाहिजे. या अर्थाने विज्ञान साहित्यसुध्दा स्वतंत्र, स्वयंपूर्ण आणि परिपूर्ण कृती आहे. विज्ञान साहित्याचा विज्ञान विषयक माहिती हा दुय्यम हेतू आहे. तर त्याचा मूळ हेतू इतर साहित्य प्रकारांप्रमाणे आनंद देणे हाच आहे. तशाच प्रकारे इतर साहित्य प्रकारांप्रमाणे मराठी विज्ञानसाहित्याचा मूख्य केंद्र मानव आहे. हे साहित्य विज्ञानाच्या प्रगतीचा मानवावर काय परिणाम होतो याचे चित्रन करते. विज्ञान साहित्याचे वेगळेपण स्पष्ट करताना डॉ. सदाशिव देव म्हणतात, "थोडक्यात विज्ञान साहित्याचे वेगळेपण विज्ञानशोधाचा भविष्यकाळातील वेध घेणे या मुद्यात साठवले आहे." (मराठी विज्ञान साहित्य, संपा. डॉ. म. सु. पगारे पृ.२१) म्हणजेच विज्ञान सहित्य हे भविष्यावर भाष्य करते. हे विज्ञान साहित्याचे वेगळेपण लक्षात घेतले पाहिजे.

भारत हा विविध भाषांनी संमृध्द असणारा देश आहे. भारतातील प्रत्येक राज्याची एक वेगळी भाषा आहे. त्या त्या राज्याच्या भाषेमध्ये त्यांचे - त्यांचे साहित्य विकास पावताना दिसते. मराठीतील विज्ञान साहित्याचा विचार करता, इतर भाषातील विज्ञान साहित्यापेक्षा मराठीत विज्ञानसाहित्याचा विकास खूप मोठ्या प्रमाणात झालेला दिसतो. इतर भाषेतील विज्ञान साहित्य व मराठीतील विज्ञानसाहित्य या बद्दल बाळ फोंडके म्हणतात, "विज्ञानाच्या प्रगतीमुळे आपल्या कौटुंबिक, आर्थिक, राजकीय, वैश्विक जीवनाच्या घडामोडी होत असतात. त्यांचे चित्रण विज्ञानकथांमधून केलेले असते. युरोप - अमेरिकेत अशा कथा गेली २०० वर्षे लिहिल्या जात आहेत. जयंत नारळीकर यांनी कथालेखनाला आरंभ केला तेव्हापासून विज्ञानकथांना प्रतिष्ठा प्राप्त झाली. भारतीय विज्ञानकथांमध्ये तर मराठीचा निःरांशय प्रथम क्रमांक लागतो." (फोंडके बाळ, 'ललित', मुंबई, जुलै,१९८८, पृ. ५९) म्हणजेच मराठी भाषेतील विज्ञान साहित्य लिहिणा-या लेखकांनी भविष्यातील विज्ञानाचा अंदाज बांधून अनेक विषय अपल्या लेखनात आणले आहेत. तसेच ते समर्पक रितीने मांडण्याचा प्रयत्नही केलेला आहे असे म्हणण्यास हरकत नाही.

**जयंत नारळीकरांचे लेखन आणि विज्ञानसाहित्य चळवळ**

मराठी विज्ञान साहित्याची सुरूवात विसाव्या शतकापासून झाली. इसवी सन १९१५ मध्ये श्रीधर बाळकृष्ण रानडे यांनी 'तारेचे रहस्य' ही पहिली विज्ञान कथा वाचकांना सादर केली. ती मासिक मनोरंजनात प्रसिध्द झाली. वा. म. जोशींनी विज्ञान कथा या वाड्.मय प्रकाराचा आरंभ केला. असेही म्हटले जाते. (घाटे निरंजन, 'मॅजेस्टिक गप्पा', ललित, मुंबई, मे, १९८४ पृ. ४६) तेंव्हापासून १९७९ पर्यंत तिचे स्वरूप अत्यंत क्षीण

होते. या कालखंडात तिच्यावर पाश्चात्य विज्ञान साहित्याचा प्रभाव होता. कारण १९५५ च्या आगेमागे अमेरिकेत विज्ञान साहित्याचे सुवर्ण युग येऊन गेले होते. अमेरिकेतील या विज्ञान युगाचा प्रभाव जगातील सर्व देशांवर पडला होता. मराठीत १९५६ पासून अनंत अंतरकर हे 'नवल' मधून सतत विज्ञानकथा प्रसिध्द करत होते. पण १९७९ हे वर्ष विज्ञान साहित्याच्या अनुषंगाने मराठी साहित्यिकांचे आणि समीक्षकांचे लक्ष वेधून घेणारे ठरले. कारण या वर्षी डॉ. जयंत नारळीकरांचा 'यक्षाची देणगी' हा कथासंग्रह प्रसिध्द झाला. इथून पुढे विज्ञान साहित्याला मराठी साहित्यात एक वेगळे स्थान मिळू लागले. नारळीकर हे भारत देशातील मोठे संशोधक आहेत. अशा एका महान संशोधकाने मराठीत विज्ञान कथा आणि कादंबरी लेखन केले यावरूनच या वाड्.मय प्रकाराचे महत्त्व लक्षात येते. डॉ. नारळीकरांच्या लेखनामुळे हा लेखन प्रकार बालकथा, भयकथा, रहस्यकथा किंवा गूढकथा नसून ती विज्ञानकथाच आहे हे सिध्द झाले. या बद्दल निरंजन घाटे म्हणतात. "इतके दिवस दुर्लक्षित ठरलेली विज्ञानकथा ऊच्चभ्रू दिवाणखान्यात आली, वाचली गेली की नाही हे सांगणं अवघड आहे. नारळीकर लिहायला लागल्यामुळं आणखी एक गोष्ट घडली. ती म्हणजे मराठीत विज्ञानकथेचं समीक्षणही होऊ लागलं. साहित्य समेलनांतून विज्ञानकथांचा उल्लेख होऊ लागला." (घाटे, निरंजन. 'मराठी विज्ञानसाहित्य', संपा. प्राचार्य, डॉ. म. सु. पगारे, पृ. ५१)

नारळीकरांच्या लेखनाने ख-या अर्थाने विज्ञान साहित्यावर चर्चा होऊ लागली. अनेक वृत्तपत्रे मासिकांतून या विषयावर लेख प्रसिध्द होऊ लागले. एका नव्या वाङ्मय प्रकाराला मराठी साहित्यित स्थान मिळवून देण्यासाठी चळवळ उभी राहू लागली. याचा अर्थ नारळीकरांच्या आधी नारायण धारप, भागवत, निरंजन घाटे अनिल डांगे यांनी लिहिलेल्या कथा, कादंब-याना महत्त्व नव्हते असे नाही. अनिल डांगे यांच्या लेखनाबद्दल सुकन्या आगाशे म्हणतात, "भोवतालच्या यांत्रिक पसा-याकडे पाहण्याची एक दृष्टी डांग्यांनी वाचकांना दिली. त्यांच्या विज्ञानाभिमुख आधुनिक मानसिकतेने आजच्या तंत्रक्रांतीच्या काळातील ताण-तणावांकडे पाहण्याचे हे एक कवाड किलकिले केले असे म्हणता येईल",(आगाशे, सुकन्या; 'अनिल डांगे यांचे आभासमय कथाविश्व', सत्यकथा, मुंबई, दिवाळी अंक, १९७९, पृ. ७६) या सा-या लेखकांचे विज्ञानसाहित्याला प्रवाहात आणण्याचे प्रयत्न सुरू होतेच, पण नारळीकरांचे एक स्थान, एक पोझिशन, त्यांचे व्यक्तिमत्त्व एक वेगळ्या प्रकारचे असल्यामुळे सर्वसामान्य लोकांना त्यांच्या लेखनाचे विशेष महत्त्व जानवले. लोक आवडीने विज्ञान कथा, कादंब-या वाचू लागले. त्यातून अनेक लेखकांना प्रेरणा मिळाली. आणि अनेक समीक्षकही या साहित्याकडे आदराने पाहू लागले.

या नंतरची महत्त्वाची घटना म्हणजे 'मुंबई विद्यापीठातील मराठी विभाग' आणि 'मराठी विज्ञान परिषद', मुंबई यांच्या संयुक्त विद्यमाने 'विज्ञानसाहित्य' (सायन्स फिक्शन) या विषयावर एक चर्चासत्र घेतले गेले. हे चर्चासत्र दिनांक ५ आणि ६ फेब्रुवारी, १९८३ रोजी झाले. अनेक नामवंत लेखक, समीक्षकांनी यात सहभाग नोंदविला. त्यात निरंजन घाटे, व. दि. कुलकर्णी, सुबोध जावडेकर, बाळ फोंडके, जयंत नारळीकर, आ. ना. पेडणेकर, रमेश सरकार, रा. वि. सोहनी, चंद्रकांत पाटील, भालबा केळकर, भा. मा. उदगावकर, भय्या पवार हे अग्रणी होते. या चर्चा सत्रात अनेक विषयावर सविस्तर चर्चा झाली. त्या चर्चासत्रातून विज्ञान साहित्याची संकल्पना, स्वरूप व वैशिष्ठे या भागांवर विशेष लक्ष्य केंद्रित केले गेले. त्या नंतर १९८५ साली नागपूर येथील विदर्भ साहित्य संघ, १९८६ चा पूणे येथील महात्मा ज्योतीबा फुले वस्तू संग्रहालय, १९९० साली मुंबई येथील श्रीमती नाथीबाई दामोदर ठाकरसी विद्यापीठ यांनी व इतर अनेक संस्था, महाविद्यालयांमध्ये विज्ञान

साहित्यावर चर्चासत्रे, स्पर्धा, संमेलने, मेळावे भरविले. आणि विज्ञान साहित्याला प्रोत्साहन देण्याचा प्रयत्न केला. यातच आणखी एक महत्त्वाची गोष्ट म्हणजे २००३ मध्ये गोमंतकात गोवा विद्यापीठाच्या मराठी विभागाच्या वतीने 'मराठीतील विज्ञान साहित्य सद्यस्थिती आणि आव्हाने' या विषयावर दिनांक १५ व १६ डिसेंबर रोजी दोन दिवसिय चर्चासत्राचे आयोजन केले. त्या चर्चासत्रात विज्ञान साहित्यावर सांगोपांग चर्चा झाली. या सर्व प्रयत्नाबद्दल डॉ. सु. म. तडकोडकर म्हणतात, "विज्ञानसाहित्य एक प्रकारे जनमानसात मुरावे यासाठी व्रतच घेतल्यासारखे प्रयत्न होत होते. हे वास्तव आपण ध्यानात घेतले पाहिजे, ही आयोजने 'विज्ञानसाहित्य' या संज्ञेच्या प्रसारासाठीही पूरक आणि पोषक होती." (मराठी विज्ञान साहित्य, संपा. डॉ. म. सु. पगारे पृ. ६७) १९१५ साली पहिली विज्ञान कथा प्रसिध्द होऊनही १९९० पर्यंत विज्ञानसाहित्याच्या संदर्भात जी काही चर्चासत्रे स्पर्धा समेंलने भरविली जात होती ती सर्व विज्ञान साहित्य म्हणजे काय? त्याची संकल्पना, स्वरूप, आणि त्याचा आस्वाद कसा घ्यावा या संदर्भात चर्चा करण्यासाठी होती. या वाङ्मय प्रकाराला मराठीत मानाचे स्थान मिळवून देण्यासाठी होती. अनेक विज्ञान लेखकांना प्रोत्साहन देण्यासाठी होती.

**सरांश**

मराठी विज्ञानसाहित्य जनमानसात रूजावे, या साहित्य प्रकाराची लोकप्रियता वाढावी यासाठी विज्ञान लेखकांनी अनेक परिश्रम घेतले. विज्ञानसाहित्याची संकल्पना ठरविण्यापासून हा वाङ्मय प्रकार इतर वाङ्मय प्रकाराप्रमाणे मानवाचेच जीवन चित्रण करतो. हे ठसविण्याचा प्रयत्न केला. यात येणारे विज्ञान हे मानवी जीवन चित्रणाचा एक अपरिहार्य भाग आहे. या जरी विज्ञान कथा असल्या तरी त्या विज्ञानाचा मानवावर काय परिणाम होतो हे या साहित्यात मांडलेले असते. या वाङ्मय प्रकाराचे एक महत्त्वाचे विशेष म्हणजे हा वाङ्मय प्रकार मानवाचे भविष्यातील जीवन चित्रण करतो.

**संदर्भ ग्रंथ**

१) सप्रे (प्रा.) विद्या, 'विज्ञान कथा स्वरूप आणि विशेष', महाराष्ट्र साहित्य पत्रिका अंक क्र.२७४, पृ. ६५
२) सोनाळकर (डॉ.) शिवकुमार, प्रास्ताविक, 'मराठी साहित्य अवकाशातील संदर्भ', प्राचार्य डॉ.प्रकाश कुंभार गौरव ग्रंथ, संपा. मोहन पाटील, पृ.२१९
३) बुरटे, प्रकाश; 'युगाणि आणि त्यांची भूमिका' (चर्चा) सत्यकथा, ऑगस्ट,१९७७, पृ.५८
४) देव (डॉ.) सदाशिव, 'मराठी विज्ञान साहित्य', संपा. डॉ. म. सु. पगारे पृ. २१
५) फोंडके, बाळ.'ललित', मुंबई, जुलै,१९८८, पृ. ५९
६) घाटे निरंजन, 'मॅजेस्टिक गप्पा', ललित, मुंबई, मे, १९८४ पृ. ४६
७) घाटे, निरंजन; 'मराठी विज्ञानसाहित्य', संपा. प्राचार्य, डॉ. म. सु. पगारे, पृ. ५१
८) आगाशे, सुकन्या; 'अनिल डांगे यांचे आभासमय कथाविश्व', सत्यकथा, मुंबई, दिवाळी अंक,१९७९, पृ.७६
९) मराठी विज्ञान साहित्य, संपा. डॉ. म. सु. पगारे पृ. ६७

# साहित्यातून प्रतिबिंबीत होणारे अर्थशास्त्रीय विचार

**प्रा.डॉ.यशवंत धनाप्पा हरताळे**
अर्थशास्त्र विभाग,
विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापूर
yashwanthartale@gmail.com

**प्रस्तावना :–**

मानवी जीवन सुकर होण्यासाठी आर्थिक घटकांची गरज भासते. तर साहित्य हे मानवाचे मनोरंजन, अध्यात्म चारित्र्य घडविणारे भौगोलिक परिस्थितीचे भान ठेवून साहित्य प्रसार केले जाते. म्हणजे खऱ्या अर्थाने साहित्य हा मानवी जीवनाचा कळस आहे, तर अर्थशास्त्र हा त्याचा पाया आहे. अर्थशास्त्रातून मानवी जीवनाचे नियोजन असते व साहित्यातून मानवी जीवनाचे भावविश्व, विचार, सामाजिक बांधिलकी व विश्वासात्मकता सांधली जाते. साहित्य हे सद्यस्थितीवर त्याची मांडणी करुन प्रकाशित केले जाते. तर अर्थशास्त्र सद्यस्थितीचा आर्थिक आधार या घटकावर विकसीत होत असते. तसेच अर्थव्यवस्थेतील अनेक घटकांचा अनेक अंगाने अभ्यास करुन त्याचे फलीत साध्य करण्याचा प्रयत्न करीत असते. तर साहित्य लेखनामध्ये कथा, कादंबरी, नाटक, प्रवास वर्णन, कविता असे ललीत साहित्य येते. त्यामुळे साहित्य लेखनाला मानवी जीवनाचा एक मूलभूत कल मानला जातो. तर अर्थशास्त्र असे ललित वाङ्‌मय प्रकाशित केल्यानंतर त्याचे मुल्य / किंमत घेत असते. तर अलीकडच्या काळात अशाप्रकारचे साहित्य ई माध्यमाद्वारे, चित्रपट निर्मितीद्वारे, दुरदर्शन, वृत्तपत्र यासारख्या प्रसार माध्यमांच्या मधून येत असते. माणसाचे रंजन करणारे साहित्य हे अर्थशास्त्रीयदृष्ट्या महत्वाचे असते. कारण कथा, कादंबऱ्या, नाटके, आत्मचरित्रे, पुस्तके, साहित्यलेखन, पटकथा, संवाद, गीते, गोंधळगीते, चारोळ्या, कविता संग्रह, नाट्य दिग्दर्शक कथा, व्यक्तींची चरित्र ग्रंथ, लेखकांची पुस्तके प्रकाशित करणे, छापणे व त्यांची विक्री करणे, त्यातून भांडवल निर्मिती साध्य करणे या घटकातून खऱ्या अर्थाने साहित्य, वाङ्‌मय बाबींपासून अर्थप्राप्ती झाल्याचे दिसून येते.

मराठी साहित्यात केशवसुतांचे सामाजिक योगदान अतिशय मोलाचे आहे. त्यांनी त्यांच्या साहित्यातून कवितेचा आशय, अभिव्यक्तीचे स्वरुप काळानुसार बदलते ठेवले आहे. संत, पंत आणि तंत अध्यात्म ईश्वरभक्ती नितीचा, उपदेश देवकथा, संतचरित्रे, वीर पुरुषांचे वर्णन करणारे पोवाडे, लावणी, इत्यादी साहित्याच्या माध्यमातून साहित्यिकांची अर्थप्राप्ती दिसून येते. म्हणूनच साहित्य शास्त्रातून अर्थप्राप्ती निर्मित होत असते.

कि नोट :– साहित्याचे अर्थशास्त्रीय विचार.

**उद्दीष्टे :–**

१) आर्थिक घटकाने मानवी जीवन समृद्ध बनते.
२) साहित्य हे मानवी जीवनाचे एक मनोरंजनाचे व त्या त्या भावविश्वाचे अंग आहे.
३) साहित्यातून अर्थप्राप्तीचा विकास होतो.

**साहित्य संशोधनाची पद्धती :–** साहित्य व अर्थशास्त्र ही सामग्री प्राथमिक व दुय्यम सामग्रीवर आधारीत आहे.

साहित्यातून अर्थप्राप्ती करण्यासाठी प्रथम साहित्याचे अवलोकन करावे लागते. साहित्य लिखाण करणारा लेखक, कवी, याला त्याच्या लिखाणाच्या सामग्रीचे मानधन स्वरुपात किंवा पुस्तकाच्या किंवा संग्रहाच्या विक्रीवरील प्रकाशकाकडून मिळणारा मोबदला, म्हणजे त्या पुस्तकाची त्याला वर्षानुवर्षे रॉयल्टी मिळत असते. उदा.शिवाजी सावंत यांनी मृत्यूंजय ही कादंबरी लिखाण केल्यामुळे या कादंबरीच्या विक्रीतून त्यांना मिळणारी रॉयल्टी ही त्या लेखकाची एक अर्थप्राप्ती असते. त्याचप्रमाणे मराठी साहित्यातील कवी लेखक

केशवसूत यांची अनेक साहित्य कथा, कादंबऱ्या, नाटके, लघुकथा, तुतारी, या साहित्यातून त्यांचे भावविश्व व भावमुल्ये दिसून येतात. त्याचे साहित्य म्हणजे इंग्रजी मधील 'सॉनेट' या साहित्याची मराठीमध्ये 'सुमित' साहित्य निर्माण केले. असे साहित्य त्यांनी मांडली आहेत. त्या साहित्यातून अर्थप्राप्ती सुध्दा मोठ्या प्रमाणात होत होती.

साहित्याची अनेक मुल्ये सांगता येतील. मराठी साहित्याची मुल्ये, दलित साहित्याची मुल्ये, संविधानिक मुल्ये, संस्कृत साहित्याची मुल्ये, संस्कृत साहित्यात काव्याला साहित्य म्हंटले जाते. काव्याची मुल्ये हीच साहित्याची मुल्ये म्हणून मानली जात आहेत.

तर मराठी साहित्यात समिक्षकांनी साहित्य हे कलावादी व जीवनवादी या प्रवाहात विभागले आहे, प्रत्येक कलाकार, लेखक, कवी यांची कला एक आत्मशक्ती असते. त्या शक्तीला उत्पन्नाची साथ दिली असतां, साहित्यातून बऱ्याच मोठ्या प्रमाणात आर्थिक जीवन विकसीत होत असते. त्याचे काही घटक पुढील प्रमाणे सांगितले आहेत.

१) चित्रपट निर्मिती व वितरण :- एखाद्या साहित्य कथेवर आधारीत चित्रपट निर्मिती होत असते. चित्रपट निर्माण करणारा दिग्दर्शक असतो, त्याला त्याच्या भावविश्वाप्रमाणे कथेत रंग भरण्यासाठी कलाकाराची गरज असते. कलाकाराच्या जीवावर चित्रपट निर्माण करणे, प्रदर्शित करणे, त्यातून दिग्दर्शकाला बऱ्याच मोठ्या प्रमाणात अर्थसहाय्य मिळत असते. असे अर्थसहाय्य दिग्दर्शक कलाकारांनाही देत असतो. त्यामुळे कलाकारांची प्रसिध्दी व उत्पादनाचा मार्ग उभा राहतो.

२) पटकथा लेखक :- अनेक विषय डोळ्यासमोर ठेवून लेखन करणारा लेखक / संशोधक हा आपल्या विचाराने साहित्याच्या आधाराने एका कथेची मांडणी करत असतो. ही मांडणी समाजमनावर बिंबवण्यासाठी कथेचे चांगल्याप्रकारे रसग्रहण करावे लागते. त्यातून त्याची पटकथा निर्माण होते. ती पुस्तकरुपाने प्रकाशित करण्यासाठी प्रकाशकाच्याकडे स्वाधीन करुन छापली जाते व त्या कथेच्या पुस्तकाला ठराविक रक्कम प्रस्तावित केली जाते. अशी रक्कम प्रकाशक लेखक यांच्यामध्ये वितरीत केली जाते.

३) संवाद कौशल्य :- लेखक, अभिनेता, कथाकार, गायक, प्रसिध्द क्रिकेटर, खेळाडू, वक्ता यांच्याकडे सहज बोलण्यासारखे काही विशेष अशी संवाद कौशल्य आत्मसात केली जातात. ती पुस्तकरुपाने / दुरदर्शन माध्यमाने ऑनलाईन (ई माध्यम), यू ट्यूब द्वारे प्रकाशित केली असतां उत्पन्नाचा मार्ग दिसून येतो.

४) फोटोग्राफी :- राजकीय नेते, संत, साहित्यिक, कवी, मोठे लेखक, आंतरराष्ट्रीय कीर्तीचे खेळाडू, महात्मे, देवादिकांचे फोटो आज ई माध्यमाद्वारे देवाण-घेवाण केली जाते. यू ट्यूबवर फोटो देवाण-घेवाण केले तर त्यातून उत्पन्नाचा मार्ग निर्माण होत असतो.

५) अल्बम :- विविध प्रकारच्या गाण्याचे अल्बम, विधी प्रसंगाचे अल्बम, यांची ई माध्यमाद्वारे देवाण-घेवाण केली तर उत्पन्न उभे राहू शकते.

६) नेट / इंटरनेट :- नेट/इंटरनेट च्या माध्यमातून विविध प्रकारच्या साहित्याची देवाण-घेवाण अधिक प्रमाणात करण्यात येत आहे. देवाण-घेवाणीचे उत्पन्न व नेट कम्युनिकेशनचे उत्पन्न दोन्ही मार्गाने साहित्यिकांत उत्पन्न मिळत असते.

७) प्रकाशक :- विविध प्रकारचे साहित्य छपाई करुन तो अधिक प्रमाणात वितरण करीत असतो. पण प्रत्येक प्रकारचे साहित्य दर्जेदार व अधिक मुल्ये विकसीत केलेल्या सहित्याचे व लेखकाचे साहित्याची दर्जेदार अशा पुस्तकाच्या किंमती असतात. त्यामुळे साहित्याच्या दर्जावरुन साहित्याची किंमत ठरत असते. त्यावरुन त्यांना ज्यादा नफा मिळत असतो. साहित्यिकांचे साहित्य दर्जेदार नसेल तर प्रकाशकाना काही प्रमाणात तोटा होण्याची शक्यता असते. (आण्णाभाऊ साठे- साहित्यातून फार मोठे झाले पण उत्पन्नाच्या बाजूने कमी पडले.)

८) लेखक :- लेखकाने त्याचे साहित्य दर्जेदार असेल तर त्याच्या साहित्याला देश, प्रदेशातून सुध्दा मोठ्या प्रमाणात मागणी वाढू लागते. जेवढ्या प्रमाणात त्यांच्या साहित्याची विक्री होते तेवढ्या प्रमाणात त्यांच्या साहित्याची रॉयल्टी लेखकाना मिळत असते. म्हणजे साहित्यातून उत्पन्नाचा मार्ग सुद्धा मोठ्या प्रमाणात निर्माण होतो असे दिसते.

९) ई (ए) माध्यमाद्वारे साहित्य प्रसारण :- अनेक लेखक, कवी, डॉक्टर, इंजिनियर यांची प्रसिद्धी यू ट्यूबच्या माध्यमातून मोठ्या प्रमाणात प्रसारीत होत आहे. त्यामुळे त्यांना एका बाजूला साहित्याची प्रसिद्धी तर दुसऱ्या बाजूला त्याच्या उत्पन्नाचा मार्ग दिसून येतो. भारुडे, गोंधळ गीत, व्याख्याने (नवनवीन उत्पादन तंत्रे), नाटकाचे अनेक प्रयोग, नाटके, कथा, कादंबऱ्या, ई (ए) माध्यमाद्वारे प्रसारीत केल्यातर ई माध्यमाद्वारे सुद्धा उत्पन्नाचा मार्ग उभा राहतो आणि नाटकांना, कथांना साहित्यिकांना व्याख्यानातून / सामाजिक घटकाकडून सुद्धा उत्पन्नाचा मोठा मार्ग उपलब्ध होतो.

१०)चित्रिकरण :- अनेक साहित्याचे चित्रिकरण करणाऱ्या व्यक्तीला सुद्धा समाज माध्यमाकडून व दिग्दर्शकाकडून सुद्धा मोठ्या प्रमाणावर उत्पन्नाचा मार्ग दिसून येतो.

११)चित्रपट हा तर एक स्वतंत्र व्यवसाय :- साहित्यिकांच्या अनेक प्रकारच्या साधनांवर दिग्दर्शकांना अनेक पटकथा साध्य करुन चित्रपट, नाटक, दुरदर्शन वरील कार्यक्रम प्रसारीत केले जातात. त्यांना समाज माध्यमाकडून उत्पन्नाचा ओघ असतोच. शिवाय तंत्रज्ञांना, कलाकारांना, दिग्दर्शकांकडून आणि सरकारकडून रॉयल्टी मोठ्या प्रमाणात प्राप्त होत असते. तसेच दिग्दर्शकांना जाहिरातीच्या माध्यमातून बराच पैसा मिळत असतो. म्हणजे खऱ्या अर्थाने साहित्याच्या अर्थाजनासाठी वापर करुन साहित्यातून उत्पन्नाचा मार्ग शोधणे हा चित्रपट निर्मात्याचा व कलाकाराचा एक स्वतंत्र व्यवसाय आहे. म्हणून अलीकडच्या काळात कलेचे अर्थशास्त्र समजून घेणे महत्वाचे आहे.

१२)ऑनलाईन साहित्य लिखाण, स्पर्धा व साहित्य संमेलने :- अलीकडच्या काळात ऑनलाईन साहित्याचे लेखन स्पर्धा भरविल्या जातात, आण्णाभाऊ साठे, केशवसूत, ग.दी.माडगूळकर, डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर, बाबूराव बागूल, बहिणाबाई चौधरी, महात्मा फुले, सावित्रीबाई फुले, शाहू महाराज यांच्या जीवन चरित्रावरती व्याख्याने, लिखाण स्पर्धा, निबंध स्पर्धा आयोजित करुन सामाजिक व सार्वजनिक घटक अर्थसहाय्य मागवून असे कार्यक्रम केले जातात. त्यातून बक्षीस वाटपाच्या माध्यमातून अर्थसहाय्य समाजघटकांना दिला जातो. तसेच थोर व्यक्तींच्या व समाज सुधारकांच्या नांवाने ग्रामीण साहित्य संमेलने यांना शासनाकडून रु.१०,०००/- मानधन मिळते. समाज वर्गणीतून उत्पन्न गोळा केले जाते. यातून अर्थप्रवाह साहित्याकडे साहित्याकडून अर्थप्राप्तीकडे ओघ चालू असतो.

१३)आम्ही बाल कवी साहित्य संमेलन :- आम्ही बालकवी अशी संस्था स्थापन करुन शासनाकडून दरमहा / वार्षिक आर्थिक वर्गणी उभी केली जाते.

१४)विश्व साहित्य संमेलन :- अनेक साहित्यिक लोक एकत्र येवून असे विश्व साहित्य संमेलन भरविले जाते. याला शासनाकडून २५ लाख रुपये अनुदान मिळत असते. समाज वर्गणीतून / मोठ मोठ्या संस्थांच्या जाहिराती प्रकाशित करुन, मानधन गोळा केले जाते. असे मानधन साहित्यिकांना सुद्धा देण्यात येते. कारण त्यांच्या कथा, कविता, लेख, त्यांचे आगळे वेगळे साहित्य प्रकाशित केल्यामुळे प्रसिद्धी व उत्पन्न सुद्धा मिळत असते. म्हणजे उत्पन्नाच्या मार्ग साहित्याचा आधार जोडला जातो.

१५)प्रायोगिक उपक्रम राबविणे :- साहित्यातून निर्माण होणारे विविध उपक्रम राबविण्यासाठी शहरातील नाट्यगृहे, उपलब्ध शाळा, कॉलेज, विद्यापीठ स्तरावरील विद्यार्थी, साहित्यिक प्रायोगिक तत्वावर नाटकाचे प्रयोग, साहित्य वाचन, कला प्रसारीत करीत असतात. त्यांना समाज माध्यमातून वर्गणीच्या रुपाने अर्थसहाय्य प्राप्त होत असते.

**समारोप :-**

मानवी जीवनात आर्थिक घटकाचा मार्ग महत्वाचा असतो, तर साहित्यातून मानवी जीवनाचे भावविश्व निर्माण होवून त्यातून त्यांना आर्थिक घटकाचा लाभ प्राप्त होतो. कोणतेही साहित्य मानवाला विकसीत करण्यासाठी उदयास येत असते. म्हणून साहित्य व अर्थ या एकाच नाण्याच दोन बाजू आहेत.

**संदर्भ :-**

१) साहित्य विचार - प्र. आ. कुलकर्णी
२) भारतीय साहित्य विचार - श्री. ब. लू. सोनार
३) दलित साहित्य - बाबूराव बागूल
४) भाऊचा कट्टा - प्रा.भाऊसाहेब गोसावी.
५) अर्थजगत - लोकमत वृत्तपत्र २२ मार्च २०१९

# बालविवाह व बालाजरठविवाह विरोधी सुधारणा चळवळ आणि मराठी नाटक

## (स्वातंत्र्य पूर्वकाळ)

**प्रा. डॉ. दत्ता पाटील**
मराठी विभाग प्रमुख,
डॉ. घाळी कॉलेज, गडहिंग्लज, जि. कोल्हापूर.

**प्रास्ताविक :**

महाराष्ट्रात स्वातंत्र्यपूर्वकाळात स्त्री सुधारणेसंदर्भात विविध चळवळी उदयास आल्या. यामध्ये स्त्री शिक्षणाप्रमाणेच बालविवाह व बालाजरठ विवाहविरोधी आणि आंतरजातीय विवाहविषयक जागृतीची चळवळ ही एक महत्त्वाची चळवळ होय. या चळवळींच्या अनुषंगाने लोकहितवादी, भाऊ महाजन, दादोबा पांडुरंग तर्खडकर, विष्णुबुवा ब्रह्मचारी, आंबालाल साकरलाल देसाई, म.जोतीराव फुले, विष्णुशास्त्री पंडित, न्या रानडे, शंकर मोरो रानडे, गणेश रामचंद्र किर्लोस्कर, भास्कर बल्लाळ निमकर, गो. ग. आगरकर, डॉ. भांडारकर, पं. रमाबाई आदीनी केलेल्या विचारकार्याचा प्रभाव तत्कालीन मराठी नाटकातील आशयावर झाला आहे. याचा विचार याठिकाणी अभिप्रेत आहे.

स्वातंत्र्यपूर्वकाळातील अनेक संवेदनक्षम लेखकांवर या सुधारणावादी चळवळींचा प्रभाव होणे अगदी अपरिहार्य होते. कारण हे नाटककार एकतर चळवळीतील धुरीण किंवा कार्यकर्ते होते अथवा चळवळीविषयी आस्था असणारे असे होते. त्यामुळे या समाजस्थितीचे अर्थात मध्यमवर्गीयांच्या व सामान्यांच्या जीवन आणिवांचे, त्यांच्या समस्यांचे व त्या समस्या नष्ट करण्याविषयी उदयास आलेल्या वेगवेगळ्या चळवळींचे प्रतिबिंब तत्कालीन मराठी नाटकांत उमटणे अगदीच स्वाभाविक होते. विशेषत: या काळातील महाराष्ट्रात स्त्री सुधारणेविषयी (वरील प्रश्नांविषयी) विचारांचे जे वारे वाहत होते व मतभेदांच्या ज्या वावटळी उठत होत्या त्यातच या नाट्यकृतींच्या निर्मितीच्या प्रेरणा आढळतात. त्या दृष्टीने बालविवाह व बालाजरठ विवाहविरोधी आणि आंतरजातीय विवाहविषयक जागृतीच्या चळवळींचा प्रभाव तत्कालीन मराठी नाटकांतील आशयावर कसा झाला आहे याचा विचार याठिकाणी केला आहे. या दृष्टीने 'व्यवहारोपयोगी नाटक' गो. ना. माडगावंकर (१८५७), 'तरुणीशिक्षण नाटिका' ना. बा. कानिटकर (१८९०), 'जरठोद्वाह नाटक' पुरुषोत्तम भास्कर डोंगरे (१८९०), 'संगीत लग्नसमारंभ' बा. म. प्रभुणे (१८९२), 'इंदिरा माधव अथवा सद्यस्थिती नाटक' रामचंद्र गोपाळ मिटबावकर (१८९२), 'कन्याविक्रय दुष्परिणाम नाटक' शिंगणे व आचार्य (१८९५), 'संगीत शारदा' गो. ब. देवल (१८९९), 'मतिविकार' श्री. कृ. कोल्हटकर (१९०७), 'वधूपरीक्षा' श्री. कृ. कोल्हटकर (१९१३), 'रक्षाबंधन' वि. गो. शेट्ये (१९२०), 'सं.सौभाग्यलक्ष्मी' – सदाशिव अनंत शुक्ल (१९२५), 'नव्या वाटा' – आनंदीबाई किर्लोस्कर (१९४३), इत्यादी प्रमुख महत्त्वपूर्ण नाटकांचा विचार येथे केला आहे.

कन्या ऋतूस्नात होण्यापूर्वी तिचे लग्न झालेच पाहिजे. अशी परंपरागत जनरूढी तत्कालीन काळात प्रचलित होती. त्यामुळे सर्रास बालविवाह होत. पण या बालविवाहांमुळे मुलींना शारीरिक आणि मानसिक अशा अनेक अडचणींना तोंड द्यावे लागे. शिवाय कोवळ्या वयातच तिच्या शरीर प्रकृतीवर अनिष्ट परिणाम होत. किंबहुना बालाजरठ विवाहामुळे मुलींना अकाली वैधव्य प्राप्त होई. तेव्हा या विरोधात समाजधुरीणांनी चळवळ सुरू केली. मुलगी रजोदर्शनात्प्राक झाल्याशिवाय तिचा विवाह केला जाऊ नये, मुलगीचे किमान वय बारा व मुलाचे अठरा वर्षे पूर्ण झाल्याशिवाय विवाह करू नयेत. यासाठी अनेक ठिकाणी सभा होऊन, ठराव करून या प्रश्नांविरोधात जागृती केली जात असे. या गोष्टींचा प्रभाव गो. ना. माडगांवकरांच्या 'व्यवहारोपयागी नाटकावर' (१८५७) झालेला दिसतो. शिवाय म. फुल्यांनी तत्कालीन काळात बहुजनांच्या उत्थापनाच्या दृष्टीने त्यांच्यात जागृती व्हावी यासाठी अनेक व्यवहारोपयोगी गोष्टी जनसामान्यांना सांगितल्या. याचाही प्रभाव प्रस्तुत नाटकावर झालेला दिसतो. त्यामुळे 'व्यवहारोपयोगी नाटक' हे 'मराठी ज्ञानप्रसारक सभा' सारख्या सामाजिक सुधारणेसाठी कार्य करणाऱ्या सभेपुढे वाचले गेले होते.

प्रस्तुत नाटकात 'त्रिंबकजी' व 'चिमाबाई' हे दोघे पतीपत्नी आहेत. 'चिमाबाई' आपल्या पतीला आपल्या मुलाचा विवाह लवकर उरकून टाका म्हणजे आपण मुक्त झालो असे म्हणते. तेव्हा 'त्रिंबकजी' हा या कुटुंबाचा कर्ता पुरुष आहे. आपल्या मुलांची लग्ने अल्पवयात होऊ नयेत असे त्याला सतत वाटते. यातून 'त्रिंबकजी'च्या द्वारे सुधारणावादी दृष्टिकोन प्रगट झालेला दिसतो. 'त्रिंबकजी' आपली पत्नी 'चिमाबाई' हिला म्हणतो,

''त्रिंबकजी धीर धर, बाळास व ताईस चांगली विद्या शिकू दे, मग तो सतरा अठरा वर्षाचा झाला म्हणजे त्याचे लग्न करू आणि ताईचे अकराव्या, बाराव्या वर्षी केले म्हणून चिंता नाही... मुले वयात आल्याशिवाय त्यांच्या बुद्धीचे प्रमाण सापडत नाही किंवा मुलास चांगली बायको सापडत नाही. याखेरीज अगदी लहानपणी लग्न केले असता एखाद्या अडचणीत येऊन तो मनुष्य मोठ्या तापयंत्रात पडतो.''[१] प्रबोधन काळातील बालविवाहविरोधी चळवळीतील विचारांचा परिणाम म्हणून 'त्रिंबकजी'चे हे उद्‌गार ध्यानात घेण्यासारखे आहेत. नवे शिक्षण, नव्या राजवटीमुळे अनेक भौतिक सुधारणा होत होत्या. सुधारणावाद्यांची स्त्रियांच्या विविध प्रश्नासंदर्भात जनजागृती होत होती. यामुळे मध्यमवर्गीयांच्याबरोबर सर्वसामान्य लोकांच्या विचारात आणि आचारातही स्थित्यंतर घडून येत होते. आपल्या मुलांची लग्ने उशीरा व्हावीत या विचाराला लोकमत अनुकूल होऊन दिवसेंदिवस दुजोराही मिळत होता. हे वरील 'त्रिंबकजी'च्या उद्‌गारातून ध्यानात येते. थोडक्यात 'व्यवहारोपयोगी नाटका'तून तत्कालीन शिक्षणप्रसाराच्या विचारकार्याला समोर ठेऊन मांडलेला विचार, लग्नप्रसंगी होणारा अनाठायी खर्च, नायकिणीचे नाच इत्यादी अनिष्ट प्रथा बंद करण्यासाठी सांगितलेला विचार या गोष्टी तत्कालीन लोकव्यवहार सुखकर होण्याच्या दृष्टीने महत्त्वाच्या आहेत. म्हणून ''नाटकाद्वारे व्यक्त झालेली ती पहिली वहिली सामाजिक टीका (डेलळरश्र डरींळीश)आहे.''[२] डॉ. अनंत देशमुख यांची ही प्रतिक्रिया माडगावकरांचा हेतू व भूमिका स्पष्ट करणारी आहे.

एकोणिसाव्या शतकाच्या उत्तरार्धात बालविवाहाच्या प्रश्नातून अतिशय गाजलेले प्रकरण म्हणजे 'दादाजी रखमाबाई खटला' होय. बालविवाह व बालाजरठ विवाहविरोधी जागृतीच्या चळवळी संदर्भातील हा एक महत्त्वाचा खटला होय. 'रखमाबाई नामक एका बाल कुमारिकेचा विवाह 'दादाजी' नावाच्या एका प्रौढाशी होतो. 'दादाजी' हा कामाशिवाय चैनविलासात रमणारा व प्रकृतीने अतिशय अशक्त असतो. तर 'रखमाबाई' ही त्या काळाच्या मानाने अगदी हुशार व शिक्षण घेणारी आहे. 'रखमाबाई' रजोदर्शनात्प्राक होताच तिने आपल्याकडे राहावयाला यावे असे 'दादाजी' सांगतो. त्याला 'रखमाबाई' विरोध करते. कारण तिला त्याचे वर्तन व 'तो' दोन्हीही पसंत नसते यातून हा खटला सुरू होतो. या खटल्याचे अगदी हुबेहूब प्रतिबिंब ना. बा. कानिटकर यांच्या 'तरुणीशिक्षण नाटिका' (१८९०) यामध्ये उमटलेले दिसते. फक्त काय ती पात्रांची नावे तेवढीच बदललेली दिसतात. अन्यथा नाटकाचा संपूर्ण आशय हा तत्कालीन काळातील 'दादाजी रखमाबाई खटल्या'वरच आधारलेला दिसतो.

प्रबोधनकाळातील दादाजी रखमाबाई खटल्याचा हा वाद तत्कालीन अनेक वृत्तपत्रांतून जसा चव्हाट्यावर येत होता तसा तो या नाटकातून देखील व्यक्त झालेला दिसतो. पण प्रत्यक्ष त्या काळातील हा खटला आपसात न मिटता न्या. पिन्हे यांनी कनिष्ठ कोर्टातून पहिला निकाल 'रखमाबाईच्या' बाजूने दिला होता. यावर 'दादाजीने' वरिष्ठ न्यायालयात अपिल केले. अखेर ३ मार्च १८८७ रोजी कनिष्ठ न्यायालयातील निकाल फिरवून वरिष्ठ कोर्टाने दादाजीच्या बाजूने निकाल दिला होता. तेव्हा या खटल्यानंतर अवघ्या तीनच वर्षात प्रस्तुत नाटकाची निर्मिती झालेली दिसते. या दृष्टीने समकालीन सामाजिक आंदोलनांचा संदर्भ देणारे हे महत्त्वाचे नाटक होय.

प्रबोधन काळातील बालाजरठ विवाहविरोधी चळवळ ही स्त्री सुधारणेच्या दृष्टीने महत्त्वाची चळवळ होय. त्याचा प्रभाव पुरुषोत्तम भास्कर डोंगरे यांच्या 'जरठोद्वाह' (१८९०) या नाटकावर झालेला दिसतो. 'जरठोद्वाह' नाटकाचे कर्ते पु. भा. डोंगरे हे ''उत्तम कवी होते. नाटककार होते व खरे देशभक्त होते... स्वदेशी कापड वापरण्याचा त्यांचा अव्याहत क्रम होता. स्वदेशीची चळवळ पुन्हा निघाल्याबरोबर हातमागावर काम करण्याचे शिकून स्वत: काढलेली धोतरे ते वापरीत असत.''[३] म्हणजे सुधारणेच्या चळवळीतील ते एक कृतिशील कार्यकर्ते होते. त्यामुळे त्यांच्या नाटकात सुधारणावादी विचारांचे प्रतिबिंब उमटणे स्वाभाविक आहे.

प्रस्तुत नाटक हे दोनशे पृष्ठांचे अत्यंत दीर्घ असे पाच अंकी आहे. नाटकाच्या शीर्षकावरूनच बालाजरठ विवाहाचा प्रश्न यामध्ये चर्चिला असावा हे सकृतदर्शनी स्पष्ट होते. पण नाटकातील संपूर्ण आशयाचा विचार करता प्रस्तुत नाटक हे तरुण तरुणींच्या श्रृंगारानेच अधिक व्यापलेले आहे. बालाजरठ विवाहविरोधाचा विषय तो एवढाच आहे की, त्यातून बालाजरठ विवाहाच्या प्रश्नाची चर्चा केलेली आढळते. 'म्हाळसा' नावाच्या एका तरुण कुमारिकेचा विवाह 'मल्हारराव मोहिते' नावाच्या पलंगाशी खिळलेल्या वृद्ध मराठा सरदाराशी

होतो. 'म्हाळसाबाई'ची एक तरुण मैत्रीण 'सईबाई' ही एका मयत मराठा सरदाराची बायको असते. 'म्हाळसा' सौभाग्यवती असून प्रत्यक्षात विधवेचे जीणे जगणारी आणि 'सईबाई' तर विधवाच आहे. दोघींचे जीवन बालाजरठ विवाहामुळे दु:खप्रद आणि कष्टप्रद झालेले दाखविले आहे. नाटकाच्या शेवटी 'खंडेराव महाराज' नावाचे गायकवाड सरकार 'म्हाळसा' व 'सईबाई' या दोघींची दु:खे पाहून आपल्या संस्थानात बालजरठ विवाहविरोधी फतवा काढून म्हणतात की, ''सध्या चालू असलेल्या प्रकरणाविषयी एक मनात राहिले आहे ते हे की, 'अत:पर आमच्या राज्यात, निदान माझ्या कारकीर्दीत तरी, कोणी असे पाजीपणाचे लग्न केले असता कडक दंड होईल व त्या विवाहापासून होणारी संतति कायदेशीर रीतीने 'औरस' गणली जाणार नाही. अष्टमांशाचे भय कोणी मानू नये. दत्तकसंबंधाने इतर कोणी राजे तो घेतील तर खुशाल घेवोत. पण मी तरी तो घेणार नाही. अशा अर्थाचे आमच्या सर्व राज्यात, सर्व भाषांत जाहीरनामे लावावे व दवंडी पिटवावी. तोंडाचे खोबळे झाले तरी निपुत्रिक लोक वतन जाईल म्हणून पोरांकरिता लग्ने करितात. ती भीती या योगाने दूर होईल.''[४] प्रबोधन काळात संस्थानिक राजे राजवाडे यांच्याकडूनही स्त्रियांच्या बाबतीतील अनिष्ट चाली, रीती, रूढी व रिवाज दूर करण्यासंबंधी जी फर्माने निघत होती व स्त्री सुधारणेच्या चळवळीला पाठिंबा देऊन सुधारणेसाठी जे प्रयत्न केले जात होते याचा प्रभाव प्रस्तुत नाट्याशयावर झाला आहे. तसेच ताराबाई शिंदे यांनी 'स्त्री पुरुष तुलना' या निबंधातून 'मराठे सरदार लोक आपल्या मऱ्हाठेपणासाठी कसे जगतात' याविषयी जे विवेचन केले आहे त्या विचारांशी बरेचसे साम्य प्रस्तुत संवादावरून जाणवते.

मुलाचे व मुलीचे लग्नाचे वय अनुक्रमे अठरा व सोळा वर्षे असावे. हुंडापद्धत असू नये. म्हणून समाजोद्धारकांच्या ठिकठिकाणी सभा होत असत. या संदर्भात १८६२ साली साताराच्या लोकांनी घेतली सभा, १८७३ साली मुंबईत स्थापन झालेली 'बालविवाह प्रतिबंधक मंडळी' या मार्फत मुंबई, पुणे, ठाणे, अहमदनगर येथे झालेल्या सभा, तसेच प्रार्थना समाजाने यासंदर्भात केलेले कार्य याचा प्रभाव झालेले बा. म. प्रभुणे यांचे 'सं. लग्नसमारंभ' (१८९२) हे नाटक होय.

नाटकात बालविवाहाच्या प्रश्नावर एक सभा भरलेली असताना 'गंगाधरशास्त्री' आपले मत मांडताना म्हणतो, ''मुलाचे वय निदान पंचवीस वर्षाचे झाल्याखेरीज लग्न करू नये. लग्नामध्ये तो मुलगा सशक्त असला पाहिजे. लग्नाचे कामी विशेष खर्च करू नये. गरिबाचे लग्न करणारी साह्यकारी मंडळी स्थापन करावी, फंड करावा, दरसाल त्या फंडातून गरिबांची लग्ने करून द्यावी, मुलीचे पैसे घेऊ नयेत □मुलास हुंडा देऊ नये,... तरी येथून पुढे आमचे प्रियबंधू मुलगा पंचवीस वर्षाचा आणि मुलगी अकरा वर्षाची असा जोडा पाहून लग्न केल्यास त्यांना मोठा फायदा होणार आहे.''[५] म्हणजे बालविवाह व बालाजरठ विवाह या स्त्रियांच्या प्रश्नांवर तत्कालीन समाजमनात विविध पुरोगामी विचारांच्या मंडळ्यांमार्फत सभा, संमेलने व व्याख्यानाद्वारे जे प्रबोधन घडवून आणले जात असे. किंबहुना महात्मा जोतीबा फुल्यांची यासंदर्भात होत असलेली जागृती या सर्वांचा प्रभाव प्रस्तुत नाट्यकृतीवर झाला आहे हे स्पष्ट होते.

१८२९ साली इंग्रज सरकारने 'शारदा' कायदा अर्थात 'बालविवाह प्रतिबंधक कायदा' करून बारा वर्षाखालील मुलगी व पंधरा वर्षाखालील मुलगा यांच्या विवाहास बंदी केली. पुढे महाराष्ट्रात या कायद्यासंदर्भात बहेरामजी मलबारी यांनी लिहिलेल्या 'असंमत वैधव्य व बालविवाह' या टिपणावरून चर्चेला सुरुवात झाली. न्या. रानडे, न्या. तेलंग, लो. टिळक, डॉ. भांडारकर, गो. ग. आगरकर इत्यादी तत्कालीन अनेक सुधारकांनी या विषयावर चर्चा करून आपले विचार मांडले. वृत्तपत्रातूनही या बाबतीत उलट सुलट प्रतिक्रिया व्यक्त झाल्या. विवाहाच्या वेळी मुलीचे वय १५ व मुलाचे वय १८ आवश्यक मानण्यात आले. या संदर्भातील एक महत्त्वाचा भाग म्हणजे या काळातील 'संमतिवयाच्या कायद्या'ची चळवळ होय. संमतिवयाच्या बिलासंबंधी आगरकरांनी मांडलेले विचार फार महत्त्वाचे आहेत. हे बिल ९ जानेवारी १८८१ रोजी 'सर अँड्र्यू स्कोबल' यांनी पुढे आणले. ते कलकत्ता येथील वरिष्ठ कायदे कौन्सिलात मांडले गेले. तेव्हा संभोगकाली स्त्रियांचे वय १२ असावे असा या कायद्यातील महत्त्वाचा मुद्दा होता. मात्र यावेळी लो. टिळक, रमेशचंद्र मित्र इत्यादींनी या बिलास विरोध केला. तेव्हा आगरकरांनी मात्र या संदर्भात अत्यंत पुरोगामी भूमिका घेतली. चौदा वर्षाच्या आत मुलींची व सोळा वर्षाच्या आत मुलांची लग्ने होऊ नयेत, असे त्यांनी मत मांडले. दरम्यान बंगाल प्रातांत १८९० च्या ऑगस्टमध्ये 'फुलमणी खटला' या नावाच्या खटल्याने या प्रश्नाला पुन्हा चालना मिळाली. या खटल्यातून संमतिवयाची मर्यादा वाढवावी हा विचार पुढे आला. याचा परिणाम महाराष्ट्रातील स्त्री सुधारणेच्या चळवळीवरही झालेला दिसतो. 'ब्राह्मो समाजाने' आपल्या शपथपत्रकात मुलीच्या लग्नाचे वय चौदा असावे अशी अट घातली होती. तर 'प्रार्थना समाजा'नेही मुलीच्या लग्नाची वयोमर्यादा वाढविण्याच्या दृष्टीने प्रयत्न केले होते. मुलाचे लग्न १७/१८ वर्षाच्या आत व मुलीचे लग्न १०-१२ वर्षाच्या आत करू नये असे पत्रक तयार करून त्यावर

पुण्यातील शिक्षितांच्या सह्या घेण्यात आल्या होत्या. या कामी न्या. रानडे यांनी महत्त्वाचे प्रयत्न केल्याचे आढळते. दरम्यान शेट बहेरामजी मलबारी यांनी हा प्रश्न अगदीच धसास लावला. तेव्हा '१८९१ मध्ये संमतिवयाच्या कायद्या'चे बिल पास झाले. या सर्व गोष्टींचा प्रभाव तत्कालीन कालखंडातील मराठी नाटकांवर झालेला दिसतो. या दृष्टीने रामचंद्र गोपाळ मिटबावकर यांचे 'इंदिरामाधव अथवा सद्यस्थिती नाटक' (१८९२) हे महत्त्वाचे नाटक होय.

नाटकात 'संमतिवयाचा कायदा', 'बालाजरठ विवाहाचे दुष्परिणाम' आणि 'विधवांची दु:स्थिती' याविषयी सुधारकांनी मांडलेले विचार व केलेले कृतिशील कार्य या अनुषंगाने विचार आला आहे. नाटकात 'गोविंद' हा बोलघेवडा सुधारक आहे. तो पुनरुज्जीवनवाद्यांचे प्रातिनिधिक रुप वाटतो. तसेच संमतिवयाचा कायदा पास व्हावा म्हणून सुधारणावादी 'बाबासाहेब' त्यांचा मुलगा 'वसंत', मुलगी 'इंदिरा' आणि 'माधव' हे प्रयत्नशील आहेत. यासाठी ते सतत चळवळी करताहेत. अनेक ठिकाणी सभा घेऊन त्याविषयी व्याख्याने देऊन, जनमत जागृत करून आणि सभेच्या ठिकाणी याविषयी ठराव करून त्यावर उपस्थितांच्या स्वाक्षऱ्या घेऊन तो ठराव सरकारकडे पाठवितात. काही दिवसातच सरकारकडून या ठरावावर विचार होऊन संमतिवयाचा कायदा पास केला जातो. ही बातमी सुधारणावाद्यांना समजताच सुधारक 'बाबासाहेब' म्हणतात, ''हा पहा टेलिग्राम. संमतिवयाचे बिल पास झाले. तुमच्या खटपटीस ईश्वराने साह्य केले पहा.

माधव – काय, बिल पास झाले? धन्य परमेश्वराची.

वसंत – शाब्बास गोविंदराव! द्या टाळी.

गोविंद (हसरे तोंड करून) पहा वा! शेवटी आपणच जिंकलो. आँ! का प्रयत्नांचे फळ मिळाले की नाही? विरुद्ध पक्षांची तोंडे आता हिरमुसली झाली असतील.''[६] प्रस्तुत नाटकातील वरील आशयाचा विचार करता 'बाबासाहेब' म्हणजे खुद्द आगरकरच वाटतात. 'बाबासाहेब' त्यांचा मुलगा 'वसंत', मुलगी 'इंदिरा' आणि त्यांचा कार्यकर्ता 'माधव' यांच्या माध्यमातून आगरकरपक्षीय कार्यकर्त्यांचे संमतिवयाचे बिल पास होण्यासंबंधीचे प्रयत्न, ते पास झाल्यानंतर त्यांना झालेला आनंद, याचे अगदी हुबेहुब चित्र यातून आविष्कृत झाले आहे. तसेच संमतिवयाचे बिल पास झाल्यानंतर पुनरुज्जीवनवाद्यांची भूमिकाही मिटबावकरानी 'गोविंद'च्या माध्यमातून उपहासाने विशद केलेली दिसते. 'संमतिवयाच्या कायद्या' संदर्भात तत्कालीन समाजजीवनात होत असलेल्या जनजागृतीचा व आंदोलनांचा प्रभाव मराठी नाटकांवर कसा होत होता हे यातून दिसते. या बरोबर प्रस्तुत नाटकात बालाजरठ विवाहाची अनिष्टताही प्रतिपादलेली आहे. सत्तर वर्षाचा वृद्ध 'विष्णुशास्त्री' आणि त्याची १४–१५ वर्षाची पत्नी 'गंगूबाई' यांचा बालाजरठ विवाह दाखवून त्याचे दुष्परिणाम नाटककाराने दाखविले आहेत. अर्थात तत्कालीन काळातील बालाजरठ विवाहाविरुद्धच्या चळवळींचाच हा परिणाम होय असे म्हणता येईल.

शिंगणे मो. वि. व आचार्य बाबा या उभयतांनी लिहिलेले 'कन्याविक्रय दुष्परिणाम नाटक' (१८९५) होय. बालाजरठ विवाहाची समस्या वास्तववादी पद्धतीत चित्रित केलेले हे नाटक आहे. तसेच संपत्तीच्या लोभासाठी कन्याविक्रय करणाऱ्या मुलींच्या बापाबरोबर आणि मध्यस्थी किंवा दलाली करणाऱ्या लोकांच्या जीवनावरही आधारित हे नाटक आहे. प्रबोधनकाळात कन्याविक्रय या प्रश्नावरही जनजागृती होत होती. तेव्हा प्रस्तुत नाटकाच्या शीर्षकावरून तत्कालीन प्रबोधनात्मक विचारांचा या नाटकावर प्रभाव झाला आहे हे लक्षात येते. नाटकाच्या प्रस्तावनेत नाटककार लिहितात. ''ह्यांत कन्याविक्रयापासून कसे भयंकर परिणाम घडतात, दलाल किंवा मध्यस्थी लोक आपली तुंबडी कशी भरतात, मुलीचा विक्रय केल्यामुळे तिचे कसे हाल होतात व म्हातारपणी लग्ने केल्यापासून किती तोटे होतात इत्यादी गोष्टींचे चित्र काढण्याचा यथामति प्रयत्न केला आहे... रावबहादूर हरिलाल एच्. ध्रुव नवसरी येथील जज्ज, तसेच न्यायमूर्ती रावबहादूर महादेव गोविंद रानडे ह्या उभय न्यायमूर्तींनी हे पुस्तक वाचून आम्हास योग्य सूचना केल्या.''[७] कन्याविक्रय दुष्परिणाम व बालाजरठ विवाहविरोधी प्रबोधन काळात जे विचारप्रवर्तन होत होते त्याचा स्पष्ट प्रभाव प्रस्तुत नाटककार झाल्याचे यावरून स्पष्ट होते. शिवाय प्रबोधनात्मक विचारांच्या प्रसारासाठी तत्कालीन समाजधुरीणही नाटककारांना किती उत्तेजन देत होते याचेही प्रत्यंतर येथे येते.

नाटकातील पाऊणशेवर्षाचा 'दामोदरपंत' आणि नुकतीच वयात आलेली 'गंगू' यांचा बालाजरठ विवाह दाखवून, बालाजरठ विवाहाचे दुष्परिणाम नाटककाराने चित्रित केले आहेत. यामधून बालहत्येचाही प्रश्न चर्चिला आहे. या नाटकात बालाजरठ विवाहाची

समस्या प्रत्यक्ष संवादात कुठेही येत नाही. मात्र कथानकाच्या रचनेत ही समस्या नाटककाराने अंतर्भूत करून कथानकातील घटना, प्रसंग चित्रित केले आहेत.

बालाजरठ विवाहाच्या दुष्परिणामाबद्दल चर्चा करणारे एकोणिसाव्या शतकांती उदयास आलेले मराठीतील एक महत्त्वपूर्ण नाटक म्हणजे गोविंद बल्लाळ देवल यांचे 'संगीत शारदा' (१८९९) होय. बालाजरठ विवाह हा या नाटकाचा मुख्य विषय असून, कन्याविक्रय प्रश्नाचाही विचार या नाटकात केलेला आढळतो. देवलांच्या समकालीन सामाजिक जीवनात किंबहुना त्याही पन्नास वर्षे अगोदर या प्रश्नाविषयी समाजमनात जागृतीचे प्रयत्न सुरू होते. तसेच 'शारदा' नाटकाचा उदय होण्याअगोदर आठ वर्षे (१८९१) संमतिवयाचे बिल पास झाले होते. या सर्व गोष्टींचा विचार करता देवलांच्या 'शारदा' या नाटकाच्या जन्मापूर्वी बालाजरठ विवाहविरोधी अशा अनेक चळवळी आणि कायदा यामुळे समाजजीवन पूर्ण ढवळून निघाले होते. देवलांच्या या 'शारदा' नाटकाच्या निर्मिती प्रेरणेसंदर्भात का. बा. मराठे लिहितात, ''पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर उत्तरेत सामाजिक सुधारणेचे सुकाणू हाती घेऊन समाजनौका हाकारीत होते, तर दक्षिणेत विष्णुशास्त्री पंडित हे विधवाविवाहाच्या अनुरोधाने सामाजिक दु:खे वेशीवर टांगीत होते. रानडे, आगरकर यांनीही हा सुधारणेचा ध्वज खांद्यावर घेतला. त्याचे पडसाद महाराष्ट्रभर पसरले आणि त्या दृष्टीने मराठी नाटके रंगभूमीवर येऊ लागली... या सामाजिक आंदोलनातच देवलांची 'शारदा' जन्मली.''[८] तर नरहर कुरूंदकर लिहितात, '' 'शारदा' नाटकापूर्वी आठ वर्षे संमतिवयाचा कायदा मुंबई प्रांताच्या विधानसभेसमोर आलेला होता. विष्णु पंडितानी पहिला विधवाविवाह यापूर्वीच घडवलेला होता... या साऱ्या घटनांचे पडसाद निरनिराळ्या नाटकांमधून उमटत होतेच. बालाजरठ विवाहावरच 'म्हातारचळ', 'जरठोद्वाह', 'कन्याविक्रय दुष्परिणाम', 'पद्मावती' यांसारखी नाटके देवलांच्यापूर्वी लिहिली गेली होती. सुधारकांना विरोधी म्हणून सनातन्यांनीही काही नाटके लिहिली होती.''[९] यामध्ये ना. ह. भागवत यांची 'स्त्रीविद्यावैचित्र्यदर्शन' (१८८३), 'पुनर्विवाह दु:खदर्शन' (१८८४), 'अभिनवतरुणीविद्या प्रहसन' (१८८६) इ. प्रहसने तसेच 'गर्हित स्त्री शिक्षण' गंगाधर बाळकृष्ण काळे (१८८५), 'पुनर्विवाहपक्षाची पूर्ण सोळा आणे फजिती अथवा रूढीदिग्विजय' रामकृष्णभट स्पष्टवक्ते (१८८५) इ. कित्येक प्रहसने व नाटकांचा प्रबोधनविरोधी विचार प्रतिपादन करण्यासंदर्भात उल्लेख करता येईल. दरम्यान अशा सामाजिक वातावरणात सांगली संस्थानच्या वृद्ध अधिपतींनी एका चौदा वर्षाच्या अल्पवयीन मुलीशी विवाह केला. या बातमीचा परिणाम देवलांच्या मनावर होऊन या प्रश्नाकडे पाहण्याची देवलांची भावोत्कट दृष्टीच या नाटकाच्या निर्मितीची खरी प्रेरणा ठरली.

नाटकातील 'कोदंड' हे पात्र बालाजरठ विवाहविरुद्ध निरपेक्ष भावनेने जागृती करणाऱ्या एका निस्वार्थी समाजसुधारकाचे आहे. तो निस्वार्थी आहे का? याची खात्री करून घेताना 'कोदंड'चा सहकारी मित्र 'हिरण्यगर्भ' त्याला म्हणतो, ''तू हे डोक्यातलं लोकहिताचं वेड काढून टाक, तरच तुला सुख होईल.

कोदंड– हर हर! माझा प्रिय मित्र हिरण्यगर्भ तो तूच काय? असली स्वार्थबुद्धी मला शिकवतोस म्हणून संशय येतो. अरे, वृद्धानं लहान कुमारीशी लग्न करू नये, वृद्धाला कोणी द्रव्यलोभानं कन्या देऊ नये व असा जरठकुमारी विवाह कुठं होत असल्यास लोकांनी शक्य तितका प्रयत्न करून तो मोडावा, असा मी स्वत: या मुखानं लोकांना उपदेश केला आणि आज स्वार्थाला गुंतून मीच त्याच्या विरुद्ध आचरण करू? काय सांगतोस हे!''[१०] प्रबोधनकाळात स्त्री सुधारणांचा पुरस्कार करून त्या संदर्भात समाजमन जागृत करण्यासंदर्भात सुधारणावाद्यांनी जी धडपड सुरू होती त्याचेच प्रतिबिंब 'कोदंड'च्या रूपाने येथे उमटले आहे.

बालाजरठ विवाहाच्या प्रश्नावर चर्चा करणारे श्री. कृ. कोल्हटकर यांचे 'मतिविकार' (१९०७) हे आणखी एक नाटक होय. कोल्हटकर स्वत: सुधारक विचारसरणीचे होते. वामनराव कोल्हटकरांसारख्या कर्त्या सुधारक चलत्याचा, प्रगल्भ उदारमतवादी विचारसरणीचा प्रभाव त्यांच्यावर घरापासूनच झाला होता. त्यांच्या प्रस्तुत नाटकात विधवापुनर्विवाहाच्या प्रश्नावर मुख्य चर्चा असून त्या अनुषंगाने बालाजरठ विवाह, कन्याविक्रय दुष्परिणाम आणि केशवपन या प्रश्नांचीही चर्चा केलेली आढळते. 'चकोर' व 'चंद्रिका' ही या नाटकाची नायक नायिका आहेत. 'चंद्रिके'चे वडील 'आनंदराव' स्वत:ला समाजसुधारक समजतात. पण प्रत्यक्षात आपल्या वृद्धावस्थेत 'सरस्वती' नामक एका बालकुमारिकेशी ते विवाहबद्ध होतात. स्वत:ची मुले ('चंद्रिका' मुलगी व 'विहार' मुलगा) बरोबरीला आली असताना व मुलगी (चंद्रिका) घरात विधवा होऊन बसली असताना ते अल्पवयीन मुलीशी विवाहबद्ध होतात.

आपल्या बायकोला (सरस्वती) 'चंद्रिके'ची घरकामात मदत व्हावी म्हणून 'आनंदराव' विधवा 'चंद्रिके'चे केशवपन करावयाचे ठरवतात. तेव्हा सुधारणावादी 'विहार' च्या साहसी प्रयत्नामुळे हे कृत्य हानून पाडले जाते. असा नाट्याशय यामध्ये आहे.

बालाजरठ विवाहामुळे तरुण 'सरस्वती' सधवा असूनही एकप्रकारचे वैधव्यदशेतच जीवन अनुभवणारी आहे. संसारिक जीवनात ती 'आनंदरावा'शी कधीच समरस झालेली दिसत नाही. तिला त्याचा नेहमीच तिरस्कार वाटतो. 'आनंदरावा'ची अर्धांगी म्हणवून घेण्यातही तिला अपमान वाटतो. थट्टेतसुद्धा आपल्याला अर्धांगी म्हणून कोणी म्हणू नये असे तिचे मत आहे. नाटकातील या आशयाचा विचार करता बालाजरठ विवाहाचा स्त्रीच्या मनावर किती विपरित परिणाम होतो हे कोल्हटकरांनी 'सरस्वती'च्या संवादातून मार्मिकपणे स्पष्ट केले आहे. तसेच प्रबोधन काळातील बोलघेवड्या सुधारकांचे विदारक चित्र 'आनंदराव'च्या माध्यमातून व्यक्त केलेले दिसते. सनदशीर विचारसरणीचे अनुयायी असलेल्या कोल्हटकरांच्या मनावर प्रबोधन काळातील बालाजरठ विवाहविरोधी होत असलेल्या विविध आंदोलनाचा प्रभाव झाल्यामुळेच या नाटकाची निर्मिती झाली आहे असे निश्चितपणे वाटते.

श्री. कृ. कोल्हटकरांचे 'वधूपरीक्षा' (१९१३) हे नाटक अनुलोम विवाह या विषयावरती आधारलेले आहे. या कालखंडामध्ये विवाहविषयक जे नवनवीन विचार मांडले होते. त्यामध्ये अनुलोमविवाह या विषयीही बरीच चर्चा समाजजीवनात घडत होती. त्याचा प्रभाव प्रस्तुत नाटकावर झाल्याचे निदर्शनास येते. तसेच बालविवाह, विषमविवाह आणि जातिभेद आदी प्रश्नांचीही चर्चा या नाटकात केलेली आढळते. या सदंर्भात मोहनराव वराडपांडे लिहितात ''विषम विवाहादी त्यावेळच्या सर्व सामाजिक समस्यांची तीव्रता आज कमी झाली असली तरी एकेकाळी महाराष्ट्रात त्यावर वैचारिक रणे माजली होती. अशा वेळी कोल्हटकरांनी ज्या निर्भयपणे आपल्या सर्वप्रकारच्या लिखाणातून समाजसुधारणेचा बुद्धिनिष्ठ व सक्रिय पुरस्कार केला तो प्रशंसनीयच म्हणावा लागेल.''[११] म्हणून प्रस्तुत नाटकाच्या सुरुवातीलाच कोल्हटकर लिहितात, ''सद्गुण संपन्न अशा खालच्या वर्गातील बालिकेस ती केवळ हीन जातीय आहे म्हणून उच्चवर्णीयांनी तिच्याशी परिग्रहणयोग्य न मानणे हे अन्याय्य आहे. एवढा जरी ग्रह या नाटकाच्या अवलोकनाने तटस्थांच्या मनाला झाला तरी त्याचे सार्थक झाल्यासारखे मला वाटेल.''[१२] कोल्हटकरांची ही पुरोगामी दृष्टी समकालीन प्रबोधन चळवळीतील विचारांशी सुसंगत आहे. प्रस्तुत नाटकात अनुलोम विवाहाचा पुरस्कार करण्यासंदर्भात चर्चा करताना 'भार्गव' हा सुधारणावादी 'धुरंधरास' विचारतो,

''अनुलोम विवाहसंबंधाने आपले काय मत आहे? आपणासारख्या सुधारलेल्या पुरुषास हा प्रश्न विचारणे म्हणजे एका अर्थी आपला अपमान करण्यासारखे आहे. पण ही गोष्ट संदिग्ध रहाण्यापेक्षा तिचा स्पष्ट खुलासा केलेला बरा.

धुरंधर – भार्गवा,... वधू प्रत्येक गोष्टीत अनुरूप असली, तर ती हलक्या जातीची आहे. येवढ्यामुळेच तिच्याशी विवाह करण्याला हरकत येऊ नये... भार्गवा, आपले विचार आचरणात उतरविणे हे सरळ मनुष्याचे कर्तव्यच आहे. माझा विचार एका शूद्र कन्येशी विवाह करण्याचा ठरलाहि आहे.''१३ अनुलोम विवाहाचा पुरस्कार केल्यास समाजातील जातिभेदाची भावना आपोआपच नष्ट होण्यास मदत होईल. शिवाय त्या अनुषंगाने प्रेमविवाहाला प्राधान्य मिळाल्यामुळे बालविवाह, बालाजरठ विवाह आदी स्त्री जीवनाशी संबंधित समस्यांचेही निराकरण होण्यास मदतच होईल. असा प्रबोधन काळातील नवा, पुरोगामी विचार लेखकाला प्रस्तुत नाटकातून सुचवावयाचा आहे. कारण प्रबोधनकाळात याच हेतूने पंडिता रमाबाईंनी बिपिनबिहारी नावाच्या शूद्र जातीच्या पदवीधर युवकाशी आंतरजातीय विवाह करून आंतरजातीय विवाहाचा कृतिशील आदर्श समाजासमोर उभा केला होता. अशी परंपरा समाजात सुरू झाली तर स्त्रियांचे विवाहविषयक बरेच प्रश्न निकालात निघतील असे त्यांना वाटत होते. या विचाराने प्रभावित होऊन कोल्हटकरांसारख्या सुधारणावादी व्यक्तिमत्त्वाच्या नाटककाराने हे नाटक लिहिले असावे. कोल्हटकरांच्या नाटकांतून अशा सुधारणावादी विचारांचे दर्शन घडत असले तरी त्यांच्या नाटकांविषयी भास्कर गिरधारी यांचा अभिप्रायही महत्त्वाचा वाटतो. ते म्हणतात, ''कोल्हटकरांनी आपल्या नाटकांतून समाज सुधारणाविषयक विचार खेळविण्याचा प्रामाणिक प्रयत्न केला. पण कोल्हटकरांना स्वतंत्रपणे सामाजिक समस्या जाणवल्या त्या नाट्यानुभवाच्या संदर्भात जाणवायला हव्या होत्या.''[१४] गिरधारींचा हा अभिप्राय पटतो. कारण नाटक लिहिताना विशिष्ट सामाजिक सुधारणेचा हेतू मनात ठेवून नाटक लिहिले आहे असे कोल्हटकरांच्या नाटकांतील प्रस्तावना सांगतात. परंतु नाटक अभ्यासल्यानंतर तसा प्रत्यय येत नाही. त्यामुळे त्यांची नाटके कोणत्याही सामाजिक, धार्मिक, राजकीय किंबहुना शैक्षणिक सुधारणेच्या चळवळीवर प्रभावी भाष्य करू शकत नाहीत.

एकोणिसाव्या शतकांती महाराष्ट्रातील समाजसुधारकांनी स्त्रीला पहिल्यांदा व्यक्ती म्हणून ओळखले. समाजघडणीच्या विकासप्रक्रियेत स्त्रीचा वाटा मोठा असल्याने तिला अनेक रूढीग्रस्त बंधनातून मुक्त केले पाहिजे या दृष्टीने या काळातील समाजधुरीणांनी एक भूमी तयार केली होती. म्हणून विसाव्या शतकातील स्त्री सुधारणेच्या चळवळीला व्यापक रूप प्राप्त होत असताना या चळवळीतील संघटनात्मक पातळीवरील कार्यही महत्त्वाचे आहे. या दृष्टीने अनाथबालिकाश्रमाचे कार्य (१८९९), अखिल भारतीय महिला परिषद (१९२७), स्वातंत्र्यलढ्यातून झालेले स्त्री जागृतीचे कार्य आणि अस्पृश्यता निर्मूलनाच्या चळवळीतून झालेले दलित स्त्री मुक्तीचे कार्य इत्यादींचे संघटनात्मक पातळीवरील कार्य तसेच महर्षी कर्वे, श्रीमती पार्वतीबाई आठवले, वेणूबाई नामजोशी, काशीबाई देवधर, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, सरोजिनीदेवी नायडू, महाराणी चिमणाबाई गायकवाड, उर्मिला मेहता, मालिनीबाई सुखटणकर, इंदिराबाई मायदेव, प्रेमा कंटक, सुशीलाबाई पै, उषा मेहता, साखिया खान, अनुताई लिमये तसेच महर्षी वि. रा. शिंदे, म. गांधी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर आदी समाजधुरीणांचे विसाव्या शतकातील स्त्री सुधारणेसंदर्भातील कार्य महत्त्वाचे आहे. यांच्या विचारकार्यामुळेच विसाव्या शतकातील स्त्रीला आपल्यावर होणाऱ्या अन्यायाविरुद्ध आवाज उठविण्याची आणि प्रसंगी बंड करण्याची प्रेरणा मिळालेली आहे. याचा प्रभाव वि. गो. शेट्ये यांच्या 'रक्षाबंधन' (१९२०) नाटकावर पडलेला दिसतो.

या नाटकात बालाजरठ विवाहाचा प्रश्न चर्चिला आहे. नाटकातील नायिका 'अरूंधती' ही उपवर आहे. तिचा विवाह वैजयंतीचे राजे 'गिरिधर महाराज' या वृद्धाशी करण्याचे तिचे वडील 'शशांक' ठरवितात. तेव्हा 'अरूंधती' आपल्या वडिलांना म्हणते, ''लग्न जमवताना मुलीच्या सुखाकडे कानाडोळा करणं, ही नाही का अधोगति? गरीब गाईसारखी जुलुमानं तिला कसाबाच्याहाती देणं, ही नाही का अधोगति? गुलामांचा व्यापार बंद व्हावा म्हणून सारं जग ओरडत असतां हिंदु मुलींच्या बापानी गुलामांच्या व्यापारालाही लाजवील असला मुलींचा क्रय विक्रय करणं ही ना का अधोगति?

शशांक □अरूंधती, लहान तोंडी मोठा घास घेणं केव्हाही बरं नाही, बऱ्या बोलानं ही फाजील वटवट बंद कर. राजाची राणी व्हायला, या मोठेपणाला पोचायला, महद्भाग्य लागते.

अरूंधती – आग लागो त्या मोठेपणाला... त्या भाग्याला, वार्धक्यानं सडलेल्या, विषयकर्दमात रुतलेल्या राजाची नंदीबैलाची राणी होण्यापेक्षा, एखाद्या दासाची अनुरूपवराची दासी होणं का वाईट?''[१५] विसाव्या शतकातील स्त्री जागृतीविषयक चळवळीमुळे किंबहुना त्याहिपूर्वी पाऊणशेवर्षापासून सुरू असलेल्या स्त्रियांसंबंधी विविध प्रश्नांच्या जागृतीकार्यामुळे तत्कालीन सर्वसामान्य स्त्रीच्या मनातही जागृतीची जी जाणीव होत होती त्याचे द्योतक म्हणजे 'अरूंधती'चा संवाद होय. किंबहुना प्रस्थापित हीन विचारपरंपरेला आव्हान करण्याचे तिच्यात आलेले धाडस याही गोष्टी येथे ध्यानात येण्याजोग्या आहेत. तत्कालीन समाजजीवनात होत असलेल्या प्रबोधन चळवळींचाच हा प्रभाव होय.

सदाशिव अनंत शुक्ल यांचे 'संगीत सौभाग्यलक्ष्मी' (१९२५) नाटक हे 'बालविधवा' प्रश्नावर आधारित आहे. नाटकात एम.बी.बी.एस. झालेली सुशिक्षित, पुरोगामी विचारांची युवती 'सरोजिनी' आपली मैत्रीण 'कांता' हिच्या बालविधवांच्या दु:खाविषयी चर्चा करीत आहे. विधवांच्या दु:स्थितीविषयी ती एक कविताही तिला गाऊन दाखविते आणि म्हणते, ''रूढीच्या नादानं नादान बनलेल्या या समाजाला हे गाणं ऐकू तरी जाईल का? कालचंच व्याख्यान □'हिंदूसमाजातील बालविधवांची दुर्दशा' किती परिणामकारक झालं! पण अशा नाटक – कविता – कादंबऱ्यांनी आणि व्याख्यानबाजीनं कां कुठं समाज सुधारणा होत असते?

कांता – कां बर? प्रत्यक्ष सुधारणा जरी झाली नाही तरी या गोष्टीमुळं समाजात विचार जागृती तर उत्पन्न होते ना?

सरोजिनी – नुसत्या विचारांनी इष्ट कार्य तडीस जात नसतं त्या दिशेनं प्रत्यक्ष प्रयत्नच सुरू केला पाहिजे. पण हा निष्ठुर समाज कांता – समाजाला सर्वस्वी दोष देण्यात कार्य अर्थ आहे? अनाथ अबलांची स्थिती सुधारण्यास उत्तम उपाय म्हणजे त्यांना स्वावलंबी बनविलं पाहिजे...''[१६] प्रबोधनकाळात स्त्रियांच्या अनेक प्रश्नांविषयी सभा – संमेलनातील व्याख्यानातून ज्या फैरी झडत होत्या त्याचेच प्रतिबिंब तत्कालीन नाटक कवितांतून घडत होते याचे दर्शन येथे घडते, तद्वतच पारंपरिक समाजजीवनातील रूढी नष्ट झाल्याशिवाय विधवांची दु:खे नष्ट होणार नाहीत याविषयी विचारमंथन सुरू होते. किंबहुना कृतिशील प्रयत्न होत होते. याचाही स्पष्ट प्रभाव प्रस्तुत नाटकावर झालेला दिसतो.

भारतीय समाजजीवनाचा मूलाधार असलेली पारंपरिक विवाहसंस्था ही अनेक व्याधींनी जखडल्यामुळे व्यक्तिस्वातंत्र्याला व विकासाला मारक ठरत होती. मुलामुलींची लग्ने आई बापांनीच ठरविली पाहिजेत. यामुळे तेथे मुलामुलींच्या इच्छा आकांक्षेचा विचारच केला जात नव्हता. तेव्हा प्रबोधनकाळात विवाहविषयक या विविध प्रश्नांच्याबाबतीत जागृती सुरू होती. तसेच पाश्चात्यांच्या या बाबतीतील भौतिकवादी व इहवादी दृष्टिकोनामुळे विसाव्या शतकाच्या मध्यावधी दरम्यान महाविद्यालयीन तरुण–तरुणींच्या मनात याविषयी जाग येत होती. किंबहुना मुलींना स्वत:चा जोडीदार स्वत:च निवडण्यासंदर्भात क्वचित ठिकाणी स्वातंत्र्य मिळत होते. अर्थात यापूर्वी शंभर वर्षे अगोदर सुरू असलेल्या या संदर्भातील जनजागृतीचा हा परिणाम होय. याचे दर्शन पुरुषपात्रविरहित असलेल्या आनंदीबाई किर्लोस्कर यांच्या ‘नव्या वाटा’ (१९४३) या नाटकातून घडते.

नाटकातील नायिका ‘रेखा’ हिचे ‘सुरेश’ नावाच्या तिच्याच वर्गातील एका कॉलेज कुमाराशी प्रेम जडलेले असते. स्वत:च्या जीवनाचा जोडीदार स्वत:च निवडावा अशी तिची भूमिका आहे. कारण व्यक्तिस्वातंत्र्याला बाधा आणणारी प्रस्थापित विवाहसंस्था तिला निरूपयोगी वाटते. तेव्हा ‘अवंती’ नावाच्या समाजसेविकेशी याविषयी चर्चा करताना ‘रेखा’ म्हणते,‘‘खरंच, किती निरूपयोगी झाली आहे आपली ही विवाहसंस्था ! ही सुधारायला काय केलं पाहिजे बाअी?

अवंती – पहिली सुधारणा म्हणजे लग्नं मुलामुलींच्या पसंतीनं झाली पाहिजेत... हे बघ. एक परिचय मंडळ स्थापन करायचं. तरुण लग्नेच्छु मुलामुलींचा अेकमेकांशी परिचय होअील अशी योजना त्यांत करायची. वादविवाद, सहली खेळ असे मनोरंजक कार्यक्रम ठेवायचे अन् जबाबदार अशा प्रौढ मंडळींनी त्यांवर देखरेख ठेवायची.’’[१७] जवळ जवळ शतकभर सुरू असलेल्या महाराष्ट्रातील स्त्री सुधारणेच्या चळवळीमुळे व शिक्षणप्रसारामुळे विसाव्या शतकाच्या मध्यावधी दरम्यान तत्कालीन शिक्षित स्त्री वर्गात जे आत्मभान येत होते त्याचा प्रभाव आनंदीबाई किर्लोस्करांच्या ‘नव्या वाटा’ या नाटकावर झालेला दिसतो. शिवाय प्रस्तुत नाटकाचे शीर्षकही याचे सूचन करणारे आहे हे ही नजरेत भरण्यासारखे आहे.

एकूणच वरील सर्व नाटकांचा विचार करता बालविवाह आणि बालाजरठ विवाह विरोधी तसेच आंतरजातीय विवाहविषयक जागृतीच्या विविध चळवळींचा प्रभाव तत्कालीन अनेक नाट्यकृतींवर झालेला दिसतो. विशेषकरून बालविवाह, बालाजरठ विवाहसंदर्भात ज्या चळवळी होत होत्या याचा विचार करणाऱ्या नाटकांची संख्या अधिक आढळते. स्त्रियांचे प्रश्न, त्यांची असाह्यता, परवशता आणि त्या संदर्भात समाजजीवनात होत असलेली जागृती, विचारप्रवर्तन हेच कलावंताच्या संवेदनक्षम मनाला जिव्हाळ्याचे विषय वाटलेले दिसतात. याचे चित्रण करताना वैचारिक आणि भावनिक अंगाबरोबर कलावंतानी वैचारिक अंगालाच अधिक महत्त्व दिल्याचे आढळते. समाजजागृतीचे व देशस्थिती सुधारण्याचे नाटक हे एक महत्त्वाचे साधन आहे अशी भूमिका घेत असताना तत्कालीन प्रबोधन चळवळींचा प्रभाव म्हणून ह्या नाट्यकृती महत्त्वाच्या वाटतात.

**संदर्भ सूची :**

१. माडगावंकर, गो. ना. — व्यवहारोपयोगी नाटक, मुंबई, ४थी आ., १८९०.पृ. ३४.

२. देशमुख, अनंत — लेख सांस्कृतिक संदर्भ व मराठी नाटक, साहित्यचिंतन, संपा. व. दि. कुलकर्णी, मुंबई, विद्यापीठ प्रकाशन, १ली आ., १९८३, पृ. ५५.

३. मुजुमदार, शं. बा. — लेख महाराष्ट्रीय नाटककार डोंगरे, रंगभूमी (द्वैमासिक), संपा. शं. बा. मुजुमदार, पुणे, जाने. व फेब्रू. १९०९, अंक. ५, ६, ७ पृ. ५०.

४. डोंगरे, पुरूषोत्तम भास्कर — जरठोद्वाह, मुंबई, प्रका. के. रा. गाडगीळ, १८९०, पृ. २०.

५. प्रभुणे, बा. म. — सं. लग्नसमआरंभ, (प्रकाशन, स्थल, उल्लेख नाही) १८९२, पृ.६०,६१.

६. मिटबावकर, रामचंद्र गोपाळ — इंदिरामाधव अथवा सद्यस्थिती नाटक, मुंबई, १८९५, पृ. १९.

७. शिंगणे, मो. वि. व आचार्य,बा.बा. (प्रस्ता.) — कन्याविक्रय दुष्परिणाम नाटक, मुंबई, १८९५.

| | |
|---|---|
| ८. मराठे, कृ. बा. | रंगभूमीचा पूर्वरंग, पुणे, श्री विद्याप्रकाशन, १ली आ., १९७९, पृ.१५३. |
| ९. कुरूंदकर, नरहर | रंगविमर्श, पुणे, इंद्रायणी साहित्य, १ली आ., १९९१, पृ. १३,१४. |
| १०. देवल, गो. ब. | सं. शारदा, पुणे, अनमोल प्रकाशन, २री आ., १९७८, पृ.१६. |
| ११. वराडपांडे, मनोहर लक्ष्मण | श्रीपादकृष्ण कोल्हटकर, नवी दिल्ली, साहित्य अकादेमी, १ ली आ., १९७२, पृ.२८. |
| १२. कोल्हटकर, श्री. कृ. (प्रस्ता.) | वधूपरीक्षा, मुंबई, प्रका. व्यं.ब.पेंढारकर, ३री आ., १९३१. |
| १३. तत्रैव, | पृ. ९३. |
| १४. गिरधारी, भास्कर | लेख श्रीपादकृष्ण कोल्हटकरांच्या नाटकातील सामाजिकता, नवभारत, संपा. वि. म. बेडेकर व इतर, अंक अकरावा, वाई, प्रका. महाराष्ट्र राज्य साहित्य व संस्कृती मंडळ पुरस्कृत, प्राज्ञ पाठशाळा, १९७१, पृ. ४२. |
| १५. शेट्ये, विश्वनाथ गोपाळ | रक्षाबंधन, पुणे, प्रका. एम्. व्ही. आगाशे, १ली आ., १९२०, पृ. ७, ८. |
| १६. शुक्ल, सदाशिव अनंत | सौभाग्यलक्ष्मी, पुणे, चित्रशाळा प्रेस, १ली आ., १९२५, पृ. ७८. |
| १७. किर्लोस्कर, आनंदीबाई | नव्या वाटा, किर्लोस्करवाडी, किर्लोस्कर प्रेस, १९४३, पृ. १७. |

# आण्णा भाऊराव साठे यांच्या कादंबरीतील उपेक्षितांचे ग्रामीण वास्तवदर्शी चित्रण

**डॉ. सविता अशोक व्हटकर**
विभाग - मराठी
भोगावती महाविद्यालय कुरूकल्ली,
ई-मेल आय.डी. -savitavhatkar@gmail.com

आण्णा भाऊराव साठे यांचे समग्र सहित्य 'दलित साहित्याच्या प्रवाह' या संकल्पनेच्या अंगाने येत असले तरी त्याचे लेखन हे मानवतावादाने अंगिकारलेले आहे. आण्णाच्या कादंबरीतील उपेक्षित लक्षात घेताना आधी ग्राम आणि नंतर उपेक्षित अशी काहीशी विभागणी करावी लागली. तसे ग्रामीण आणि उपेक्षित हे दोन्ही प्रवाह एकमेकांना पूरक आहेत. म्हणजे दोन्ही प्रकार खेडयांशी निगडीत आहेत. आता 'दलित' म्हणजे तरी काय? तर जो तो नाडला पिडला गेला तो दलित, ग्रामीण म्हणजे काय? तर परंपरेनुसार चालत आलेल्या रूढी व प्रथांचे पालन करत जगणे म्हणजे ग्रामीण या ग्रामीणतेचाच एक भाग म्हणजे 'दलित' या दलिताला एक दबावाचे 'स्वतंत्र' अस्तित्व आहे. हे असे दलितांचे अस्तित्व फक्त ग्रामीण भागातच नाही तर ते शहरे, नगरे, उपनगरे, महानगरे, व जगभरातूनही या विज्ञानजगात पावलो पावली आढळते. ग्रामीणत्व हे बदलू पाहातेच, शहरीकरणाची लागण या खेडयांना झाली आणि 'ग्राम' बदलू लागले. हा बदल अनिवार्य असला तरी तो काही सकारात्मक बदल घडवितो. तसेच बराचसा नकारात्मकही बदल घडवितो. ही बदलांची प्रक्रिया जगभरात वेगाने होताना दिसते. याचे कारण मला वाटते शिक्षण हे असावे. मग हे शिक्षण पुस्तकी, व्यवहारी, व्यावसायीक असे कोणत्याही स्वरूपाचे असो. 'दलित व ग्रामीण' हा दोन्ही प्रवाहांपैकी 'दलित' हा प्रवाह जगाच्या पाठीवर कुठे ना कुठेतरी आहेच. म्हणजे शोषणाची प्रक्रिया जास्त कोणाची होत असेल तर ती दलितांची होते. नंतर ग्रामीणत्वाची होते. म्हणून दलित आणि ग्रामीण हे दोन्ही अविभाज्य घटक असले तरी, त्यांचे दोन वेगवेगळे प्रवाह साहित्यांतून मांडले आहेत.

आण्णांच्या समग्र साहित्यातून दलित, उपेक्षित आणि ग्रामीण या तिन्ही प्रवाहाचे लेखन आहे. रशियातील राजेशाही नष्ट झाल्यावर १९१७ ला लेलिनने कामगारांचा हिताचे निर्णय घेतले. आंतरराष्ट्रीय स्तरावर होत असणाऱ्या कामगारांच्या जिवनाशी निगडीत घडामोडींचे पडसात आण्णा वर्तमानपत्रातून वाचत होते. एक गिरणी कामगार म्हणून कामगारांविषयी चर्चा करत होते. जशी त्यांची पिळवणूक होत होती तशीच पिळवणूक समस्त उपेक्षितांची विविध स्तरावर होत आहे. याचे भान आण्णांना होते. त्यानुसार त्यांनी आपल्या कादंबरी वाङ्मयातून ग्रामीण, उपेक्षित व दलित आणून त्यांच्या जगण्याचं वास्तवदर्शी चित्रणाची मांडणी केली. आण्णांनी हे लेखन काळाची गरज वगैरे म्हणून लिहलेले नाही तर ती समस्त मानवजातीसाठीची शिकवण या भूमिकेतू त्यांनी आपले समग्र साहित्य लिहीले. त्यात त्यांनी दलित उपेक्षित व ग्रामीण भागातील भेदभावाचे चित्रण करून मुंबापुरीतील दलित व धनिक यांचे वास्तवदर्शी चित्रण मांडून माणसा-माणसातील प्रत्येक पातळीवरचा भेदभाव त्यांनी कादंबरी या वाङ्मय प्रकारातून मांडलेला आहे.

प्रस्तूत निबंधात आण्णांच्या कादंबऱ्यातून जे उपेक्षितांचे ग्रामिण वास्तव चित्रण येते, ते सामाजिक, आर्थिक आणि सांस्कृतिक या तीन स्तरांवरचे आहे असे मला वाटते. कारण ग्रामीण भागातील उपेक्षित हा आजही गावकुसाबाहेर बऱ्याचदा गावोगाव फिरणारा असाच आहे. स्वातंत्र्याची सत्तरी होऊन गेली तरी 'सर्वधर्मसमभाव' या दलित वर्गाच्या वाटयाला आलेला नाही. हे आजही आपण उपेक्षितांच्या बाबतीत घडत असणाऱ्या आजूबाजूंच्या घटनांवरून लक्षात घेतो. त्यांच्या जगण्यातली ओढाताण लक्षात घेताना पहिल्यांदा शिक्षणाची बाजू लक्षात घेणे गरजेचे ठरते. आता कुठेतरी उपेक्षितांची पहिली पिढी शिक्षण घेऊ पाहतेय, तर दलितांची तिसरी पिढी, गावकुसाबाहेरचा दलित समाज, अन्न, वस्त्र, निवारा, शिक्षण, यात बऱ्यापैकी स्वावलंबी आहे. पण भटक्या समाजाचे तसे नाही. आरोग्याचे प्रश्न अजून या दोघांचेही सुटलेले नाहीत. हे त्यांच्या वस्तीत गेल्यावर जाणते. 'संस्कृतीच्या' बाबतीत या दोन्ही समाजला काय स्विकारायचे आणि काय नाकारावे या विषयीची संभ्रमावस्था आहे. उदाहरणादाखल ज्यांनी देव नाकारला ते पुन्हा देव स्विकारताना दिसतात. ज्यांनी धर्मातंर केले ते त्या धर्माच्या देवाची पुजा करतात. त्यांचे नातेवाईक वेगळीच पुजा करतात. अशा परिस्थितीत त्यांना शिक्षणाची योग्य दिशा सापडेलच याची शाश्वती नाही. पुरेसा रोजगार नाही. जागतिकी करणाच्या प्रक्रियेत या उपेक्षितांना योग्य दिशा अजूनही समजलेली नाही. जी काही समजली

असेल ती संख्या हाताच्या बोटावर मोजण्याइतकीच आहे. अशा या परिस्थितीत त्यांच्या सांस्कृतिक स्तराचे काय ? हा प्रश्न आजमितीला तरी जसाच्या तसाच आहे.

आण्णांच्या कादंबरी वाङ्मयातून अनेक उदाहरणे वरील आशयाला धरून आहेत. त्यांच्या कादंबऱ्यातून उपेक्षितांचा सामाजिक प्रश्न बलुतेदार, शेतमजूर, भटक्या जाती-जमाती व त्यांच्या स्त्रीया-मुले या घटकांना अनुसरून येतो. त्यामध्ये 'गुलाम''वैर''रानगंगा'

'चित्रा''वारणेच्या खोऱ्यात''माकडीचा माळ' या कादंबऱ्याचा समावेश होतो. या कादंबऱ्यातील स्त्रीया, देवदासी, कलाकार, शेतकरी, कामगार, व्यसनाधिन यांचे जगण्याविषयीचे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक प्रश्न का? आणि कसे? निर्माण झालेले प्रश्न सोडविण्यासाठी ज्या - त्या कादंबरीतील पात्रे आपापल्या परीने जसा जमेल तसा प्रयत्न करताना दिसतात. त्यांचा स्वतःचा असा एक कायदा असतो. शासनाच्या कायदयाला ही माणसे सहजा - सहजी जुमानत नाहीत. कारण माणूस म्हणून जन्माला आल्यापासून त्यांनी सतत अन्याय आणि अत्याचारच भोगलेला असतो. आणि हे भोगणं त्यांना विद्राही करते. याची जाणीव 'वैर' या कादंबरीतुन चित्रित होते. अन्यायाविरूध्द केलेल्या संघर्षाची ही कथा आहे. मुकिंदा आणि देशमुख या दोन घराण्यातील पिढयान्पिढया चालत आलेल्या वैराची ही कहाणी आहे. येळापूरचा इनामदार नानासाहेब देशमुख तमाशात दौलत जादा करण्यासाठी गरीब शेतकऱ्यांना कर्जे देतो व रात्री त्यांच्या जमिनी बळकावतो. यामुळे चिडलेले शेतकरी त्याचा व त्याच्या मुलाचा खून करतात. या घटनेपासून परस्परांतील वैराची ही परंपरा सुरू होते. प्रतिष्ठेचा खेळ मुकिंदा जिंकतो आणि संघर्षाला सुरवात होते. 'वारणेचा वाघ' या कादंबरीत शेतकऱ्याचे शोषण करणाऱ्या सावकार, भांडवलदार आणि पर्यायाने सरकार विरूध्द बंड पुकारणाऱ्या हिंदुरावाचे दर्शन घडते. ज्या सावकारांनी दस्तखत करून गरिबांच्या जमिनी बळकावल्या होत्या, त्यांच्या विरूध्द दंड थोपटून, त्यांनी लिहिलेली गहाणखते फाडतो. आणि गरिब शेतकऱ्यांना त्यांच्या जमिनी परत मिळवून देतो. 'रानगंगा' या कादंबरीतून नदीचे पाणी आडविल्यामुळे जाधवांच्या शेतीची व घराची झालेली उध्वस्त अवस्था चित्रित झालेली आहे. आणि त्याचप्रमाणे शेतकरी व त्यांच्यावर होणाऱ्या अन्यायाविरोधात पेटून उभे राहतात. तसेच त्यांनी शेतमजूरांच्या शोषणाविरूध्दही आवाज उटविलेला आहे. शेतकरी आणि शेतमजूर यांची अस्वस्थता दिवसेंदिवस वाढत आहे. काबाडकष्ट करूनही त्याची भूकेची चिंता मिटत नाही. याचे कारण उत्पादनाची साधने भांडवलदाराच्या मालकीची असणे हा या उत्पादन पध्दतीचा पाया 'भांडवलदार आणि कामगार वर्ग समाजव्यवस्थेत असतात.'[१]याचे उदाहरण म्हणून 'गुलाम' या कादंबरीकडे पाहता येते. या कादंबरीचा नायक अनाथ 'वासू' आहे. त्याचे आई वडील इथल्या व्यवस्थेचे 'बळी' ठरले आणि त्यांचा मुलगा 'वासू' हा गुलाम झाला. या कादंबरीतील ग्रामीण भागातून येणारी शोषणाची वृत्ती किती हीन पातळीवर जाते. तसेच या गरीब कष्टकरी लोकांचे जिवंतपणच कसे नाहीसे केले जाते. शिवाय त्याच्याच जमिनीत गुलाम म्हणून मरेस्तोवर राबायचे. आणि हे राबणेच आपल्या जीवनाचे एक अंग बनवायचे असा हा 'गुलाम' आण्णांनी उभा केला. त्याच्या दुःखाने कड गाठलेली आहे. दुःखाला वाचा फोडण्याचे अन्य मार्ग संपलेले आहेत हा वासू याच गर्तेत आडकलेला आहे. 'समाजात जो कोणी वर्ग सत्ताधारी असतो. तो आपल्या हितसंबंधाच्या सोयीचे असेल तर त्यात बदल घडवून आणावा असे त्या सत्ताधीश वर्गाला वाटत नाही.'[२] त्यामुळे शोषिंताचा संसार गाडग्या मडक्यांचाच रहातो. सतत भुकेची चिंता करणारी ही माणसे आपल्या संपूर्ण आयुष्याची व आपल्या संपूर्ण भविष्याचीही चिंता करण्यास असमर्थ ठरतात.

ग्रामीण भागातील शेती व्यवसायात पुढारलेले लोक मजूरांचे दलित वर्गाचे शोषण करतात. शेती व शेतीला पूरक व्यवसाय शेतमजूरांच्या कष्टांवरच चाललेले असतात. तरीही त्यांना त्यांच्या मालाचा-कष्टाचा योग्य मोबदला दिला जात नाही. खेडे गावातून उभे राहणारे साखर कारखाने, त्या निमित्ताने त्यांच्या जमिनीवर आलेली गदा, राजकीय स्तरांवर पैशाच्या जोरावर त्यांचा दाबून टाकलेला आवाज, त्यांच्या बाजूने उभे राहणाऱ्याला वेठीला धरण्याचे प्रकार आजही समाजात होताना दिसतात. 'वारणेच्या खोऱ्यातील' हिंदूराव म्हणजे फिरते सरकार, 'फकीरा' मधील फकीरा 'वैर' मधील मुकिंदा, महिपती, राजाराम,'वारणेचा वाघ' मधील सत्तू भोसले ही पात्रे ग्रामीण भागातील उपेक्षितांवर होत असणाऱ्या अन्याय विरूध्द लढा देताना दिसतात. 'फकीरा' हा गावकुसाबाहेरील मातंग जमातीतला आहे. तो निर्भिड, धाडसी, करारी स्वभावाचा आहे. दुष्काळात शासन काहीच करत नाही. उलट शासन लोकांच्यावर जास्त अन्याय, अत्याचार करते. त्यांची होणारी उपासमार तो उघडया डोळयांनी पहातो हे पाहून 'फकीरा' चिडतो, आणि उध्देगाने म्हणतो 'हे कुंभकरणाच्या अवलादीचं राज हाय, आपुन तलवार घेऊनच त्यांच्या उरावर नाचले पाहिजे'[३] असा इंग्रज सरकार विरूध्द बंड पुकारणारा ग्रामीण बंडखोर 'सरकारला सळो की, पळो करून सोडणारा समाजनायक आण्णांनी उभा केलेला आहे. 'वारणेचा वाघ' कांदबरीतील सत्तू भोसले सरकार विरूध्द बंड पुकारून त्यांना धारेवर धरतो. जवळ जवळ अठरा वीस वर्षे सत्तू इंग्रजांशी नेटाने लढत राहतो. वारणा खोऱ्यात 'प्रतिसरकार' स्थापन करून दीन,

दलित, शोषित-पिडीत, गावकुसाबाहेरील लोकांवरील अन्याय अत्याचारविरूध्द दंड थोपटतो. सई महाराणीला अमानुषतेने मारणाऱ्या मथाजी चौगुल्याचा खुन करून खोऱ्यातील मुजोर माणसांना ताळ्यावर आणतो. वारणा खोऱ्यातील दीन-दुःखीतांसाठी, शोषित-पिडीतांसाठी देव असलेला सत्तू कायदयाच्या दृष्टीने गुन्हेगार, खुनी असतो. सत्तूचा निःपात करण्यासाठी इंग्रज सरकार साताऱ्याच्या धरणीवरील एकूण एक बंडखोराला चिरडवून टाकतो. अशी अनेक उदाहरणे अण्णांच्या कादंबरीतून आलेली आहेत.

अण्णांच्या कादंबऱ्यामधील नायकांचे विश्वासघाताने माथे भडकते. 'संघर्ष''धावपळ' यांचे त्यांना कमालीचे वेड आहे, जबर आत्मविश्वास असणाऱ्या या माणसांची तत्वनिष्ठा अचल आहे. त्यांच्या वागण्यात अन्याय, अत्याचाराविरोधात लढून गरिबांना न्याय मिळवून देण्याचे 'इगित' आहे. आणि हेच 'ग्रामीण इगत' ब्रिटीश सरकार, गावचा पाटील आणि उच्च वर्गीयांचे जोखड फेकून देण्यास भाग पाडते. यात हिंदूराव, फकीरा, सदू, मास्तर या व्यक्तिमत्वांचा समावेश होतो. त्यांच्या मनात अन्यायविरोधात चिडच नाही तर स्वातंत्र्य प्राप्तीविषयीची तळमळ देखील मोठया प्रमाणात आहे.

अण्णांच्या कादंबऱ्यातून जे पुरोगामी स्वरूपाचे विचार आलेले आहेत. त्या विचारांना ग्रामीण 'टच' आहे. उदा. जमीनदाराने जमीनदारकी करायची तर शेतकऱ्याने केवळ राबतच रहायचे. खेडेगावातील शेतकऱ्यांची स्थिती स्वतः अण्णांनी पाहिली होती. त्यांच्या हाल अपेष्टांनी ते द्रवले होते. त्यांचे हे द्रवणे मक्तेदारी दडपणामुळे किसानवर्गाला संघटित होणे आणि जमिनीसाठी आपल्या हक्कासाठी चळवळीसारखी कृती करणे भाग पडते. अण्णांच्या कादंबऱ्यातील नायक हे खेडयातील, उपेक्षित असून जवळ जवळ सर्वच कादंबऱ्याची पार्श्वभूमी ही खेडे गावांतील शिवाराच्या आजूबाजूची आहे.

भारतभूमीच्या स्वातंत्र्य लढण्यासाठीही अण्णांच्या कादंबऱ्यातून ग्रामीण भागातील स्वातंत्र्य सैनिकांनी आपले योगदान दिल्याचा वास्तवातले उदाहरणे आहेत. ती 'फकीरा', 'वारणेचा वाघ' मधील सत्तू भोसले वारणेच्या खोऱ्यातील हिंदुराव या सर्वांनी आपल्या कुटूंबाचा विचार न करता समोर येईल. त्या परिस्थितीला सामोरे जात, मनापासून स्वातंत्र्य लढयात लाखमोलाचे योगदान दिलेले आहे. वाटेगावाचा राणोजी मांग गावाच्या प्रतिष्ठेसाठी शिगावच्या जत्रेतून 'जोगणी' आणतो. वाटेगावाच्या शिवेत पोहोचल्यावरही रीवाज मोडून त्यांना मारले जाते. त्यांच्याच कर्तृत्वाने वाटेगावाला या कुटूंबाविषयी सहानुभूती आहे. पण फकीरांला झाल्या प्रकाराची चिड आहे. तो संपुर्ण व्यवस्थेविरूध्द बंड करतो. इंग्रज सरकारलाही 'सळो की पळो' करून सोडतो 'वारणेच्या खोऱ्यातील' हिंदुराव हा ब्रिटीश सरकार विरोधात प्रतिसरकार स्थापन करतो. याच कांदबरीतील नानोजी पाटलाचे बंड शमते 'वारणेचा वाघ' कादंबरीतील सत्तू भोसले वारणा खोऱ्यातील हिंदूराव या अजोड नायकाचे गुण, रूप व वृध्दी लाभलेला एक धाडसी क्रांतीकारी वीरपुरूष होय. ऑबर्ट व लष्करी अधिकारी सत्तूचा द्वेष करतो. सत्तूचा अपमान करतो. सत्तू परत कुमजेला आल्यावर गर्भार सई महाराणीला मारणाऱ्या मथाजीचा कुऱ्हाडीने खून करतो आणि फरार होतो. त्याच्या नशीबी भटकंती येते. त्याला जीवाला जीव देणारी माणेस भेटतात. तशी विश्वासघात करणारीही माणसे भेटतात. त्याच्या जीवाला धोका आहे. असे जेव्हा त्याला त्याचे साथीदार सांगतात तेव्हा सत्तूच्या मनातील घालमेल पुढील शब्दांतून व्यक्त होते. 'आता आणखी खून नको आणि कुणाच्या पोराबाळांच्या तळतळाट नको. लढाई आणि खून यात फरक आहे. आणि लढत लढत जिवंत राहण्यातच काही तरी अर्थ आहे.'[४]'वारणे' च्या वाघाची ही शोकांत कथा ब्रिटीशांच्या अरेरावी गुलामगिरी, दडपशाहीच्या विरोधात बंड पुकारण्याचा एका क्रांतीवीराची, शैर्यगाथा आहे. अशा प्रकारे आण्णांच्या कादंबऱ्यातून पोवाडे ग्रामीण जीवनातील उपेक्षितांचे जीवन जगणारे, स्वतःपेक्षा समाजभान जपत राष्ट्रभर प्रेम करणारे आहेत.

ग्रामीण समाजातील कलाकारांच्या व्यथाही आण्णांच्या कादंबऱ्यांचा विषय झालेला आहे. त्यांची कला ही त्याच जगण्याचे साधन आहे. आण्णांची प्रतिभा ही लोककलावंताची आहे. हे कलावंत समूहाचे जीवन जगात असतात. आणि हे जीवन जगताना त्यांना आलेले दाहक अनुभवच त्यांची उच्च दर्जाची 'प्रतिभा' असते. अशा या ग्रामीण कलाकराचे जीवनानुभवांचे चित्रण 'वैजयंता' आणि 'रानबोका' या कादंबऱ्यातून येते. वैजयंता आपल्या आईच्या अपमानाचा सूड घेण्यासाठी पुन्हा तमाशात नाचण्याचा निर्णय घेते. 'रानबोका' या कादंबरीतील मोहना ही घरंदाज घराण्यातील असूनही दुदैवाने तमाशात नाचकाम करू लागते. तिचा जन्म होताच आईचा मृत्यू होतो. एक दिवसाच्या मोहनाला वडील शंकरराव पाटील कामेरीच्या विठाबई पाटलीणीला देऊन टाकतात. तीच मोहना मोठी होवून तमाशात नाचते. आण्णांनी कलाकरांच्या चित्रणाची परंपरागत शैली नाकारून त्यांना समर्थ व सक्षम बनविलेले आहे. त्यामुळे त्यांच्या कांदबरीतील कलाकरांनी परंपरेनुसार अन्याय सहन करावा हे त्याना मान्य नाही. आणि हे कलाकरही संकुचित वृत्तीचे नाहीत. त्यांच्या विचारांचे मोठं देणं आहे. इतरांचा द्वेष न करता माणसाकडे 'माणूस' म्हणून पाहण्याची त्यांची वृत्ती आहे. यातूनच आण्णांनी कलाकारांना आपल्या कादंबऱ्यातून

आगळे-वेगळ स्थान प्राप्त करून दिलेले आहे. स्वातंत्र्याची नांदी हा त्याच्या कादंबऱ्यातील स्त्री कलाकरांचा विषय होते. या स्त्री कलाकरांच्या ज्ञानात उदात्तता, आदर व धीर गंभिरता ही गुणवैशिष्टे आहेत याची उदाहरणे म्हणून 'वैजयंता आणि रानबोका' या कादबऱ्याकडे पाहता येते.

'चिखलातील कमळ' ही कादंबरी देवदासींच्या जीवनावर आधारित असणारी कादंबरी, ग्रामीण भागात असणारे देवदासींचे जीवन आणि आण्णांच्या कादंबरीतून आलेले 'सीता' नावाच्या देवदासीचे जीवन ही दोन टोके आहेत. आण्णांच्या मनात असणारे देवदासींच्या विषयीचे विचार किती उच्च पराकोटीचे आहेत हे त्यांच्या कादंबरी निमित्ताने आलेले एकमेव उदाहरण होय. या कादंबरीतील तुळसा ही मुरळीचे प्रतिनिधीत्व करणारी देवदासी आहे. तुळसा आणि टोप गावचे पाटील यांची मुलगी म्हणजे 'सीता' आजारी पाटलांनी आजारातून लवकर बरे व्हावे म्हणून तुळसा आपली मुलगी म्हणजे 'सीता' हिला खंडोबाला मुरळी म्हणून सोडते. तीचा नवस पुर्ण होतो म्हणे 'एका पिढीचा भोगवटा दुसऱ्या पिढीकडे चालू राहतो. स्त्री भोगवस्तू उच्च जातीची दासी इथपर्यंतच ही कादंबरी मजल गाठते'[५] असे नाही तर ती प्रत्येक वाचकाला अंतमुर्ख करते. या समाज व्यवस्थेविषयी विचार करावयास भाग पाडते. या कादंबरीतील खंडोबाला केलेला नवस सीतेच्या आयुष्याची धुळदान करणारा असू शकतो. परंतु सीतेचे सावत्र भाऊ तसे घडू देत नाहीत. त्याच गावातील सीतेचा प्रियकर बंडखोर बळीला तिच्या जीवनाचा साथीदार ठरवितात. तिचा विवाह बळीशी लावून देतात. या कथेच्या निमित्तने आण्णांनी सितेच्या व्यक्ति चित्रणातून मुरळी या प्रथेतील दुदैवी स्त्रीयांचे जीवन तसेच देवांच्या नावावर होणारी विटंबना यांचे चित्रण करत सकारात्मक विचारसरणीचाही उहापोह केलेला आहे.

ग्रामीण जीवनाचा अविभाज्य भाग असणारे भटके विमुक्ताचे चित्रण आण्णांच्या 'माकडाचा माळ' या कादंबरीतून येते. त्यांचे भटकत जगणे, हेवे-दावे, भूक, दुःख, कुरघुडी यांसारख्या अनेक नकारात्मक घडामोडी व घटनांच्या चित्रणाबरोबरच त्यांच्या जगण्यावर असणाऱ्या निष्ठेचेही चित्रण येते. जगण्यासाठी धडपडणारी ही माणसे आगळीक करतात. आगळीक सोसतात, तरीही जगतात. हा भटका समाज पोटासाठी गावोगाव भटत आपला उदरनिर्वाह करत असतात. व्यसन, कुरघुडी, ईर्ष्या, संघर्ष, घात, जीवापाड प्रेम असे मनुश्य स्वभावाला अनुसरून असणारे अनेक पदर या कादंबरीतून चित्रित झालेले आहेत. या कादंबरीतील माकडाचा खेळ करून, तर बाळयाडोंबारी आपल्या दोन मुलींना घेऊन तमाशा करून आपला उदरनिर्वाह करीत असतो. यातील हिकम्या हा गारूडी आहे. हिकम्याच्या सापाला यंकू ठार मारतो. यावरी हिकम्या गावच्या पाटलाकडं जाऊन माझ्या सापाला यंक्यान मारलं मी आता कसा जगू? आक्रोश मांडतो. त्याच्या या आक्रोशातून त्याच्या जगण्याचा कणा असलेला आर्थिक प्रश्न वाचकांच्या लक्षात येतो.

माकडीच्या माळावरील या जमाती भीक मागून जगणाऱ्या आहेत. या सर्वाना घरदार नाही तरही ते आपापल्या जमातीनुसार आपला रितीरिवाज सुरू ठेवतात. पोटाची आग विझवण्यासाठी ही भटकी उपेक्षित जमात ज्या गावाला माळ असतो. तिथे पाले ठोकून आपली कशीतरी गुजरण करताना, त्या गावच्या प्रमुखाकडून त्यांच्या होणाऱ्या पिळवणकीचे चित्रण येते. त्याच बरोबर या जमातीअंतर्गत असणारा संघर्षही लक्षात येतो. अशी अनेक उदाहरणे आण्णांच्या कादंबऱ्यातून आलेली आहेत. यावरून आण्णांच्या कादंबऱ्या म्हणजे मानवतावादी विचारांचे कथनकीकरण आणि व्यक्तिकरणही आहे. समानतावाद, मानवतावाद, राष्ट्रवाद, समाजवाद, नवमतवाद, त्या बरोबर उपेक्षित, पिडीत, दलित, कामगार, शेतकरी, स्त्रीया या सर्व प्रणाली आण्णांच्या विचारांच्या मूळ प्रेरणा आहेत. स्वांतत्र्यासाठीचे आंदोलन, महायुध्दाचा काळ, चळवळी, संप याही गोष्टींचाही त्यांच्या साहित्यात अंतर्भाव झालेला आहे. म्हणूनच त्यांच्या कादंबऱ्यातून अनेकविध समस्या व प्रश्न मांडलेले लक्षात येतात.

**सारांश -**

आण्णांच्या समग्र साहित्यात दलित, उपेक्षित आणि ग्रामीण या तीन्ही प्रवाहांचे लेखन आहे. ती काही त्यांनी काळाची गरज वगैरे म्हणून लिहिलेले नाही तर, तर समस्त मानवजातीची गरज व शिकवण या भूमिकेतून त्यांनी आपले समग्र साहित्य लिहिलेले आहे. त्यात त्यांनी दलित / उपेक्षितांचे समस्त घटक व ग्रामीण भागातील भेदभावांचे चित्रण करत, मुंबापूरीतला दलित आणि धनिक यांचेही वास्तवदर्शी चित्रण मांडून माणसां माणसातील प्रत्येक पातळीवरचा भेदभाव कादंबऱ्यातून मांडलेला आहे.

आण्णांच्या कादंबऱ्यातून येणाऱ्या ग्रामीण भागातील दलित / उपेक्षित हा गावकुसाबाहेरच्या जाती जमातीतील आहे. तो कोणाचा द्वेष करणारा नाही. श्रीमंता विषयी मत्सरभाव नाही तर सत्ता, संपत्ती आणि श्रीमंतीपेक्षा समाजात माणसासारखे जगायचे आहे. यासाठी त्यांचा लढा आहे. त्यांच्या प्रामाणिकपणावर स्वाभिमानावर जर कोणी घाला घालायचा प्रयत्न केलाच तर, तो त्यांच्या विरूध्द पेटून उठतो. बर्न्स

एमिला यांच्या विचारांनुसार 'लढयाचे मुख्य यश ताबडतोबीच्या परिणामात नसते. ते कामगारांच्या वाढत्या एकजुटीत असते.' लढयाचा मैदानात कामगारांना समजून येते की, त्यांचा एक वर्ग आहे. प्रस्तापित समाजातील लोक जेव्हा या उपेक्षित दलित लोकांवर अन्याय अत्याचार करतात तेव्हा ही माणसं चवताळून उठतात. अन्याय करणाऱ्याला, शोषण करणाऱ्याला धडा शिकवल्याशिवाय शांत बसत नाहीत. त्याचा जीवन संघर्ष हा जगण्यासाठीचा जीवन संघर्ष आहे. ती विनाकारण कोणाच्या वाटेला जात नाहीत. प्रतिकार करण्याची वेळ निर्माण झालीच तर जमीनदार, सावकार यांची कोणाचीही ते गय करत नाहीत. कष्टकऱ्यांच्या या ताकतीची जाणीव गावकुसाच्या आत रहाणाऱ्या प्रस्तापितांना असते. म्हणून स्वतःच्या बचावासाठीचा ताकतीचा पर्याय म्हणून ते गावकुसाबाहेर राहणाऱ्या गोरगरिब, उपेक्षित, दलितांना नाडतात. त्यांचा जीव जाईपर्यंत त्यांचे शोषण करतात. या शोषणाविरोधात आण्णांच्या ग्रामीण कादंबरीत उपेक्षित लढा देत असतानाच समाजरचनेतील अन्याय, पिळवणूक विषमता यांना आव्हान देत समता, मानवता आणि न्याय या बाबतीत समतोल निर्माण करण्याच्या उद्देशाने समाज परिवर्तन घडवून आणतात हेच आण्णांच्या ग्रामीण कादंबरीतील दलित व उपेक्षितांचे लक्षणीय यश आहे.

**संदर्भ टिपा -**

१) जोग वि. स. - 'मार्क्सवादी आणि मराठी साहित्य' विजय प्रकाशन नागपूर, प्रथमावृत्ती १९९१/पृ. १६
२) कऱ्हाडे सदा - 'साहित्य विश्लेष' स्वरूप प्रकाशन औरंगाबाद, प्रथमावृत्ती १९९९/पृ. १२२
३) साठे आण्णाभाऊ - 'फकिरा' प्रकाशन गुलाबराव मारूती कारले २६ ती आवृत्ती २००९/पृ. ४५
४) शिंदे रणधीर (संपा) - 'आण्णा भाऊ साठे साहित्य समीक्षा' श्रमिक प्रतिष्ठान कोल्हापूर, प्रथमावृत्ती २०१०/पृ. ५५
५) गायकवाड आसाराम(संपा) - 'लोकशाहीर तथा लोकलेखक आण्णाभाऊ साठे संदर्भ ग्रंथ' झेप प्रकाशन, नाशिक प्रथमावृत्ती १९९६/पृ. १८७

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com

# चळवळीचे साहित्य: आवश्यकता स्वरूप व फलश्रुती

- डॉ. युवराज देवाळे
कर्मवीर हिरे महाविद्यालय, गारगोटी
Email : yuvrajdewale@gmail.com

ललित साहित्य भाव, लय आणि सौंदर्य या तीन तत्त्वांवर आधारलेले असते. मानवी जीवनाचे सर्व घटक त्याच्या आस्थेचे विषय असतात. मानव आणि त्याचा भवताल हा ललित साहित्याचा गाभा आहे, या अर्थाने समाज आणि साहित्याचा अनन्यसाधारण संबंध मानला जातो. समाजाच्या कोंदणात साहित्याची निर्मिती होते. साहित्याला आवश्यक भाषा, विषय, आशय, पात्र, घटना अशा कल्पकतापूर्ण घटकांबरोबरच लेखक, वाचक, प्रशासन व्यवस्था, समीक्षक या जैव घटकांचे अस्तित्व समाजात असते. वास्तवाची कल्पक व लालित्यपूर्ण मांडणी साहित्यात होत असते. आवश्यकतेनुसार ती वास्तव व परखडही होते. साहित्याला निर्मिती पासून समीक्षेपर्यंतच्या सर्व घटकांची रसद समाजातून उपलब्ध होते, या प्रक्रियेचा विचार करता साहित्य हे समाजावर अवलंबून आहे असे म्हणता येईल. मात्र ही प्रक्रिया केवळ एक मार्गी नाही. साहित्य हे समाज निर्मित असले तरी ते आरशासारखे असते. त्यामध्ये समाजमनाचे प्रतिबिंब पडते. प्रतिभावंत लेखक समाजातील सार निखळ स्वरूपात त्यामध्ये मांडत असतो. मानवी मनातील भावना, विचार, कल्पना, आकांक्षा आदींचा त्यामध्ये समावेश असतो. मानवी जीवनातील उदात्तता, मांगल्य, विचारांचा उद्घोष करणारा आशय विविध रूपात साहित्यातून प्रकट होत असतो. मानवाच्या हातातून निसटून गेलेला भूतकाळ आणि तो अनुभवत असलेला वर्तमान यांच्या मांडणीतून लेखक उज्वल भविष्याची सूचक मांडणी करत असतो. सत् तत्वाची पाठराखण आणि अमांगल्याशी संघर्ष हे ध्रुवात्मक रचनातत्व साहित्यरचनेच्या मुळाशी असते. अनेक वर्ग, स्तरावर विभागलेल्या जगद्व्याळ समाज व्यवस्थेतील बहुकेंद्री आशयसूत्रांतून एकजिनसी, परिणामकारक साहित्यकृती साकारली जाते. विशिष्ट विचारधारा, हेतू, परिणामकारकता त्यामध्ये अभिप्रेत असते. एकंदरीत विस्कळीत अशा व्यापक समाज व्यवस्थेवर तर्कशुद्ध भाष्य करणारी सूत्रबद्धता हा साहित्याचा स्थायी विशेष आहे. त्याच्या प्रत्येक घटकाला सामाजिक संदर्भ असू शकतो. साहित्यनिर्मिती ही माणसाच्या विस्तृत वांशिक, सांस्कृतिक नकाशा चा एक भाग म्हणून पाहिली जाते.[१] यादृष्टीने विचार करता साहित्य आणि समाज यातील अनन्य साधारण संबंधांची जाणीव होते.

समाज परंपरा आणि परिवर्तन यांच्या परस्पर छेदणाऱ्या परिघावर आकारत असतो. परंपरेच्या धाग्यांनी त्याची वीण पक्की होत जाते; तर परिवर्तनशीलता त्याला धक्के देत ती काही अंशी उसवण्याचा, त्यामध्ये बदल करण्याचा प्रयत्न करते. परंपरेतील चांगल्या तत्वांना रूढीग्रस्तता बंदिस्त करते तेव्हा समाजातले प्रवाहीपण संपते. मानवी जगण्याचा प्रवाह अवरुद्ध झाला की सत्तत्त्वे, मांगल्य झाकोळले जाऊन सामाजिक, राजकीय, आर्थिक, सांस्कृतिक दृष्ट्या अभिजनवर्ग तयार होतो. हा अभिजन रूढींच्या आधाराने इतरांना आपल्या नियंत्रणात ठेवू पाहतो. आपल्या धारणा, विचार, आचार पद्धती इतरांवर लादतो. त्यासाठी हर प्रकारे तो कार्यरत राहतो. अशामुळे बहुसंख्येने असलेला विस्कळीत बहुजन अनेक प्रकारे दडपला जातो. मात्र ही दडपशाही फार काळ चालत नाही. अन्यायाच्या रचनेतच तिच्या नाशाची बीजे असतात. ही रचना उध्वस्त करण्यासाठी कोणी एक विचारसूत्रे मांडतो. केवळ विचारसूत्रे कोणतीही यंत्रणा तात्काळ उद्ध्वस्त करू शकत नाहीत कारण ती विचार रूपात

असतात. विचारांना आचरणात आणणारी सूत्रधार व्यक्ती समविचारी कार्यकर्त्यांची फळी उभारून व्यापक लढा उभा करते तेव्हा चळवळ बनते. विशिष्ट विचार आणि सूत्रबद्ध हालचालींनी उभा केलेला संघर्ष हे सामाजिक चळवळीचे स्वरूप असते. स्वातंत्र्य चळवळ, भूदान चळवळ, अंधश्रद्धा निर्मूलन चळवळ अशा विविध व्यापक चळवळी भारतीय समाजव्यवस्थेने उभा केल्या आहेत. अशा चळवळींना वैचारिक पाठबळ देणारी मुखपत्रे असतात. तसेच चळवळीचे प्रणेते आपली भूमिका ग्रंथरूपात ही मांडतात. लो. टिळक (केसरी), म. गांधी (यंग इंडिया, हरिजन), डॉ. आंबेडकर (बहिष्कृत भारत, मूकनायक) आदी जननायकांनी आपल्या सार्वजनिक कृतीचा हेतू व्यापक पातळीवर पोहोचवण्यासाठी, विचारधारा मांडण्यासाठी आणि चळवळीला वेळोवेळी मार्गदर्शक दिशा देण्यासाठी मुखपत्रांचा प्रभावी वापर केला आहे.

**चळवळीच्या साहित्याची आवश्यकता-**

समाजव्यवस्थेत विविध सामाजिक, राजकीय, आर्थिक, सांस्कृतिक विषयांच्या अनुषंगाने काळाच्या ओघात नवी मांडणी आवश्यक असते. रूढ व्यवस्था अशा बदलाला सहजासहजी तयार होत नाही तेव्हा व्यापक पातळीवर विरोधात्मक संघर्षाची गरज असते. विविध स्तरावर अनेक व्यक्तींनी समान हेतूने चालवलेली मोहीम म्हणजे चळवळ असते. चळवळीत वैचारिक पाठबळ देण्यासाठी पूरक साहित्याची गरज असते. चळवळीचा विचार, भूमिका, कृति कार्यक्रम, याविषयी मुद्देसूद मांडणी असणारे साहित्य हे उपयोगिता मूल्यांवर आधारलेले असते. ते तात्कालिक स्वरूपाचे असल्याने ते ललितेतर स्वरूपाचे असते. ललित साहित्य चळवळी व कार्यकर्त्यांना प्रेरणा देणारे असते. ते ललितरम्यता सांभाळून प्रगल्भ गांभीर्याने विशिष्ट विचारधारेला आधार देण्याचे काम करते. आई (मॅक्झिम गॉर्की) कादंबरीने हे काम चोखपणे पार पाडले आहे. मराठी साहित्यात साठोत्तर कालखंडात उभ्या राहिलेल्या दलित चळवळ, स्त्रीवादी चळवळ, आदिवासी चळवळ या सामाजिक चळवळी आणि ग्रामीण साहित्य ही साहित्य चळवळ अशा चळवळींना साहित्याने मोलाचा हातभार लावला आहे. 'अस्मिता दर्श' च्या माध्यमातून गंगाधर पानतावणे यांनी दलित चळवळीची सैद्धांतिक मांडणी केली. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांची विचारधारा केंद्र मानून वेदना, विद्रोह, नकार ही दलित साहित्याची तत्वत्रयी मांडली. चळवळीतून उभ्या राहिलेल्या कार्यकर्त्यांनीही आत्मकथन, कविता, कथा, नाटक अशा प्रकारात जोरकस साहित्य निर्मिती केली. चळवळीला या साहित्य निर्मितीने ऊर्जितावस्था दिली. शेकडो लिहित्या लेखकांना चळवळीने चेहरा दिला. साहित्य आणि चळवळ यांच्या परस्पर पूरकतेचे हे उत्तम उदाहरण आहे.

ग्रामीण साहित्य चळवळ ही साहित्यातील अस्मितेच्या शोधातून उभी राहिली. कृषिनिष्ठ परंपरेतील, ग्रामीण परिसरात आधिवास असणारा समूह स्वातंत्र्यानंतर मुख्य प्रवाहात आल्यावर त्याला साहित्यातील उपरेपणा खटकू लागला. मुठभर शहरी प्रस्थापितांकडून आपल्याच मातीत आपण बेदखल होत आहोत या विचाराने जागृत झालेला सर्व जाती धर्मातील ग्रामीण माणूस आपले अस्तित्व, समस्या अधोरेखित करू लागला. अर्थात ग्रंथनिर्मिती, समीक्षा व्यवहार, साहित्य संमेलने या मर्यादित स्तरावर ही चळवळ बौद्धिक पातळीवर मर्यादित राहिली. आनंद यादव, वासुदेव मुलाटे अशा मान्यवरांनी आपल्या विपूल समीक्षा लेखनातून चळवळीची पाठराखण केली. पुढे अनेक लेखक लिहिते होऊन कथा, कादंबरी या वाड्मय प्रकारातून साहित्याची विपुल निर्मिती झाली.

आदिवासी समाजापर्यंत स्वातंत्र्याचे फायदे फारच उशिरा पोहोचले. अनेक पातळीवर दुर्लक्षित राहिलेला व अद्यापही शोषणाच्याच गाथा जगणारा हा समाज आहे. शोषकांची सर्व व्यवस्था नाकारण्यातून आदिवासी चळवळ उभी राहिली. तिला जसे साहित्याचे अंग आहे त्याहून अस्तित्वाचा विचार अधिक प्रखर आहे. वाहरू सोनवणे, विनायक तुमराम, भुजंग मेश्राम आदींनी आदिवासी चळवळीला वैचारिक अधिष्ठान दिले. या चळवळीला वनवास मुक्तीच्या आशय, स्वओळखीचा प्रश्न आणि आदिम समाजाची पुनर्घटना अभिप्रेत आहे.[२] अर्थात आदिवासी साहित्याचा हेतू अस्तित्वशोध व प्रस्थापित व्यवस्थेला विरोधाची भूमिका असली तरी ते बंडखोर, विध्वंशक नाही. त्याला नवनिर्मितीची आस आहे. ते आपला विरोध संयमाने नोंदवते आणि साहित्यकृतीतून निसर्ग सन्मुख जीवन रेखाटते.

अस्तित्व शोध आणि स्वत्त्वाचे प्रखर भान यातून स्त्रीवादी चळवळ सुरू झाली. मराठी साहित्यातही तिने चांगले मूळ धरले. केवळ पुरुषसत्ताक व्यवस्थेला विरोध असे एकांगी स्वरूप न राहता परंपरेविरुद्ध बंडखोरी, अस्तित्व शोध आणि नवी समताधिष्ठित नवसमाज निर्मिती हा या चळवळीचा मुख्य उद्देश आहे. समाजव्यवस्थेतील अनेक प्रथांना भिडणारे, स्त्रीच्या अस्तित्वाचा उद्घोष करणारे अनेक रेषीय प्रश्न हे साहित्य उभे करते. अश्विनी धोंगडे, विद्युत भागवत, मंगला वरखेडे यांनी स्त्रीवादाची समीक्षात्मक मांडणी केली आहे. तर गौरी देशपांडे, सानिया, मेघना पेठे, कविता महाजन, प्रज्ञा दया पवार, मल्लिका अमर शेख आदींनी साहित्य निर्मितीतून चळवळीचा विचार दृग्गोचर केला आहे.

या ठळक चळवळी बरोबरच साहित्यातील प्रस्थापितां विरोधातून उभी राहिलेली लघु नियतकालिक चळवळ, बालसाहित्य, मुस्लिम साहित्य, कामगार साहित्य, जनसाहित्य अशा चळवळींनी जाणीवपूर्वक वेगळेपण जपले. स्वतंत्र विचारधारा, साहित्य संकेत याआधारे त्यांनी वेगळी ओळख निर्माण केली. एकंदरीत व्यवस्थेला विरोध स्वतंत्र अस्तित्व, वेगळेपणाची जाणीव अशा विविध भूमिकातून सामाजिक व साहित्यिक चळवळी उभ्या राहिल्या. प्रत्येकाच्या विचारधारा, भूमिका आणि कार्यप्रवणते नुसार त्यांच्या साहित्याचे स्वरूप परस्पर भिन्न स्वरुपात निर्माण झाले. चळवळींना आपली भूमिका आणि व्याप्ती या दृष्टीने साहित्याची गरज होती, तर साहित्याला चळवळींनी बळ दिले. दोन्ही घटकांनी परस्पर गरजांची पूर्ती करतानाच स्वतःला सशक्त बनवण्याचा प्रयत्न केला.

**चळवळींच्या साहित्यावरील आक्षेप -**

चळवळीचा जन्म स्वत्व जाणीव, आत्मभान जागृती आणि प्रस्थापित व्यवस्थेवरील प्रतिक्रियेतून होतो. मूलतः कोणतीही चळवळ परंपरेहून काही नवे मांडू इच्छिते. नवे मांडताना जुन्याची मोडतोड वा विरोध होतो. अशावेळी संघर्ष उभा राहतो. परंपरेकडे प्रस्थापित व्यवस्थेतील व्यापक शक्ती असते, तर चळवळ विशिष्ट मुद्द्यावर असल्याने तिची मर्यादित दिशा ठरलेली असते . अशा मर्यादित हेतू, कार्यक्षेत्रामुळे चळवळीच्या साहित्यावर काही मर्यादा येतात. विरोधामुळे मांडणी टोकदार होत जाते. याचा परिणाम साहित्यावरही होतो. दलित, ग्रामीण, स्त्रीवादी, आदिवासी साहित्यावरही याचा परिणाम जाणवतो. विशिष्ट विचारधारेमुळे त्याच्यावर एकांगीपणाचा आरोप होतो. विशेषतः दलित साहित्यावर हे आरोप प्राधान्याने झाले. "ते एकांगी, एकसुरी, आक्रस्ताळे, तेच ते विषय पुन्हः पुन्हा हाताळणारे, ठराविक एका जातीचे प्रश्न व समस्याच तेवढया मांडणारे झाले."[3] अर्थात हा आरोप थोड्याफार फरकाने सर्वच चळवळींच्या साहित्यावर झाला आहे. मुळात असे साहित्य

विशिष्ट प्रतिक्रिया रुपात येत असल्याने भूमिका, मांडणी, विचार यामध्ये ठामपणा असतो. आग्रही मांडणीमुळे टोकदारपणा अधिक तीव्र होतो. इतरांविषयी साशंकता वृत्ती डोकावते. तसेच चळवळ कितीही व्यापक असली तरी विषय आशय व अविष्कारावर मर्यादा पडतात. त्यामुळे एकांगी, एकसूरी भासू लागते. चळवळीच्या साहित्यावर नजर टाकली तर ते वास्तव नाकारता येणार नाही. अर्थात उपरोक्त आक्षेप खरे असले आणि हे दोष साहित्यात जाणवत असले तरी त्याचे महत्त्व नाकारता येत नाही. विशिष्ट परिस्थितीच्या प्रभावात अभावग्रस्त जगणे वाट्याला आलेल्या समूहाचे संवेदनशील विश्व त्यातून मांडलेले असते. कोणी लक्ष देऊ दे अथवा न देऊ दे पण दबलेल्याचे आक्रंदन, वेदना जगासमोर मांडण्याचे माध्यम म्हणून या साहित्याने आपली समाजाभिमुख भूमिका चोखपणे बजावलेली आहे.

**चळवळीच्या साहित्याची फलश्रुती-**

चळवळीचे साहित्य विशिष्ट भूमिकेतून निर्माण होत असले तरी ते विशिष्ट धर्म, समाज, संस्था, साहित्य, गट यापूरते मर्यादित नसते. ते केवळ आत्मभान आणि प्रस्थापितांना विरोध यापूरते मर्यादित नसते. हा लढा जसा समाज पातळीवर चिरंतन आहे त्याप्रमाणे साहित्य निर्मितीतही तसाच आहे. कोणत्याही समाजा प्रमाणेच साहित्यातही सांस्कृतिक अभिव्यक्तीची धडपड[४] असते. दलित साहित्य हे अशा धडपडीचे द्योतक आहे. ग्रामीण, आदिवासी व स्त्रीवादी साहित्य या अभिव्यक्तीच्या आत्यंतिक गरजेतून निर्माण झाले आहे. स्वत्वभान जागृतीमुळे या कवी-लेखकांना वास्तवाचे भान आले आहे. आपल्या समस्या त्यांना अचूकपणे जाणवल्याने त्यांनी त्याची साहित्यातून आग्रहाने मांडणी करण्याचा प्रयत्न केला. अभिजनांनी नाकारण्यातून जसे ग्रामीण, आदिवासी साहित्य हुंकारले तसे दुय्यम भूमिकेच्या अस्वीकारातून स्त्रीवादी साहित्याने रणशिंग फुंकले आहे. अर्थात हा लढा अस्तित्वाचा असला तरी विध्वंस ही त्याची अंतिम सीमा नाही. ते समाज वास्तवाची नव्याने मांडणी करू इच्छिते. मानवतेच्या, मनुष्यतेच्या तत्त्वावर न्याय हक्कांची मागणी ते करते. सर्वच चळवळी आणि त्यांच्या साहित्यात हा समतेचा धागा दिसून येतो. त्यांची कार्यप्रणाली भिन्न असली, विचारधारा वेगळी दिसत असली तरी त्यांची दिशा एकच आहे. समता, शोषणमुक्ती, लोकशाही मूल्यांचा स्वीकार त्यांना हवा आहे. धर्म, जात, वर्ण, वर्ग यांच्यातून त्यांना मुक्तता हवी आहे. कोणत्याही प्रकारच्या विषमतेविरुद्ध त्यांचा संघर्ष आहे.[५] चळवळीचे साहित्य रंजन, ज्ञान हेतू अथवा विशुद्ध कारणांनी निर्माण न होता ते जीवनाभिमुख असते. त्याची नाळ समाजाशी क्रिया-प्रतिक्रियात्मक स्वरूपात कार्यप्रणवतेने जुळलेली असते. ते जरूर काही वाङ्मयीत संकेत पाळू शकत नाही मात्र रूढीग्रस्त व्यवस्थेवर हल्ला करण्याइतके चैतन्य, जोरकसपणा त्यांच्यात असतो. नव्या लोकशाही मूल्यांची, समतेची प्रतिष्ठापना करण्याची उदात्तता त्याच्या निर्मिती हेतू मध्ये सामावलेली असते. गतिहीन स्थितीशिलतेवर आक्रमण आणि मांगल्याची पाठराखण हा अशा साहित्याचा गाभा असल्याने त्याची निष्पत्ती निश्चितच हितकारक असते.

**निष्कर्ष-**

गतिहीन समाजव्यवस्थेला प्रतिक्रिया म्हणून निर्माण होणाऱ्या सामाजिक व साहित्यिक चळवळीतून साहित्यनिर्मिती होते. दोन्हींचे संबंध परस्परपूरक व अनन्यसाधारण स्वरूपाचे असतात. चळवळीच्या भूमिका व कार्यप्रणालीनुसार साहित्य निर्मिती होत असल्याने त्याच्यावर काही मर्यादा येतात. त्यामुळे एकांगी, एकसुरी,

आक्रस्ताळे, साशंक असल्याचा आक्षेप घेतला जातो. अर्थात् वास्तवही काही अंशी तसेच आहे. मात्र त्याच्या निर्मितीतच त्याच्या या स्वरूपाची बीजे आहेत. वाङ्मयीन अंगाने हे दोष ठरत असले तरी त्याची समाजाभिमुखता व जीवनाभिमुखता त्यांच्यापेक्षा सरस ठरते. विविध चळवळी या सांस्कृतिक अभिव्यक्तीच्या धडपडीतून जन्म घेतात. नवे आत्मभान समतायुक्त मूल्यांची आग्रही मांडणी करते. साहित्य या सर्वांना लालित्यपूर्ण अवकाश पुरवते. दलित, ग्रामीण, आदिवासी व स्त्रीवादी साहित्यातील विविध साहित्यकृतींनी चळवळीच्या तत्त्वांना, विचारांना शब्द-शारीर आकार दिला आहे. समाज वास्तवाची नव्याने मांडणी करणारे गांभीर्यपूर्वक लेखन हे या साहित्याचे वैशिष्ट्यपूर्ण रुप आहे. नवा आशय व अनुभूतीची विविध वाङ्मय प्रकार रूपात कलात्मक मांडणी करताना समाजभान जपण्याचे अनमोल कार्य या साहित्याने केले आहे. हीच या साहित्याची फलश्रुती आहे.

**संदर्भ -**

१) नेमाडे भालचंद्र, साहित्य आणि समाज (संपा. नागनाथ कोतापल्ले) प्रतिभा प्रकाशन, पुणे, प्र.आ., २००७, पृ. ४२.

२) विनायक तुमराम, साठोत्तरी मराठी वाङ्मयातील प्रवाह (संपा. डॉ. शरणकुमार लिंबाळे), दिलीपराज प्रकाशन प्रा.लि., पुणे, प्र.आ., २००७., पृ. २३५.

३) यादव आनंद, १९६० नंतर ची सामाजिक स्थिती आणि साहित्यातील नवे प्रवाह, मेहता पब्लि. हाउस, पुणे, प्र.आ. २००१, (पुनर्मुद्रण, २०१४), पृ. ७९.

४) जाधव रा.ग., नव वाङ्मयीन प्रवृत्ती व प्रमेये, कॉन्टिनेन्टल प्रकाशन, पुणे, प्र.आ., १९७२, पृ.२.

५) यादव आनंद, ग्रामीण वाङ्मयाचा इतिहास (संपा. चंद्रकुमार नलगे), सुरेश एजन्सी, पुणे, प्र.आ., १९९६, पृ. २२१.

# 'अंत:स्थ' काव्यसंग्रहातील स्त्रीमनाचा आत्मशोध

**डॉ. शीला धम्मपाल रत्नाकर**
प्रमुख, मराठी विभाग
मालती वसंतदादा पाटील, कन्या महाविद्यालय, इस्लामपूर
Email Id - sheelaratnakar2002@gmail.com

प्रस्तावना

साहित्य समाज आणि संस्कृती यांचा अन्योन्य संबंध आहे. एकोणिसाव्या शतकात समाज प्रबोधनाला गती येवू लागली. सामाजिक आणि धार्मिक सुधारणांची तीव्र जाणीव झालेली दिसून येते. जातीभेदाचे निर्मुलन व्हावे वर्णव्यवस्था नष्ट होऊन समतेवर आधारलेली समाजव्यवस्था अस्तित्वात यावी आणि शतकानुशतके वंचित जीवन जगणाऱ्या दलितांना सामाजिक न्याय मिळावा. म्हणून बदल घडवून आणण्यासाठी अनुकूल परिस्थिती निर्माण करण्याचे कार्य दलित साहित्याद्वारे होत आहे. वर्गलढ्याचा एक प्रश्न सोडवताना नवे वर्ग, नवे संघर्ष निर्माण होतात. असे इतिहासाची भौतिकवादी प्रक्रिया सांगते कामगार वर्गाचे आर्थिक प्रश्न सोडवून त्यांना शोषणमुक्त करण्यासाठी वर्गलढा सुरु असतानाच विद्रोहाची भूमिका घेऊन दलित समाज न्याय मिळविण्यासाठी संघर्ष करू लागला. त्या विद्रोहाच्या भूमिकेतून आणि संघर्षाच्या प्रेरणेतून दलित साहित्याची निर्मिती होऊ लागली. अशाच भूमिकेतून आणि प्रेरणेतून स्त्रीवादी साहित्याचा प्रवास झाला. साहित्याच्या निर्मितीची ही सामाजिक आणि संस्कृतिक पार्श्वभूमी समजून घेण्यासाठी सामाजिक चळवळींचे आकलन करून घेणे आवश्यक आहे.

सामाजिक चळवळीमध्ये राजकीय व्यक्तीमत्वाची राज्यव्यवस्थेच्या विरोधातले धोरण स्वीकारलेले असेल अशाच सामाजिक चळवळीचा अभ्यास भारतीय राजकीय संशोधकांनी केलेला पहावयास मिळतो. समाजिक चळवळ हा शब्द सर्वत्र प्रचलित आहे. सामाजिक चळवळीचा अर्थ (meaning of social movement) जेंव्हा कोणत्याही समाजात व्यक्तिगत आणि सामुहिक प्रयत्नातून फार मोठ्या प्रमाणात बदल घडवून आणले जातात. तेंव्हा त्या बदलाचा उल्लेख सामाजिक चळवळी असा केला जातो. रुडॉल्फ हर्बेल नील स्मेल्सर, जॉन विल्सन यांनी सर्वप्रथम हा शब्द वापरला आहे. सामाजिक चळवळीची व्याख्या डॉल्फ टर्नर आणि क्लीन यांनी पुढीलप्रमाणे केली आहे. "समाजात किंवा समाजाचा घटक असलेल्या एखाद्या समूहाच्या बाबतीत बदल करण्यासाठी किंवा बदलांना विरोध करण्यासाठी सातत्याने करण्यात आलेले सामुहिक प्रयत्न म्हणजे सामाजिक चळवळ होय."1 त्यामुळे आधुनिक काळात सामाजिक चळवळींना फार महत्व प्राप्त झाले आहे. सामाजिक चळवळीच्या माध्यमातून समाजामध्ये योग्य प्रकारचे परिवर्तन घडून आले आहे. या माध्यमातून समाजामध्ये आर्थिक, सामाजिक आणि संस्कृतिक व्यवस्थेत पूर्णपणे परिवर्तन घडवून आणण्याच्या संदर्भात सामाजिक चळवळीची विशेष भूमिका होती. आपल्या देशातील केशवपन, सतीप्रथा, अस्पृश्यता, बालविवाह इ. अनिष्ठ प्रथा बंद करण्यामध्ये सामाजिक चळवळीचे फार मोठे योगदान आहे. दलित चळवळ आदिवासी चळवळ स्त्री चळवळ शेतकऱ्यांची चळवळ विद्यार्थी चळवळ इ. महत्वाच्या चळवळी आपल्या देशात आहेत. या चळवळीच्या माध्यमातून समाजजीवनातील विविध क्षेत्रातील परिवर्तन घडवून आणण्याचा प्रयत्न होत आहे.

दलित चळवळ

१९ व्या शतकापासून दलित चळवळीचा इतिहास आहे. स्वातंत्र्योत्तर काळातच या चळवळीला खास दलित व्यक्तिमत्व प्राप्त झाले म्हणजे 'दलितांची दलितांच्यासाठी आणि दलितांनी चालवलेली चळवळ' असे परिमाण मिळाले आहे. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांच्या लढाऊ नेतृत्वाने या आंदोलनाला वैचारिक आणि कृतीपर अधिष्ठान प्राप्त झाले. गांधीवाद, मार्क्सवाद, समाजवाद, यांच्या पठडीतून दलित आंदोलन हळूहळू बाहेर पडले आणि आंबेडकरवादी तत्वज्ञान त्यानी आत्मसात करण्याचा प्रयत्न केला. डॉ. बाबासाहेबांनी बौध्द धर्म स्वीकारून दलित चळवळीला भारतीय परंपरेला मुलगामी आणि दूरगामी अशी बैठक प्राप्त करून दिली.भारतीय दलित वर्गाला नवी अस्मिता दिली नवे स्वरूप बहाल केले दलित पॅंथर सारख्या जहाल दलित संघटनांना उभे राहता येईल असे वातावतरण समाजात निर्माण झाले या चळवळीशी राजकीय क्षेत्रात काहीसा फाटा फोडून संस्कृती दृष्टीने ही चळवळ अखंड एकात्म आणि प्रभावी राखण्याचे सामर्थ्य आंबेकरवादी चळवळीत आहे हे निश्चितच स्वातंतत्र्योत्तर काळात या चळवळीला साहित्यिक चळवळीचे नवे रूप प्राप्त झाले.

विसाव्या शतकातील अर्धशतक हे पारतंत्र्याविषयी जाणिवांनी ओतप्रोत भरलेले होते. तर दुसरे अर्धशतक हे स्वातंत्र्य लोक चळवळींनी भरलेले दिसते दलितांच्या परिप्रेक्ष्यात या संपूर्ण शतकाचा अन्वयार्थ लावताना हे महान शतक होते. असेच म्हणावे लागेल कारण या शतकाने दलितांना आंबेडकर विचार आणि प्रेरणा दिलेली आहे बाबासाहेब आंबेडकरांनी दलितांच्या मुक्तीसाठी दिलेला लढा हा 20व्या शतकाचा प्राणज्योत आहे या शतकातील आंबेडकरी चळवळ आणि विचार हे पुढील शतकांना प्रकाश देणारे आहेत दलित तरुणांनी प्रस्थापित समाज व्यवस्थेविरुद्ध असलेली आपल्या मनातील चीड आणि संताप आपल्या लेखनातून व्यक्त केली या लेखनालाच "दलित साहित्य" असे संबोधले जाऊ लागले वेदना विद्रोह आणि नकार मानवतावाद विज्ञाननिष्ठा ही दलित साहित्याची वैशिष्ट्ये आहेत फुले आंबेडकरी विचार प्रणालीच्या अधिष्ठानावर आधारलेल्या या साहित्याला वर्णहीन समाज उभा करण्याचा आहे केवळ समाज सुधारण्याने अस्पृश्यता जाणार नाही अस्पृश्यता घालावयाची असेल तर राजकीय सांस्कृतिक सामाजिक मानसिक परिवर्तन होणे आवश्यक आहे आणि म्हणून अशा सन्मयक क्रांतीसाठी दलित साहित्याने विद्रोह नकाराची भूमिका घेतली दलित साहित्य चळवळीमुळे अनेक कवी उदयास आले आंबेडकरी विचारातील स्वप्न संकल्पनाच्या पाठपुराव्यासाठी सातत्याने ते लेखन करू लागले विशेषतः दया पवार, नारायण सुर्वे, अर्जुन डांगळे ज.वि.पवार, प्रल्हाद चेंदवणकर, नामदेव ढसाळ अशा अनेक कवींचा समावेश होतो.

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर अष्टपैलू व्यक्तिमत्वाचे महापुरुष होते त्यातील एक अत्यंत महत्वाचा पैलू त्यांच्या ललित कलाविषय अभिरुचीचा होता चळवळी बरोबरच बाबासाहेबानी मुकनायक, बहिष्कृत भारत, जनता इ. पत्रकातून केलेले लेखन त्यांच्या ललित वैचारिक साहित्याचा गाढा व्यासंग संगीत शिल्पकलेची आवड आणि मराठी वाङ्मयाला "बामणी वाङ्ममय" असे संबोधून त्यांनी केलेली त्या साहित्याची निर्भत्सना यातून त्यांच्या मूलगामी विचारकार्य लेखणीने संबंध दलित समाज जागृत झाला आणि लिहू लागला म्हणून दलित साहित्यमागील मुख्य प्रेरणा डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांची होती आणि आहे डॉ. यशवंत मनोहर दलित साहित्याविषयी आपली भूमिका मांडताना म्हणतात की "दलित साहित्य हे वर्णबळीचे व वर्गबळीचे आहे हे साहित्य बाबासाहेबांच्या वाणीचा वाङ्मयीन वनवा आहे संस्कृतीने ज्यांची पोटे व मने उपाशी ठेवली या

उपेक्षितांच्या हृदयाच्या मेंदूच्या हे शोषित ललित आकार आहेत."2 याशिवाय दलित साहित्याचे स्वरूप स्पष्ट करून दलित साहित्याचे व्याख्या करणारे अनेक लेखक कवी आहेत. यामध्ये राजा ढाले, दया पवार, केशव मिश्राम, इत्यादींनी दलित साहित्याच्या व्याख्या केलेल्या आहेत या सर्वांमधून दलित साहित्य आपल्या समोर आले आहे.

दलित साहित्याच्या विकासासाठी दलित लेखकांनी जाणीवपूर्वक प्रयत्न केले. दलित लेखकांनी आपल्या संघटना स्थापन केल्या दलित साहित्य संसद, दलित साहित्य परिषद, बौद्ध साहित्य परिषद, दलित नाट्य परिषद, फुले आंबेडकर पंचायत, ग्रामीण दलित आदिवासी साहित्य, महासभा, पुरोगामी विचारमंच, परिवर्तन साहित्य, महामंडळ आशा दलित लेखकांच्या अनेक संस्था संघटना अस्तित्वात आल्या. दलित साहित्य संमेलने भरवून दलितांनी दलित साहित्य चळवळीला गतिमान केले नियतकालिके, अनियतकालिके, दैनिके, साप्ताहिक, मासिके, विषेश अंक, परिसंवाद व्याख्याने आणि पुस्तके अशा उपक्रमाने दलित साहित्याच्या चळवळीचा विकास झाला.

दलित महिलांची चळवळ

विषम व्यवस्थेने दलितांना गुलाम बनवले आहे दलित स्त्री तर गुलामांची गुलाम आहे. जेव्हा तेव्हा दलितांवर अन्याय अत्याचार होतात. तेंव्हा तेव्हा दलितांच्या साधन संपत्तीचे म्हणजेच दलित स्त्रियांवरही हल्ला होतो. दलित स्त्रीमुक्तीची चळवळ पुढे आंबेडकरांच्या विचार कार्यातून सुरु होते. स्वातंत्र्योउत्तर काळातील दलित संघटनामध्ये दलित स्त्रियांचा सहभाग वाढत आहे. परंतु दलित महिला स्वतंत्र संघटना प्रभावीपणे कार्य करताना दिसत नाही. दलित स्त्रियांच्या न्याय प्रश्नासाठी दलित संघटना संघर्ष करताना दिसतात. रिपब्लिकन पक्ष, दलित पँथर अशा संघटना मधून दलित महिला कार्यकर्त्या कार्य करीत आहे. या संदर्भात शांताबाई दाणी यांचे रिपब्लिकन पक्षातील कार्य मोलाचे आहे दलित लेखकांनी दलित चळवळीसाठी कार्य केले दलित लेखिकांच्या लेखनाने दलितांचे साहित्य समृद्ध झाले आहे. यांमध्ये सुगंधा शेडे, कुमूद पावडे, ज्योती लाजेंवर, बेबी कांबळे, शांताबाई कांबळे, उर्मिला पवार, मीनाक्षी मून, सुरेखा भगत, प्रतिमा मेडाम, प्रज्ञा लोखंडे या महत्वाच्या कवयित्री आहेत.

प्रज्ञा लोखंडे तथा प्रज्ञा दया पवार या नव्दोत्तर कालखंडातील डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरी चळवळीची विचारधारा जोपासणारी महत्वाची कवयित्री म्हणून उल्लेख केला जातो. अंत:स्थ (१९९३) उत्कट जीवघेण्या धगीवर (२००२) मी भिडवू पाहतेय समग्राशी डोळा (२००७) आरपार लयीत प्राणांतिक (२००९) दृश्यांचा ठोबळ समद्र (२०१३) हे कवितासंग्रह, कथासंग्रह, नाटक या वांडमय प्रकारात लेखन, त्याचबरोबर काही संपादने केलेली आहेत. अनेक पुरस्काराने सन्मानित त्यांच्या कविताचे अनुवाद विविध भाषांमध्ये झालेले आहेत. पद्मश्री दया पवार प्रतिष्ठान मुंबई या संस्थेच्या कार्याध्यक्षा. सामाजिक चळवळीत विशेषता स्त्री संघटनामध्ये सहभाग असल्यामुळे सभोवतालच्या अंतर वेदनांना कवयित्री काव्यरूप देत आहे असे वाटते.

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांची चळवळ आणि त्यांचे तत्वज्ञान यांच्यापासून प्रेरणा घेऊनच दलित कवितेची जडणघडण झाली आहे. संस्कृतिक परिवर्तनाच्या अपरिहार्यतेतूनच दलित कवितेचा जन्म झाला. पारंपारिक ब्राम्हणी संस्कृतीलाच आव्हान न देत दलित कविता निषेध नोंदवीत राहिली. आणि विद्रोहाचा तीव्र स्वर घुमत राहिला. फुले-आंबेडकर विचार धारेने दलित कवयित्रींना एक नवी मानसिकता दिली. या दिशेच्या मानसिकतेच्या

खुणा प्रज्ञा लोखंडे यांच्या अंत:स्थ काव्यसंग्रहात आढळतात. साहित्यप्रेमाचा आणि लेखनाचा वारसा प्रज्ञा लोखंडे यांना घरातच लाभला आहे. डॉ. बाबासाहेब या कवितेत त्या लिहितात.

“चैत्यभूमीतल्या ओसंडत्या गर्दीत
मेणबत्तीतून सांडणाऱ्या लख्ख उजेडात
माझं बोट बापाच्या मुठीत बंद होत
मला आठवतं बाबासाहेब
तेंव्हापासूनच
तूझं नाव मी माझ्या काळजावर कोरल होतं ”

तेंव्हापासून बाबासाहेबांचे रूप काळजावर कोरले होते माणूस धुमसत ठेवणारा बाबासाहेबांचा शब्द न शब्द हजारो-लाखो दलितांच्यासाठी प्रकाशातून आला होता. त्याने दलित समाजाला नवी चेतना दिली. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांनी भगवान बुद्धाचा “अत्त दिप भव” हाच आपल्याला संदेश दिला होता. ज्ञानाचा प्रकाश क्रांतीचा हा प्रकाश नव्या व्यवस्थेचा सूर्याचा असेल कारण सिद्धार्थाने या प्रकाशाचा सर्व मोह दूर करून सर्व भावपाश सोडून टाकले. सिद्धार्थ या कवितेत एक सुंदर चित्र रेखाटले आहे.

“तेंव्हा विसावला क्षणभर तुझा हात
भुरभुरणाऱ्या रेशीम जावळात
यशोधरेच्या निद्रिस्त पापण्यातला खोल डोह !!

शंभूखाच्या वधाचे दु:ख कवयित्रीला जाणवते म्हणून चौकट मोडण्याची शिक्षा भोगण्याचा शभूखाला त्या म्हणतात.

“ शभूखा मी वाट पाहतेय
इतिहासाच्या पानांवर
तू पेरून ठेवलेल्या सुरुंगाच्या दाहक स्फोटाची”

शंबूकाचा वध मुका राहू नये तो व्यर्थ जाऊ नये. त्याच्या वधाचे सुरुंग स्फोट झाले पाहिजे. असे आवाहन करतात. स्त्री मनाची घालमेल हा तर त्याच्या आत्मजाणीवेचा शोध आहे. ही घालमेल ‘काळजी’ या कवितेत पुढील प्रमाणे प्रकट होते.

“एकविसाव्या शतकाच्या सास्कृतिक चिखलात
आता वाढत चाललाय
दिशाहीन कोलाहल !!

स्त्रियांना संघर्षशील करण्याचे महत्त्वाचे कार्य आंबेडकरी विचार आणि आंदोलनाने दिले. आंबेडकरोत्तर काळात मात्र आंदोलनाची दिशा बदलत गेली. आणि संस्कृतिक जीवनात उलता पालतीला सुरुवात झाली. प्रतिक्रांती वाद्यांनी खिशात घेतलेले पाळीव प्राण्यासारखे प्रतिक्रांती वाद्याच्या दारात राहणारे, परंपरा वाद्यांच्या हुकुमाने परिवर्तन वादांवर भुंकणारे आणि आंबेकरवादाचा मुखवटा चढवून मिरवणारे या लोकांचे आतले चेहरे लगेच उघड होतात. आमिषमागे धावतात प्रतिक्रांती वाद्याचे तुकडे चघळणारे पाळीव कर्नल प्रतिक आहे. याविषयी कवयित्री म्हणतात.

"हस्तीदंती सापळ्यात

कर्नलच्या क्रांतीला

कीड लागली.... !!

असे काही छोटे छोटे कर्नल आंबेडकर विरोधी छावण्यामध्ये सामील होतात. तेव्हा झुल पांघरलेल्या कर्नल विषयी जागरुकता बाळगण्याविषयी आव्हान करतात.

बाबासाहेबांच्या विचाराची ज्योत हाती घेऊन चालणारी स्त्री गुलामगिरी सहन करणार नाही निर्भीड अरण्यात आपणच आपल्याला शोधावे आणि कवितेतून व्यक्त व्हावे म्हणून 'कोकिळा' या कवितेत म्हणतात.

"तुझ्या पोलादी चौकटीतली कोकिळा

फडफडतेय जीवाच्या आकांताने

तिला खुणावणारा आम्रवृक्षही

मोहोरलाय चहुबाजूने ....!!

आता हे चित्र बदलण्यासाठी ती एकटीच समोरून जाते आहे. मनुने लिहिते होते 'न स्त्री स्वातंत्र्यम् अर्हति मनूचे विचार तोडून जाणे हे काळाचे लक्ष आहे. स्त्रीला गुलामगिरीत ठेवणारी मनुची व्यवस्था पूर्ण उद्धस्त करून टाकली पाहिजे शिक्षण अर्थाजन आणि सामाजिक व्यवहार यामुळे स्त्री स्वतंत्र होईल तिला ग्रासून टाकणारी कुटुंबाची गुलामगिरी नष्ट झाली पाहिजे असे कवयित्रीला वाटते.

भाषाशैली :

कवितेची भाषा हा कवितेचा प्राण असतो. म्हणून कवितेची भाषाशैली ही महत्वाची असते. प्रज्ञा लोखंडे यांच्या कवितेत विविध काव्य अनुभवाची वरवर नाजूक शैलीत लय प्रकट झालेली आहे. दु:खाची शिल्पे शब्दातून व्यक्त करण्याचे सामर्थ्य त्यांच्या भाषाशैलीत आहे.

"चंद्र हाती यावा

म्हणून नव्हताच हा अट्टाहास

सहज चाळा म्हणून उधळावेत

हिरवे शकून जखमांवर !!

अशा चित्रमय शैलीत निसर्गाची चित्रे रेखटत असताना झाड म्हातार झालंय या कवितेत झाडानं पांघरलय घनदाट मौन अशा ओळीतून झाडाला मौन सुखावून जाते. प्रज्ञा लोखंडे यांच्या कवितेतील लयीबद्दल भालचंद्र फडके म्हणतात, "कवितेत दोन लयी असतात. एक अंतर्गत लय आणि दुसरी दर्शनी लय दर्शनी लय पुष्कळ कवितातून आढळते. पण अंतर्गत लय मात्र क्वचितच आढळते." अंत:स्थ कवितेतून दिसून येते.

"आपल्यातच किती अंत:स्थ कप्पे

वावरत असतात.

एकमेकांना अनोळखी असल्यागत

कधीतरी पापण्यांचे बंद दरवाजे ....!!

पारंपारिक रूढीचे पिंजरे स्त्रीला आणि असंख्य पुरुषालाही माणूसपणापासून वंचित करून ठेवतात. आंबेडकरवादाने प्रज्ञा लोखंडे यांच्या प्रतिमेला हे अत:स्थ भान दिले स्त्री मनाचे हे कप्पे आणि जाणीव शब्दातून

फुलवण्याचा जिवंतपणा कवितेत आहे. आत्मभानामुळे कविता कंटाळवाणी झालेली नाही आकांत मांडताना आक्रमकपणा आलेला नाही हे त्यांच्या कवितेचे वैशिष्ट्ये इथे जाणवते. म्हणूनच 'चंद्र हाती यावा' म्हणून या कवितेत म्हणतात.

"अस्तित्वाच्या सनातन अलगुजाची लय
कधी नाकारली नव्हतीच ...!!

असा समंजसपणा व्यक्त करणारी आत्मशोधाची ही जाणीव शब्दाशब्दातून आपल्याला अंत:स्थ काव्यातून पाहायला मिळते.

कवयित्री ज्योती लांजेवार अंत:स्थ मधील कवितेच्या संदर्भात म्हणतात. "मनातला व डोळ्यातला काळोख घेवून उजेडाच्या मार्गावर चालू लागते. आणि आत्मभान निर्माण करण्यासाठी शब्दांचे रान तुडवू लागते. तेव्हा तिला अनुभवाची आरास नको असते वेदनेची सजावट नको असते. आत्मशोधाची मशाल हेच तिचे शस्त्र आणि अंधाराला सूड लावणे हेच तिचे ब्रीद ठरते. अशावेळी शब्दबंबाळ विद्रोहापेक्षा भावनेच्या उमाळ्याचे मूळ ती शोधू पाहते."3 म्हणजेच प्रज्ञा लोखंडे यांनी आत्मशोधासाठी मशाल हे शस्त्र वापरून सबंध स्त्री जातीला प्रकाश देण्याचे काम कवितेतून केले आहे.

समारोप :

अंत:स्थ मधील एक-दोन कवितांचा अपवाद सोडला तर कवियत्री दलित दु:खे मांडताना सभोवतालच्या स्त्रींच्या अंतर वेदनांना काव्यरूप देते इतके या कवितांचे स्वरूप सर्वसमावेशक आहे. अंत्यतिक हळवेपणाने आणि तीव्र संवेदनशिलतेने सार्वत्रिक अनुभवांना उत्कट शब्दाविष्कारातून प्रकट करताना 'काजळी' या कवितेतील हृदयद्रावक चित्र रेखाटताना अचुक शब्दकळेमुळे अधिक सुपीकता प्राप्त होते.

"कडेवरच्या लेकराला सावरत
गाठी मारलेल्या फाटक्या जुनेरात...!!

बाबासाहेबांच्या नेतृत्वाखाली चाललेला महाडचा धर्मसंग्राम किंवा काळाराम मंदिराचा सत्याग्रह असो स्त्री ही पुरुषाबरोबर आक्रमक बनली होती तिला माहित होते सर्व सत्याग्रह हे मानवी हक्कासाठी चालले होते. त्यामध्ये स्त्रीचा हक्क महत्वाचा होता. तर भुकेने व्याकूळ वेढलेले महानगर पाहून कवित्रींचे मन व्याकूळ होते. 'सलाम बॉम्बे' मधील मीरा नायर विषयी लिहितात

"मीरा नायर
अखेर तू उघडलीस
महानगराच्या आकांताची दारं....!!

त्यांच्या कवितेतील रुपकुंवर अमिना, मीरा नायर यांची दु:खे सार्वत्रिक अनुभवाचे प्रातनिधिक रुप आहे. त्यांच्या कवितेचा मूलाधार त्याला प्राप्त झालेले आत्मभान आहे. या आत्मभानातून त्यांची कविता अर्थाच्या विविध छटा घेवून प्रकटते. आयुष्याच्या प्रवासात अनेक दु:खे अवेहलना विटंबनाचे खांबे येतात. त्या सत्याग्रहात दलित स्त्री सहभागी झालेली होती. ही आत्मभानाची जाणीव समस्त स्त्रीचा वेध घेते. तर "आपणच शोधाव स्वत:ला इतकं भोवतालचं निर्भीड अरण्य" स्त्रियांनी भोवतालच्या निर्भीड अरण्यातून स्वत:चा मार्ग शोधावा असे कवयित्री समस्त स्त्रियांना आव्हान करते.

संदर्भ :

१) भारतीय सामाजिक चळवळीत, प्रा. डॉ.काळे खंडेरावजी, एस.भारतीय सामाजिक चळवळी, प्रकाशक अनिल म्हमाने, निर्मिती संवाद कोल्हापूर, पहिली आवृत्ती ऑक्टोबर २०१७

२) लोखंडे प्रज्ञा, अंत:स्थ, मान-सन्मान प्रकाशन पुणे, पहिली आवृत्ती २६ जानेवारी १९९३

३) डॉ. मनोहर यशवंत, आंबेडकरी मराठी साहित्य, भीमरत्न प्रकाशन नागपूर प्रथमावृत्ती १९९९

४) डॉ. पारसे वीरा, दलित कवितेतील अस्मिता, स्वरूप प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथमावृत्ती ऑगस्ट २००८

५) डॉ. कऱ्हाडे, सदा. समाज आणि साहित्य, लोक वांडमय गृह

६) संपादन डॉ. नंदाकुरे ईश्वर. साहित्य : ग्रामीण दलित, प्रकाशक, सचिन उपाध्याय, विजय प्रकाशन नागपूर पहिली आवृत्ती २००२

७) संपादन, शोभणे रवींद्र, मराठी कविता परंपरा आणि दर्शन प्रकाशक, सचिन उपाध्याय नागपूर प्रथमावृत्ती १ मार्च २००६

८) वाघमारे मोहन, आबेडकरवादी साहित्य समीक्षा, लिबुंनी प्रकाशन, गोरेगाव मुंबई पहिली आवृत्ती २०००

९) संपादक, सातपुते पोपट, भास्कर शेळके, मिलिंद कसबे, चळवळ आणि साहित्य, प्रकाशक सुमती लांडे, शब्दालय प्रकाशन पहिली आवूर्ती १५ ऑगस्ट २००९

१०) डॉ. लांजेवार ज्योती, दलित कवयित्रींची कविता, सुगावा प्रकाशन डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर प्रेरणा विशेषांक १९९३

# ग्रामीण साहित्य चळवळ आणि सामाजिक स्थित्यंतरे

**प्रा. लक्ष्मी पवार**
शिक्षणमहर्षी डॉ. बापूजी साळुंखे महा. मिरज.

**साहित्य आणि समाज -**

साहित्य आणि समाज यांचा खूप गहिरा संबंध आहे. लेखक ज्या समाजात जन्माला येतो त्या समाजाचे अनुभव, संस्कार आणि भाषा आपल्या साहित्यात मांडतो. यादृष्टीने साहित्य हा समाजाचा आरसा आहे तसे कोणत्याही साहित्यात समाजमन प्रतिबिंबित झालेले दिसून येते. समाज हा नित्य परिवर्तनशील आहे. देशकालपरीस्थितीनुसार साहित्याचे स्वरूप देखील बदललेले दिसते.म्हणूनच कोणतेही साहित्य हे त्या त्या काळाचा दस्तऐवज ठरते. याप्रमाणे सामाजिक बदलांचा साहित्यात ठसा उमटलेला दिसतो. हे बदल केवळ विशिष्ट घटकांपुरते मर्यादित नसून समाजव्यवस्थेतील सर्वच घटकांशी निगडीत असतात. याचा परीणाम त्या त्या काळातील साहित्यावर होत असतो.

**ग्रामीण साहित्य चळवळ -**

इंग्रजी राजवटीच्या काळात मराठी साहित्यावर पाश्चात्यांच्या विचारांचा प्रभाव पडला. अनेक विचारवंतानी व समाजसुधारकांनी वैचारिक लेखनाबरोबरच सामान्यांचे प्रश्न हाताळण्यास सुरूवात केली. परंतू यातच महात्मा फुले यांनी सत्यशोधक समाजाची स्थापना केली. 'शेतक-यांचा आसूड', 'गुलामगिरी', 'अस्पृश्यतेचे प्रश्न' असे लेखन करून सामान्य माणसांचे प्रश्न साहित्यात मांडले. हे लेखन अस्सल ग्रामीण साहित्यलेखन होय. यानंतर सावित्रीबाई फुले, कृष्णराव भालेकर, मुकुंदराव पाटील, कवी दत्त, माधवानुज, केशवसुत, लेंभे, लोंढे, भा.रा.तांबे यांच्या काव्यरचना सापडतात. १९२० च्या दरम्यान म. गांधीजींनी 'खेडयाकडे चला' असा महत्त्वाचा संदेश दिला. मुळातच भारतीय संस्कृती ही खेडयांची आहे. अशा समाजाकडे व संस्कृतीकडे वळण्याचा संदेश गांधीजींनी दिला. गांधी विचारांनी प्रभावित होऊन लेखन करणा-या लेखकांच्या साहित्यावर गांधीवादाचा प्रभाव दिसून येतो. १९२३ च्या दरम्यान रविकिरण मंडळाची स्थापना झाली. रविकिरण मंडळातील कवी गिरीश, यशवंत यांच्या कवितांतून ग्रामीण साहित्याचे वर्णन येते. १९३३ साली 'सुगी' हा प्रातिनिधीक स्वरूपातील काव्यसंग्रह ग.ल.ठोकळ यांनी संपादित केला. यातील बहुतांशी कवितांतून रोमँटिसिझम आणि मनोरंजन हाच हेतू दिसून येतो. पुढे १९५२ मध्ये 'बहिणबाईची गाणी' हा बहिणाबाईंचा काव्यसंग्रह आला. प्रत्यक्ष ग्रामीण जीवनाचे वास्तव दर्शन या कवितेतून होताना दिसते.

१९६० नंतर मराठी साहित्य प्रवाहात दलित साहित्य चळवळ उद्यास आली.या चळवळीने गावगाडयाबाहेरच्या वस्तीचे जीवन, व्यथा, वेदना त्यांच्याच भाषेत मांडल्या. या साहित्यामागे डॉ. आंबेडकर यांची मानवतेची प्रेरणा होती. याच कालखंडात मात्र ग्रामीण साहित्याची भाषा कोणती असावी? या साहित्याच्या प्रेरणा कोणत्या? याबाबत संदिग्धता होती. ही संदिग्धता डॉ. आनंद यादव, डॉ. द. ता. भोसले, डॉ. वासुदेव मुलाटे, डॉ.नागनाथ कोतापल्ले यांच्या वैचारिक लेखनाने काही अंशी दूर झाली.

१९६० ते १९९० या कालखंडात डॉ. आनंद यादव, डॉ. विठ्ठल वाघ, ना. धो. महानोर यांसारखे महत्त्वाच्या ग्रामीण लेखकांनी ग्रामीण लेखकांची संवेदनशीलता जागी करण्याचे काम केले. दलित साहित्यापाठोपाठ गामीण साहित्याची चळवळ उद्यास आली. ग्रामीण लेखकांचा पहिला मेळावा १९७७ मध्ये झाला. १९७९ रोजी बोटा येथे पहिले ग्रामीण साहित्य समेंलन पार पडले. १९९८० ते १९९० या कालखंडात संपूर्ण महाराष्ट्रभर विविध कार्यक्रम राबविले गेले. ग्रामीण साहित्याची योग्य समीक्षा होऊन ग्रामीण साहित्याला जागते भान आले. १९९० नंतरच्या पिढीने ग्रामीण जीवनाच्या संवेदना वास्तवस्वरूपात समोर आणल्या.

सामाजिक स्थित्यंतराचा ग्रामीण चळचळीवरील परीणाम

म. फुलेंच्यापासून ते आजतागायत ग्रामीण साहित्यलेखनात बदल झालेले दिसून येतात. १९५० पर्यंतच्या कालखंडात पाश्चात्यांच्या विचाराने प्रभावित पण स्वातंत्र्याच्या प्रेरणेने भारावलेली पिढी असली तरी या कालखंडात केवळ मनोरंजन आणि रोमँटिसिझच्या वृत्तीने लेखन झाले आहे. पुढे 'बहिणाबाईंची गाणी' या काव्यसंग्रहाने ग्रामीण वास्तवाचे दर्शन घडविले. १ मे १९६० रोजी स्वतंत्र महाराष्ट्राची स्थापना झाली आणि समाजबदलांचा परीणाम साहित्यावर होऊ लागला. शेतीच्या बाबतीत हरीतक्रांती घडून आली. शिक्षणक्षेत्रात आमूलाग्र बदल झाले. औद्यागिक क्षेत्रात बदल होऊन यंत्रयुग अवतरले. वीज, रस्ते, पाणी, दळणवळणाची साधने, लोकशाही राज्याची संकल्पना, पंचायतराज, मताधिकार, सोसायट्या, साखर कारखाने, प्रचार-प्रसारमाध्यमे, आरोग्यसुविधा या सर्वांचा परीणाम ग्रामीण साहित्यलेखनावर झाला. सुशिक्षित पिढी अर्थार्जनासाठी शहराकडे वळू लागली. नव्या बदलांचे नवे वारे वाहू लागले आणि एकूणच ग्रामीण समाजातील कुटुंबसंस्था, विवाहसंस्था, जातिसंस्था यामध्येदेखील बदल झाले. लोकशाही राज्यांमुळे सामान्य माणसाला आपल्या हक्काची जाणिव झाली. सामान्य शेतकरीदेखील समृध्दीचे नवे स्वप्न पाहू लागला. ग्रामीण समाज नागर समाजाचे अनुकरण करू लागला. या आमूलाग्र बदलांमूळे बड्या शेतक-यांचा अधिक विकास झाला पण सामान्य शेतक-यांची स्थिती आहे अशीच राहिली. या सर्व बदलांचे पडसाद ग्रामीण साहित्यात उमटू लागले.

**सारांश**

१) ग्रामीण लेखकांच्या पहिल्या पिढीने खेडयातल्या अनुभवांसह साहित्यलेखन केले. या लेखनातील पारंपारिकता रसिकांनीदेखील अनुभवलेली होती.

२) ग्रामीण लेखकांची दुस-या पिढी ही स्वातंत्र्यपूर्व कालखंडातील पण विचारांच्या आवर्तात सापडलेली होती.

३) तिसरी पिढी मात्र लेखन करणारी ठरली.मनावरील पारंपारिक खेडयाचा ठसा तसाच ठेवून बदलणा-या खेडयाच्या छटा या पिढीने मांडल्या.

४) साठोत्तरी कालखंड हा बदलाचा, संक्रमणाचा कालखंड ठरला. या कालखंडातील पिढीच्या लेखनाचा वेग दुसरी पिढी पकडू शकली नाही.

५) साठोत्तरी कालखंडातील बदलांमूळे ग्रामीण लेखकांच्या संवेदनशीलतेवर परीणाम झाला. आत्मभानजागृती आलेल्या लेखकांच्या लेखनीने ग्रामीणवास्तवाचे चित्रण केले. या सजगतेमूळे ग्रामीण साहित्य चळवळीवरदेखील परीणाम झाला.

६) ग्रामीण साहित्याला निश्चित दिशा प्राप्त झाली. या ग्रामीण चळवळीच्या प्रेरणामध्ये दलित साहित्य चळवळीचादेखील मोलाचा हातभार आहे.

७) ग्रामीण साहित्यलेखनाची समीक्षा करून या ग्रामीण चळावळीसाठी मोलाचे योगदान देणारे डॉ. आनंद यादव, डॉ. द.ता.भोसले, रा.रं.बोराडे. डॉ. नागनाथ कोतापल्ले----अशा अनेक मंडळीनी मोलाचे योगदान देऊन ही चळवळ पुढे नेली व गतीमान ठेवली.

८) प्रचलित लेखनव्यवस्थेला फाटा देऊन सामाजिक स्थित्यंतरामुळे ग्रामीण साहित्यात नव विचारांचे वारे वाहिले. याकरीता विविध ग्रामीण साहित्य समेंलने व इतर उपक्रम तसेच ग्रामीण विचारवंत साहित्यिक कार्यकर्ते यांचे मोलाचे योगदान दिसून येते.

संदर्भ् ग्रंथ

१) ग्रामीण साहित्याची चळवळ - डॉ. कीर्ती मुळीक, स्नेहवर्धन प्रकाशन पुणे, प्र.आ.२०११

२) साहित्य ग्रामीण आणि दलित - संपा. डॉ. ईश्वर नंदपुरे, विजय प्रकाशन नागपूर, प्र.आ.२००२

3) ग्रामीण साहित्य अपेक्षा आणि उपेक्षा - प्रा. चंद्रकुमार नलगे, अधिका प्रकाशन, प्र. आ.१९९५

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal ISSN 2349-638X www aiirjournal.com

# महात्मा फुले यांच्या शैक्षणिक कार्याचे सामाजिक विकासातील योगदान

**डॉ.अशोक बंडा कांबळे**
कर्मवीर हिरे महाविद्यालय, गारगोटी
ईमेल:-ashokkambale5884@gmail.com

या देशामध्ये शूद्रातिशूद्र यांना शिक्षण घेण्याचा अधिकार नसल्यामुळे येथील जनमानसात कमालीचे अज्ञान फोफोवले होते. हे अज्ञान दुर करण्यासाठी महात्मा फुले यांनी आयुष्यभर प्रतिगामी शक्तींशी उग्र लढा दिला. शूद्रातिशूद्रांच्या अज्ञानाचे मूळ कारण त्यांच्या अविद्येत आहे हे महात्मा फुले यांच्या पक्के ध्यानात आले होते. स्वत:ला भूदेव म्हणवून घेणारे ब्राम्हण पोकळ पांडित्याचे प्रदर्शन करतात. शूद्र लोकांनी शिक्षण घेण्याचा प्रयत्न केल्यास त्यांच्या कानात तप्त शिशाचा रस ओतला जाई. वेद ऐकणे शूद्राच्या दृष्टीने पाप आहे हे मनुवादीवृत्तीने समाजाच्या मनावर पुरेपूर बिंबवलेले होते. यांच्या विरोधात संत तुकारामांनी आपली भूमिका परखडपणे व्यक्त केली आहे.

'वेदोचा अर्थ आम्हासिच ठावा। येऱ्हयानीच भार वाहवा माथा।।''

सनातन्यांना चारशे वर्षापूर्वी ठणकावून सांगणाऱ्या तुकोबांच्याच विचारसरणीचे प्रत्यंतर एकोणिसाव्या शतकाच्या उत्तरार्धात महात्मा फुल्यांच्या कार्यातून आणि उक्तीतून येते.

हजारो वर्षाच्या गुलामगिरीतून बहुजन व शूद्रातिशूद्र समाजाची सुटका करावयाची असेल, तर त्यांना शिकवून शहाणे केले पाहिजे असा ठाम निर्धार महात्मा फुले यांनी केला. या सर्वाचा परिपाक म्हणजे १ जानेवारी, १८४८ ला पहिली अस्पृश्य मुलींची शाळा सुरू केली. त्यानंतर १८५१ ला त्यांनी सर्वधर्मातील मुलींच्यासाठी शाळा सुरू केली. त्याच्यानंतर त्यांनी जवळजवळ १८ शाळा पुणे परिसरामध्ये सुरू केल्या आहेत. यासाठी त्यांनी काही संस्था स्थापन केल्या आहेत. महात्मा फुले व सावित्रीबाई फुलेनी (१) नेटिव्ह फिमेल्स स्कुल्स-पुणे (२) दि सोसायटी फॉर प्रमोटिंग दि एज्युकेशन ऑफ महारस्, मांग्ज अँड एक्सेट्राज. अशा दोन शिक्षण संस्था सुरू करून त्या संस्थेमार्फत त्यांनी पुणे परिसरामध्ये शाळांचे जाळे विणले.

### स्त्री शिक्षण

स्त्री आणि पुरूष ही एकाच ईश्वराची लेकरे असून दोघेही सारख्याच योग्यतेचे आहेत. परंतु इथल्या पुरूषवर्गाने स्त्री हक्क नाकारून आपल्या सुखासाठी स्त्री वर्गास गुलामगिरीत ठेवण्याचा मतलबी प्रयत्न केला आहे. याच लेखात पुढे हंटर कमिशनला दिलेल्या साक्षीतही फुल्यांनी स्त्रीशिक्षणाबद्दल विचार व्यक्त केले आहेत. इथे फक्त स्त्री शिक्षणाची पारंपरिक अवस्था पाहु.

पुणे म्हणजे ब्राम्हणांची नगरी किंवा राजधानी म्हटली तरी वावगे ठरू नये. अशा या कर्मठ सनातन्यांच्या राजधानीत शाळा सुरू करणे हे तत्कालिन मिशनऱ्यांनासुद्धा जमले नाही. पण तरीसुद्धा मिशनऱ्यांनी केलेले प्रयत्न हे काही कमी नाहीत. ''मिस कुक यांनी १८२० साली बंगालमध्ये काही शाळा चालु केल्या. त्यानंतर त्या १८२९ साली मुंबईस आल्या. त्यांनी मि.विल्सन साहेबांशी लग्न केले. त्या मिसेस विल्सन झाल्या. मुंबई इलाख्यात त्यांनी सहा शाळा काढल्याची नोंद आढळते.''[१] पण त्यांना पुणे शहरामध्ये काही शाळा सुरू करता आल्या नाहीत. पुढे त्यांनी १८३० साली पुण्याच्या शनिवार वाड्यामध्ये

शाळा काढल्याची नोंद मिळते. शाळा काढण्यास त्यांना सरकारनेच जागा दिली होती. याबाबतीत ''बार्ट फ्रिअर हा मिशनरी म्हणतो की, या शाळेत फक्त आठ मुली होत्या. त्याही लपतछपत येत होत्या. शाळा सुटताच चोरट्यासारख्या घरी निघून जात. ही शाळा कशीबशी १८३२ पर्यंत चालली.''[२] याच दरम्यान मोडक नावाच्या ख्रिस्ती व्यक्तीने महारवाड्यात शाळा काढली. परंतु कर्मठ रूढीप्रिय शूद्रातिशूद्रांनीच ती शाळा बंद करण्यास भाग पाडले. त्यानंतर १८४४ साली चर्च ऑफ स्कॉटलंड मिशनने मंगळवार पेठेत एक मुलींची शाळा काढली. पुरेशी साधनसामग्री व युरोपियन शिक्षिका असतानाही ती शाळा १८४७ ला बंद पडली. या सर्व तपशीलावरून पुण्यामध्ये एकोणिसाव्या शतकात स्त्री व शूद्रातिशूद्र यांच्यासाठी शाळा सुरू करून त्या पुढे चालविण्याचे प्रयत्न विफल झाल्याचे दिसून येते. म्हणून त्यावेळचे मुंबईचे राजकीय ऋषी माम परमानंद यांनी फुले दांपत्यांच्या अलौकिक शैक्षणिक कार्याबद्दल म्हटले आहे, ''एका मराठ्याने आपल्या पत्नीस शिकवून तिच्याकरवी ब्राम्हणांच्या मुलींना शिकविण्याचा त्यांच्या बाले किल्ल्यात प्रयत्न करणे हे मोठे धाडसाचे काम होते. परंतु त्यांच्या बालेकिल्ल्यात राहून महारमांगासाठी शाळा उघडून आणि त्यांना समाजाचे घटक म्हणून बनविणे म्हणजे सिंहाची आयाळ त्याच्या गुहेतच उपटण्यासारखी गोष्ट आहे.''[३]

महात्मा फुले यांच्या सर्व क्रांतीकार्याचे केंद्र पुणे हेच होते. विद्येशिवाय कोणतीच प्रगती अशक्य आहे याची जाणीव त्यांना होती. म्हणून त्यांनी तळागाळातील शूद्रातिशूद्र व स्त्री समाजाच्या शिक्षणाने त्यांनी प्रथम स्त्री शिक्षणासाठी शाळा उघडल्या. पुरूषापेक्षा स्त्रियांच्या शिक्षणाला अग्रक्रम दिला पाहिजे हे प्रथम सांगणारा हा पहिला भारतीय महामानव व दृष्टा होय. स्त्री व पुरूष ही संसाररुपी दोन चाके असून ती समान असली पाहिजेत तरच तो संसाररूपी गाडा चांगल्या पद्धतीने चालतो हे संसाररुपी मर्म महात्मा फुले यांनी ओळखले होते. थोर मातांच्या पोटीच थोर स्त्री–पुरूष जन्म घेत असतात. म्हणून महात्मा फुले यांनी स्त्री शिक्षणाला सर्वश्रेष्ठ स्थान देवून पुण्यात त्यांनी प्रथम मुलींची शाळा सुरू केली. या कामी त्यांना साथ केली ती त्यांची अर्धांगिनी क्रांतीज्योती सावित्रीबाई फुले यांनी. एका महात्म्याची पत्नी म्हणून न मिरवता त्यांनी शूद्रातिशूद्र, कष्टकरी, पिडीतांसाठी काम केले. त्यांनी स्वत:चा संसार, मुलेबाळे किंवा घरदार या ऐहिक सुखाचा विचार करता जगाचा संसार सावरला. हालअपेष्टा, निंदानालस्ती, विटंबना, शिव्याशाप व अशा अनेक संकटांना सामोरे जाऊन ती कठोरपणे पचविली. या दोघा उभयतांच्या मनामध्ये स्त्रिया, शूद्र, अनाथ विधवा, शेतकरी, कष्टकरी, मजूर या वर्गाबाबत जो कळवळा, जी पोटतिडीक होती ती समान होती. त्यांच्या उद्धारासाठी ते दोघे अहोरात्र प्रयत्नशील होते. म्हणून त्यांनी सर्वप्रथम मुलींच्या शाळेचा आरंभ करून राष्ट्रमतांच्या जडणघडणीस सुरूवात केली.

१८४८ साल हे जसे जगाच्या दृष्टीने महत्त्वाचे असे भारताच्या दृष्टीनेही महत्त्वाचे आहे. याच काळात भारतात लॉर्ड डलहौसीची कारकीर्द होती. त्यांनी रेल्वे, पोस्ट, शिक्षण या क्षेत्रात प्रगती केली. दरम्यानच्या काळात अमेरिका व इंग्लंड या देशातही सामाजिक हक्कासाठी चळवळी झाल्या आणि विशेषत: याच साली महात्मा फुले यांनी पुण्यात मुलींची शाळा सुरू करून एका नव्या युगाचा प्रारंभ केला.

१ जानेवारी, १८४८ रोजी पुण्यात बुधवार पेठेत भिडे वाड्यात पहिली मुलींची शाळा सुरू केली. भिडे हे परोपकारी, नि:पक्ष आणि उदारमतवादी होते. त्याचप्रमाणे ते महात्मा फुले यांचे स्नेही होते. त्यांनी महात्मा फुले यांच्या कार्यास चालना तर दिलीच, पण त्यांच्या शाळेला देणगी म्हणून १०१ रूपयेही दिले. या शाळेच्या पहिल्या शिक्षिका आणि पहिल्या मुख्याध्यापिका सावित्रीबाई फुले होत्या. त्यांच्या पहिल्या शाळेमध्ये ६ मुली होत्या. त्यापैकी ४ ब्राम्हण, १ धनगर, १ मराठा अशा मुली होत्या. पुढे या शाळेचा नावलौकिक वाढून मुलींची संख्या वाढू लागली. याकामी म.फुले व सावित्रीबाईंनी पालकांच्या भेटी घेऊन त्यांचे मतपरिर्वतन करण्यात यश मिळविले. त्यामुळे मुलींची संख्या अपेक्षेपेक्षा वाढू लागली. म्हणून सावित्रीबाई फुले यांना सहकारी शिक्षकांची गरज वाटू लागली. पण सावित्रीबाईंसारखे विनावेतन, त्यागबुद्धीने काम करण्यास शिक्षक मिळणे

कठीण, त्याहून स्त्री शिक्षिका मिळणे महाकठीण होते. पण विष्णुपंत थत्ते या परोपकारी ब्राम्हण गृहस्थाने शिक्षक म्हणून काम केले. पुढे वामनराव खराडकर, गणू शिवाजी मांग व धुराजी आप्पाजी चांभार यांनीही शिक्षक म्हणून काम केले आहे. तसेच उस्मान शेख यांच्या भगिनी फातिमा शेख यांनीही सावित्रीबाईंच्या बरोबर शिक्षिका म्हणून काम केले.

या पहिल्या शाळेचे यश पाहून महात्मा फुले यांनी १५ मे, १८४८ रोजी पुण्यात महारवाड्यात मुलामुलींसाठी शाळा सुरू केली. यासाठी शिक्षिका म्हणून सावित्रीबाई व सगुणाबाई उर्फ आऊ यांची नेमणूक झाली. म. फुले यांच्या शिक्षणप्रसारास चांगलीच मान्यता मिळाली होती. अल्पावधीतच त्यांनी पुणे परिसरामध्ये एका पाठोपाठ एक अशा १८ शाळा उघडून मुलामुलींच्या शिक्षणास ऐतिहासिक चालना दिली. हे देशातील एकमेव उदाहरण होय. स्त्री शिक्षणास व एकूण शूद्रातिशूद्र यांच्या शिक्षणास महात्मा फुले यांनी जे महत्त्व दिले त्या पाठीमागे त्यांचे एक मोठे तत्त्व होते. कारण शिक्षण हे समाजपरिवर्तनाचे एक प्रभावी साधन आहे असे सांगणारा भारतातील हा पहिला द्रष्टा होय.

**संदर्भ**

१) मा.गो.माळी, क्रांतीज्योती सावित्रीबाई फुले काळ व कर्तृत्व महात्मा फुले गौरव ग्रंथ, संपा. पी.बी. साळुंखे, मा.गो.माळी, प्र.आ. १८८२, मुंबई, महाराष्ट्र राज्य शिक्षण विभाग, पृ.क्र. ४२४

२) तैत्रव पृष्ठ क्र. ४२४

३) तैत्रव पृष्ठ क्र. ४२५

# दलित चळवळ आणि रंगभूमी

**अमर शामराव सकटे**
संशोधक विद्यार्थी,
मराठी अधिविभाग, कोल्हापूर.

---

**''माझ्या दहा सभा व मेळावेआणि वामनदादा कर्डक यांचा एक जलसा समान आहे.''**

असे गौरवोद्गार डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांनी वामन कर्डकांच्या जलश्याबद्दल काढले असले तरी हा गौरव संपूर्ण रंगभूमीचा आहे. रंगभूमीवर सादर होण्या सर्व कलाप्रकारांचा आहे. कारण एखादा विषय जनमानसाच्या मनापर्यंत पोहचवण्याचे कार्य मनोरंजनाच्या माध्यमातून प्रबोधन करून परिवर्तन घडविण्याचे कार्य रंगभूमी करत असते. त्यामध्ये शाहीरीकला, गाणी, तमाशा, जलसा, नाटक, एकांकिका आणि तंत्रज्ञानाच्या युगात अस्तित्वात आलेली चित्रपटकला आदिकलांचा समावेश होतो. शाहीरी, तमाशा, जलसा, नाटक, गीत संगीत या कलाप्रकारांचा सामाजिक चळवळीमध्ये कशाप्रकारे समावेश होतो याचा विशेषकरून आंबेडकराच्या सामाजिक चळवळींचा अंगीकार करून या कलाप्रकारांनी डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांची राजकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक भूमिका आपल्यामध्ये सामावून घेवून आंबेडकरांचे विचार तळागळापर्यंत कसे पोहचवले आहेत याचीचर्चा प्रस्तुत शोधनिबंधात करण्यात आले आहे.

## दलित चळवळीची पार्श्वभूमी

चळवळ हा परिवर्तनाचा मार्ग असतो. तो सामाजिक क्रांतीचा मूलस्रोत असतो. समाजातील महत्त्वपूर्ण घटक व व्यवस्था यामध्ये समाजहिताच्या बाजूने बदल घडवून आणण्यासाठी समाजघातक प्रवृत्तींना पायबंद घालण्यासाठी समाजातील असंख्य व्यक्ती एकत्र येवून हेतूपूर्वक केलेला प्रयत्न म्हणजे सामाजिक चळवळ होय. सामाजिक चळवळी समाजव्यवस्थेत अनुकूल स्वरूपात बदल घडवून आणतात. समाजातील महत्त्वपूर्ण प्रश्नांना केंद्रबिंदू ठेवून चळवळी आकारास येत असतात.

वेदना, विद्रोह आणि नकार या भावनेतून हिंदुस्थानी समाजव्यवस्थेतील चातुर्वण्य व्यवस्थेविरूद्ध बंड पुकारण्यासाठी दलित चळवळ उदयास आलेली आपणास दिसून येते. शत्रूवर मात करण्यासाठी शस्त्रापेक्षा विचार हे फार मोठे शस्त्र आहे. ही इतिहासाची साक्ष असून डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांनी रक्तपातविरहित समाजपरिवर्तनासाठी शब्द शस्त्राचाच वापर करून आपल्या तत्त्वज्ञानाच्या सामर्थ्यावर भारतीय समाजात परिवर्तन घडवून आणले. सत्यशोधक अण्णा भाऊ साठे, लोकशाहीर वामनदादा कर्डक, लोकशाहीर विठ्ठल उमप, अलिकडच्या काळातील प्रसिद्ध गायक प्रल्हाद शिंदे, लोकशाहीर संभाजी भगत, शाहीर शितल साठे, शाहीर सचिन माळी, आनंद शिंदे आणि आजच्या काळातील गायक शाहीर नंदेश उमाप, आदर्श शिंदे आपल्या वाणीच्या आणि प्रतिभेच्या जोरावर दलित रंगभूमीवर आंबेडकरी शाहीरी आणि गीतांच्या माध्यमातून मोलाचे कार्य करताना दिसत आहेत.

न्यायशास्त्रज्ञ, अर्थशास्त्रज्ञ, राजनीतीतज्ञ, तत्वज्ञ आणि समाजसुधारक असणाऱ्या डॉ. आंबेडकर यांनी हिंदुस्थानातील चातुवर्ण्य समाजपद्धतीचा निषेध करून भारतीय समाजातील बहुजन समूहाला गुलामगिरीच्या जोखंडातून मुक्त करण्यासाठी सामाजिक आणि राजकीय चळवळ उभी केली आणि दलितांची अस्मिता जागृत केली, आत्मभान दिले. या चळवळीला आंबेडकरी चळवळ म्हणूनही ओळखले जाते. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांनी हिंदुस्थानातील जातीभेदाचे चटके स्वत: सहन

केले असल्याने दलितांच्या वेदना, स्त्रियांची गुलामगिरी त्यातून त्यांचे झालेले सामाजिक खच्चीकरण हे अगदी जवळून अनुभवले होते. समाजरचनेमधील ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य आणि शुद्र अशी सामाजिक उतरंड असल्यामुळे ब्राम्हणवर्ग सोडला तर इतरांना शिक्षणाचा अधिकार नव्हता. क्षत्रिय, वैश्य या वर्णांपेक्षा शूद्रांची अवस्था अतिशय दयनीय होती. वरील तीन वर्णांची सेवा करणं, लाचारीचं जीवन जगणं त्यातून गुलामगिरी पत्करणं, अज्ञान, अंधश्रद्धा, रूढी परंपरा या जोखंडामध्ये शुद्र समजला गेलेला बहुजन समाज हजारो वर्षे चातुर्वण्याच्या बंदीखान्यात बंदिस्त होता. हिच अवस्था सर्व जाती–धर्मातील स्त्रियांची दयनीय होती.

अशा पिचलेल्या समाजातील घटकांना सामाजिक, राजकीय, सांस्कृतिक पारतंत्र्यातून मुक्त करण्यासाठी महात्मा जोतिराव फुले, क्रांतीज्योती सावित्रीबाई फुले यांनी बंडखोरीचे शस्त्र उपसले आणि चातुर्वण समाजव्यवस्थेला कडवे आव्हान देवून भारतामध्ये एक मोठी सामाजिक चळवळ उभी केली. याकामी त्यांना वस्ताद लहूजी साळवे यांचे सहकार्य लाभले. फुले दापत्यांने १ जानेवारी १८४८ मध्ये मुलींकरीता पहिली शाळा सुरू करून स्त्री शिक्षणाचा पाया रचला. स्त्रियांना दलितांना, बहुजनांना शिक्षणाची दारे खुली करून जातीय व्यवस्थेला हादरे दिले.

महात्मा फुलेंच्या सामाजिक, शैक्षणिक, राजकीय, सांस्कृतिक चळवळीचा प्रेरणा घेऊन पुढे महर्षी विठ्ठल राजमी शिंदे, छ. शाहू महाराज, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, छ. सयाजी गायकवाड, कर्मवीर भाऊराव पाटील अशा समाज सुधारकांनी सामाजिक चळवळी उभ्या केल्या आणि त्या यशस्वीही केलेल्या दिसून येतात.

समता, स्वातंत्र्य, बंधुता, न्याय या तत्त्वांवर आधारलेली चळवळ सुरू केली आणि हिंदुस्थानातील जातीव्यवस्थेला धक्के दिले. त्यातून जातीनिर्मूलनाचे कार्य केले ते चळवळीच्या माध्यमातून. कारण चळवळ हा परिवर्तनाचा मार्ग आहे, जुलमी व्यवस्थेविरूद्ध लढा उभा करून नवसमाजनिर्मितीची सुरूवात केली. समाजातील वेदना, विद्रोह प्रकट करण्यासाठी डॉ. आंबेडकरांनी ३०/०१/१९२० साली मराठी भाषेतून मूकनायक हे मासिक सुरूकेले. गरीब, दलित, शोषित स्त्रियां इत्यादींच्या व्यथा, वेदना, त्यांचा आवाज लोकापर्यंत, सरकारपर्यंत पोहचविण्यासाठी विविध लेख लिहले. अस्पृश्य समाजावर होत असलेल्या अन्यायावर प्रकाश टाकून त्या समाजाच्या उन्नतीसाठी तत्कालीन ब्रिटीश सरकारला योजना सुचविल्या. अस्पृश्यांनचा उद्धार, विकास होण्यासाठी अस्पृश्यांनी राजकीय सत्ता व शैक्षणिक ज्ञान मिळवणे गरजेचे आहे असे त्यांना वाटत होते. बहुजनांची राजकीय सत्ता, बौद्धिक प्रगती आणि स्वाभिमान हा आंबेडकरी चळवळीचा केंद्रबिंदू आहे.

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांनी चवदार तळ्याचा सत्याग्रह करून अस्पृश्यांना पिण्याच्या पाण्याचा अधिकार मिळवून दिला. भारतातील आंबेडकरी चळवळीच्या इतिहासामध्ये नाशिक येथील काळाराम मंदिर सत्याग्रहाने अतिशय महत्त्वाची भूमिका बजावली आहे. २० मार्च १९३० रोजी अस्पृश्यांना मंदीरात प्रवेश देण्यासाठी सत्याग्रहाचे आंबेडकरांनी नेतृत्व करून मंदीराबाहेर मोठे आंदोलन केले आणि आंबेडकरांच्या या आंदोलामुळेच आज सर्वांना मंदीर प्रवेश मिळत आहे.

स्त्री सुधारणेविषयक डॉ. आंबेडकर यांनी विशेष आणि बहुमोल असे कार्य केले आहे. हिंदू धर्मातील रूढी परंपरामुळे स्त्रीयांना राजकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक गुलामगिरीतून मुक्त करण्यासाठी बाबासाहे आंबेडकरांनी उल्लेखनीय असे कार्य केले आहे. भारतातील सर्वच जातीधर्मातील स्त्रियांना आत्मभान आणि आत्मसन्मान मिळवून देण्यासाठी डॉ. आबंडकरांनी आपल्या चळवळीच्या माध्यमातून चौफेर अशी कामगिरी करून दलितांना, स्त्रियांना नवे आत्मभान दिले. त्या प्रेरणेतून दलित साहित्याची चळवळ जोमाने उभी राहिली. वेदना, विद्रोह आरि नकार या त्रिसूचीवर आधारलेल्या दलित साहित्याने आंबेडकरी चळवळ तळागळात पोहचविण्याचे कार्य केले. **‘आम्ही दलित साहित्यीकांनी दलितांना वास्तव जगण्याच्या सर्व जुलुमातून मुक्त करणारे साहित्य निर्माण केले पाहिजे.’** असे सत्यशोधक अण्णा भाऊ साठे यांनी दलित साहित्यीकांना संबोधीत केले. दलित साहित्याच्या चळवळीत अण्णा भाऊ साठे, शंकर खरात, बाबूराव बागूल, नामदेव ढसाळ, राजा ढाले, शरणकुमार लिंबाळे,

यशवंत मनोहर, दया पवार अशा असंख्य लेखकांनी साहित्याच्या माध्यमातून आंबेडकरी चळवळ लोकांपर्यंत पोहचविण्याचे कार्य केले. तसेच दलित रंगभूमीनेही आंबेडकरी चळवळ अतिशय प्रभावीपणे जनसामान्यापर्यंत पोहचवण्याचे कार्य केलेले आहे.

**दलित रंगभूमी**

दलित समाजातील कलावंतांनी निर्माण केलेल्या तमाशा या कलाप्रकाराचा आकृतिबंध स्विकारला. दलित रंगमूी आकरास आलेली आहे. ''आंबेडकरी जलसा हे दलित रंगभूमीचे प्रारंभीचे रूप आहे. सत्तरच्या दशकात जलदगतीने प्रवाहीत झालेल्या दलित रंगभूमीला लोकरंगभूमीची पार्श्वभूमी लागलेली आहे.''

**जलसा**

आंबेडकरी शाहीरी, आंबेडकरी जलसे, आंबेडकरी गीते आणि नंतर दलित नाटके असा दलित रंगभूमीचा प्रवास दिसून येतो. सत्यशोधकी जलशापासून प्रेरीत होऊन आंबेडकरी जलशाची निर्मिती झाली. त्यातून दलित नाटक असा प्रवास दिसून येतो. परंतु महात्मा फुले यांच्या अनुयायांनी २७ नोव्हेंबर १८९० रोजी 'सत्यशोधक जलसा' याची स्थापना केली. परंतु सत्यशोधक जलशाचा ज्यावेळी उदय झाला त्यावेळी महाराष्ट्रात विद्यमान असणाऱ्या केवळ दलितांना निर्माण केलेल्या तमशा या लोकरंगभूमीवर मांग, महार, चांभार या समाजातील कलावंताबरोबरच माळी, कोळी, गोंधळी इत्यादी बहुजन कलावंत एकत्रित कलाविष्कार करीत होते.

रूस्तुम अचलखांबाच्या यांच्या प्रमाणे, **'कुठलीही कला समाजात अचानक जन्माला येत नसते. काळाच्या गरजेनुसार ती समाजात प्राथमिक अवस्थेमध्ये उदयाला येते. नंतर ती उन्नत होऊन परिणत अवस्थेपर्यंत पोहचते.'**दलित रंगभूमीचेही असेच झाले आहे. बाबासाहेब आंबेडकर यांच्या प्रत्यक्ष कार्याला सुरूवात झाल्यानंतर पिचलेल्या, शोषित असणाऱ्या अस्पृश्य वर्गाला जाणीव होऊ लागली की आपला कोणीतरी उद्धारकर्ता आपल्याला मुक्ती देण्यासाठी झटत आहे, झगडत आहेत. आपल्याला न्याय मिळवून देत आहे. या भावनेतून आंबेडकरांच्या क्रांतीक्रारी कार्याचे कौतुक म्हणून त्यांच्या नावे गीतं गायली जाऊ लागली. विशेषत: ही गीते मौखिक परंपरेतून आलेली दिसून येत होती. त्यातून दलित चळवळीचं स्वरूप मांडले जाऊ लागली. आंबेडकरी शाहीरी, आंबेडकरी गीते, दलित नाटक, दलित एकांकिका यांच्या माध्यमातून आंबेडकरी चळवळीचे कार्य बाबासाहेब आंबेडकर यांच्या बंडखोर विचारांचे सादरीकरण या कलाप्रकारातून होऊ लागले.

**आंबेडकरी शाहीरी**

शाहीरी वाङ्मय म्हणजे पोवाडे, लावण्या आणि भेदिक कवने. एखाद्या वीराचा पराक्रम, राज्यकर्त्याचा पराक्रम वर्णन करणे होय. शाहीरी काव्याची परंपरा प्राचीन असून आजतागायत सुरू आहे. असे असले तरी शाहीरी काव्याला बहर आला तो मराठे शाहीरीतच. छ. शिवाजी महाराजांचा पराक्रम जनमाणसांत पोहचवण्यासाठी शाहीरी हे माध्यम अत्यंत उपयोगी आणि प्रभावशाली ठरले. त्याचप्रमाणे आंबेडकरी चळवळीचा प्रसार व प्रचार करण्यासाठी दलित रंगभूमीने शाहीरी कलेचा अतिशय समर्पक वापर करून आंबेडकरी चळवळ जनमानसात रूजवली. यामध्ये लोकशाहीर विठ्ठल उमप, लोकशाहीरअण्णा भाऊ साठे, लोकशाहीर वामनदादा कर्डक आणि आजच्या काळातील शाहीर संभाजी भगत, शाहीर शिलत साठे, शाहीर संदेश उमप व नंदेश उमप हे डॉ. आंबेडकर यांचे विचार आपल्या ओजस्वी वाणीतून आणि समर्थ लिखाणातून महाराष्ट्राच्या घराघरात बुद्ध, फुले, शाहू, आंबेडकर यांचे विाचर पोहचवत आहेत.

*मी क्रांतीचा नारा... नारा*

*मी क्रांतीचा नारा*

*मी वादळ वारा, मी वादळ वारा.*

अशा असंख्य गीतामधुन वामनदादा कर्डकांनी आंबेडकरी चळवळ लोकांपर्यंत पोहचवली.

*जग बदल घालुनि घाव*
*सांगुनि गेलेमला भिमराव*

अशा रचनेतून अण्णा भाऊ साठे यांनी सामज प्रबोधन आणि आंबेडकरी तत्त्वज्ञान आपल्या लेखणीतून मांडले आहे.

*गाजले, गाजले कार्य भीमाचे गाजले*
*भीमाने चवदार तळ्याचे पाणी पाजले.*

लोकशाहीर विठ्ठल उमाप यांनी आपल्या वाणीतून बाबासाहेब आंबेडकरांच्या सामाजिक कार्याचे सर्व तपशील आपल्या लेखणी, वाणीतून समाजातील तळागळातील घटकांपर्यंत पोहचवले. आंबेडकरी अस्मिता जागृत करण्याचे कार्य केले.

**भीमगीते**

भीमगीते ही प्रामुख्याने मौखिक परंपरेतून निर्माण झालेली आहेत. 'महाराष्ट्राच्या प्रत्येक जिल्ह्यातून निदान ट्रकभर तरी भीमगीते ऐकायला मिळतील.' असे मत शाहीर संभाजी भगत यानी मांडले आहे. रंगभूमीवरील अतिशय प्रभावी माध्यम भीमगीत गायन कार्य शाहीरी काव्यातूनच निर्माण झालेली भीमगीतांनीसुद्धा आंबेडकरी चळवळ जोरकसपणे बहुजन समाजापर्यंत पोहचवण्याचा प्रयत्न केलेला आहे आणि करीत आहेत. भीमगीत निर्मितीमधील आघाडीचे नाव म्हणजे प्रल्हाद शिंदे, आनंद शिंदे, मिलिंद शिंदे आणि आजच्या काळातील आघाडीचे गायक शाहीर संभाजी भगत, शाहीर शितल साठे, आदर्श शिंदे, साजन बेंद्रे, विशाल चव्हाण हे गायक कलावंत आपल्या वाणीतून, स्टेज शो, टि.व्ही. शो यांच्या माध्यमातून आंबेडकरी चळवळीचे दर्शन घडवून बाबासाहेबांच्या विचारांचा जागर करताना दिसत आहेत.

बाबासाहेब आंबेडकरांचा चवदार तळ्याचा सत्याग्रह, काळाराम मंदिर प्रवेशाचा सत्याग्रह, त्यांचे शिक्षण विषयक विचार, रूढीपरंपरा विरोधी विचार, संविधानानेमाणूस म्हणून दिलेला हक्क, बाबासाहेबांची धर्मांतराची चळवळ, बुद्ध तत्वज्ञान अतिशय कलात्मरित्या मांडताना दिसत आहे.

शिक्षणामुळे, संविधानामुळे आंबेडकरांच्या झुंझार कार्यामुळे दलित समाजाला आत्मभान आले, दलित समाजाची उन्नती झाली, समाज प्रगतशील झाला. त्यामुळे गाण्यातील वेदना, विद्रोह, नकाराची जागा अभिमानाने घेतली. यातूनच आदर्श शिंदे यांच्यासारखे गायक

*नव्हतं मिळत पोटाला*
*आता कमी नाही नोटाला*
*माझ्या भिमाची पुण्याई*
*अंगठी सोन्याची बोटाला*

अशा रचनेतून आंबेडकरांच्या उपकाराचे गुणगान गाताना दिसत आहेत. साजन बेंद्रेसारखा नवोदित गायक–

*चांदबी शरमाये, जब बाबा मुस्काराये*
*क्या बतावू भीमकी मै कहाणी?*
*मेरे भीम की है दुनिया दिवाणी।*
*समाज को उन्होने*

*रास्ता दिखाया*
*पढना पढाना उसी*
*बापने सिखाया।।*

अशा रचनेतून आंबेडकरांचे विचार लोकांपर्यंत पोहचत आहे. अशा गायकांबरोबरच कडूबाई खरात, वैशाली माडे, शाहीर शितल साठे यांच्यासारख्या गायिकासुद्धा आंबेडकरी चळवळीचे कार्य पुढे येत आहेत.

कडूबाई खरात या गायिका आपल्या गीतातून पुढीलप्रमाणे व्यक्त होतात.

*माय–बापाहून भिमाचं उपकार लय हाय रं..*
*तुमी खाता त्या भाकरीवर बाबासाहेबाची सय हायरं..*

त्याचप्रकारे बाबासाहेब आंबेडकरांनी हिंदु कोड बीलाच्या माध्यमातून स्त्रियांना अनेक हक्क बहाल केले, त्यामुळे स्त्री कणखर बनली. बाबासाहेबांनी दिलेल्या शिक्षणाच्या अधिकाराचा गौरव करण्यासाठी वैशाली माडे खालील गीतात म्हणतात,

*क, ख, ग, घ,*
*ग, म, ध, न,*
*शिकून झाली बाराखडी,*
*भिमाची लेक मी*
*लाखात एक मी*
*शिकाया चालली ए, बी, सी, डी.*
*सूर्याची शेकोटी,*
*चंद्रांची रंगपेटी*
*कराया भिमाने दिली शिडी.*

अशाप्रकारे आंबेडकरांच्या शिक्षण विषयक चळवळीचे महत्त्व या गीतातून मांडले आहे.

**नाटक**

मराठीमध्ये इतर वाङ्मय प्रकारांबरोबरच नाटक हा वाङ्मय प्रकार लोकप्रिय आणि समृद्ध आहे. दृक–श्राव्य स्वरूपात असणारा नाटक या कलाप्रकाराचे कथानक, घटना, स्वभावचित्रण, संघर्ष, संवाद आणि नेपथ्य इत्यादी नाटकांच्या प्रमुख घटकांनी नाट्यसंहिता होत असते. नाटक हे लोकरंगभूमीवरून आलेले सशक्त असे माध्यम आहे. अशा या नाटकाचा उपयोग दलित नाटककारांनी आंबेडकरी चळवळीचा, आंबेडकरी तत्वज्ञानाचा प्रसार करण्यासाठी उसन घेतलेला दिसतो. याच उद्देशातून डॉ. आंबेडकरांनी निर्माण केलेल्या आत्मभानामुळे दलित नाटककारांनी सजगतेने काही नाटके लिहलेली आढळतात. म. भि. चिटणीस यांनी ‘युगयात्रा’, ‘जिवंत झाल्या सावल्या’ अण्णा भाऊ साठे यांनी ‘इनामदार’, भि. शि. शिंदे यांनी ‘काळोखाच्या गर्भात’, ‘भिक्षिणी’, वासव दत्ता यांनी ‘भूमीपूत्र’, ‘आग’ तर दत्ता भगत यांनी ‘खेळिया’, ‘वाटा–पळवाटा’, ‘जहाज फुटल आहे’, ‘पिंजऱ्यातील पोपट’, ‘अश्मक’, आवर्त वामन होवाळ यांच ‘जपून पेरा बेणं’, प्रेमानंद गज्वी यांची ‘देवनवरी’, ‘तनमाजोरी’, ‘किरवंत’, ‘वांझ माझी’, ‘गांधी, आंबेडकर आणि झोटभर पाणी’ तसेच रामनाथ चव्हाण यांचे ‘साक्षीपूरन’, ‘बामणवाडा’ व ‘बायको मी देवाची’ आणि प्रकाश त्रिभुवन यांचा ‘थांबा, रामराज्य येतय’.

उपरोलिखित नाटकातून आविष्कृत झालेल्या संघर्षाच्या मुळाशी डॉ. आंबेडकरांनी त्यांच्या चळवळीतून दिलेल्या आत्मभानाचे अधिष्ठान आहे. या कलाकृतीमधील विद्राह व नकार दलित मुक्तीकडे घेऊन जाणारा आहे. प्रस्थापित समाज व संस्कृती यावर घाणाघाती हल्ला चढवणारे दलित नाटक वरील नाटकांमधून चित्रित झाले आहेत.

## समारोप

कोणत्याही चळवळीचा सांस्कृतिक अंग भक्कम असण महत्त्वाचं असत. कारण ही सांस्कृतिकता ती चळवळ वाढविण्यास पूरक ठरत असते. दलित नाटकांनी आंबेडकरी चळवळीला अपेक्षित असणार न्याय, स्वांतत्र्य, समता व बंधुता यांची प्रतिष्ठापना केलेली आपणास दिसून येते. या प्रयोगरूप कला माध्यमांबरोबरच आधुनिक तंत्रज्ञानामुळे अस्तित्वात आलेल्या चित्रपट या माध्यमातून ही 'फँड्री', 'पिस्तुल्या' सारखे चित्रपट लघुपट नागराज मंजुळेसारखे दिग्दर्शक आंबेडकरी तत्त्वज्ञान यंत्राधिष्ठीत कलेच्या माध्यमातून मांडताना दिसत आहेत.

## संदर्भ सूची

१) 'भारतीय दलित साहित्य', शरणकुमार लिंबाळे.
२) 'आंबेडकरी शाहीरी एक शोध', डॉ. कृष्णा किरवले.
३) 'नाटक रंगाविष्कार आणि रंगास्वाद', डॉ. व. दि. कुलकर्णी
४) यु ट्युब चॅनेलवरील 'आंबेडकरी अल्बम'.
५) 'दलित नाट्यवाङ्मय', डॉ. यशवंत राऊत.
६) News Room Charche with Shahir Samabhaji Bhagat and Diksha Shirke.
७) www.news18.lokmat.com

# स्त्री धर्माची जाणीव आणि मराठी कविता

**डॉ . मांतेश हिरेमठ ,**
सहयोगी प्राध्यापक , मराठी विभाग ,
देशभक्त आनंदराव बळवंतराव नाइक आर्ट्स अँड सायन्स कॉलेज , चिखली

**प्रस्तावना :**

**स्त्रीच्या व्यक्तिमत्त्वात वयानुसार महत्त्वाचे बदल होत जातात त्यातील प्रमुख अवस्था म्हणजे कौमार्य . या अवस्थेत मुलींच्या मानसिक आणि शारीरिक पातळीवर विलक्षण बदल होतात . त्यादृष्टीने स्त्रीच्या जीवनातील हा खूप मोठा आंदोलनाचा काळ असतो . या अवस्थेत मानसिकदृष्ट्या तिला खूप धीर द्यावा लागतो . स्त्रीधर्म जाणिवेला मराठीत वेगवेगळे प्रतिशब्द वापरले जातात . नहाण येणे , न्हाण येणे , मोठी होणे , थोरली होणे , बाहेर होणे , कावळा शिवणे , पदर येणे इ. स्त्रीधर्म जाणीव हा स्त्रीविशिष्ट अनुभव असतो . अनेक स्त्री आणि पुरुष साहित्यिकांनी हा अनुभव साहित्याच्या विविध प्रकारात अधोरेखित केला आहे . विशेषतः हा अनुभव कवयित्रींनी अधिक जिवंतपणे मांडला आहे . कारण तो त्यांचा जैविक अनुभव असतो . त्या मानाने कवींच्या कवितेत तो अपवादात्मक आढळतो .**

**ग्रेस यांच्या 'भातुकली ' आणि 'बाहुली ' या कवितेत हा अनुभव व्यक्त झाला आहे . 'भातुकली ' या कवितेत नहाण आलेली स्त्री म्हणते ,**

**आले मला नहाण**
**उसवल्या वेशी**
**तरी मी विटाळशी**
**जगासाठी**

**(चंद्रमाधवीचे प्रदेश ,भातुकली ,पृष्ठ क्र. २६ )**

**न्हाणं येणं ही निसर्गनिर्मित गोष्ट . प्रत्येक स्त्रीला या अवस्थेतून जावेच लागते . न्हाणं आलं की स्त्रीला तिच्या सामर्थ्याची ओळख पटते . त्याबरोबरच तिला तिच्या मर्यादांची ही जाणीव करून दिली जाते . खरेतर या घटनेतून तिला नवनिर्मितीचे वरदान प्राप्त होते . तिचे अशावेळी स्वागत झाले पाहिजे . न्हाणं येण्याने स्त्री चैतन्यमय होते . पण परंपरा मात्र तिला विटाळशी मानते . देवा धर्माच्या नावाखाली चार दिवस घरात आणि इतरत्र वावरण्यासाठी तिच्यावर बंधने घातली जातात . पवित्र मानल्या गेलेल्या ठिकाणापासून वंचित /उपेक्षित ठेवले जाते . खरे तर ही स्त्रीची उपेक्षा आहे . आत्ता अलीकडे परिस्थितीत थोडाफार फरक होताना दिसतो आहे . तरीसुद्धा अजूनही बऱ्याच स्त्रियांवर परंपरेचा फार मोठा पगडा असल्यामुळे या अवस्थेत ती या सर्व गोष्टींपासून शक्यतो लांबच राहते . स्त्रीच्या विकासाच्या अवस्था , तिच्या देहनिष्ट भावना ग्रेस यांनी या कवितेतून मांडलेल्या आहेत .**

**स्त्री जीवनामध्ये शारीरिक आणि मानसिक दृष्ट्या होणारे बदल हे महत्वपूर्ण असतात . जीवशास्त्रीय**

दृष्ट्या या बदलांना खूप महत्त्व असते . या बदलांचा परिणाम मोठ्या प्रमाणात स्त्रीच्या मानसिकतेवर होतो . दोन पातळीवर हे बदल होतात . पहिली , स्त्री वयात येतानाचा बदल . कौमार्य येण्याचा कालखंड आणि दुसरा तिचा मानसिक मनोधर्म बंद होण्याचा कालखंड . यापैकी दुसरा जो बदल आहे , या कालखंडात स्त्री मनावर स्त्रीत्व संपल्याचा , कमतरतेचा , अपुरेपणाचा आघात होत असतो . त्यामुळे या कालखंडात स्त्रीला स्वतःला आपल्या मनाची समजूत काढणे अवघड जाते . त्यामुळे या कालखंडास स्त्रीच्या मानसिक आंदोलनाचा काळ असे म्हटले जाते . इंग्रजीमध्ये याला चशपेरींश असे म्हटले जाते . अनेक कवींनी स्त्री जीवनामध्ये होणाऱ्या या बदलांच्या अनुषंगाने कवितेच्या माध्यमातून चित्रण केले आहे .

चंद्रकांत पाटलांच्या 'बायका आणि इतर कविता ' या संग्रहातल्या 'मध्यम वर्गातल्या एका मध्यमवयीन ' ह्या कवितेत स्रीदेहामध्ये चाळीसी नंतर जे बदल होतात ते मन स्वीकारतं पण देह स्वीकारायला तयार होत नाही; अशा स्थितीचे वर्णन केले आहे . कवी म्हणतात ,

बाई घाबरली

रात्रभर चिंतन केलं तिनं मनावर
आणि अनावर निष्कर्ष काढला
की देहाला नको तेव्हा नासवतं मन
मन देहाचं आंबवन घालतं
बाई रात्रभर तळमळत राहिली

( बायका आणि इतर कविता , मध्यम वर्गातल्या एका मध्यम वयीन , पृष्ठ क्र २१ )

आपल्या शहरी अवयवांचा ताठा मिरविणाऱ्या बाईला चाळिशीच्या तोंडावर आपलं स्त्रीत्व हरवल्याची , संपल्याची जाणीव झाल्यावर तिची बेचैनी वाढते . तिला झोप येत नाही . मेंदूच्या पोकळीत तिचं मन सारखं घिरट्या घालीत राहिलं . अशा काळात कवी सल्ला देतात की , बाई तळ्यातून मळ्यात जाताना ओल्या पायांना माती चिकटणारचं . फक्त अशा वेळी मन नितळ असणं मोलाचं आहे . कवीचा हा सल्ला साऱ्याच स्त्रीवर्गाने समजून घेण्यासारखा आहे . मनावर संयम असेल , तर कुठलीही स्त्री हा कालखंड पेलून नेण्यास समर्थ होऊ शकते .

'उत्कटतेच्या दुःखानं कविताळलिय बाई ' ह्या कवितेत वरील अनुभवच व्यक्त केला आहे . या काळात बाईचं जगणं भलतीकडेच परावर्तित होऊ लागते . ऋतू निघून गेलेल्याला एक तप लोटले तरी अनुत्कट शिशिरात बाईचं सर्वांग वसंत पंचमीचा चोरट्या वाऱ्यानं हुळहुळू लागलंय . अशा उत्कटतेच्या दुःखानं स्त्री बेचैन झाली आहे . चंद्रकांत पाटलांच्या यासारख्या अनुभवाला पती-पत्नी संबंधाचा खाजगी संदर्भ असल्याचे मत प्रकाश देशपांडे केजकर यांनी नोंदविले आहे . ते म्हणतात , हे चित्रण म्हणजे तटस्थ निरीक्षण नसून या चित्रणाला पती-पत्नी संबंधाचा खाजगी संदर्भ आहे . भल्याबुऱ्या अनुभवातून तावून-सुलाखून या गुंतवणुकीत निष्ठेचा एक धागा आहे . पण स्त्री प्रतिमेचा अनेक बाजूंनी घेतलेला वेध कवीच्या आत्मशोधातील एक महत्त्वाचा टप्पा आहे . एका अस्सल नित्य आणि अविनाशी नात्याचा शोध ही चंद्रकांत पाटील यांच्या कवितेतील एक वेदना आहे . चंद्रकांत पाटील यांच्या कवितेविषयीचे केजकरांचे हे मत महत्त्वपूर्ण असून ते पटण्यासारखे आहे . पाटलांनी अशा

प्रकारचे अनुभव कवितेच्या रूपाने व्यक्त केल्याने स्त्रीजाणिवा प्रगल्भ रूप धारण करताना दिसतात .श्रीधर तिळवे यांच्या 'वक्ष ' या कवितेतील स्त्री , स्त्री धर्माची जाणीव झाल्यावर म्हणते ,

वक्ष लहानपणी लहान होते
तेव्हा माहीतच नव्हते ते वाढतात म्हणून
मग कधी तरी रक्त वाहून मी बाई झाले
आणि त्यांच्या वाढीवर बारीक नजर ठेवण्याची मला सवय झाली

( स्त्री वाहिनी , सेंडऑफ , पृष्ठ क्र. ५६ )

या कवितेतल्या स्त्रीचा अनुभव हा समस्त स्त्री जातीचा अनुभव म्हणावा लागेल . याच्या उलट असलेला अनुभव देखील स्त्रीला चाळीशीनंतर घ्यावा लागतो . हा अनुभव देखील श्रीधर तिळवे यांनी आपल्या 'सेन्ड ऑफ ' या कवितेत मांडला आहे .

माझ्या पाठीमागे तुझा बाप आणि पुढे तू
तुम्हा दोघांमध्ये सँडविच झालेलं माझं गर्भाशय आत हळूहळू नाहीसं होत चाललंय
आणि मी त्याचा निरोप समारंभ
कोणालाच न सांगता
स्वतःतच आटोपता घेतीय

(स्त्री वाहिनी , सेन्डऑफ पृष्ठ क्र. ५६ )

प्रत्येक स्त्रीच्या मनामध्ये स्त्रीधर्म जाणिवेने तिच्या जीवनाची सुरुवात होते . त्याबद्दल तिच्या मनात प्रचंड कुतूहल असते . ही जिज्ञासा कुतूहलता चाळिशीनंतर मावळते . त्यावेळी मात्र तिच्या मनाला खंत वाटते . पण ही खंत फक्त स्वतः पुरतीच ठेवते . कारण या घटनेला फक्त तिलाच सामोरे जावे लागत असते . स्त्री जीवनातल्या या दोन्ही पातळीवरील उलथापालथीचा वेध श्रीधर तिळवे यांनी आपल्या कवितेतून घेतला आहे .

स्त्रियांच्या दृष्टीने स्त्रीधर्माची जाणीव आणि स्त्रीधर्म लोपाची जाणीव ही महत्त्वाची घटना होय . स्त्रीविशिष्ट अनुभवक्षेत्र आणि शरीराबद्दलचा जागृतीभाव यामधून समाजाने , संस्कृतीने तयार केलेल्या स्त्रीच्या लिंगनिष्ट स्वरूपाचा शोध १९७० नंतरची स्त्रियांची कविता घेऊ पाहते . यात या लिंगनिष्ट स्वरूपात मनाला फारसे स्थान नसल्याने 'शरीर ' हाच या कवितांचा शब्द बनतो . स्त्रियांच्या कवितेत अनुभवांची अभिव्यक्ती सातत्याने येताना दिसते . याबाबत रजनी परुळेकर म्हणतात ,

त्रेचाळीस पावसाळ्यात
मुसळधार लाटांबरोबर
किती पाणी वाहून गेले
तुझे आवेग मात्र तसेच राहिले
चौदाव्या वर्षी प्राप्त झालेला
स्त्रीत्वाचा प्रवाह अलीकडेच

ऋतू समाप्तीनंतर आटून गेला
तरी नसातले रक्त सळसळत राहिले
हे करंट्या शरीरा .....

(काही दीर्घ कविता , पृष्ट क्र . ५० - ५१ )

स्त्रीचे शरीर धारण केलेले अस्तित्व आणि त्या अस्तित्वाने जे जे काही अनुभव भोगावे लागतात , स्त्रीच्या वाट्याला येतात , त्याची अभिव्यक्ती या कवितेत रजनी परुळेकर यांनी केली आहे . शारीरतेच्याच्या या नैसर्गिक मूलभूततेपेक्षा सामाजिक , सांस्कृतिक घटकांनी रचलेल्या वेगवेगळ्या रूपांविरुद्धचा संघर्ष हा अधिक प्रकट झाला आहे . पण या रूपाच्या आड दडलेल्या स्वरूपाचा शोध घेणं हा अधिक खोलवरचा आंतरिक शोध आहे . स्त्रियांच्या कवितेतील हा उर्वर प्रदेश , स्त्री अवकाश अनेकदा नेणीवेतील ' झाड ' , 'रान ' 'बीज ' , ' अंकुर ' यासारख्या प्रतिमांच्या पातळीवर व्यक्त होतो .

प्रभा गणोरकर यांच्या कवितेत हाच अनुभव 'मला नको आहे आपल्यातले सारे झरे आटून जाणे '
मी प्राणपणाने झुंज देईन तुझ्यातील विनाशी प्रेरणांशी
मी पसरवून देईन मुळांचे तंतू , भेगा पडलेल्या जमिनीत खोलवर

या शब्दात व्यक्त होतो . ऋतू समाप्तीच्या या कालखंडात स्त्रीत्वाची भावना शरीराची साथ सोडत असते . पण शरीर मात्र ते मानायला तयार नसते . त्यामुळे या कालखंडात स्त्रीची चिडचिड वाढते . ज्या निसर्गाने तिला हा ऋतू दिलेला असतो तोच निसर्ग ते परत घेतो . याबाबत स्त्रीची कितीही चिडचिड वाढली , ती अस्वस्थ झाली तरीही तिला निसर्गाबरोबर जावेच लागते . त्या काळात एकंदर मानवी अस्तित्वाला वेढून असणाऱ्या एकाकीपणाच्या , तुटलेपणाच्या , अस्तित्वाच्या वस्तुरूप प्रत्ययाच्या अस्तित्व वेदना स्त्रियांच्या कवितेतून व्यक्त झाल्या आहेत .

अरुणा ढेरे यांनी 'गाणे ' या कवितेतून नुकत्याच पदर आलेल्या मुलीच्या मनातील तारुण्यसुलभ भावनांना वाट मोकळी करून दिली आहे .

मीही पदर आलेली , चोळी जरीची ल्यालेली
लाल काकनांच्या साठी , रक्तकमळे गुंफली कोणी नाही मला ,
माझा एकटा एकांत
जीव केशराचे फुल राही चांदणी झेलत

( निरंजन पृष्ठ क्र. २२ )

नवतेपण आल्यावर जीव केशराचे फुल होऊन चांदणे झेलत राहतो यातून तिच्या तारुण्यसुलभ भावना लक्षात येतात. तारुण्यसुलभ भावनांनी गोंधळून जातानाचा तो अनुभव मनसोक्तपणे अनुभवणाऱ्या तरुणीचे चित्रण येथे पाहावयास मिळते.

अश्विनी धोंगडे यांची 'सखी ' सारखी कविता समस्त स्त्री जातीच्या मासिक पाळीचा वैयक्तिक अनुभव आपल्यासमोर मांडते . स्त्रीच्या जीवनातली मासिक पाळीची सुरुवात झाल्यानंतर तिचे सैरभैर होणे, तिची घाबरी

घुबरी अवस्था इथपासून ते मासिक पाळी संपण्याचा काळ यामध्ये स्त्रियांना येणाऱ्या सगळ्याच अनुभवांना या कवितेत अधोरेखित केले आहे .

बये , अशी रागावू नकोस
ये, तुझ्या वाटेकडे डोळे लावून आहे
आता कदाचित काही वर्षांनी कायमचीच गुप्त होशील तू
अचानक असलेल्या नदीसारखी
तेव्हा म्हणेनही मी चारचौघीत
सुटले बाई तुझ्या जाचातून कदाचित
आता मुक्त माझी मी माझ्या एकटीची

( अन्वय , सखे ,पृष्ठ क्र. ३९ )

अनेक सुखदु:खाच्या क्षणाशी स्त्रियांचे या सखीशी नाते जुळलेले असते . ही सखी म्हणजे स्त्रीच्या अस्तित्वाचा एक अविभाज्य भाग असतो . ह्या सखीचा कार्यकाल संपला की तिची पुन्हा आठवण येईल असे वाटते . त्यामुळे कवयित्रीला तिने जाता जाता आपल्या स्पर्श सुखाचे आलिंगन देऊन जावे असे वाटते . इतका मुक्तपणे आपल्या रजोनिवृत्तीच्या सखीशी कवितेतून साधलेला संवाद मराठी कवितेत तसा नवा आहे .

निष्कर्ष :

१) स्रीधर्मजाणीव हा स्त्री विशिष्ट अनुभव असताना देखील अनेक कवींनी तो अनुभव अधिक प्रत्ययकारितेने मांडला आहे .
२) स्त्रीधर्मजाणीव हा स्त्रीविशिष्ट आणि जैविक अनुभव असल्याने कवयित्रींनी तो अधिक जिवंतपणे मांडला आहे .
३) हा अनुभव मांडत असताना कवी व कवयित्रींनी स्त्रियांच्या मानसिकतेचे बारकाईने चित्रण केले आहे .
४) कवींनी रेखाटलेल्या स्त्रीधर्म जाणिवेच्या चित्रणाला पती-पत्नी नात्याचा खाजगी संदर्भ असल्याचे जाणवते .
५) कवयित्रींनी स्त्री धर्म जाणीवेचा अनुभव रेखाटताना स्व -रूपाचा शोध घेत घेत अधिक खोलवरचा आंतरिक शोध घेताना दिसतात .
६ ) सन १९८० नंतरच्या स्त्रिया हा अनुभव कोणत्याही प्रकारची भीडभाड न बाळगता अतिशय मुक्तपणे मांडताना दिसतात .

संदर्भ :

१ ) देशपांडे - केजकर , प्रकाश : १९९४ , मराठी कविता नवी वळणे , साकेत , औरंगाबाद
२ ) जाधव , रा.ग . : १९९६ , आधुनिक मराठी कवयित्रींची कविता ' पुणे , प्रतिमा प्रकाशन
३ ) धोंगडे , अश्विनी : १९९७ , स्त्रीसूक्त , पुणे , श्रीविद्या प्रकाशन
४ ) पै शिरीष आणि संगवई विजया : (संपा) २००० , आव्हान निवडक प्रातिनिधिक स्त्री कविता , पुणे , कॉन्टिनेन्टल प्रकाशन

# सामाजिक चळवळी आणि ग्रामीण कथा

**प्रा. मोहन बाबुराव चव्हाण,**
लक्ष्मीबाई भाऊराव पाटील महिला महाविद्यालय,
सोलापूर

सामाज जीवन आणि साहित्य यांचा फार घनिष्ठ संबंध आहे. साहित्यिकाची जडणघडण समाजातच होत असते. समाजात घडत असणाऱ्या घटनांचा परिणाम साहित्यिकाच्या मनावर होत असतो. सामाजिक जीवनात अनेक प्रश्न, समस्या असतात. या सोडविण्यासाठी समाज सतत प्रयत्नशील असतो. यासाठी तो संघटीत होऊन न्याय हक्कासाठी मोर्चे, आंदोलने, चळवळी करीत असतो. भारत हा खेड्यांचा देश आहे. देशाच्या राजकीय, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवनात प्रचंड उलथापालथी झाल्या. याचा परिणाम खेड्यांच्या जीवनावर झाला. स्वायत्त असणारी खेडी परावलंबी झाली. यातून अनेक समस्यांची भर पडत गेली. एकंदर याच पार्श्वभूमीवर सामाजिक जीवनाला क्रांतिरूप प्राप्त झाले.

**भूमिका :**

समाजिक चळवळींचा परिणाम साहित्यावर होणे अपरिहार्य आहे. ग्रामीण कथा साहित्यावर अनेक चळवळींचा प्रभाव असलेला दिसून येतो. या चळवळींच्या यशापयशाचा वेध घेण्याचे काम ग्रामीण साहित्याने केले आहे. याचबरोबर ग्रामीण साहित्याने अशा चळवळींना बळ देण्याचे काम केले आहे. सामाजिक चळवळी आणि ग्रामीण कथा यांच्या सहसंबंधाची चर्चा या शोधनिबंधात करण्यात येणार आहे.

**उद्दिष्ट्ये :**

१. समाजिक चळवळींची पार्श्वभूमी समजून घेणे.
२. समाजिक चळवळी आणि ग्रामीण साहित्य यांच्या सहसंबंधाचा शोध घेणे.
३. ग्रामीण साहित्यातील चळवळींचा आशय जाणून घेणे.
४. ग्रामीण साहित्याची सामाजिक चळवळीविषयाची भूमिका स्पष्ट करणे विषय.

**विवेचन :**

समाज जीवन हे परीवर्तनशील असते. इंग्रजी सत्तेतील शिक्षण आणि विज्ञानाच्या परिचयातून इथल्या समाजात आत्मभान येऊ लागले. आपल्या समूहाचे हितसंबंध जोपासण्यासाठी बदलाचा, परिवर्तनाचा विचार अनेकांच्या मनात निर्माण होतो. या समविचारी मनाच्या एकोप्यातून बहुसंख्य गटसमूह एकत्र येतो. आपल्या न्याय हक्काच्या जाणिवेतून चळवळ आकाराला येते. समाज परिवर्तनाची प्रक्रिया गतिमंद असते. बोधन्-भावन आणि कृतिप्रवण ही क्रमवारिता इष्ट दिशेच्या सामाजिक परिवर्तनालाच अवश्यक मानली जाते. कोणताही सामाजिक बदल हा मूलत: व्यक्ती-व्यक्तींच्या वर्तणुकीतून घडत असतो. मनं बदल्याशिवाय वर्तणूक बदलत नाही. व्यक्तीचे मन बदल्याशिवाय समष्टीमनाचा बदल अपेक्षित करता येत नाही. ज्या ज्या जाणीवपूर्वक परिवर्तन घडवून आणणाऱ्या चळवळी झाल्या, अन्य प्रयोग अथवा योजना आखल्या गेल्या; त्या त्या चळवळी योजनांचे दीर्घ स्वरुपी यश-अपयश बदलाच्या इच्छाशक्तीवरच आधारलेले असते. प्रथम हृदय परिवर्तन, मग जीवनपरिवर्तन आणि त्यानंतर समाजपरिवर्तन असे विविध परिवर्तनसूत्र विनोबांनी मांडले आहे.'' (भूमी आणि भूमिका, पृ. १९)

सामाजिक परिवर्तनाच्या मूळाशी व्यक्तीगत मानसिकेतत बदल होणे अत्यंत महत्त्वाचे असते. हा बदलाला वैचारिक मूल्य प्राप्त व्हावे लागते. अन्यथा चळवळ अपयशी होण्याचे धोके निर्माण होतात. समाज जीवनात अशा अनेक चळवळी निर्माण झाल्या. चळवळीची वैचारिकता, नेतृत्व, कार्यकर्ते, दिशा, सातत्य आणि निष्ठा या घटकांवर चळवळीचे यशापयश आवलंबून असते.

प्राचीन कालखंडापासून भारत हा जगाच्या पाठीवर एक समृद्ध देश होता. देशातील सत्ताधिशांच्या अंतर्गत संघर्षाचा अनेक परकीयांनी फायदा घेतला. मुसलमान, फिरंगी, डच, पोर्तुगीज, इंग्रज या परकीय सत्ताधिशांनी भारतीयांचे शोषण केले आहे. सत्ता परकीय असो अथवा स्वकीय असो. या सर्वांनीच समाजाचे सर्वांगाने शोषण केले आहे. सामाजिक जीवनातील वर्णव्यवस्था, वर्गव्यवस्था, अर्थव्यवस्था, जातीव्यवस्था आणि धर्मव्यवस्था यांच्यातील उतरंडीतून खालच्या घटकांवर अन्याय झाला आहे. पुरुषसत्ताक सामाजिक जीवनात स्त्रियांचे दुयमत्व आणि तिच्यावर अनेक प्रकारचे अत्याचार झाले आहेत. यांच्या मुक्तीसाठी सामाजिक चळवळी निर्माण झाल्या. ग्रामीण भागातच भारतातील बहुसंख्य लोकसंख्या विखुरलेल्या अवस्थेत असलेली दिसून येते. देशात स्वातंत्र्यपूर्व आणि स्वातंत्र्योत्तर काळात अनेक चळवळी उभा राहिल्या. यात 'ब्राम्हो समाज', 'प्रार्थना समाज', 'आर्य समाज', 'सार्वजनिक सभा', थिऑसॉफिकल सोसायटी', आणि 'सत्यशोधक समाज' यांचा उल्लेख करता येईल. या सामाजिक प्रबोधनासाठी निर्माण झालेल्या चळवळीत 'सत्यशोधक समाजा'चे कार्य तळगाळातील लोकांसाठी होते. ग्रामीण भागात विशेष कार्य या समाजाने केले आहे. म. फुले, कृष्णराव भालेराव, मेघाजी लोखंडे यांनी सत्यशोधक समाजाचे कार्य खेड्यापाड्यात विस्तारीत केले. कष्टकरी, दलित, पीडित, सामान्य स्त्री यांच्या शोषणाविरोधात सत्यशोधक समाजाने कृतीशील कार्य केले आहे. म. फुले आणि त्यांच्या सहकार्यांनी वाङ्मयलेखन, वृत्तपत्रलेखन, आंदोलन, सभा, चर्चा, बैठका घेऊन उच्चवर्णयांच्या विरोधात जावून होळपरणाऱ्या सामान्यांना जागे करण्याचे काम केले आहे. स्त्री-शूद्रांसाठी ज्ञानाची केंद्रे उभा केली. 'इशारा', 'गुलामगिरी', 'शेतकऱ्यांचा असूड', 'तृतीय रत्न' या कलाकृतीतून शेतकरी, कष्टकरी, दलित, स्त्रिया यांच्यावर होणाऱ्या अन्यायाची जाणीव करून दिली. याचबरोबर असंख्य सत्यशोधकांनी ग्रंथलेखन, जलसे, मेळावे यातून ग्रामीण जीवनातील जनतेला जागृत करण्याचे काम केले आहे.

इंग्रजी सत्ता उलथून टाकण्यासाठी या लोकांचा सहभाग म. गांधींजींना महत्त्वाचा वाटू लागला. त्यांनी 'खेड्याकडे चला' हा नारा दिला. यामुळे अनेकांचे लक्ष खेड्याकडे गेले.

म. गांधी यांचे विचार लोकांना पटत गेले. आपल्यावर होत असणाऱ्या अन्यायाची जाण लोकांच्या मनात निर्माण झाली. अहोरात्र राबणारा शेतकरी आणि कष्टकरी, दलित, शोषित यांचा सहभाग यातून वाढत गेला. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांनी अन्यायी व्यवस्थेच्या विरोधात आवाज उठविण्यास सुरुवात केले. गुलामी स्वीकारलेल्या दलित बांधवांना न्याय-हक्काची जाणीव करून दिली. आंबेडकरांनी बहुजनांच्या हितासाठी अनेक चळवळी उभ्या केल्या. शेतकरी, कामकार, दलित यांना संघटीत करून आपल्या प्रश्नाविषयी जागृत करण्याचे काम आंबेडकरांनी केले आहे. वि. रा. शिंदे यांनी शेतकऱ्यांच्या प्रश्नांची समग्र आणि शास्त्रशुद्ध मांडणी केली. त्यांनी शेतकरी परिषदा आणि आंदोलने केली. दलित, आदिवासी, भटके, स्त्रिया या ग्रामसंस्कृतीचा गाभा असणाऱ्या घटकांसाठी कार्य केले आहे. स्वातंत्र्यपूर्व काळात अनेक संघटनांनी ग्रामीण लोकांच्या समस्या सोडविण्यासाठी काम केले आहे. स्वातंत्र्योत्तर काळात लोकांच्या अपेक्षांची उपेक्षाच झाली. गरीब-श्रीमंत दरी अधिक वाढत गेली. या बदलत्या जीवनात लोकांच्या जगण्यामरण्याचे प्रश्न निर्माण झाले. दुष्काळ, बेकरी, भ्रष्टाचार यामुळे ग्रामीण जीवन उद्धवस्त झाले. शेतकरी, कामगार, आदिवासी, भटके, दलित, महिला, बेकार यांच्या संघटना निर्माण होऊन अनेक चळवळी निर्माण झाल्या. शरद जोशी यांनी 'शेतकरी संघटना' स्थापन करून शेतकऱ्यांचे, कष्टकऱ्यांचे असंख्य प्रश्न मांडले. जागतिकीकरणानंतर ग्रामीण भागात यंत्रावतराचा प्रवेश झाला. स्वातंत्र्यपूर्व

काळातील इंग्रजी माल आणि जागतिकीकरणानंतर जागतीक बाजारपेठेतील मालामुळे इथले ग्रामीण जीवन उद्धवस्त झाले. हे असंख्य प्रश्न आणि यातून निर्माण झालेल्या चळवळी यांचा परिणाम साहित्यावर पडणे स्वभाविक आहे.

आधुनिक मराठी साहित्याला शाहू-फुले-आंबेडकर यांच्या विचारांची पार्श्वभूमी आहे. पुरोगामी महाराष्ट्रात समतेचे चक्र गतिमान करताना, सामाजिक न्याय प्रस्थापित करताना, महाराष्ट्र हा फुले-शाहू-आंबेडकरांचा आहे. त्यांच्याकडून स्वातंत्र्य, समता, संधी समानता व न्याय या तत्त्वांचे प्रबोधन 'बंधुता'कडून सातत्याने केले आहे. या बाबतीत सर्व घटकांशी संवाद-सुसंवाद साधताना ह्या समाज परिवर्तनाच्या लढ्याला मिळणारे बळ पाहता त्यांचे कार्य फार मोलाचे समजले जाते.'' (ग्रामीण-दलित साहित्य : चळवळ आणि समीक्षा, पृ.९६) फुले यांचा 'शेतकऱ्यांचा असूड' हा ग्रंथ शेतकऱ्यांचा धर्मग्रंथ आहे. आंबेडकरांचे ग्रंथिक विचार सामन्यांना लढण्याचे बळ देणारे आहेत. राजर्षी शाहू महाराजांचे समतावादी राजकीय धोरण ग्रामीण जीवन बदलवणारे आहे. कालखंडाच्या समांतर निर्माण झालेल्या साहित्यात त्यात्या कालखंडाचा प्रभाव पडलेला आहे. समकालीन ग्रामीण कथेच्या स्वरूपात बदल झाला तो १९६० नंतर ग्रामीण साहित्याचा एक स्वतंत्र प्रवाह निर्माण झाला. त्यावेळी खऱ्या अर्थाने ग्रामीण समस्यांवर प्रकाश पडला. त्या समाजासमोर मांडणे काळाची गरज होती. सामाजिक समस्यांचे सदंर्भ घेऊन ग्रामीण कथेचे पारंपरिक रूप बदले. १९४५ नंतर प्रयोगशीलता या वैशिष्ट्यानी तिचा रूपाचा कायापालटच केला. कथाकार आपले अनुभव प्रामाणिकपणे व संवेदनशील मनाने लिहू लागले. मध्यमवर्गीय जीवनाचे विश्व साकारले. या साहित्याच्या रूपाने समाजात ग्रामीण साहित्य चळवळच उभी राहिली मानवी अस्तित्व विषयांनी ग्रस्त असणाऱ्या विषयांना प्राधान्य मिळाले. यांत्रिकीकरणाचे आक्रमण, महानगरीय संस्कृतीचा वाढता प्रभाव या गोष्टीनां महत्त्व आले. त्यामुळे ग्रामीण अस्वस्थता, मानवी मनाचे एकाकीपण, सामाजिक विषमता असे अनेक विषय कथांमधून आविष्कृत झाले आहेत. प्रारंभीच्या काळात श्री. म. माटे, बी. रघुनाथ, अण्णा भाऊ साठे, व्यंकटेश माडगूळकर यांच्या कथांत सामाजिक चळवळीचे संवेदनात्मक दर्शन घडते. या कथाकारांच्या कथेत ग्रामीण कथाकारांनी ग्रामीण जीवनाचे चित्रण केले आहे.

साठोत्तरी साहित्य ग्रामीण साहित्य चळवळीने अनेकांना लेखनाची उर्मी दिली. या कालखंडात आनंद यादव, रा. रं. बोराडे, उद्धव शेळके, चारुता सागर, सखा कलाल, रणजीत देसाई, चंद्रकुमार नलगे, द. ता. भोसले यांच्या कथांतून सामाजिक जाणिवा अधिक प्रकल्भ झाल्या. ग्रामीण कथा चळवळीच्या पातळीवर उतरली. ती चळवळीची भाषा बोलू लागली. भास्कर चदंनशीव यांची कथा चळवळीची भाषा बोलते. खेड्यापाड्यातील शेतकरी, कष्टकरी, बेकार, स्त्रिया, दलित यांच्या मनातला आक्रोश त्यांच्या कथेतून व्यक्त झाला आहे. 'आंगरमाती', 'बिरडं' या संग्राहातील कथा चळवळीची, आंदोलनाची, मोर्चाची भाषा करते. येथे कोणताही उद्रेक, भडकपणा भाषेत नाही. ही आंदोलने राजकारणी, अधिकारी चिरडण्याचा प्रयत्न करतात. परंतु आजची अन्याय सहन करणाऱ्यांची भाषा बदलत आहे याची जाणीव या कथांमधून येते.

लक्ष्मीकांत देशमुख यांच्या 'पाणी! पाणी!!' या कथासंग्रहात दुष्काळग्रस्त शेतकरी, मजूर आणि दलित स्त्री जाणिवा अधोरेखित झाल्या आहेत. यांच्या कथासंग्रहातील कथेची पार्श्वभूमी माणदेश आणि मराठवाड्यातील दुष्काळ ही आहे. सिंचन योजनेच्या क्षेत्रातील शेतकरी आणि राजकारणी यांच्या विरोधात माणदेशातील अन्याय झालेला दुष्काळग्रस्त शेतकरी आपला राग व्यक्त करताना दिसतो. सिंचन भागातील पाण्याची नासाडी आणि पिण्याच्या पाण्यासाठी संघर्ष करणारे लोक या परस्परविरोधी घटकांचे चित्रण त्यांच्या कथेत येते. दारिद्र्य, भूकबळी, दलित स्त्रियांवरील लैंगिक अत्याचाराच्या विरोधात ही कथा चर्चा करताना दिसते.

राजन गवस यांची कथा देवदासी प्रथा आणि स्त्री परिवर्तनाच्या चळवळीत उद्धवस्त होणाऱ्या स्त्रियांवर प्रकाश टाकते. या दृष्टीने त्यांचे 'आपण माणसात जमा नाही', 'रिवणावायली मुंगी' हे कथासंग्रह महत्त्वाचे आहेत. याचबरोबर अनेक सामाजिक परिस्थितीतून येणाऱ्या स्त्रीजीवनावर त्यांनी लेखन केले आहे. यांच्या कथेतील

नायिका अनेक अमिषाला बळी पडलेल्या आहेत. पुरुषी वासनेच्या शिकार झाल्या आहेत. एकंदर गवस यांची कथा देवदासी प्रथेवर भाष्य करून त्यांच्या मनात परिवर्तन घडविणारी आहे. याचबरोबर पुरुषी वृत्तीला आव्हान देणारी आहे.

सदानंद देशमुख यांनी शेतकरी आणि तरुणांच्या जीवनातील समस्यांचा वेध आपल्या कथांतून घेतला आहे. 'महालूट', 'लचांड', 'उठावण', 'गाभूळगाभा' हे कथासंग्रह ग्रामीण जीवनातील विविध समस्यांचा वेध घेणारे आहेत. विदर्भातील कापूस उत्पादक शेतऱ्यांचे अनेक प्रश्न त्यांनी कथांतून मांडले आहेत. तरुणांच्या वाढत्या बेकारीवर त्यांनी भाष्य केले आहे. योग्य हमी भाव मिळावा यासाठी शेतकरी आंदोलनाचा विचार करताना दिसून येतो. तरुणांच्या मनातील उद्रेक त्यांच्या कथांतून व्यक्त होतो.

ग्रामीण जीवनात सतत परिवर्तने होत आहेत. या परिवर्तनात ग्रामीण जीवनातील समस्या कमी न होता, वाढतच आहेत. १९७५ नंतरच्या लेखकांमधून परिसर आणि व्यक्ती यांचे आज परस्पर असणारे नाते व व्यक्तिमत्त्वाच्या जडणघडणीत असणारा त्याचा सहभाग यांची जाणीव वाढत गेलेली दिसते. याचे दुसरे कारण असे की, या काळातील लेखकांना वास्तवाचे भान अधिक आले आहे. (ग्रामीण कथा : स्वरुप आणि विकास, पृ.२१४) नागनाथ कोत्तापल्ले, श्रीराम गुंदेकर, वासुदेव मुलाटे, मनोहर तल्हार, गणेश आवटे, सोपान हळमकर, बाबाराव मुसळे, मोहन पाटील, किरण गुरूव, वामन जाधव, कृष्णा इंगोले, बालाजी सुतार यासारख्या अनेक जुन्यानव्या पिढीतील कथाकारांनी ग्रामीण जीवनातील समस्यांवर प्रकाश टाकला आहे. आजची ग्रामीण कथा मनोविश्लेषणात्मक पातळीवर उतरली आहे. ग्रामीण जीवनातील विविध प्रश्नांवर संघटीत शक्ती कियाशील होत आहेत. याचे चित्रण ग्रामीण कथेत आले आहे.

**निष्कर्ष :**

सामाजिक चळवळीला समांतर राहून ग्रामीण साहित्याने या चळवळींची मुळे समाजात रूजविण्याचे काम केले आहे. सामाजिक चळवळीच्या अगोदरही ग्रामीण कथा चळवळीची भाषा करते आहे हे येथे स्पष्ट करावे लागेल. सामाजिक चळवळींचा परिणाम साहित्यावर आणि साहित्याचा प्रभाव सामाजिक चळवळींवर पडल्याचे अनेक संदर्भ ग्रामीण कथासाहित्यातून अधोरेखित झाले आहेत. सामाजिक चळवळींचा विस्तार साहित्यातून करण्याचे काम चळवळीतील लोकांनी केले आहे. ग्रामीण कथालेखकांनी चळवळीसाठी लेखन केले आहे असे म्हणता येणार नाही. त्यांनी सामाजिक जाणिवेतून लेखन केले आहे. हे लेखन सामजिक चळवळींना पोषक ठरले आहे.

**संदर्भ :**

१. 'भूमी आणि भूमिका', श्रीराम गुंदेकर
२. 'ग्रामीण कथा : स्वरुप आणि विकास', डॉ. वासुदेव मुलाटे
३. 'ग्रामीण-दलित साहित्य : चळवळ आणि समीक्षा', डॉ. मधुकर मोकाशी

# आधुनिक मराठी नाटकातील राजकीय चित्रण

**प्रा. स्मिता कोंडिबा कालभूषण**
सहाय्यक प्राध्यापक, मराठी विभाग,
डी. आर. माने महाविद्यालय, कागल
ई.मेल : smitakalbhushan@gmail.com

**प्रास्तविक**

साहित्य हे काळाचे अपत्य असते. समाजातील सामाजिक, सांस्कृतिक, राजकीय, आर्थिक परिस्थितीचा परिणाम साहित्यावर होत असतो. साहित्यिक हा संवेदनशील मनाचा असतो. त्यामुळे समाजाप्रती त्याचे अवधान सतत जागरूक असते. म्हणून समाजातील घटना-गोष्टींचे बारकाईने निरीक्षण करून साहित्यात मांडण्याचा प्रयत्न करत असतो. यातूनच कविता, कथा, कादंबरी, नाटक अशा वेगवेगळ्या वाङ्मय प्रकारांची निर्मिती होते.

नाटक हा दृक-श्राव्य वाङ्मयप्रकार आहे. सर्वच वाङ्मयप्रकारामध्ये जीवनानुभव आणि समाजजीवन व्यक्त करण्याचे सामर्थ्य असते. पण नाटक या वाङ्मयप्रकारात समाजमनाला थेट भिडण्याचे सामर्थ्य अधिक आहे. मराठी रंगभूमीचा उदय विष्णुदास भावे यांनी १८४३ साली लिहिलेल्या 'सीता स्वयंवर' या नाटकाने झाला. त्यानंतर अनेक प्रकारच्या नाटकांची निर्मिती झाली. सुरूवातीला नाटकांचे स्वरूप पौराणिक घटनाप्रसंगावर आधारित होते. पण नंतर ऐतिहासिक, सामाजिक, कौटुंबिक, चरित्रात्मक, राजकीय स्वरूपाची नाटके मराठी रंगभूमीवर अवतरली.

आधुनिक मराठी नाटकाचा विकास सुमारे दीड दशकाच्या वाटचालीतून झाला आहे. मराठी नाटकाने समाजाच्या नानाविध भावभावना प्रकट केल्या आहेत. सामाजिक, राजकीय आणि कौटुंबिक समस्यांची चर्चा मराठी नाटकात झालेली आहे. नाटक हा वाङ्मयप्रकार मानवी जीवनाचे प्रत्ययकारी दर्शन घडविणारा, एक समर्थ अभिव्यक्तीचे माध्यम आहे. समाजातील घडामोडी, समजात होणारी स्थित्यंतरे याची मांडणी नाटकातून होत असते. त्यामुळे आधुनिक नाटकातून केलेल्या राजकीय चित्रणाचा विचार आपण प्रस्तुत शोधनिबंधात करणार आहोत.

**'राजकारण किंवा राजकीय' संकल्पना व विश्लेषण**

'राजकारण' या शब्दाला विशिष्ट अर्थ प्राप्त झाला आहे. राजकारण म्हणजे काहीतरी वाईट गोष्ट आहे असे समजण्यात येते. म्हणून लोक राजकारणापासून लांब राहण्याचा प्रयत्न करतात. पण चांगली वाईट कोणीही व्यक्ती असो तिचा राजकारणाशी संबंध येतच असतो. कारण व्यक्ती कुटुंबात जन्मते. कुटुंब कोणत्या ना कोणत्या राजकीय समाजाचा घटक असते. त्यामुळे व्यक्ती देखील राजकीय समाजाचा भाग असते. त्सामुळे प्रत्येक व्यक्ती राजकारणाचा, राजकीय व्यवहाराचा घटक असते.

सत्येचे पाठब ळ प्राप्त करणे आणि आपले हितसंबध सुरक्षित ठेवणे हाच राजकारणाचा अर्थ आहे. "शक्ती, सत्ता, अधिसत्ता आणि प्रभाव वगैरेचा संबंध केवळ शासन व राज्यांपुरताच मर्यादित राहिला नाही. तर शिक्षण, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक वगैरे सर्वच क्षेत्रामध्ये सत्ताप्राप्ती आणि अधिकार प्राप्ती व तेथे आपला प्रभाव पाडणे यासाठी व्यक्तीमध्ये एकप्रकारची चढाओढ चालू असते. यालाच राजकारण म्हणता येईल. म्हणून

शक्तीची घडण त्यातील सहभागित्व म्हणजे राजकारण" अशी व्याख्या हेरॉल लॉसविल यांनी मांडली. यावरूनच राजकारणाचा हा सगळा व्यवहार म्हणजे राजकीय जीवन व्यवहार होय. अशाच राजकीय जीवनव्यवहाराचे चित्रण साहित्यामध्ये आलेले आहे. कविता, कथा, कादंबरी, नाटक अशा सर्वच वाङ्मयप्रकारातून राजकीय चित्रण आलेले आहे. आधुनिक मरीठी नाटकातून चित्रीत झालेले राजकारण व राजकीय व्यवहार येथे पाहुया.

**राजकिय नाटकांचा उदय**

राजकीय क्षेत्रात वावरणारी माणसे नाटकांत असली, की ते नाटक राजकीय होते असे नाही. जी कहाणी ते नाटक सांगत आहे, त्या कहाणीद्वारे एका राजकीय प्रदेशाचा भूगोल स्पष्ट होत असेल, तर ते नाटक राजकीय मानायला हवे. हा राजकीय प्रदेश, राजकीय वर्ग-वर्ण संबंध, साम्राज्यवाद, समाजसत्तावाद यांचा असू शकेल. ते नाटक जाणीवपूर्वक मानवी संबंधाचे नाट्य सांगत, तितक्याच जाणीवपूर्वक त्या प्रदेशावर उजेड पाडते त्याला राजकीय नाटक म्हणायला हवे. असे जे मकरंद साठेंनी राजकीय नाटकाबाबत व्यक्त केले आहे ते योग्यच वाटते

सुरवातीला पौराणिक घटना गोष्टीमध्ये अडकलेले नाटक सामाजिक आशय घेऊन सामाजिक मांडणी बरोबरच राजकीय आशय असणारी नाटक रंगभूमीवर अवतरली. सन १८८२ साली शंकर मोरो रानडे यांनी 'अधिकारदान विवेचना अथवा स्थानिक स्वराज्याविषयी वाटाघाट' हे मराठीतील पहिले राजकीय नाटक लिहिले आहे. या नंतर मराठी रंगभूमीवर राजकीय नाटके अवतरू लागली. कृ.पा. खांडिलकर यांचे स्वातंत्र्यपूर्व काळतील 'किचकवध' खूपच गाजले. तसेच त्यांचे 'भाऊबंदकी' हे देखील राजकीय नाटक आहे.

आधुनिक मराठी राजकिय नाटकांचा विचार करतो तेव्हा 'उद्ध्वस्त धर्मशाळा' (१९७३) हे गो.पु. देशपांडे यांचे नाटक मराठी रंगभूमीच्या प्रवासातला मैलाचा दगड मानले जाते. कारण आधुनिक मराठी राजकिय नाटकांची सुरूवातच गो. पुं. च्या या नाटकापासून झाली आहे. समकालीन प्रायोगिक नाटककारांपेक्षा वेगळी वाट गो.पुं. नी निवडली. 'उद्ध्वस्त धर्मशाळा' या नाटकाचा प्रारंभ राजकीय स्वरूपाचा आहे. श्रीधर विश्वनाथ कुलकर्णी हा या नाटकाचा नायक आहे. रसायन शास्त्राचा प्राध्यापक व विभाग प्रमुख म्हणून नाटकाच्या प्रारंभीच्या चौकशी प्रसंगातून त्यांची ओळख होते. या समितीमध्ये पी.वाय, व्हाईस चान्सलर, जांभेकर, वेलणकर आणि क्षीरसागर हे चार पदाधिकारी आहेत. समितीच्या प्रश्नांना श्रीधर कुलकर्णी जी उत्तर देतो त्यातून त्यांचे व्यक्तीमत्व उलगडत जाते. विद्यापीठात वाढत चाललेल्या अनिष्ट प्रवृत्तींना श्रीधरला जबाबदार धरतात. श्रीधरचे वडील राजकारण लढवणारे लढवय्ये असतात. राजकीय चळवळीत त्यांचा सक्रीय सहभाग आहे. त्यांचे निवडणूक लढवणे, तिकिटासाठी दिल्लीच्या वाऱ्या करणे, गांधी-टिळक हे पुस्तक लिहिणे, अशा अनेक घटनातून राजकिय चित्रण या नाटकात आले आहे. वडिलांचा राजकिय व वाङ्मयीन वारसा श्रीधरला आणि पुढे त्याच्या मुलालाही मिळाला आहे. सरस्वती ही श्रीधरची पत्नी राजकारणात आहे. राजकारणातील उत्कर्षासाठी तिची धडपड, प्रयत्न असून यश प्राप्त करण्यात ती यशस्वी होते. तेलंगणातील शेतकऱ्यांचे आंदोलन, वडिलांच्या वशिल्यामुळे श्रीधरची जेलमधून सुटका होणे, श्रीधरचे मार्क्सिसट असणे, प्रचारसभा भरवणे, त्या उधळून लावणे, व्ही. सी. चे मंत्र्यांशी संधान असणे, त्यांना खुश करण्याचा त्यांचा प्रयत्न यासारखे घटना-प्रसंग त्या नाटकात आहेत. यावरूनच विद्यापीठातील राजकारणाचे भ्रष्ट रूप गो.पु. देशपांडे यांनी येथे चित्रित केले आहे. यावरून नाटकातून निखळ राजकीय वैचारिक जाणिवा व्यक्त करण्याचे श्रेय गो.पुं.कडे जाते. गो.पु. देशपांडे आशावादातून लिखाण करतात.

'आज ना उद्या नवीन भविष्य येईल', हा आशावाद गो.पुं. देशपांडेजवळ आहे. 'उद्ध्वस्त धर्मशाळा' हे याच आशावादाचे एक प्रतीक आहे. एकही ध्येयवादी नेता मराठी नाटकात येत नाही. त्याऐवजी ध्येयवाद केवळ शब्दापुरता वापरणारे, सतेची साठमारी करणारे नेते येतात. याला अतिशय चांगला अपवाद म्हणजे गो.पु. देशपांडे यांचे 'उध्वस्त धर्मशाळा' हे नाटक; पण या नाटकाची वीण विद्यापीठीय राजकारणापुरती सीमित झाल्यामुळे भारतीय राजकारणाचे प्रत्यक्ष चित्रण तिथे येत नाही; पण या राजकारणातील व्यक्तीचे डावपेच आणि त्या संघर्षात व्यक्त झालेले मूल्यचितन अंतर्मुख करणारे आहे. गो.पु. ची 'अंधारयात्री', 'चाणक्य विष्णुगुप्त' ही नाटके देखील राजकीयच आहेत.

जयवंत दळवी यांचे १९७८ मध्ये रंगभूमीवर आलेले 'सुर्यास्त' हे नाटक राजकियच आहे. 'सुर्यास्त' नाटकात दळवी भ्रष्ट सत्ताधीश सत्ताधाऱ्यांना आतून सहकार्य करणारे बंडखोर, राजकिय नेते व त्यांच्या भ्रष्टाचाराकडे कानाडोळा करणारे कमिशनर अशा सर्व माणसांचे चित्रण केले. राजकारणातील भ्रष्टाचाराबरोबर समाजातील निच् असत् प्रवृत्तीचे दर्शन घडविले आहे. आप्पाजी हे जुने गांधीवादी विचारसरणीचे नेते, त्यांनी स्वतः स्वातंत्र्य लढ्यात भाग घेतला होता. आप्पाजी आणि जनाई त्यांच्या नातवान समवेत राहतात. बाबुराव हे नाटकातील दुय्यम पात्र असून मुख्यमंत्र्याचा तो मुलगा आहे. पण त्याच्या व्यवसायातला भागीदार संतराम हे महत्त्वाच पात्र आहे. तो पडद्यामागे राहून राजकारण करणारा, भांडवलदार, हुशार, गुंड, कुठलेही विधी निषेध नसलेला माणुस, खून करणे, स्वतःच्या सुनेला वापरून राजकारण करणे वगैरे करत असतो. वडीलांच्या कृपेने बाबुराव आणि संतराम यांचा धंदा जोरदार असतो. मुख्यमंत्री बाळासाहेब, संतराम आणि आप्पाजी यांच्यातील वैचारिक आणि व्यवहारिक संघर्ष नाटकातील महत्त्वाच सुत्र आहे. आप्पाजीची विचारसणी आणि मुख्यमंत्र्याचे विचार व आचरण यांतील फरकामुळे दोघात दुरावा निर्माण होतो. काहीही झाले तरी सत्ता टिकविणे या विचाराने बाळासाहेब वेडा झालेला असल्याने तो भ्रष्टाचाराला खतपाणी घालतो.

संतराम शेतकऱ्याच्या जीवाशी खेळण्यासाठी कट रचतो. शेतकऱ्याच्या काळजीने आप्पाजी अस्वस्थ होऊन पोलिस कमिशन जगदाळे यांना माहीती देऊन संतरामवर कारवाई करण्यास सांगतात. बाबुरावाने त्यासंबंधी विचारल्यावर शेतकऱ्यांना सडका गहू, बियाणे म्हणून विकून तुम्ही पंधरा वीस कोटी रुपये कमवाल... पण शेतकरी मरतील त्याचं काय? असा सवाल आप्पाजी करतात. पण मनोहर प्रधान, कमिशनर जगदाळे हे भ्रष्टाचाराच्या प्रकरणाला मदत करतात. आप्पाजीच्या प्रचार, प्रसाराची बातमी बाळासाहेब संतराम आणि बाबुराव यांना देतात. त्यामुळे जवळचा पहारा अधिकच कडक करून नाकेबंदी केली जाते. शेवटी राजकिय परिस्थिती आणि भ्रष्टाचार वाढतच जातो.

आप्पाजी लालाच्या मदतीने शेवट पर्यंत झुंज देतात. राजकिय लोकांचा भ्रष्टाचार उघड करण्यासाठी लालाच्या मदतीने पत्रके लोकांपर्यंत पोहचविण्यासाठी प्रयत्न करतात. आप्पाजीचे हे कृत्य संतराम बघतो व रागान बेभान होऊन त्यांना ऊंच्च इमारतीच्या मजल्यावरून खाली फेकून देतो. आणि आप्पाजीने वेड्याच्या भरात आत्महत्या केली असे सांगितले जाते. भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन करणाऱ्या व प्रतिकूल परिस्थितीतही संघर्ष करणाऱ्या एका सुर्याचा अस्त होतो. सुर्यास्त झाल्याने भ्रष्टाचार आंधारात झाकला जाणार आहे. राजकारणातून समाजकारण करणारी माणसे कोणत्या थराला जाऊ शकतात याचे वास्तव चित्रण जयवंत दळवींनी 'सुर्यास्त' नाटकात केले आहे.

प्रेमानंद गज्वी यांचे 'गांधी-आंबेडकर' हे नाटक १९९८ मध्ये प्रसिद्ध झाले. एक वैचारिक द्वंद्व सादर करणारे नाटक असले तरी तत्कालीन राजकिय वर्तुळाचे चित्रण या नाटकातून आले आहे. महान व्यक्तींच्या विचार-तत्त्वाला नाट्यरूप देण्याचा प्रयत्न अजित दळवींचे 'गांधी विरुद्ध गांधी', प्रदीप दळवींचे 'मी नाथुराम बोलतोय', शफामतखान यांचे शोभायात्रा' या नाटकातून झाला. गज्वींच्या 'गांधी-आंबेडकर' या नाटकातून दोन समकालीन विभूतींमधील वैचारिक मतभिन्नतेला आणि त्यांच्या संघर्षाला महत्त्वाचे स्थान दिले आहे. अस्पृश्यता, गांधींचे मुस्लिमप्रेम, फाळणीच्या प्रसंगी झालेले मतभेद, धर्मांतर असे निवडक प्रसंग घेऊन दोन महापुरुषांची वैचारिक मतभिन्नते बरोबरच राजकीय चित्रण केले आहे. या चित्रणातून तत्काली राजकीय वर्तुळाती घटना-प्रसंगाचे उत्तम चित्रण गज्वींनी केले आहे.

**समारोप**

आधुनिक मराठी राजकिय नाटकांमधील चित्रणाची मांडणी काही प्रातिनिधिक नाटकांच्या आधारे येथे केली आहे. अनेक नाटकातून राजकिय चित्रण आलेले आहे. आळेकर, मतकरी, तेंडुलकर, प्रेमानंद गज्वी यांच्याप्रमाणेच विद्याधर, पुंडलिक, पु.ल. देशपांडे, संभाजी भगत, शफामतखान, प्रदीप दळवींच अश्या अनेक नाटककारंनी आपल्या नाटकातून राजकीय चित्रण केले आहे. सुरवातीली पौराणिक घटना गोष्टीवर आधारलेले नाटक नंतर वेगळी वाट निवडून राजकीय नाट्य रंगभूमीवर अवतरली.

**निष्कर्ष**

१) इ.स १८८२ मध्ये राजकीय नाटकाचा उद्य झाला.

२) आधुनिक मराठी राजकिय नाटकांचा विचार करता गो.पु. देशपांडे यांचे ‘उद्ध्वस्त धर्मशाळा’ (१९७३) हे नाटक मराठी राजकिय रंगभूमीच्या प्रवासातला मैलाचा दगड ठरले आहे.

३) गो.पुं. देशपांडे यांना नाटकातून निखळ राजकीय वैचारिक जाणिवा व्यक्त करण्याचे श्रेय दिले जाते.

४) राजकारणातून समाजकारण करणारी माणसे कोणत्याही थराला जाऊ शकतात याचे वास्तव चित्रण जयवंत दळवींनी 'सुर्यास्त' नाटकात केले आहे.

५) प्रेमानंद गज्वीचे 'गांधी-आंबेडकर' या नाटकातून वैचारिक द्वंद्व आले असले तरी तत्कालीन राजकिय वर्तुळातील प्रश्न, संघर्ष या नाटकातून आला आहे.

६) स्वातंत्र्योत्तर काळात काही अपवाद वगळता मराठी साहित्यात भारतीय राजकारणाकडे तुच्छतेने पाहण्याचा दृष्टिकोन दिसतो. याला मराठी नाटक अपवाद नाही

७) आधुनिक मराठी राजकिय नाटकांतून अजूनही भारतातील खऱ्या राजकारणाचे चित्रण सुस्पष्ट आलेले दिसत नाही.

**संदर्भसूची**

१) कुलकर्णी आरती, वेध नाटकांचा, विजय प्रकाशन, नागपूर, २००१

२) शिंदे विश्वनाथ, स्मार्त हिमांशू (संपा.), मराठी नाटक आणि रंगभूमी, प्रतिमा प्रकाशन, पुणे, २००८

३) साठे मकरंद, मराठी रंगभूमीच्या तीस रात्री -एक सामाजिक-राजकीय इतिहास खंड दुसरा, पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, २०११

४) साठे मकरंद, मराठी रंगभूमीच्या तीस रात्री -एक सामाजिक-राजकीय इतिहास खंड तिसरा, पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, २०११

५) तिजारे रा.अं, घांग्रेकर चि.ग. (संपा.) आधुनिक राजकिय विश्लेषण, श्री मंगेश प्रकाशन, नागपूर, १९९४

# गांधीवाद एक अध्यात्मिक विचार प्रणाली

**श्री शशिकांत शामराव चव्हाण**
मराठी विभाग
कर्मवीर हिरे महाविद्यालय गारगोटी

गांधीजींची एक अध्यात्मिक विचार प्रणाली आहे. या जगातील निसर्ग, प्राणी आणि मनुष्य हा ईश्वराचा अंश आहे असे ते मानतात. ही श्रद्धा त्याच्या विचाराच्या मुळाशी आहे. माणसाच्या समग्र जीवनाकडे पहाण्याची गांधीजींची एक विशिष्ट दृष्टी आहे. त्यांचा धार्मिक, नैतिक दृष्टिकोन, आचारधर्म, समाजकारण, राजकारण, शिक्षण इत्यादी जीवन अंगांविषयीची धारणा, सगळ्या गोष्टींचा समावेश गांधींच्या जीवनदृष्टीत होतो. त्यांच्या जीवनपद्धतीला गांधीवाद असे म्हणतात.

गांधीजींची मूळ वृत्ती धार्मिक आहे. त्यांचा धार्मिक विचार सर्व संप्रदायांना सामावून घेणारा आहे. त्यांच्या दृष्टीने सत्य हे जीवनातील सर्वांत महत्त्वाचे मूल्य आहे. साधनांच्या शुचितेशिवाय सत्याकडे जाता येत नाही. अशी त्यांची धारणा असल्यामुळे साधनेही साध्याचा भाग ठरतात. या अर्थाने साध्य साधन त्यांच्या जीवनदृष्टीचा महत्त्वाचा आचारधर्म.यावरून गांधीजींची ईश्वरावर नितांत श्रद्धा दिसते आणि ती श्रद्धा गांधीजींना अत्यंत महत्त्वाची वाटते. गांधीजींना इंद्रिय संवेदनांचे सुख हे अंतिम आहे असे त्यांना मान्य नव्हते. आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक विषमता व शोषण याला ते प्रचंड विरोध करत होते. स्त्रियांबद्दलचे अनुद्गार, जात, वर्ण, संप्रदाय, धर्म, वंश, राष्ट्र या कल्पनांच्या आधारे निर्माण होणारी असहिष्णुता आणि एकूणच माणसालाही कमी लेखणाऱ्या कोणत्याही गोष्टी गांधीजींना अमान्य होत्या. गांधीजींनी ही जीवनमूल्ये आधारभूत मानून व्यक्तीने आपले आचरण करावे असे त्यांना वाटत होते. समाजकारण, राजकारण व्हावयास हवे असेल तर नैतिक मूल्यांचा अंगीकार करून त्या मार्गाने जावे असे त्यांचे मत होते. त्यांचे स्वतःचे राजकारणही धर्माला अनुसरून होते. त्यांची धार्मिक, नैतिक दृष्टी त्यांच्या जीवन जगणाऱ्या व्यवहाराच्या मुळाशी होती.

यंत्र व भौतिक संस्कृतीला गांधीजींचा विरोध होता. या गोष्टी मानवी कल्याणाला बाधा आणतात. यांच्यामुळे विध्वंस, हिंसा, युद्ध इत्यादी कृत्ये अधिक होतात. यंत्राच्या साहाय्याने होणारा विकास गांधीजींना मान्य होता. पण मोठे कारखाने, यंत्रे यावर आधारित समाजव्यवस्थेत शहराकडून खेड्यांचे शोषण केले जाते. त्यामुळे या यंत्राधिष्ठित संस्कृतीला पिळवणूक व इत्यादीवर आधारलेल्या समाजव्यवस्थेला त्यांचा विरोध होता. या कारणांनी त्यांना अर्थव्यवस्था, समाज संघटन इत्यादी गोष्टींमध्ये विकेंद्रीकरण हवे होते. भारताची समाजव्यवस्था ग्रामसंस्कृतीशी जोडलेली आहे. या ग्राम संस्कृतीविषयीची कर्तव्य भावना सर्वांच्या मनामध्ये सहकार्याची असावी अशी त्यांची धारणा होती.

गांधीजींनी प्रचलित शिक्षण व्यवस्थेला विरोध केला होता. त्याचे मुख्य कारण ही व्यवस्था विद्यार्थ्यांच्या मनावर संस्कार करणारी, त्यांचे शीलसंवर्धन करणारी नसून, त्यांना आजूबाजूच्या वास्तवापासून, समाजापासून, लोककल्याणाच्या उद्देशापासून दूर घेऊन जाणारी आहे असे गांधींजींना वाटत होते. भारतातील भाषांचे महत्त्व गांधीजींना मान्य होते. भारतीय भाषा यातून भारतीय संस्कृतीचे रक्षण होते. त्यामुळे भारतीय भाषेची अस्मिता जागृत ठेवणे त्यांना गरजेचे वाटत होते. सर्वांनी मातृभाषेतूनच शिक्षण घ्यायला पाहिजे आणि सर्व प्रांतांच्या भाषा जोडणारी संपर्क भाषा हिंदी असावी अशी गांधीजींची प्रामाणिक भूमिका होती.

साहित्याच्या क्षेत्रामध्ये गांधीजींनी सत्य, शिव याला अधिक महत्त्व दिले आहे. सत्य आणि शिव याचे सौंदर्य त्यांच्या दृष्टीने अत्यंत महत्त्वाचे आहे. सत्य आणि शिव याचे आकलन अधिक चांगल्या रीतीने जाणून घेणे गांधीजींना महत्त्वाचे वाटते. पुरुष संबंधीचा त्यांनी नैतिक मूल्यांचा आग्रह धरला होता. पतीपत्नीच्या संबंधातील परंपरागत नैतिकता मान्य होती.

गांधीजींचे जे अभ्यासक आहेत, ज्यांना आपण गांधीवादी म्हणतो अशा गांधीवादांच्या अभ्यासकास असे दिसेल की, गांधीवादींना प्रत्येक शब्द आणि वाक्य, प्रत्येक कृती, इतरांच्या कृतीविषयीचा व मताविषयीचा प्रत्येक होकार, नकार व तिरस्कार या सर्व गोष्टींमध्ये ध्येय आहे. एकच दृष्टिकोन आहे. ज्या योगाने गांधीजींचे जीवन आणि चारित्र्य, त्यांचे कार्य आणि यश, त्यांचा संदेश आणि उद्देश यांची घडण झाली तेच गांधीजींचे तत्त्वज्ञान होय.

**गांधीवाद कोणत्याही चौकटीत बसत नाही**

गांधीजींच्या प्रत्येक कृतीकडे बारकाईने पाहिल्यास लक्षात येईल की, गांधीजी कोणत्याही चौकटीत बसणारे नव्हते. तसाच गांधीवाद कोणत्याही चौकटीत बसणारा नाही. ती चौकट धर्माची असो की राष्ट्राची म्हणूनच जोपर्यंत आपण अशा चौकटीच्या बाहेर पडत नाही तोपर्यंत गांधीवादाचे दर्शन आपल्याला होणार नाही. भारतीय स्वातंत्र्य संग्रामाने गांधीवाद हा नवा मंत्र जगापुढे आणला. इंग्रजांनी जरी बळाच्या वापरावर जगातील अनेक देशांवर आपली सत्ता स्थापन केली असली तरी ते स्वतःला शिक्षणसिद्ध पुरोगामी आणि सुसंस्कृत समजत होते. संघर्षाला नेस्तनाबूत करण्याचे बख आणि तंत्र त्यांच्याकडे होतेच. त्यातून आलेला मुजोरपणाही त्यांच्यात ठासून भरलेला होता. ही इंग्रजांची गुर्मी उग्रवादाने उतरण्यासाठी त्या काळात बराच प्रयत्न केला. तरी इंग्रजांनी त्यांना जुमानले नाही. अशा उग्रवाद्यांना हाताळणे इंग्रजांना अवघड नव्हते. पण चौकटीबाहेरचा गांधीवाद त्यांना हाताळणे उमगले नाही. इंग्रजांनी भारतातील गांधीजींचे गांधीवादी आंदोलन प्रथमतः त्यांनी सामर्थ्याचा वापर करणे हे असंस्कृतपणाचे आहे. जगापुढे त्याचे रूप येऊ लागल्याने त्यांनी सामर्थ्याचा वापर करणे टाळले. तसे पाहिले तर भारतीय लोक अशिक्षित, गावठी पण भारतातील करोडो अशिक्षित माणसांना गांधीवाद पचनी पडला होता. गांधीजींचे विचार लोकांनी आत्मसात केले. इंग्रजांविरूद्ध अंगावर शस्त्रांचे वार झेलून मरणाची कदर न करता ते गांधीजींचे सच्चे कार्यकर्ते बनले. ते अनुयायी झाले. जगाला माहीत नसणारा हा उदात्त गांधीवाद त्यांना समजला होता. याचे आश्चर्य सबंध जगाला वाटले होते.

आईन्स्टाईनला अमेरिकेने बॉम्ब बनवायला सांगितले. अणुबॉम्ब निर्मिती करताना गांधींची एक भूमिका आईन्स्टाईनला पटली. जो अणुबॉम्ब तयार होणार आहे त्यातून प्रचंड मानवी संहार होणार आहे. आईन्स्टाईनला आपल्या संशोधनाच्या विषावरचा उतारा गांधीवादातून समजला होता. त्या घटनेनंतर आईन्स्टाईन पुढे गांधीजींच्या प्रेमात पडला. एकविसाव्या शतकात अनेक राष्ट्रांनी महासंहारक शक्तीची निर्मिती केली. शस्त्राचा अचूक मारा करण्यासाठी महासंगणक तयार केला.

गांधीवादी व्यक्ती म्हटली की ती कलेच्या विरोधात असणारी, मागासलेल्या वृत्तीची असा एकंदरीत समज समाजामध्ये रूढ झाला होता. पण गांधीवादाला कलेचे वावडे कधीही नव्हते. जीवन आणि साहित्य यांच्या परस्पर संबंधातून गांधीवाद पुढे सरकतो. जीवनातील सापेक्षता कलेच्या संदर्भात विचार केला तर गांधीवाद कला मूल्यांना अनुबंधित आहे, अशी कलामूल्ये गांधीवादाने स्वीकारलेली आहेत. त्यांचे स्वागतच केले आहे. जीवन पोषकमूल्यांचे वितरण बौद्धिक कसोटीतून आणि नैतिक आदेशातून होण्यापेक्षा ते जीवनाच्या रसातून स्वाभाविकपणे प्रफुल्लपणे आणि स्वतंत्र जाणिवेतून व्हावे असे गांधीवाद सांगतो. त्या काळातील गांधीवादी लोकांनी त्याचे कौतुक केले आहे.

महाराष्ट्राच्या विचारवंतांना, साहित्यिकांना त्यांच्या विचारांचे सौंदर्य पटले आणि अनेक साहित्यिकांनी गांधी विचारांची अभिव्यक्ती आपापल्या साहित्यकृतीमध्ये केली. गांधीजींच्या राजकारणापेक्षा समाजकारण सुरुवात करणारा

महाराष्ट्रातील एक बुद्धिवादी गट होता. गांधीवाद हा विशिष्ट सिद्धांतांनी व कर्मकांडांनी युक्त असे बहुतेक तत्त्वज्ञान नाही. ते जीवनाचे आचरणशास्त्र आहे. त्यांनी साधनांची अभेद्यता पटवली. शुद्धतम साध्यासाठी शुद्धतम साधनांची कास धरली. अध्यात्म आणि व्यवहार या दोन गोष्टी वेगळ्या नसून एकच आहेत. व्यक्तिगत व सामाजिक जीवनसाधना करता येते. त्यांनी पटवून दिले. गांधीजींचा जीवनप्रवास हीच एक उच्चतम जीवनसाधना आहे. सत्य आणि अहिंसा यांचे अभिसरण जीवनात प्रस्थापित व्हावे यास्तव व्यक्ती व समाजाने विशिष्ट सत्यावर निष्ठा ठेवावी हे त्यानी स्वतःच्या जीवनप्रवासाद्वारे शिकविले. संस्कृतीतील भोगप्रधान संस्कृती श्रेयसंवर्धक नाही. त्या संस्कृतीने मानवतेची सभ्यता धोक्यात येईल असे वाटते. गांधीजींनी सत्याग्रहाचा, निर्भयतेचा, भक्तिमय जीवनाचा, श्रद्धा व कष्टमय जीवनाचा आदर्श स्वतःच्या जीवन चलनातून शिकविला. सामाजिक नीतीला आहे तसा आत्मिक प्रेमधर्म शिकवला. त्यांचे राजकारण सर्वव्यापक होते. गांधीजींचे समाजकारण, अर्थकारण, धर्मकारण सर्वव्यापक होते. त्यांनी समाजातल्या सुप्तशक्ती जागृत करून समाजमनाला आपल्या अंकित केले. त्यांच्या विचारांचा पगडा मराठीवर होणे हे योग्यच होते. यातून मराठी साहित्यिक प्रभावित झाले. यातून साहित्याची निर्मिती झाली. त्याला गांधीवादी साहित्य असे म्हटले जाते.

## गांधीवाद आणि मराठी साहित्य

मराठी साहित्याचा विचार करताना असे लक्षात येते की, गांधीवादाचा मराठी साहित्यावर प्रभाव पडला आहे. महात्मा गांधींच्या विचारांचा मागोवा घेणारे आणि ते अधिक संपन्न करणारे विचारवंत महाराष्ट्रात झाले. परंतु ललित साहित्यात तो प्रभाव वैचारिक साहित्याबरोबरच आढळतो. साहित्यातील भाषा साधी, सरळ थेट हृदयाला भिडणारी प्रभावी असावी असे त्यांना वाटत होते. लेखकांनी अनलंकृत संवाद साधू पाहणाऱ्या भाषेतून भावनांची सचोटी भाषेतून असावी असे साहित्य निर्माण करावे. लेखकाचे व्यक्तिमत्त्व हे स्वतंत्र, निर्भय, करुणामय, त्यागशील, सेवावृत्ती आणि अन्यायाच्या विरोधात असावे. साहित्यिकाने नैतिक मूल्ये डोळ्यासमोर ठेवून साहित्याचे लेखन करावे. आत्मक्लेश, आत्मबलिदान या प्रकारच्या जीवनमूल्यांनी लेखकाने जीवनमूल्यांचा स्वीकार केला असेल तर त्याच्या व्यक्तिमत्त्वातून सहजपणे व अपरिहार्यपणे साहित्यात भरलेला दिसेल. महाराष्ट्रातील अनुयायांनी गांधीजींच्या जीवनमूल्यांना अनुसरून मराठी साहित्याचे लेखन केले.आचार्य विनोबा भावे, आचार्य भागवत, आचार्य जावडेकर, आचार्य दादा धर्माधिकारी, पु. ल. देशपांडे, अप्पासाहेब पटवर्धन, आचार्य काका कालेलकर, साने गुरुजी, ग. प्र. प्रधान इत्यादी विचारवंतांनी गांधींचा मूलभूत विचार स्वीकारून त्यांचा राजकीय, सामाजिक, आर्थिक आणि सांस्कृतिकदृष्ट्या अधिक सूक्ष्म विचार केला आहे. गांधींच्या विचाराचे अधिक विश्लेषण ना. ग. गोरे, एस. एम. जोशी, मधु लिमये, नलिनी पंडित, प्रेमा कंटक यांनी केले आहे.

महाराष्ट्रात गांधी विचारांचा जसा मौलिक व सूक्ष्म विचार झालेला आहे. तसा त्यांना वैचारिक विरोधही तीव्रपणे झालेला दिसतो. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, लोकमान्य टिळकांच्या विचाराने प्रभावित झालेला बुद्धीवादी वर्ग व कट्टर मार्क्सवादी विचारवंत गांधींच्या विरोधात सतत लिहीत होते. स्वातंत्र्यवीर सावरकर आणि डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांनीही गांधीजींच्या विचारांना आपल्या दृष्टीकोनानुसार प्रखर विरोध केला. मराठी ललित साहित्यात विशेषतः कथा, कविता, कादंबरी, नाटक या लोकप्रिय साहित्य प्रकाराच्या आधारे गांधी विचार दर्शन व्यक्त झाले. त्याआधारे गांधींची एक प्रतिमा रंगवली होती. आजच्या सामान्यांच्या जीवनातून गांधी विचारावरची निष्ठा वैयक्तिक स्वरूपात आढळते. पण सार्वजनिक जीवनात मात्र आपण त्यांच्यापासून दूर राहू इच्छितो. ह्या वास्तवाचे भान हे ललित साहित्यातून जाणवत होते.

गांधीजींचे अभ्यासक आहेत, ज्याला आपण गांधीवादी म्हणतो अशा गांधीवादाच्या अभ्यासकास असेच दिसेल की, त्यांना प्रत्येक शब्द आणि वाक्य, प्रत्येक कृती इतरांच्या कृतीविषयीचा व मताविषयीचा प्रत्येक होकार, नकार व तिरस्कार या

सर्व गोष्टींमध्ये ध्येय आहे. एकच दृष्टिकोन आहे ज्या योगाने गांधींचे जीवन आणि चारित्र्य, त्यांचे कार्य आणि यश, त्यांचा संदेश आणि उद्देश त्यांची घडण झाली तेच गांधीजींचे तत्त्वज्ञान होय.

गांधीजींनी आयुष्यभर राजकारण केले पण त्यांना जॉर्ज वॉशिंग्टन, अब्राहम लिंकन, जोसेफ मॅझिनी यासारख्या जगप्रसिद्ध नेत्यांच्या पंक्तीत त्यांना बसविता येणार नाही. कारण गांधीजींचा मुख्यतः गौतम बुद्ध, येशू ख्रिस्त, ज्ञानेश्वर, कबीर यासारख्या धर्म महात्म्यांचा पिंड होता. राजकारण हा सत्याच्या प्रयोगाचाच भाग होता. गांधीजींच्यावर अध्यात्माचा फार मोठा प्रभाव होता पण ते धर्मवेडे नव्हते. धर्म हे एक सामाजिक जीवनाचे अंग आहे. मानवी जीवनामध्ये मानवा मानवामधील संबंधांचाही धर्माला विचार करावा लागतो. प्रत्येक धर्माचा सामाजिक जीवनाकडे पहाण्याचा दृष्टिकोन त्यावरून त्या धर्माचे स्वरूप व त्याचे समाज जीवनावरील परिणाम निश्चित होतात. नीतीचा संबंध नेहमी सामाजिक व्यवहाराशी असतो. माणसाचे पशुहून असलेले वेगळेपण म्हणजेच मानवता, ऐक्य इत्यादी तत्त्वांना आधुनिक काळात प्रतिष्ठा हाच गांधींच्या तत्त्वविचारांचा केंद्रबिंदू आहे. जगातील सर्व घडामोडींमध्ये नैतिकता हे नियंत्रण तत्त्व असेल तर जगामध्ये सत्याचाच विचार होणार हे उघड आहे.

भारतातील १९२० नंतरचा कालखंड घेतला तर दोन मोठ्या विचार प्रणालींच्या प्रभावाचा कालखंड होता. गांधीजींचा राजकारणातील प्रवेश त्यातून मांडलेली त्यांची भूमिका म्हणजेच गांधीवाद. गांधीवादावर गांधींच्या व्यक्तित्त्वाचा, त्यांच्या नेतृत्वाचा प्रभाव मात्र फार मोठा होता. गांधींचा विचार, त्यांचे कार्य यापासून प्रेरणा घेऊन गांधींचे लाखो अनुयायी निर्माण झाले होते. स्वातंत्र्यपूर्व काळात तर भारतीय जनता, राजकीय कार्यकर्ते, विचारवंत यांना गांधीवादापेक्षा गांधीजींचे आकर्षण फार मोठे होते. गांधीवादापेक्षा गांधीविचारापेक्षा गांधींनी स्वातंत्र्य संग्रामात स्वातंत्र्य प्राप्तीचे जे मार्ग दाखविले, त्या मार्गाचा भारतीय जनतेवर फार प्रभाव पडला होता. जीवन आणि राजकारणात गांधींची भूमिका ही नैतिकतेची व साधनशुचितेची होती. ही लोकांना फार भावली होती. गोरगरीब माणसांबद्दलचा कळवळा, त्यांच्या उन्नतीबद्दलची त्यांची बांधीलकी, कृती आणि उक्ती मधील प्रामाणिकपणा आणि निर्भयता, स्वातंत्र्य प्राप्तीची तळमळ, देशासाठी सर्वस्वाचा त्याग या गोष्टींचा समाज मनावर प्रभाव पडल्याचे दिसते.

महात्मा गांधीजी धर्मनिष्ठेने भारलेल्या अशा कुटुंबात वाढले. त्यांच्या विचारात धर्माला फार महत्त्व होते. ईश्वरदर्शन, आत्मसाक्षात्कार, सत्यानुभूती हेच ध्येय त्यांनी मानले. सत्यानुभूती हेच आपले ध्येय व सत्य हाच आपला परमेश्वर आणि सत्याची उपासना करणे, सत्याच्या मार्गाने जाणे हाच धर्म त्यांनी मानला. रोख सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, सत्याग्रह या तत्त्वांना अनुसरून न्याय, स्वातंत्र्य, समता, बंधुता या मार्गाने सामाजिक विकासाचे स्वप्न गांधीजींचे होते.

## संदर्भ

१. पंडित नलिनी, 'गांधी' ग्रंथाली प्रकाशन, मुंबई १९८३. पृ. क्र. ३५
२. गोखले द. न., गांधीजी–मानव नि महामानव, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई १९९६. पृ. क्र. १४२.
३. निरंतर गं. बा.,'गांधी आणि गांधीवाद', देशमुख आणि कंपनी, पुणे १९४६. पृ. क्र. ३५.
४. गोखले द. न., गांधीजी–मानव नि महामानव, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई १९९६. पृ. क्र. ०४.
५. निरंतर गं. बा.,'गांधी आणि गांधीवाद', देशमुख आणि कंपनी, पुणे १९४६. पृ. क्र. ५०.

# सामाजिक चळवळी आणि दलित साहित्य चळवळ सहसंबंध

**डॉ. सुनीता गोरख रोकडे**
आदर्श कॉलेज,विटा .ता.खानापूर, जि. सांगली.

**प्रस्तावना :**

समाज ,संस्कृती आणि वाङ्मय यांचे अत्यंत निकटचे संबंध असतात. साहित्यकृतीची उभारणी समाज वास्तवावर झालेली असते.साहित्याच्या प्रेरणेचा विचार करताना साहित्याला तत्कालीन सामाजिक ,सांस्कृतिक, राजकीय, धार्मिक व आर्थिक ,नैतिक असे संदर्भ प्राप्त झालेले लक्षात येतात. त्यातूनच साहित्यकृतीला मूल्य लाभते व साहित्याचा अन्वयार्थ लावताना सामाजिक चळवळींचा उपयोग होतो. समाजातील चळवळी कशा निर्माण होतात ,चळवळीं आणि जीवनांचा काय संबंध असतो,चळवळींचे आणि वांङ्मयाचे कोणते नाते असते,चळवळींमुळे वांङ्मयाला कोणता आकार प्राप्त होतो. यासर्व प्रश्नांची उत्तरे शोधत असताना आपल्याला चळवळ आणि समाज, संस्कृती यांचा वाङ्मयाशी असणारा संबंध लक्षात येतो.

**सामाजिक चळवळींचा उदय :**

जेव्हा व्यापक जनसमुदाय जागृत होतो तेव्हा चळवळी उदयाला येतात. डॉ. कोतापल्ले म्हणतात "जेव्हा जेव्हा जीवनाचा संकोच होतो ,जीवनात असमानता निर्माण होते आणि जीवनाला विकृति प्राप्त होते तेव्हा जीवनामध्ये आणि संस्कृतीमध्ये काही नवीन चळवळींचा उदय होतो"[१]पर्यायाने वाङ्मयातही अशा चळवळी आकाराला येतात.

महाराष्ट्रात सामाजिक आणि वाङ्मयीन पर्यावरणामध्ये १८६०-१९६० या शंभर वर्षात असंख्य चळवळी उदयाला आल्या .ज्यातून सामान्य माणसांच्या शोषणाविरुद्धचे हुंकार प्रकट झाले. दलित ,ग्रामीण आशा सर्व प्रकारच्या सोशितां विरुद्धचा आवाज मुखर करणारे लेखन झाले. या शंभर वर्षातील चळवळी आणि लेखनाचा परिणाम म्हणून १९६० नंतरच्या काळात मराठी वांङ्मय क्षेत्रात विविध चळवळी उदयास आल्या.

**चळवळ संकल्पना:**

'चळवळ' हा शब्द 'Movement' या शब्दावरून आला. विशिष्ट कारणांसाठी एकत्र आलेला जमाव किंवा एखाद्या व्यक्तीचा विशिष्ट कालखंडातील वर्तनव्यवहार म्हणजे चळवळ. मराठी शब्दकोशामध्ये 'चळवळ' म्हणजे 'हालचाल','उद्योग',असा अर्थ मिळतो.तर 'चळचळ' या शब्दांतून 'बदल' आणि 'परिवर्तन' हा अर्थ ध्वनित होतो.जे काही आहे त्यामध्ये परिवर्तन होणे म्हणजे चळवळ. समान कल्पना किंवा विश्वास असणाऱ्या मानवी समूहांनी विशिष्ट ध्येयासाठी एकत्रित येऊन केलेले कार्य म्हणजे चळवळ होय. कोणत्याही चळवळीच्या केंद्रस्थानी परिवर्तनाची भूमिका असते. तर लोकसंघटन ही चळवळीची शक्ती असते. समूहनिष्ठा, परिवर्तन ,मानवमुक्ती ,नकार आणि स्वीकार ,परिवर्तनशीलता हे चळवळीचे विशेष असतात. चळवळ उभी राहण्यासाठी विशिष्ट वैचारिक पाया अथवा तात्त्विक बैठक असण्याची गरज असते. चळवळ ही संघटितपणे घटणारी एक प्रक्रिया असते.

**वाङ्मयीन चळवळ संकल्पना :**

विशिष्ट हेतूसाठी वाङ्मयीन पातळीवरून समूह स्वरूपात ज्यावेळी व्यवहार होतो तेव्हा वाङ्मयीन चळवळ आकारास आली असे म्हणता येते. "समाजाकडे, माणसाकडे ,साहित्याकडे आणि साहित्यातील आशयाकडे पाहण्याचा वाङ्मयीन व्यवहारातील परिवर्तनवादी दृष्टिकोन म्हणजे वाङ्मयीन चळवळ होय.".[२] जेव्हा वाङ्मयीन चळवळी उदयास आल्या त्यावेळी चळवळीतल्या लेखकांनी समाज संस्कृती सह साहित्यातही परिवर्तन होणे आवश्यक असल्याचे विचार

मांडले . डॉ. नागनाथ कोत्तापल्ले म्हणतात “प्रत्येक जीवनात बदल घडणे, त्या बदलाला व्यापक जनाधार असणे, त्यातून सांस्कृतिक, वाङ्मयीन चळवळीचा जन्म होणे, स्वतंत्र अन्वेषण दृष्टी असणे आणि त्यासाठी प्रज्ञावंत ऊर्जाकेंद्र असणे असे वाङ्मयी चळवळीतील महत्त्वाचे टप्पे ठरतात.”३ या चळवळीच्या टप्प्यातून चळवळीचे साहित्यशास्त्र असे लक्षात येते त्याप्रमाणेच वाङ्मयीन चळवळ म्हणजे काय या प्रश्नाचे उत्तरही मिळते.

**निवडक वाङ्मयीन चळवळी :**

वांग्मयीन चळवळ ही संकल्पना प्रामुख्याने स्वातंत्र्योत्तर काळात नावारूपास आली असली तरी मध्ययुगीन काळात ही चळवळ पहावयास मिळते .या चळवळीसाठी ‘संप्रदाय' हा शब्दप्रयोग वापरला जात होता. महानुभव संप्रदाय, वारकरी संप्रदाय हे त्याचे उदाहरण होत. पण खऱ्या अर्थाने १९६० च्या कालखंडात महाराष्ट्रामध्ये वाङ्मयीन चळवळींना प्रारंभ झाला तो दलित साहित्य चळवळीने . १९७५ ला ग्रामीण साहित्य चळवळीची भाषा बोलली जाऊ लागली. त्यानंतर आदिवासी साहित्याची चळवळ सुरू झाली. आदिवासी साहित्य चळवळी पाठोपाठ स्त्रीवादी साहित्य चळवळ आकार घेऊ लागली. या चार चळवळीं बरोबरच जनवादी साहित्याची चळवळ, भटक्या-विमुक्तांच्या साहित्याची चळवळ, मुस्लिम मराठी साहित्याची चळवळ, ख्रिस्ती मराठी साहित्याची चळवळ, मार्क्सवादी साहित्याच्या चळवळी उदयास येऊन कार्यरत होत्या.

१९६० नंतरच्या साहित्य चळवळींचे वैशिष्ट्य हे की त्या एकूणच जीवनाच्या परिवर्तनाची मागणी करीत आहेत.”दलित चळवळीला मजल्यावर उभी असणारी विषम व्यवस्था नष्ट झाली पाहिजे असे वाटते .तर सर्व प्रकारच्या ग्रामीण शोषणातून ग्रामीण समाज मुक्त झाला पाहिजे असे ग्रामीण साहित्य चळवळीला वाटते.युगायुगांच्या पुरुषसत्ताक व्यवस्थेच्या जोखडातून स्त्रीची मुक्ती झाली पाहिजे असे स्त्रीवादी साहित्य चळवळीला वाटते. संस्कृतीच्या नावाखाली आणि संस्कृतीच्या अहंकारातून निसर्गाच्या जवळ राहणाऱ्यांना समजून न घेता त्यांचे शोषण करणारे जे कुणी आहेत त्यांच्या जोखडातून आपली मुक्ती व्हावी असे आदिवासी साहित्य चळवळीला वाटते.”४ एकंदरीत सर्व साहित्य चळवळी जीवनाच्या परिवर्तनाची मागणी करताना दिसतात. विङ्मय चळवळ आणि सामाजिक चळवळ या परस्पर पूरक असतात. वाङ्मयीन चळवळीचे कोणत्या ना कोणत्या चळवळीशी नाते असते. किंबहुना सामाजिक चळवळीच्या सोबतीनेच वाङ्मय चळवळ ही वाटचाल करीत असते. याचे उत्तम उदाहरण म्हणजे दलित चळवळ आणि दलित वाङ्मय चळवळ हे होय.

**दलित चळवळ व दलित साहित्याची चळवळ सहसंबंध :**

महात्मा फुले यांच्या समाजपरिवर्तन विषयक चळवळीतून शूद्रातिशूद्रांना माणूस म्हणून जगण्याचा अधिकार प्राप्त झाला .डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर यांनी सुरू केलेल्या ‘दलित मुक्तीलढा ', शाहू महाराजांच्या प्रेरणेने सुरू झालेली ‘बहुजन समाजाची चळवळ', सारख्या चळवळीतून दलित साहित्य चळवळ आकारास आली. “१९६० नंतरच्या कालखंडात दलित साहित्याची चळवळ अधिक गतिमान झालेली दिसते .असे असले तरी साहित्य चळवळीचे मूळ विसाव्या शतकातील सामाजिक, सांस्कृतिक, परिवर्तनाच्या चळवळीत असल्याचे पहावयास मिळते”५

डॉ.आंबेडकर दलित चळवळीचे ऊर्जा केंद्र होते. दलित चळवळीची सुरुवात दलित मुक्तीलढ्यापासून झाली डॉ. आंबेडकरांनी दलित मुक्तीलढ्याचे नेतृत्व स्वतःकडे घेतले. प्रथम मूकनायकाला जागृत करण्यासाठी ३१ जानेवारी १९२० रोजी ‘मूकनायक' हे पाक्षिक सुरु केले. १९२४ मध्ये ‘बहिष्कृत हितकारणी’ सभा स्थापन केली .२० मार्च १९२७ ला महाडच्या चवदार तळ्याचा सत्याग्रह करून मुक्ती लढ्याला प्रत्यक्ष प्रारंभ केला.मनुस्मृतीचे दहन २५ डिसेंबर १९२७ मध्ये केले .तर ३

मार्च १९३० रोजी नाशिक येथील काळाराम मंदिरामध्ये प्रवेश केला. दरम्यान १३ ऑक्टोबर १९३५ ला धर्मांतराची घोषणा केली .

डॉ. आंबेडकर मते दलित चळवळीचा प्रचार आणि प्रसार अधिक होण्यासाठी सामान्य खेडूतांपर्यंत पोहोचण्यासाठी साहित्य हे माध्यम अचूक व प्रभावी स्वरूपाचे माध्यम आहे .म्हणूनच दलित चळवळीच्या माध्यमातून २४ जून १९३० ला 'जनता' आणि ४ फेब्रुवारी १९५६ 'प्रबुद्ध भारत' ही साप्ताहिके सुरू करून सर्वसामान्य जनतेला संघटित करून संघर्ष करण्यास प्रवृत्त केले. अस्पृश्य बांधवांमध्ये वैचारिक जागृती व्हावी यासाठी मुंबई येथे 'पीपल्स एज्युकेशन सोसायटीची' १९४५ ला स्थापना करून 'सिद्धार्थ कॉलेज' व 'मिलिंद महाविद्यालय' यासारखी शिक्षण केंद्रे निर्माण केली. अशाप्रकारे सामाजिक चळवळीच्या माध्यमातून दलितांना लेखनासाठी प्रवृत्त केले .

डॉ.आंबेडकर म्हणतात की विचारक्रांती झाल्याशिवाय आचारात फेरबदल होऊ शकत नाही. आचाराला विचारांची जोड हवी आणि विचारक्रांती घडण्यासाठी साहित्यासारखा दुसरा मार्ग नाही .डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांना प्रचलित मराठी परंपरेतील साहित्य निर्माण करणे मंजूर नव्हते म्हणूनच नागपूर येथे २ मे १९५४ रोजी विदर्भ साहित्य संघापुढे भाषण करताना डॉ.बाबासाहेब आंबेडकरांनी आपली साहित्यविषयक भूमिका मांडली आहे. ते म्हणतात "आपण आपल्या जीवनाकडे कर्तव्यधर्माकडे आणि संस्कृतीकडे दुर्लक्ष करीत आहोत. साहित्यिकांनी सांस्कृतिविषयक मूल्ये आणि जीवन मूल्ये जोपासली पाहिजेत.उदात्त जीवनमूल्ये आणि सांस्कृतिक मूल्ये आपल्या साहित्य प्रकारातून आविष्कृत करा .आपलं लक्ष संकुचित मर्यादित ठेवू नका, तिचं तेज खेड्यापाड्यातील अंधार दूर होईल असं परिवर्तित करा. आपल्या देशात उपेक्षितांचे दलितांचे, दुःखितांचे फार मोठे जग आहे हे विसरू नका. त्यांचे दुःख, व्यथा नीट समजून घ्या आणि आपल्या साहित्याव्दारे त्यांचं जीवन उन्नत करण्यास झटा, त्यातच खरी मानवता आहे "६ डॉ.आंबेडकरांचे हे विचार म्हणजे दलित साहित्याचा एका अर्थाने जाहीरनामा आहे. या विचारातून प्रेरणा घेऊन पहिल्या पिढीतील सुशिक्षित व संस्कारक्षम दलित आपले अनुभव, आपले जीवन ,आपल्या वेदना व्यक्त करण्यासाठी पोवाडा ,काव्य, कथा ,कादंबरी ,नाटक, आत्मचरित्र, वैचारिक लेख इत्यादीचे लेखन करू लागले . अशाप्रकारे डॉ. आंबेडकरांचे विचार , जीवनकार्य ,दलित मुक्तीलढा आणि दलित चळवळ हीच खऱ्या अर्थाने दलित वाङ्मय चळवळीची प्रेरणा ठरली .

अशाप्रकारे सामाजिक, सांस्कृतिक चळवळी आणि वाङ्मयीन चळवळी या परस्परपूरक असतात . सामाजिक चळवळीच्या आधारानेच वाङ्मयीन चळवळी निर्माण होतात.

**निष्कर्ष :**

चळवळ ही संघटितपणे घडणारी एक प्रक्रिया आहे .चळवळीच्या केंद्रस्थानी परिवर्तनाची भूमिका असते. प्रत्येक चळवळीची विशिष्ट प्रेरणा अथवा ऊर्जा केंद्र असते.चळवळीमध्ये आत्मभान जागृत समूहमन असते. चळवळीचे एक साधन म्हणून वाङ्मयाचा काही प्रमाणात उपयोग करण्यात येतो.प्रस्थापित व्यवस्थेमागे असणाऱ्या मूल्यव्यवस्थेला नकार व मानवतेला उजळून टाकतील अशा नव्या मूल्यांचा स्वीकार करून जीवनाची नवी मांडणी आणि नवी वाङ्मय संस्कृती हे या चळवळींना अपेक्षित असते.

समाजातील चळवळी असो की वाङ्मयाच्या क्षेत्रातील चळवळ असो त्या अंतिमत: कलावंतांची दृष्टी विकसित करतात व जीवनाची नव्याने पुनर्मांडणी करू इच्छितात .दलित साहित्य चळवळीने मराठी वाङ्मयाचा कक्षा विस्तारीत केल्या. दलित साहित्याची चळवळ ही मानवाच्या मुक्तीसाठी आणि प्रतिष्ठेसाठी आहे .दलित साहित्य चळवळीमुळे उपेक्षित समाजाचे प्रथमच अनुभवविश्व साहित्यातून व्यक्त होऊ लागले.

**संदर्भ:**

1. कोतापल्ले नागनाथ:' साहित्याचा अन्वयार्थ', मेहता पब्लिशिंग हाऊस , पुणे प्रथमावृत्ती, १९९६, पृ.२८
2. यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विद्यापीठ नाशिक,' मराठी वाङ्मयीन चळवळीचा अभ्यास',पृ.१५
3. तत्रैव,पृ.१५
4. कोतापल्ले नागनाथ,' साहित्याचा अन्वयार्थ',उनि.पृ.४६
5. व्यवहारे विद्या:' साहित्य विमर्श', चिन्मय प्रकाशन,औरंगाबाद.प्रथमावृत्ती,२००३ पृ.८५
6. फडके भालचंद्र: 'दलित साहित्य वेदना आणि विद्रोह', श्रीविद्या प्रकाशन,पुणे. तिसरी आवृत्ती २००० पृ.२१,२२

# सामाजिक व सांस्कृतिक विकासातील शिक्षणाची भूमिका

**साधना सुखदेव जाधव**
संशोधक प्रशिक्षणार्थी
मराठी विभाग
शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापूर.

**प्रस्तावना**

आपल्या अन्न, वस्त्र व निवारा या मूलभूत गरजांबरोबरच शिक्षण ही सुद्धा चौथी मूलभूत गरज आहे. शिक्षण हे फार महत्त्वपूर्ण आहे. चांगले जीवन जगण्यासाठी ते आवश्यक आहे. यातून आपल्याला ज्ञान तर मिळतेच परंतु याबरोबरच जीवन कसे जगावे, व्यक्तीमत्त्वाचा विकास, जीवनातील सर्व व्यवहार, सुसंस्कार, व्यावसायिक कौशल्ये, बौद्धिक व विकास, क्रियाशीलता, सृजनशीलता, व्यावहारिक कार्यक्षमता, अध्यात्मिकता, नैतिकता, शारीरिक स्वास्थ व विकास. मानवता, सहृदयता, अभिरूची, सामाजिकता, नागरीक अशा अनेक गोष्टींचा विकास शिक्षणातून होतो. शिक्षणामुळेच आपले व्यक्तीमत्त्व समृद्ध व संपन्न होण्यास मदत होते. म्हणजेच यावरून आपणांस असे दिसून की, शिक्षण घेणे हे मानवी जीवनास किती महत्त्वपूर्ण आहे याशिवाय आपण आपली प्रगती, विकास साधूच शकत नाही. शिक्षण आपल्या जीवनाचे अविभाज्य अंग आहे. शिक्षणाशिवाय आपण शून्य आहोत. म्हणून चांगले शिक्षण घेणे आवश्यक आहे. त्यामुळे आपला व आपल्या देशाचा विकास साधला जाईल. जास्तीत जास्त लोकं शिकली तर जास्त उद्योगधंदे, रोजगार उपलब्ध होतील. परिणामी कुणीही उपाशी मरणार नाही. तसेच लोकांना चांगले काय व वाईट-काय यांतील फरकही समजण्यास मदत होते. त्यामुळे आपण केले तर काय होईल याचा अंदाज बांधता येतो.

**सामाजिक विकासातील शिक्षणाची भूमिका**

शिक्षणामुळेच समाजाचा विकास होण्यास मदत होते. समाजातील आंतरसंबंध सुधारण्यास मदत होते. समाज म्हणजे काय? तर असे अनेक लोक व समूह एकत्र नांदत असतात. त्यांना आपण समाज म्हणतो. या समाजात व्यक्ती-व्यक्ती, व्यक्ती-समूह व समूह-समूह असे आंतरसंबंध असतात. त्यांच्यात विचारांची देवाणे-घेवाण होत असते. शिक्षणामुळे त्यांच्या विचारांचे परिवर्तन होते. चांगले-वाईट काय ते समजते. त्यामुळे समाजास पोषक घटक स्विकारले जातात व मारक घटकांना नाकारले जाते. अन्यायाविरूद्द प्रतिकार करण्यास समाज सिद्ध होतो. म्हणून शिक्षणाची गरज आहे. सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक संबंध, त्यांच्या प्रगतीचा अभ्यास शिक्षणातून घडतात. समाजाचे नेतृत्व करण्यासाठीचे नेतृत्व गुण शिक्षणामुळे निर्माण होतात.

शिक्षणामुळेच समाजात परिवर्तन होते. भविष्याला आकार देण्याचे कार्य शिक्षण करत असते. मानव आणि समाज यांच्यात एकवाक्यता निर्माण करण्याचे कार्य शिक्षण करते. परिवर्तन हा निसर्गाचा नियम आहे. त्यानुसार समाजातही परिवर्तन घडते मग त्याचे फायदे-तोटे काय आहेत? याची माहिती शिक्षणातून मिळते. तसेच बदलाचा स्विकार करण्यास लोकांना तयार करण्याचे कार्य शिक्षण करते. यातूनच लोकांना गतिमान व परिवर्तनास अनुकूल बनविले जाते. शिक्षणामुळे समाजात जीवनावश्यक मूल्यांची जोपासना केली जाते. त्यामध्येच अभिरूचि, ज्ञान कौशल्ये यामध्ये वाढ करता येते. शिक्षणातून अनेक विचारवंत, संशोधक, समाजसेवक, तंत्रज्ञ, कलावंत, प्रतिभावंत निर्माण होतात. त्यामुळे समाजाची प्रगती होते. पर्यायाने देशाची प्रगती होते.

म्हणून समाजाच्या विकासासाठी शिक्षण फार उपयुक्त आहे. त्यातून स्वयंपूर्णता, उत्पादनक्षमता, आधुनिकीकरण, सामाजिक व राष्ट्रीय एकता व एकात्मता, लोकशाही मूल्ये, नैतिक मूल्ये, स्वातंत्र्य समता, न्याय, बंधूता अशा अनेक मूल्यांची जोपासना शिक्षणातून केली जाते. एकूणच चारित्र्याची जडण-घडण शिक्षणातून होते. समाजात राहणे व समाजातीलच एक होऊन राहण्यास शिक्षण शिकविते. माणूस एकटा जन्मालाही येतो व शेवटी जातोही एकटाच. पण जीवन जगण्यासाठी त्याला समाजाची गरज असते. तो एकटा नाही राहू शकत त्यासाठी त्याला औपचारिक व अपौपचारिक या दोन्हीही. शिक्षणपद्धती महत्त्वपूर्ण आहेत. प्रत्येक व्यक्ती शिकली तर समाजाचा विकास होण्यास वेळ लागत नाही. परंतु प्रत्येकजण आपल्या समाजास काही देझण लागतो ते त्यान प्रामाणिकपणाने दिले व घेतलेही पाहिजे. सेवाभाव हाच खरा धर्म.

**सांस्कृतिक विकासातील शिक्षणाची भूमिका**

लहान असताना प्राथमिक शाळेपासूनच सांस्कृतिक कार्यक्रम असा शब्द कानावर पडत असे परंतु तेव्हा संस्कृतीचा अर्थ समजत नव्हता परंतु मग हळूहळू मोठे होत असताना शिक्षणाने तो समजत गेला आपण ज्या समाजात राहतो, वावरतो तिथल्या संस्कृतीचा परिणाम आपल्यावर होत असतो. मग आपण जे बोलता खातो, पितो, नेसतो वागतो त्यावरून आपली संस्कृती समजण्यास मदत होते. आपल्या समाजात साध्य होणारे सर्व कलाप्रकार, साजरे करणारे सण, उत्सव, खेळ, नृत्य, नाट्य, गायन यांचा समावेश संस्कृतीत होतो. या सर्व कलातून ललित कलांचे ज्ञान होते. याबरोबरच नेतृत्व गुणांतही वाढ होते. बौद्धिक व नैतिक गुणांचा विकास होतो. शिक्षणामुळे लोकांना मोकळा वेळ सत्कारणी लावता येतो व त्यातून आनंदही घेता येतो. अनेक छेद जोपासता येतात. सुप्त गुणांचा विकास होतो.

आपल्या जीवनाच्या जडण-घडणीत संस्कृतीचा फार मोठा प्रभाव आपल्यावर पडत असतो. म्हणजेच आपल्या वर्तनावरूनच आपली संस्कृती समजत असते. हे साहित्य आपण कधी लिहू व वाचू शकतो तर ते शिक्षणाशिवाय शक्य नाही. म्हणून आपल्या जीवनात विकासासाठी शिक्षण फार महत्त्वाचे आहे. समाज, संस्कृती व शिक्षण हे परस्परावलंबी आहेत. ज्ञान व कलेबरोबरच श्रद्धा, रूढी परंपरा, सण, समारंभ, उत्सव, भाषा, वस्त्रे, निवारा, आहार, शस्त्रे, धर्म, कायदा, वर्तन, आचार-विचार या व अशा अनेक गोष्टी आपल्या संस्कृतीचा भाग आहेत या सर्वातून आपले व्यक्तीमत्त्व घडत असते.

आपली ंस्कृती आपले विचार, राहनीमान, भाषा व ती बोलण्याची पद्धत, आचार-विचार, तिती नियम, वर्तन, कपडे, केशरचना, वेशभूषा या सर्वातून दिसून येते. या सर्व गोष्टींवर प्रभाव टाकण्याचे कार्य शिक्षण करते. समाज व संस्कृतीवर प्रकाश टाकण्याचे कार्य शिक्षण करते. थोडक्यात व्यक्तीचे व्यक्तीमत्त्व फुलविण्याचे कार्य शिक्षण करत असते. जगायला शिकवते ते शिक्षण संस्कृती ही समाजाची निर्मिती असते. समाजात ती रूजलेली असते. त्यामुळे परंपरेने आपण आपल्या संस्कृतीचे जतन करीत असतो. त्यातूनच ती पुढील पिढीकडे संक्रमित होत असते. संस्कृती ही गतीशिल असते. प्रत्येक समाजाची स्वत:ची अशी एक संस्कृती असते. त्यावरून तो समाज ओलखला जातो.

उदा. ईजिप्तची संस्कृती, मोहेंजोदरो येथील संस्कृती.

शिक्षण हे आपल्यासाठी कालही, आजही व उद्याही महत्त्वपूर्ण असेच आहे. मानवाने सतत काहीतरी शिकत राहणे त्यातून प्रगती होते. या शिक्षणाचे स्वरूप सतत बदलत असते. त्याचाही स्विकार करणे आवश्यक आहे. परंतु त्याचे फायदे व तोटेही विचारात घेतले पाहिजेत.

**संदर्भ**

१. देशमुख एल. जी. : शिक्षणाचे तत्त्वज्ञानात्मक व समाजशास्त्रीय अधिष्ठान, फडके प्रकाशन,कोल्हापूर. २००५.
२. बी.ए. भाग-१ : समाजशास्त्र परिचय, दूरशिक्षण केंद्र, शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापूर.
३. दवणे प्रविण : रोप अमृताचे, मंजुल प्रकाशन, पुणे.
४. प्रथम वर्ष कला : शिक्षणाची मूलतत्त्वे व २१ व्या शतकासाठी शिक्षण, मुंबई विद्यापीठ,मुंबई.
५. एम.ए. भाग १ : शिक्षण आणि समाज, दूरशिक्षण केंद्र शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापूर.

# नारी स्वतंत्रता में मीरा की भूमिका

**प्रा. डॉ. अजयकुमार कृष्णा कांबळे**
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, कोवाड
तह. - चंदगड जिला - कोल्हापुर

---

हिंदी साहित्य का मध्ययुग काव्य की दृष्टि से सुवर्णयुग माना गया है। तथा यह सही भी है की मध्यकाल के संतो, महानुभावों एवं समकालीन कवियों ने काव्य का ऐसा रुप सृजित किया है जैसा पूर्व में कभी निर्माण न हुआ हो। हिंदी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डाली जाए तो दृष्टव्य होता है कि सगुण, निर्गुण, रामभक्ति, कृष्णभक्ति, ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी आदि काव्य शाखाओं के द्वारा काव्य की अक्षुण्ण धारा निकल पडी है, जो आज भी कवि साहित्यकारों के लिए प्रेरणादायी एवं आदर्शवत रही है। भक्तिकाल के इस अक्षय स्त्रोत में कतिपय कवयित्रियों ने भी अपने काव्य के धारा के रुप में जो सृजित किया है, वह बेजोड है। माना कि उक्त काल में स्त्रीयों की काव्यलेखन की परंपरा कुछ पुख्ता नही है फिर भी कुछ स्त्रियो ने अपने सृजन के द्वारा जो अभिव्यक्त किया है वह स्त्री मुक्ति की लंबी दास्तां है।

समग्र भारतीय साहित्य के इतिहास में कृष्णभक्त शाखा के भीतर मीरा का महत्व तथा योगदान अनन्यसाधारण है। मध्य काल के मुस्लिम शासकों को अनियंत्रित, बेडियों से जकडे तथा जबरदस्ती से धर्मातरण किए जानेवाले काल में मीरा ने स्त्री स्वतंत्रता का पक्ष लेकर एक नई पहल काव्यजगत में की थी। इस दृष्टी से मीरा का जीवन एवं व्यक्तित्व प्रेरक एवं मार्गदर्शक साबित हुआ है। अधुनातन समय में जिस बात की जोर-शोर के साथ चर्चा चल रही है वह है नारी मुक्ति अथवा नारी स्वतंत्रता। सही मायने में इसकी पृष्ठभूमि में देखा जाए तो मीरा के विचार तथा उसका विद्रोही काव्य ही है। भारतीय इतिहास के बंधनों से जकडे मध्यकाल में जीर्ण-शीर्ण रूढियों एवं परंपराओं का विरोध करके सामंती समाज को ललकारने का पूरा श्रेय मीरा को जाता है। उक्त कालखंड में स्त्रियों के बंधनों का कोई पारावार नही था परंपरा तथा मर्यादाओं का अनुपालन करना ही उनका नसीब बन गया था। ऐसें वातावरण में स्त्री दासता के साथ संघर्ष करनेवाली एवं बंधनो से आजाद रहनेवाली मीरा ने इन सबसे जूझते हुए तमाम नारी जाति के सम्मुख आदर्श खडा किया है।

संत मीरा ने पूरा जीवन संघर्ष एवं पीडा में बिताया है। उसके दो वर्ष की उम्र में उनकी माँ का देहान्त हो गया । वैसे देखा जाए तो मीरा की जन्मतिथी, स्थान तथा विवाह आदि के संबंध में विभिन्न मत प्रचलित हैं। पर सभी विद्वानों का मानना हे कि मीरा का लालन पालन पितामह रावदुदा की देखरेख में हुआ था जो स्वयं एक कृष्णभक्त थे। उनके प्रभात के कारण ही मीरा के मन में कृष्ण के प्रति अनुराग पैदा हुआ था । मीरा का विवाह मेवाड के प्रसिद्ध राणा सांगा के जेष्ठ पुत्र कुँवर भोजराज के साथ संपन्न हुआ था परंतु ब्याहता जीवन के सात साल के भीतर ही भोजराज परलोक सिधारे। उनके बाद उनके छोटे भाई विक्रमजीत सिंह मेवाड के अधिपति बने। तबसे मीरा के जीवन में दु:खो एवं संघर्ष का सिलसिला आरंभ हो गया । मीरा का यही संघर्ष, उसकी पीडा उसके काव्यवैभव के द्वारा अभिव्यक्त होने लगी। मीरा के विधवा जीवन में असीमित कष्ट एवं दु:ख उसे सहने पडे इसी के परिणामस्वरूप संसार की असारता को देखकर मीरा विरक्त जीवन जीने के

लिए उद्युक्त हो गई। धीरे धीरे मीरा कृष्णभक्ति में डूबते हुए पुरी तरह दुनिया से उसने मुँह मोड लिया था। सामंती अनुशासन, मर्यादा लोकलाज, रुढियों, परंपराऐं आदि से बेखबर होकर मीरा कृष्णभक्ति मे पूरी तरह डूब गई थी। राजथाट, रीतिया आदि से अलग होकर मीरा कृष्ण की आराधना करने लगी थी। मीरा के विद्रोहीनी रुप को देखकर उनके देवर राणा विक्रमजीतसिंह एवं उनकी सासने मीरा पर विभिन्न पाबंदियाँ लगाने का प्रयास किया परंतु मीरा ने सभी बंधनों को तोडकर, राजकुल त्यागकर कृष्ण की भक्ति में मगन होकर नाचने लगी । उनके व्यवहार को देखकर परिवारवालों ने उसे दूषण दिये । यहॉं तक कि मीरा को पागल संबोधित किया जाने लगा। मीरा कहती है -

" पग बाँध घूँगरया नाचारी
लोक कहता मीरा बावरी
सासू कहया कुलनासी री "[1]

राजकुल की मर्यादा के अनुसार पति के न रहने पर पत्नी को आजीवन सफेद वस्त्र पहनकर विधवा के समान जीवन व्यतीत करना चाहिए परंतु मीरा ने लोकलाज एवं मर्यादाओं को तोडकर चल निकली थी। मीरा पागल होकर पैरों में घुंगरू बाँधकर नाच रही है अर्थात उसने राजकुल की परंपराओं का त्याग करके राजकुल का नाच किया है ऐसा मीरा के सास का मानना था। मीरा ने डंके की चोट पर कृष्ण को अपना आराध्य माना था और इसके लिए वह किसीभी हद तक जा सकती थी। मीरा के साहस एवं विद्रोह के संबंध में मैनेजर पांडेय कहते है, "एक स्त्री वह भी मेडता के राठौर राजपुत कुल की बेटी और मेवाड के महाराजा परिवार की बहू, ऊपर से विधवा । यही था मीरा का अपना लोक । उसके धर्म और उसमे स्त्री स्थिति का अनुमान किया जा सकता है लेकिन उसके विरूद्ध की कल्पना की कठिन है। मीरा ने उसके विरूद्ध खुला विद्रोह किया है। उस विद्रोह का साक्षी है उनका जीवन और काव्य"[2] अत: स्पष्ट होता है कि मीरा के इसी विद्रोह के कारण उसे देवर राणा विक्रमजीतसिंह के द्वारा कई बार मारने के प्रयास किए परंतु कृष्णभक्ति के कारण ही शायद बचती रही।

प्रत्यक्ष रुप में हो या अप्रत्यक्ष रुप में मीरा के जीवन एवं काव्य वैभव मे प्रतिबिंबित विद्रोह के अनेक स्वरों ने आधुनिक समय की लेखिकाओं के सामने अपना प्रेरक रूप निर्माण किया है, मीरा ने तत्कालीन समय में परिवार एवं समाज के विरूद्ध विद्रोह नहीं किया होता तो शायद ही आधुनिक नारी आपने अधिकारों के लिए लड पाती। पुरूषसत्ताक समाज एवं सनातन रूढियों परंपराओं को यूँ तोडना उस समय मे कोई आसान बात नहीं थी । मीरा ने यह कदम उठाकर आने वाले नारी जगत के लिए स्वतंत्रता के किवाड खोल दिए थे। जिसके माध्यम से नारी आज उन्नत एवं आजाद होकर अपनी बात कहने में समक्ष बन गई है।

मीरा के विद्रोही व्यवहार के कारण राजकुल की बदनामी से पूरा परिवार त्रस्त हो गया था क्योंकी मीरा उस परिवार की महत्वपूर्ण सदस्य थी। तब मीरा कहती है

"राणो म्हॉने या बदनामी लागे मीठी॥ टेक ॥
कोई निंदो कोई निंदो मै चलूंगी चाल अनूठी॥[3]

मीरा का मंतव्य है की उन्हें बदनाम होना ही अच्छा लगता है। बदनामी के स्वर उन्हे मीठे ही लगते है। चाहे कोई उनकी निंदा करे चाहे कोई उनकी प्रशंसा करें । वह तो अपनी अनोखी चाल से चलना जानती हैं।

समाज एवं परिवार की मान मर्यादा का उन्हे जरा भी विहाज नहीं क्योंकि कृष्णभक्ति मे वह इतना आगे बढ चुकी है की वापस लौटने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।

मीरा ने हमेशा स्वयं के मन की बात की इसमें जो भी बाधा आई उसने उसके खिलाफ संघर्ष किया है। उनके इन्ही विद्रोही स्वरों के कारण मैनेजर पांडेय कहते है " मीरा के काव्य में राजसत्ता, पुरूषसत्ता, लोकरूढी और कुलीनता के विरूद्ध विद्रोह का स्वर जैसा प्रखर है वैसा उस काल के किसी अन्य कवि के यहाँ नही हैं।"[4] मीरा ने राजसत्ता, पुरूषसत्ता रूढियों एवं परंपराओं तथा लोकलाज का त्याग करते हुए नारी स्वतंत्रता की पहल की हैं। नारीयों के होनेवाले शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने का पूरा श्रेय मीरा को ही जाता है। नारी का जो प्रगतिशील, आत्मनिर्भर रूप आज हम देखते है वह मीरा की ही देन है।

मीरा ने अपने हिसाब से जिंदगी व्यतीत की है। सभी प्रकार के भौतिक सुखसुविधाएँ एवं ऐशोआराम, विलासिता को ठुकराकर, संसारिकता को त्यागकर संसार से विरक्त होकर सामाजिक भेदभाव एवं उच्च नीचता का विरोध किया है। राजपरिवार के सम्मान की परवाह न करते हुए उन्होंने अपना पूरा ध्यान कृष्णभक्ति में लगा लिया था। मीरा के संबंध में सुरेश गौतम कहते है "मीरा महल के मर्म एवं सामंती कर्म से भिन्न है, जो पुरूष को तो पूरी स्वतंत्रता देता है लेकिन सारे नियम अनुशासन नारी पर ही गडना चाहता है। मीरा ऐसे स्वार्थी संसार से नाता रखना ही नहीं चाहती।"[5] मीरा को महल एवं सामंती वातावरण से कोई लगाव नहीं था। मीरा को यह स्वीकार्य नहीं था कि सभी अनुशासन के नियम नारी पर ही लागू किए जाए । पुरूषों को इन नियमों से अलग एवं स्वतंत्र रखा जाए। ऐसे पुरूष वर्चस्व से भरे समाज एवं नियमों का मीरा ने तत्कालीन समाज में विराध करके समग्र नारी वर्ग की मुक्ति के लिए बडी जद्दोजहद की थी।

परंपरागत व्यवस्था के साथ टकराना बहुत कठिन था। मीरा को काफी संघर्ष करना पडा इसीलिए उसका जीवन कष्टमय बन गया था। मीरा का तत्कालीन रूढियों परंपराओं को तोडना सचमुच स्त्रियो के बंधनों से मुक्ति दिलाने का प्रयास है। साहसी मीरा के संबंध में सावित्री सिन्हा लिखती है, "स्त्री होने के कारण उन्हे समाज और तत्कालीन वातावरण से अनेक बार लोहा लेना पडा । इस संघर्ष ने उन्हे निराशा नहीं साहस दिया कठिनाईयों की कसौटी पर उनकी अनुभूतियाँ और भी निखर उठी और उनकी अनुभूतियाँ भावनाएँ अग्नि में तपाएं हुए स्वर्ण की कांति दीप्त हो गई।'[6] मीरा के तत्कालीन समाज के विरूद्ध आजीवन संघर्ष करना पडा है। परंतु हालात से पस्त न होकर मीरा ने कठिनाईयों का सामना करते हुए अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है, जो आनेवाली पीढियों की नारियों के लिए आदर्शवत है।

यथास्थितिवादी समाज अपने झूठे सम्मान एवं आदर्शो के लिए जीवनमूल्यों के संस्कार देने में स्त्री के योगदान को नहीं मानते क्योंकि पुरूषसत्ताक समाज है। ऐसे समाज से मुक्ति की आकांक्षा एवं प्रेरणा मीरा के काव्य से मिलती है। सदानंद प्रसाद गुप्त लिखते है, "आज के नारी विमर्श में नारी को स्वतंत्र करने के बदले उसमें नारी को वस्तु के रुप मे परिवर्तित करने की प्रवृत्ति में अधिक विद्यमान है। मीरा का काव्य आत्मा की मुक्ति का काव्य है और उसमे देह की गुलामी की कल्पना की गंध तक नहीं है।"[7] मीरा का संघर्ष ही उसे गरिमा एवं महत्ता प्रदान करता है। उसकी दृष्टि से स्त्री एवं पुरूष में समानता होनी निहायत जरूरी है। यही संकेत मीरा के काव्यसृजन के माध्यम से मिलते है रुढियों, परंपराओं का अनुचित दबाव से मुक्ति की चाह रखती थी । स्त्री पर होनेवाले अनन्वित अत्याचारों से निजात पाने की आकांक्षा मीरा रखती थी। वर्तमान

उच्चशिक्षित नारी अपने अधिकारों के लिए जिस प्रकार पुरूष वर्चस्वित समाज से संघर्ष कर रही है जो संघर्ष अपने समय मे मीरा ने किया था।

**निष्कर्ष -**

भक्तिकाल के सामंती, वर्चस्ववादी, पुरूषसत्ताक समाज व्यवस्था के खोखले आदर्शो एवं बंधनों से मुक्ति की सही दिशा मीरा ने दिखाई है। मानवतावादी समाज रचना मीरा के जीवन का उद्देश्य था। मीरा सामंती समाज के एवं व्यवस्था के प्रति पुरजोर विरोध करती दृष्टव्य होती है। मीरा ने स्त्री स्वतंत्रता का पक्ष लेकर एक नई पहल की थी । आज की नारी मुक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि में मीरा के ही विद्रोही विचार है। स्त्री दासता के खिलाफ आजीवन संघर्षरत मीरा नारियों के सामने आदर्शवत लगती है। मीरा ने प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में मीरा के जीवन तथा काव्य वैभव में प्रतिबिंबित विद्रोह के विभिन्न स्वरों ने आधुनिक लेखिकाओं ने प्रेरणादायी रूप निर्माण किया है। सामंती रुढियों तथा कालबाह्य मान्यताओं के खिलाफ जाकर नारी जगत के लिए स्वतंत्रता के द्वार खोल दिए थे। नारी शोषण के विरूद्ध आवाज उठाकर जी-तोड संघर्ष करके नारी का प्रगतिशील आत्मानिर्भर रुप है, वह मीरा की ही देन है। पुरूषों के वर्चस्व से भरे समाज का विरोध कर मीरा ने स्त्री पुरूष समानता की सराहना की थी। दकियानूसी हालातों से समझौता न करते हुए जिसप्रकार मीरा वर्तमान उच्चशिक्षित नारी में अपने अधिकारों, अस्मिता एवं स्वाभिमान के लिए संघर्ष करके चेतना भर दी है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची-**

1. संपा. परशूराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली पृष्ठ.113
2. मैनेजर पांडेय, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृष्ठ.41
3. संपा. परशूराम चतुर्वेदी,मीराबाई की पदावली, पृष्ठ-110
4. मैनेजर पांडेय, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृष्ठ.22
5. संपा. सुरेश गौतम, मीरा का पुर्नमूल्यांकन पृ.165
6. सावित्री सिन्हा,मध्यकालीन हिंदी कवयित्रीयाँ, पृ.107
7. संपा. सुरेश गौतम, मीरा का पुर्नमूल्यांकन पृ.13

# फणीश्वरनाथ रेणु कृत उपन्यास 'मैला आंचल' में चित्रित राजनीति

**डॉ.सरोज पाटील**
असिस्टंट प्रोफेसर
श्री.शहाजी छ. महाविद्यालय, कोल्हापुर

**सारांश :**

*फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी आंचलिक उपन्यास साहित्य के अग्रणी साहित्यकार रहे हैं। विशेषतः अपने आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने बिहार के अंचलों को यथार्थ वाणी दी है। रेणु स्वयं नेपाली तथा भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रहे थे। परिणामस्वरुप रेणु ने अपने आंचलिक उपन्यासों में अपनी राजनीतिक अनुभूतियों को विशेष प्रभावपूर्ण रुप में प्रस्तुति दी है। रेणु लिखित 'मैला आंचल' उपन्यास इस दृष्टि से महत्वपूर्ण उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में रेणु ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में विकसित विषम राजनिती का चित्रण किया है। रेणु ने मेरीगंज गांव में सक्रिय विभिन्न राजनीतिक दल, वहाँ की चुनाव नीति, नेताओं की सत्ता प्रति की लालसा, पूंजीवाद का प्रभाव, भ्रष्टाचार, नेताओं का नैतिक पतन आदि का वास्तव रेखांकन किया है। यह राजनिती भ्रष्ट, स्वार्थांध, अवसरवादी, आत्मकेंद्रित, अनैतिक एवं जनकल्याण के विचार से कोसों दूर है। यह राजनीति नेताओं की आपसी चढाओढ का आखाडा बनी है। पूंजीपतियों के हाथ का खिलौना बनकर रह गई है। यह भ्रष्टाचार के चंगुल में फंस गई है। यह राजनीति मेरीगंज के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के विघटन का कारण बनी है। इसने मेरीगंज के समाज में भावनात्मक दूरी बनाने का काम किया है।इस राजनीति ने गांव के, समाज के विकास में कोई योगदान नहीं दिया है। मेरीगंज की राजनिती के बहाने रेणुने संपूर्ण भारत विशेषतः पिछडे हुए इलाकों में स्वतंत्रता के बाद विकसित भ्रष्ट, अहितकारी राजनीति को रेखांकित किया है। राजनीति का यह स्वरुप जनतांत्रिक भारत की सबसे बडी विडंबना है।*

***मूलशब्द*** *– अंचल, जनपद, आंदोलन, विद्रोह, देशभक्त, कार्यकर्ता.*

**प्रस्तावना :**

देश का प्रत्येक मानव समूह नियंत्रित होना अनिवार्य है। उस मानव समूह की प्रगति के लिए उसकी निश्चित दिशा एवं व्यवस्था का होना महत्वपूर्ण है। इन दोनों के समन्वय में ही कोई भी मानव समूह प्रगति पथ पर कार्यान्वित हो सकता है। इस महत्वपूर्ण कार्य की जिम्मेदारी राजनीति के कंधों पर होती है। भारत की राजनीति ने इस जिम्मेदारी को कितना निभाया यह मुद्दा चिंतन का क्षेत्र है परंतु भारत में राजनीति का अपना विशेष स्थान रहा है।

वर्तमान समय में देश का प्रत्येक क्षेत्र राजनीति से जुडा है। शहरों से लेकर दूर दराज के देहातों तक राजनीति जनजीवन का अविभाज्य अंग बन चुकी है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत विकसित हुए हिंदी आंचलिक उपन्यासों में स्वतंत्रतापूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज के हर अंग का वास्तव एवं संवेदनशील चित्रण प्राप्त होता है।

देश आजाद होते होते देश में व्यक्तिचेतना का विकास होने लगा। व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति सजग बनते हुए स्वहित के बारे में सोचने लगा। संघर्षमय स्थितियों का निर्माण होने लगा। इस स्थिति से पीडित भारतीय राजनीति समाज के लिए अहितकारी सिध्द हुई। अविकसित क्षेत्रों में राजनीति का प्रवेश पूरी तरह घातक सिध्द हुआ। डॉ.सुमित्रा त्यागी के मतानुसार, 'अविकसित अंचलों में राजनीति का प्रवेश अधिकांशतः अहितकार सिध्द हुआ। चालाक नेतागणों ने वहाँ की भोली भाली जनता को उनके कल्याण का स्वप्न दिखाकर अपनी स्वार्थ सिध्दी के लिए प्रस्तुत किया। आंचलिक उपन्यासो में प्रधान रुप से इसी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति की गई है।' (पृ.२३७, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य में जीवनदर्शन) अतः ग्रामीण क्षेत्रों में राजनीतिक प्रवेश ने जनता की उन्नति में कोई सहयोग नहीं दिया। राजनीतिक कुचक्र से भयावह बने देश के जीवन सिध्दांतों और आदर्शों को विशेषतः आंचलिक उपन्यासकारों ने अत्यंत वास्तव रुप में रेखांकित किया है।

**विवेचन–** फणीश्वरनाथ रेणु भारतीय और नेपाली स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रीय थे। परिणामतः राजनीति के अंतरंग और बहिरंग से परिचित रेणु ने अपने उपन्यासों में विशेष रुप से राजनीति का चित्रण किया है। रेणु कृत 'मैला आंचल' उपन्यास इस दृष्टि से विशेष बना है। विभिन्न राजनीतिक दल, पंचायत राज, राजनीतिक दांवपेंच के अंतर्गत चुनावनीति, सत्ता प्राप्ति की लालसा पूंजीवाद का प्रभाव, नेताओं का नैतिक पतन, भ्रष्टाचार आदि इस चित्रण के अहं मुद्दे हैं।

**विभिन्न राजनीतिक दल –**

किसी भी राजनितीक दल की जिम्मेदारी समाज का गठन करना, विकास करना, अहितकारी तत्वों का दूर करना एवं देश को उन्नत बनाने में सहयोग देना होती है। परंतु स्वतंत्रता के पश्चात्य व्यक्ति चेतना के विकास के चलते भारतीय राजनीतिक तत्व निम्न स्तर पर आ गए। समाज का प्रत्येक वर्ग स्वतंत्र नेतृत्व की इच्छा रखने लगा। परिणामस्वरुप विभिन्न राजनितिक दलों का निर्माण होने लगा। इनका उद्देश्य सत्ता प्राप्ति एवं स्वार्थ सिध्दि बना रहा। सकारात्मक राजनीतिका दिखावा करनेवाले यह पक्ष पूरीतरह भ्रष्ट, जातिवाद पर आधारित थे।

'मैला आंचल' उपन्यास का मेरीगंज गांव पूरी तरह राजनीति से प्रभावित है। यहाँ कीराजनीति में सक्रिय नेता अलग अलग दलों में बटे हुए हैं। अपने दल की प्रशंसा एवं दूसरे दल पर किचड उछालना उन्होंने अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया हुआ है। सोशॅलिस्ट पार्टी का कालीचरण कॉग्रेस पार्टी तथा उसके नेताओं का मजाक उडाता है। अपनी पार्टी कर उसे गर्व है, 'यही पाटी असल पाटी है....... इसमें कोई लीडर नहीं। सभी साथी है, सभी लीडर है।' (पृ.९० मैला आंचल) इन विचारों से गांव के संथाल टोली के लोग प्रसन्न होकर सोशॅलिस्ट पार्टी के सदस्य बन जाते हैं। कांग्रेस पार्टी के कार्यकर्ता बालदेव और वामनदेव गांव में सभा और जुलूसों का आयोजन कर ग्रामीण जनजीवन को राजनीतिक प्रगतिशीलता प्रदान करने में सहयोग देते हैं। उनका मानना है सोशॅलिस्ट पार्टी हिंसावादी है। सोशॅलिस्ट कार्यकर्ताओं का आखाडे में कसरत करना, कुश्ती खेलना आदि हिंसा को बढावा देनेवाले कार्य हैं। गांव में इन दो पार्टियों के अतिरिक्त राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के बौध्दिक वर्ग शुरु हुए हैं। राजपूत टोले के लोग इससे जुडे हैं। सोशॅलिस्ट पार्टीवाले इन वर्गों को 'बुध्दु किलास' कहकर उनका मजाक उडाते हैं। इस प्रकार विभिन्न राजनितिक दलों से जुडे इन नेताओं के पास समाजहित की कोई ठोस योजना नहीं है। इन दलों ने मेरीगंज गांव में भावनात्मक दूरी बनाने का कार्य किया है। अतः विभिन्न राजनीतिक दल प्रजातंत्र के लिए बाधक सिध्द हुए हैं।

**राजनीतिक दांवपेंच –**

राजनीति मूलतः समाज विकास हेतु कार्य करनेवाली व्यवस्था है। यह स्वतंत्र भारत की सबसे बडी विडंबना है कि राजनीति ने अपने मूल उद्देश्य को किनारे कर कुटिलता, अनैतिकता, अवसरवादिता, जातीयता, स्वार्थ, नीति को अपना लिया है। जनसेवा एवं जनविकास की भावना राजनीति से लुप्त हो गई है।

'मैला आंचल' उपन्यासमें राजनीतिक दांवपेंच के अंतर्गत चुनावनीति, सत्ताप्राप्ति की लालसा, पूंजीवाद का प्रभाव, भ्रष्टाचार, नेताओं का नैतिक पतन आदि मुद्दे प्रमुखतः से वर्णित हैं।

**चुनाव नीति–**

राजनीतिक चुनाव जनता एवं शासन के बीच पारस्पारिक संबंधों की डोर है। चुनाव सत्ता निर्माण का प्रमुख साधन है। वस्तुतः चुनाव जनता में अस्तित्व बोध, अधिकार बोध की भावना निर्माण करने का कार्य करते हैं। परंतु सद्यः राजनीति के विषम स्वरुप ने चुनाव प्रक्रिया को विकृत बना दिया है। विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में चुनाव दलबंदी, भ्रष्टाचार, मूल्यविघटन एवं विभिन्न संबंधो, तनावों को लेकर उपस्थित हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास के मेरीगंज गांव में जिला कांग्रेस के सभापति का चुनाव होनेवाला है। चार उम्मीदवारों मेंसे दो असल और दो डमी हैं। इलाके के जूट मिल वाले राजपूत और कटिहार कॉटन मिलवाले सेठ भूमिहार पार्टी से है। ये धनी लोग चुनाव में पानी की तरह पैसा बहा रहे हैं। प्रतिष्ठा की बात बन चुके इस चुनाव में हर कोई अपनी जीत चाहता है। जनहित, लोककल्याण आदि मुद्दे प्रस्तुत चुनाव से पूरी तरह गुम हैं। राजनीतिक आदर्शों को यहाँपर मरोडा जा रहा हैं। यहाँ की चुनावनीति सत्ता हथियाने का अवसर बनी हुई है।

**सत्ता प्राप्ति की लालसा –**

प्रत्येक नेता का अपने पक्ष से एकनिष्ठ होना उसकी नैतिक जिम्मेदारी मानी जाती है। परंतु स्वातंत्र्योत्तर काल में राजनीति के बदलते तेवरों से राजनेता अपना राजनीतिक कर्तव्य भूल सा गया है। अब राजनिती सत्ता हथियाने का साधन बनी हुई है।

प्रस्तुत उपन्यास कें मेरीगंज गांव में अनेक सारे दल कार्यरत हैं। हर दल के नेता का लक्ष्य सत्ता प्राप्ति है। इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु हर नेता आडी-तिरछी, भ्रष्ट, अनैतिक नीति अपनाने में व्यस्त है। मेरीगंज में अनेक सारे छोटे मोटे दलों के साथ कांग्रेस और कम्युनिस्ट आदि दो प्रमुख दल कार्यरत हैं। कांग्रेस का बालदेव, तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद, दुलारचंद कापरा जैसे तस्कर, कम्युनिस्ट पक्ष का कालीचरण, तथा अन्य नेता केवल सत्ता प्राप्ति की लालसा से इन दलों से जुडे हैं। राजनीति इन नेताओं के आपसी चढाओढ का आखाडा बनी है। जनता के प्रति अपने कर्तव्यों को वे भूल से गए हैं जिस पर उन्हें जरा भी मलाल नहीं है।

**पूंजिवाद का प्रभाव –**

वस्तुतः राजनीति से लगाव रखनेवाले हर प्रतिभाशाली व्यक्ति के लिए राजनीति एक खुला मंच है। पर राजनीति के बदलते दौर में वह पूंजीपतियों के हाथ का खिलौना बनकर रह गई है।

मेरीगंज गांव की राजनीति पर तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद का विशेष वर्चस्व है। कांग्रेस दल का प्रतिनिधी विश्वनाथप्रसाद गांव का जमींदार एवं साहुकार है। गांव की पंचायत उसके हाथों में कैद है। पंचायत में गांव के सामान्य व्यक्ति के लिए प्रवेश नही है। मेरीगंज की पूंजीवादी नेतृत्व से प्रभावित राजनीति में धनवान भ्रष्ट नेता सक्रिय है। दुलारचंद कापरा नामक तस्कर कटहा थाने का सेक्रेटरी बना है। जिसके नाम पर अनेक सारे गैरव्यवहार दर्ज हैं। सागरमल नामक भ्रष्ट नेता भी नरपतनगर थाने का कांग्रेस सभापति बना है। जो मारकाट के इल्जामों के साथ राजनीति में सक्रिय है। इसप्रकार सारे धनवान मेरीगंज की राजनीति की डोर अपने हाथों मे थामकर मनमानी राजनीति चला रहे है। इनके पास जनहित की कोई योजना नहीं है।

**भ्रष्टाचार –**

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति को भ्रष्टाचार रुपी दीमक लग चुकी हैं। राजनीति से जुडनेवाला हर नेता अपने लिए उंचे मुकाम की इच्छा रखता है तथा उसे पूर्ण करने के लिए भ्रष्टाचार रुपी सीढियों का सहारा ले रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात इसी प्रवृत्ति के चलते आंचलिक समाज विशेष विकास नहीं कर पाया है। डॉ.राज कुमारी सिंह के अनुसार, 'वर्ग वैषम्य' की खाई ग्रामीण अंचलों में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भी बनी रही है।.........उंची जाति के लोग अपनी ही बनाई हुई सामाजिक व्यवस्था विधान में बंधे हुए हैं। किंतु विडंबना यह है कि उसी के विरुध्द सक्रिय होकर भ्रष्ट होते जा रहे हैं। भ्रष्टाचार मुख्य रुप से बिभत्स व विकराल रुप धारण करने लगा है। (पृ.२१०, हिंदी तथा अंग्रेजी के आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन)भ्रष्टाचार के उन्मुक्त विकास से देश के अंचल दब गए हैं।

मेरीगंज में भ्रष्ट कांग्रेसी नेतोओं ने पंचायत के साथ सभी महत्वपूर्ण पद हथिया लिए है। पंचायत तो इनके साथ का खिलौना बन चुकी है। पंचायत में नियम बनाने और तोडने के सारे अधिकार इन्हीं लोगों के हाथ में हैं। जिससे सामान्य जनता के साथ न्याय की संभावना बिल्कुल असंभव है। इन नेताओं की धनप्राप्ति और संचय की भूख असीमित है। इस भूख का समाधान भ्रष्टाचार व्दारा हो रहा है। अतः यहॉं की राजनीति में सक्रिय नेता जनहित में क्या योगदान दे रहे हैं यह अहं मुद्दा हैं।

**नेताओं का नैतिक पतन :**

राजनीति के आदर्श तत्वों के अंतर्गत नेता निस्वार्थ, तत्वनिष्ठ एवं नैतिक मुल्यों के प्रति समर्पित हो यह उपेक्षित होता है। परंतु दिन-ब-दिन राजनीति का स्वरुप विकृत बनता जा रहा है। आज के अवसरवादी राजनीतिक क्षेत्र में सत्ताप्राप्ति के उपरांत भी सत्ता बनाए रखना एक कौशल माना जा रहा है। इसके लिए राजनेताओंव्दारा अनेक सारे अनैतिक हथकंडे अपनाएं जा रहे हैं।

''राजनीति से जीवनमूल्यों का मानो कोई संबंध ही नहीं रहा है। स्वार्थसिध्दी और प्रवंचना ही उसकी आत्मा में बस गए हैं।''(पृ.४३, रचनाकार रेणु) अर्थात राजनीति अनैतिकता की चंगुल में फंसती जा रही है।

मेरीगंज गांव की राजनीति में अनेक सारे दल सक्रिय हैं। इन दलों को पूंजिपतियों, भ्रष्ट नेताओं ने अपने कब्जे में कर लिया है। तहसीलदार एवं कांग्रेसी नेता विश्वनाथ प्रसाद ने सादे कागज पर अंगूठे का निशान लगवाकर बहुत सारी जमीन एवं पैसा कमाया है। कांग्रेस सभापति सागरमल देशद्रोही है। कटहा थाना का सेक्रेटरी कापरा भारत पाक सीमा पर तस्करी करता है। साथ में लडकियों का भी व्यापार करता है। उसकी तस्करी पर रोक लगाने के लिए प्रयत्नशील कार्यकर्ता बावनदास की वह हत्या करवाता है। इसके साथ कॉमरेड नेताओं का गलत रास्ते धन कमाना, कम्युनिस्ट नेता कालीचरण का चोरी के इल्जाम में जेल जाना आदि उदाहरण नेताओं के नैतिक पतन का दर्शन कराते हैं। स्वार्थ सिध्दि इन नेताओं का जीवन लक्ष बना है।

**संदर्भ ग्रंथ -**

1. - मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
2. -स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य में जीवनदर्शन, डॉ.सुमित्रा त्यागी, साहित्य
3. प्रकाशन, मालीवाडा, दिल्ली, प्रथम सं. १९७८
4. -हिंदी तथा अंग्रेजी के आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ.राजकुमारी सिंह,
5. अन्नपुर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्रथम सं. १९८८
6. -रचनाकार रेणु, डॉ.पुष्पा जतकर, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम सं. १९९२

# तौलनिक साहित्याभ्यासातील संस्कृती अभ्यासाचे महत्व

**जयश्री सुरेश बाबर.**
मु.पो.काले,
ता. कराड, जि. सातारा.
पिन: ४१५ १०४

**१) प्रस्तावना-**

निरनिराळ्या कालखंडात झालेल्या लढाया, आक्रमणे यांना बळी न पडता ममत्व दृष्टीने सर्वांच्या संस्कृतीला आपल्यात सामावून घेणारी 'सर्वसंग्राहक' म्हणून गौरविण्यात आलेल्या भारतीय संस्कृतीवर तुमचे, आमचे व अनेकांचे मनापासून प्रेम आहे. विकास, उत्कर्ष या बढतीला बळी न पडता नवे स्विकारून जुन्याचे संस्कार व्यक्तीच्या कणाकणात पेरणारी आपली संस्कृती जगभर अभ्यासण्याचा विषय ठरली आहे. भारताला अष्टकलांमध्ये न मावणारा, निसर्गात लपलेला, मातीमध्ये मिसळलेला सांस्कृतिक वारसा मिळाला आहे. अशा या संस्कृतीचा अभ्यास इतर एका किंवा अनेक संस्कृतींशी तुलनात्मक पद्धतीने केला तर तौलनिक साहित्याभ्यासातील संस्कृतिसन्मुखतचे महत्व समजण्यास मदत होते.

**२) तौलनिक साहित्याभ्यास स्वरूप व व्याख्या-**

रोजच्या व्यवहारात 'तुलना' या शब्दाला जो अर्थ आहे तो अर्थ साहित्याभ्यासामध्ये नाही. तौलनिक साहित्याभ्यास म्हणजे तुलनेच्या साहाय्याने साहित्याचा केलेला अभ्यास होय. तुलना करण्यासाठी एकापेक्षा अधिक वस्तूंची, घटकांची, व्यक्तींची, प्रदेशांची आवश्यकता असते. साहित्याभ्यासामध्ये तुलनेसाठी कमीत कमी दोन लेखक, दोन भाषा, दोन भिन्न भाषिक साहित्यकृती असणे गरजेचे आहे. अन्यथा तुलना होऊ शकत नाही. वसंत बापट यांच्या मते, " तुलनेच्या आधाराने केलेला साहित्यांचा अभ्यास तो तौलनिक साहित्याभ्यास होय." म्हणजेच ऐतिहासिक, मानसशास्त्रीय, आदिबंधात्मक पद्धतींच्या आधारे जसा साहित्याचा अभ्यास केला जातो तसा तुलनेच्या आधाराने साहित्याचा अभ्यास केला तर तो तौलनिक साहित्याभ्यास होय. रोजच्या व्यवहारात तुलना चांगले, वाईट, श्रेष्ठ, कनिष्ठ ठरवण्यासाठी केली जाते. उदा: पदार्थ, कपडे, रंग, फुले यांच्या बाबतीत व्यक्ती निवड करत असतात. एखाद्या गावाबद्दलही व्यक्तीला आवड- नावड असते. म्हणूनच प्रादेशिक साहित्य जन्माला येते. साहित्याच्या व्यवहारात तुलनेचा वापर श्रेष्ठ, कनिष्ठ सारखे भेदभाव करण्यासाठी होत नाही तर साम्य- भेद, प्रभव- प्रभाव अभ्यासण्यासाठी केला जातो. पाश्चात्य अभ्यासक एस. एस. प्रावर म्हणतात, *" एकापेक्षा अधिक साहित्यकृतींची (यांत साहित्यकृती, साहित्यसिद्धांत व समीक्षा- ग्रंथही आलेच) परस्पर भेद, साधर्म्य, स्थल- मूलाधार किंवा प्रभाव यांच्या शोधाद्वारे केलेली समीक्षा म्हणजे तौलनिक साहित्य होय. किंवा दोन अथवा भिन्नभाषिक समाजगटातील वाङ्मयीन संबंध आणि देवघेव- दळणवळण यांचा तो अभ्यास असतो."* प्रावर यांची व्याख्या विस्तृत अर्थ व्यक्त करते.

एखादा भु-प्रदेश, तेथील वातावरण, माणसांची बोली भाषा, व्यवसाय, राहणीमान, ग्रामउत्सव, पिके, मातीचे गुणधर्म, खनिज संपत्ती, मुख्यउद्योग व जोडधंदे, स्त्रीयांचे स्थान, पाण्याची व्यवस्था इ. सारख्या घटकांचा तौलनिक साहित्याभ्यास होऊ शकतो.

तुलनात्मक साहित्याभ्यास करताना प्रभव-प्रभाव यांचा अभ्यास वेगवेगळा करून चालत नाही. प्रभव आणि प्रभाव यांचा अभ्यास परस्परांच्या संबंधात करावा लागतो. उदा: बीज तैसे फळ म्हणजे ज्या जातीचे बीज असते त्याच जातीचे रोप उगवते व त्या बिजाप्रमाणे त्या झाडाला, फळाला गुणधर्म प्राप्त होतात. अन्यथा बाभळीच्या झाडाला आंबे लागले असते. प्रभव म्हणजे बीज आणि प्रभाव म्हणजे त्यातून निर्माण झालेले खोड,झाड,पान, फुल,फळ सर्वकाही. बीज आणि झाड यांचा विचार एकत्रच करावा लागतो. सूर्य व त्याची उष्णता, फुल व त्याचा वास यातील अभेद्य संबंध म्हणजे प्रभव आणि प्रभाव यांचा विचार होय. एकनाथी भारुड, तुकारामांच्या गाथा यांचा अभ्यासही प्रभव-प्रभाव चे उदाहरण आहे. भारुडांचा अभ्यास करताना संत एकनाथ महाराजांचे जीवन, सामाजिक परिसर, कालखंड यांचा अभ्यास केला तरच भारुडांचे मूल्यमापन व्यवस्थित होते. संत एकनाथ व त्यांची भारुडे यांचा अभ्यास वेगवेगळा करणे शक्य नाही.

तुलनात्मक साहित्यामध्ये राष्ट्रीय साहित्य, विश्वसाहित्य, अनुवादित साहित्य संस्कृती यांचाही अभ्यास केला जातो. विश्वसाहित्य म्हणजे जगभरातील साहित्य नव्हे तर स्थळ, काळाच्या सीमा ओलांडून सर्वांच्या आवडीचा, वाचनाचा, अभ्यासाचा, चर्चेचा विषय झालेले साहित्य होय. उदा: भगवद्‌गीता, रामायण, महाभारत, बायबल हे पुराणग्रंथ जगप्रसिद्ध आहेत शिवाय अभ्यासविषय आहेत. भगवद्‌गीतेचा इतर भाषांमध्ये झालेला अनुवाद, अलीकडे लक्ष्मण माने यांच्या "उपरा" आत्मकथनाचा अनेक भाषांमध्ये झालेला अनुवाद म्हणजे त्या- त्या भाषिक समाजात झालेली साहित्यिक, सांस्कृतिक देवाणघेवाण आहे. अनुवादामुळे साहित्य सर्वांच्या पर्यत पोहचते आणि ते विश्वसाहित्य म्हणून गणले जाते. साहित्याच्या भाषिक सीमा नाहीशा होतात तेव्हा ते साहित्य स्थळ, काळाच्या पलीकडे जाते आणि साहित्य व संस्कृती यांचे इतर साहित्य व संस्कृतीशी नाते जुळते. यांचा अभ्यास करण्यासाठी तुलनात्मक अभ्यास पद्धती उपयोगी ठरते. चंद्रशेखर जहागीरदार यांच्या मते, *" सांस्कृतिक सापेक्षतावादाला अनुसरून तौलणिक साहित्याभ्यास हा संस्कृतिविशिष्ट प्रमाणकांवर आधारलेला असला पाहिजे. ही एक दिशा झाली. दुसरी दिशा म्हणजे तौलनिक साहित्य हे मानवजातीच्या सार्वत्रिक मूल्यांना आधारभूत मानून देश, काल, वंश या पलीकडे असणाऱ्या वैश्विकतेचा शोध घेते असे सांगणारी आहे."* लेखकाने दाखवलेली पहिली दिशा तौलनिक साहित्याभ्यासातील संस्कृती अभ्यासाचे महत्व विशद करते. ही संस्कृतिविशिष्ट प्रमाणके म्हणजे सण, उत्सव, परंपरा, चालीरिती, बोली संप्रदाय, महत्वाच्या व्यक्ती, तेथील भौगोलिक वातावरण, साहित्य यांचा अभ्यास असे म्हणावयास हरकत नाही.

**३)तौलणिक साहित्याभ्यासातील संस्कृतिसन्मुखतेचे महत्व -**

संस्कृती व्यक्तीच्या जगण्याचा भाग आहे. संस्कृतीचा व्यक्तीच्या विचारांवर प्रभाव पडत असतो. संस्कृतीच्या माध्यमातून तो आपला आनंद, दुःख व्यक्त करतो. मानव प्राणी संस्कृतीचे प्रदर्शन आपल्या राहणीमानातून, विचारांतून, धर्मसंकल्पनांमधून व्यक्त करत असतो. बऱ्याच दिवसा नंतर आपले आप्तस्वकीय भेटले तर ते अगदी सहज म्हणतात, 'तुझ्यात फार बदल झाला आहे', काळानुरूप हा बदल प्रत्येक व्यक्तीमध्ये होत असतो. हा बदल संस्कृतीच्या संदर्भात असतो. कालौघात व्यक्तीचा अनेक ठिकानांशी, माणसांशी संपर्क येतो व त्या व्यक्तीच्या पोशाखात, विचारांमध्ये, बोलण्यामध्ये बदल जाणवतो. म्हणजे जुनी संस्कृती नवीन रूप धारण करते. व्यक्तीची वैचारिक स्थिती सुधारेल तसा तो संस्कृतीच्या वेगवेगळ्या अंगांना स्वीकार व नकार देत राहतो. 'संस्कृती' ही देण्या-घेण्याचा विषय आहे. त्या- त्या काळच्या संस्कृती त्या पूर्वीच्या व्यक्तींचा वारसा असते. व्यक्त- अव्यक्त, दृश्य- अदृश्य, भौतिक- अभौतिक, सजीव- निर्जीव अशा कित्येक घटकांना ती आपल्यात सामावून घेते. गणेश देवी पाश्चात्य तौलनिक साहित्याची जी असांस्कृतीक आयात झाली त्याला दोन घटक जबाबदार असल्याचे नमूद करताना त्यातील दुसरा घटक *"परकीय संस्कृतीला सर्वसंग्राहक पद्धतीचा*

*प्रतिसाद देणारी खास अशी भारतीय प्रवृत्ती."* हा असल्याचे सांगतात. आपल्या संस्कृतीचा 'सर्वसंग्राहक' हा गुण विशेष यातून स्पष्ट होतो.

देशांतर्गत किंवा विदेशात व्यापार, लढाई, सहल, संशोधन, प्रकल्प,नोकरी, प्रसारमाध्यमे इ. कारणांमुळे दोन किंवा अधिक संस्कृतींचा परस्पर संबंध येतो. हा संबंध तटस्थ नसतो. यातून संस्कृतीअंतर्गत आदन- प्रदान होत असते. डॉ. भरत जाधव लिखित **"तौलनिक साहित्याभ्यास नव्या दिशा"** या प्रकाशनाच्या वाटेवर असणाऱ्या पुस्तकात विद्यार्थी, संशोधक, वाचक या सर्वांना तौलनिक साहित्याभ्यास या नवीन म्हणून गणल्या जाणाऱ्या शाखेबद्दलच्या संकल्पना साध्या, सोप्प्या भाषेत सांगितल्या आहेत. तुलनेच्या अंगाने संस्कृतीचा अभ्यास कसा करता येईल याबद्दल त्यांचे विवेचन, *"तौलनिक संस्कृतीअभ्यास हा फक्त साहित्यातील अभ्यास न राहता बहु सांस्कृतिक (Multiculturalism),आंतरसांस्कृतिक (Trans- culturalism)आणि संस्कृतीसंकर (Cross- culture) याचाही अभ्यास असतो. साहित्याबरोबर चित्रपट, नाटक, प्रसिद्ध संस्कृती, दृकश्राव्य माध्यमातून येणारी संस्कृती, टी. व्ही., ई- माध्यमे, प्रसारमाध्यमे, मालिका यांच्यातून घडणारे सांस्कृतिक दर्शन, व्यक्ती व्यक्तीमधील संवाद, कामे, नातेसंबंध तसेच इतर सामाजिक शास्त्रामधून दृष्टोत्पत्तीस येणारी सांस्कृतिक एकात्मता व विविधता यांचाही अभ्यास तौलनिक साहित्याभ्यासामध्ये केला जातो."* विषयाच्या अनुषंगाने याचे विवेचन पुढीलप्रमाणे करता येते-

**अ) बहु सांस्कृतिक-**

भारताच्या वैविध्यपूर्ण संस्कृतीचा भारताबाहेर अनेक देशांवर प्रभाव पडला आहे. मॉरिशस सारख्या देशाला तर **'छोटा हिंदुस्थान'** म्हटले जावे इतके दोन्ही देशांमध्ये साम्य आहे. ब्रिटिशांनी भारतीय लोकांना मजूर म्हणून राबविण्यासाठी मॉरिशस ला नेले. या भारतीय मजूरांच्या मार्फत भारतीय संस्कृती व मॉरिशसची संस्कृती यांच्यात परस्पर संबंध आला. भारतातून मॉरिशसला मजूर म्हणून गेलेल्या व्यक्ती भारताच्या विविध भागांतील होत्या. त्यांचे धर्म, भाषा, राहणीमान, संस्कृती, खानपान वेगवेगळे होते. भारताच्या रहिवासी असलेल्या पण सांस्कृतिक भिन्नता असलेल्या व्यक्तींचा मॉरिशस मधील सांस्कृतिक वातावरणाशी जवळून संबंध आला. मात्र भारतीय वंशाचे लोक स्वतःची संस्कृती, भाषा, राहणीमान विसरले नव्हते. त्या परक्या देशात जाऊन त्यांनी स्वतःची सांस्कृती जपण्याचा सातत्याने प्रयत्न केला. याबद्दल बीदन आबा म्हणतात, "मॉरिशसमध्ये भारतीय अप्रवासी मजूर म्हणून जर आले नसते, तर भारतीय संस्कृती, धर्म व भाषेची छाप कोठेच दिसली नसती. एखादी संस्कृती, धर्म, चालीरिती, परंपरा या गोष्टी आपोआप चालून येत नसतात. हा गोष्टींना मानवाच्या हृदयाच्या आधाराची गरज पडते. आपल्या संस्कृतीबद्दल, धर्माबद्दल आस्था व प्रेम नसेल, तर ती संस्कृती, भाषा, धर्म सर्व संपुष्टात येतात." इथे फक्त भारतीयांनाच नव्हे तर परकीयांना सुद्धा भारतीय संस्कृती बद्दल विलक्षण आस्था आहे. अनेक परदेशवासीयांची मने भारतीय संस्कृती बद्दल निष्ठा बाळगतात व तिच्या साकाराचा शोध घेण्यासाठी भारतात येतात. न थकता घाम गाळत डोंगर- दऱ्या पालथे घालतात. संस्कृतीचा जास्तीत जास्त संचय करण्यासाठी फोटो काढणे, व्हिडीओ काढणे, लिहून ठेवणे, टेपरेकॉर्डर वर काही गोष्टी रेकॉर्ड करून ठेवत असतात. त्यांचे हे वागणे बघताना आपल्याला ते वेडेपणा सारखे वाटू शकेल पण येणारा काळ संस्कृतीह्रासाकडे झुकत आहे. त्यामुळे नव्या पिढीला संस्कृतीबद्दल माहिती मिळावी, त्यांना संस्कृतीची जाण रहावी यासाठी त्यांच्याकडून केले जाणारे हे सर्व प्रयत्न अत्यंत वंदनीय असे आहे.

धर्म आणि कर्म यांच्याशी जवळचे नाते सांगणाऱ्या भारतीयांनी मॉरिशस मध्ये भारतीय देवी- देवतांची मंदिरे बांधली, दिवसभर काम करून आलेला थकवा घालवण्यासाठी भारतीय पुराण ग्रंथांची पारायणे सुरू केली. ब्रिटिश लोक

भारतीय मजुरांकडून अतिश्रम करून घेत असत त्यातून स्वतःला उत्साही ठेवण्यासाठी मजुरांनी आपले सण, उसत्व, थोर पुरुषांच्या जयंत्या साजरे करण्यास सुरुवात केली. आजही मॉरिशस मध्ये भारतातील कित्येक सण, उत्सव साजरे होतात.

उदा: गोंधळ, दीपावली, होळी, रक्षाबंधन, गुढीपाडवा इ.

हे सण भारत व मॉरिशस मध्ये एकसारख्या पद्धतीने साजरे होतात. मॉरिशस मध्ये दीपावली या सणाच्या निमित्ताने घर, अंगणाची स्वछता केली जाते. अनेक प्रकारचे मिष्ठान्न तयार करतात, रंगीबेरंगी रोषणाई, हरतऱ्हेचे फटाके, मातीचे दिवे लावले जातात. गायन, वादन, नाट्य स्पर्धा, चित्रकला स्पर्धा होतात. लहान मुले त्यांच्या आवडीप्रमाणे व जमतील तसे आकाश दिवे तयार करतात. भारतातील लक्ष्मीपूजनाचा कार्यक्रम तिथेही तेवढ्याच प्रसन्नपणे साजरा होतो. शिवरात्री च्या वेळी , "शिव हरे शिव राम सखे प्रभू।"

किंवा

"वह शक्ती हमे दे दयानिधे।
कर्तव्य मार्गपर डट जावे।
पर सेवापर उपाकर मे हम।
जग जीवन सफल बना जावे।।"

अशा पद्धतीने कीर्तन, भजन म्हणत स्त्री, पुरूष, लहानगी मुले यांची मिरवणूक निघते. याशिवाय नेहमी सत्याचा विजय होतो हे सांगणारे होळी, गुढीपाडवा हे सण तिथे साजरे होतात. होळीच्या सणाला मॉरिशस मध्ये 'फते गागला' म्हणजेच 'वेड्यांचा सण' असे म्हणतात. दोन्ही देशांमध्ये खाद्यसंस्कृती, वेशभूषा यातही साधर्म्य- वैधर्म्य आढळते. गुलाबजाम, समोसे, शंकरपाळ्या, करंजी,आपल्या भागातील डाळीच्या पिठाची भजी त्यांच्या परिचयाची आहेतच शिवाय हे खाद्यपदार्थ ते आवडीने खातात. भारतीय विवाहित व अविवाहित स्त्रियांच्या पेहरावतील वेगळेपण तिथेही आहे. विवाहित स्त्रिया वेगवेगळ्या पद्धतीने म्हणजेच त्यांच्या संस्कृती प्रमाणे साडी नेसतात. कुमारी मुली पंजाबी ड्रेस वापरतात. पुरुषांचे पोशाख सुद्धा भारतीय पद्धतीचे असतात आणि विशेष उल्लेखनीय बाब म्हणजे पूजा - यज्ञ, होम- हवन करताना ते धोतर नेसतात. या सणासुदीच्या प्रसंगी प्रसारमाध्यमे गायन, वादन च्या माध्यमातून एका बाजूला शुभेच्छा देण्याचे काम करत असतात आणि दुसऱ्या बाजूला संस्कृती संवर्धन, संस्कृती चा विकास करण्यात हातभार लावत असतात. एकूणच भारतातून गुलाम म्हणून गेलेल्या लोकांनी भारतीय संस्कृतीची प्रतिकृती मॉरिशस मध्ये उभारली आहे. आता दळणवळणाच्या सुधारित सोई असल्यामुळे अजूनही भारत, भारतीय व त्यांची संस्कृती याबद्दल मॉरिशस तसेच आशियाई देश व इतर पाश्चात्य देशांना आकर्षण आहे.

तुलनात्मक साहित्याभ्यास ही अशी अभ्यास शाखा आहे जीच्याद्वारे फक्त एक दोन नव्हे तर अनेक संस्कृतींचा परस्परसंबंध तपासता येऊ शकतो. एका पेक्षा अनेक संस्कृती कशा परस्परावलंबी आहेत, कशा एकसंघ आहेत याचा शोध घेण्यात तौलनिक साहित्याभ्यासाची मदत होते.

**ब) आंतरसांस्कृतिक -**

आंतरसांस्कृतिक व संस्कृतीसंकर या दोन्ही मध्ये सूक्ष्म असा भेद आहे. आंतरसांस्कृतिक म्हणजे एक गाव, एक देश किंवा अभ्यासासाठी घेतलेला एखादा प्रदेश यांच्या अंतर्गत असलेल्या एका किंवा संस्कृतीचा इतर संस्कृतींशी असलेला सहसंबंध होय. हा सहसंबंध तुलनात्मक अंगाने तपासणे आवश्यक आहे. त्यातून साम्य- भेद, प्रभव- प्रभाव

समजण्यास सहकार्य होते. एक संस्कृती एकापेक्षा अनेक संस्कृतींशी बांधली गेलेली असते. उदा: सातारा जिल्ह्यांतर्गत हिंदू, मुस्लिम, ख्रिश्चन, धनगर, कोष्टी, साळी, कोळी,कुंभार, लोहार, महार, मांग, चांभार, ब्राम्हण इ. जातीअंतर्गत विविधता आढळते. ही जातीअंतर्गत विविधता फक्त जातीपूरती मर्यादित नाही तर त्यांच्या बोलण्यातील शब्द वेगळे असतात, त्यांची धार्मिक कार्य करण्याची पद्धत वेगळी असते, राहणीमान, खाद्यपदार्थ यामध्येही थोडेफार साम्य - भेद दिसून येतात. म्हणजेच हिंदू संस्कृती अभ्यासत असताना त्या संस्कृतीचा तिच्या आसपास असणाऱ्या इतर संस्कृतींशी संबंध येत असतो व त्या संस्कृतींचा एकमेकींच्यावर प्रभाव पडत असतो. भारताने पाश्चात्य संस्कृती आत्मसात केली, मुलींनी उच्च शिक्षण घेतले, त्या नोकरी करू लागल्या तरी काही जाती- जमातीं मध्ये शिक्षणाला महत्व नाही व सर्वत्र स्त्री- पुरुष असमानता आहे. धनगर समाजात स्त्रिया ओवी गाताना म्हणतात,

आपुन दोघी सोबतीनी, एक पान खाऊ
इंग्रजी साळत शिकायला जाऊ
इंग्रजी साळत बत्तीस मुलं
आपापल्या बहिणीला गुलाबाची फुलं
गुलाबांच्या फुलांचा घमघम वास
आत्याची पोरगी मॅट्रिक पास
नवऱ्याला म्हणती भांडी घास
नवरा उठला दणक्यांनी
लाथ बसली खणक्यांनी..

या ओवीमधून धनगर समाजातील स्त्रियांचा शिक्षणविषयक दृष्टीकोन समजतो. धनगर स्त्रीने उच्च शिक्षण घेतले तरी घरकामातून तिची सुटका नाही असे या ओवीतून सांगायचे आहे. धनगर समाजाबरोबर इतर जाती-जमातींमध्ये स्त्रियांना शिकलेली आहे म्हणून पुरुषांच्या बरोबरीने वागवले जात नाही. हा भेदभाव अभ्यासत असताना त्या- त्या भागाची, जातीची संस्कृती तुनात्मक दृष्टीने अभ्यासली तर त्यांमध्ये असलेल्या समान व भिन्न घटकांचा शोध घेता येईल. डॉ. गुंथर सोंथायमर या पाश्चात्य अभ्यासकाने धनगरांच्या दैवतांचा अभ्यास करून त्यावर जर्मन भाषेत ग्रंथ लिहला आहे. यातून एका बाजूला भारतीय धनगर समाजाची जर्मन मध्ये ओळख झाली तर दुसऱ्या बाजूला धनगर समाजाचा जर्मन वाचकांच्या मनावर प्रभाव पडला. डॉ. फेल्डहाउस यांनी मराठीतील "गोविंदप्रभुचरित्र" चा "The Mad God of Riddipur" असा इंग्रज अनुवाद केला आहे. अनुवादामुळे गोविंदप्रभुचरित्र मधून आपल्या भागातील संस्कृती बद्दलची माहिती इंग्रजी वाचकांना कळते व आंतरसांस्कृतिक संबंध येतो. देशाच्या सांस्कृतिक इतिहासामध्ये संप्रदायांचे जे महत्व आहे त्याचा अभ्यास केला तरी आंतरसांस्कृतीक संबंध लक्षात येतात. तत्त्वज्ञान, दैवते, भक्ती मार्ग, आचारधर्म, मराठी भाषेवरचे प्रेम इ. घटकांच्या आधारे महानुभाव पंथ आणि वारकरी पंथ यांचा तुलनात्मक अभ्यास केला तर त्यांचे महाराष्ट्राच्या सांस्कृतिक उभारणीतील महत्व लक्षात येते.

**क) संस्कृतीसंकर -**

भिन्न संस्कृतींचा संबंध अगदी सहज होत असतो किंवा काही भौगोलिक कारणांमुळे तो घडत असतो. उदा: महाराष्ट्र व कर्नाटक सीमाभाग 'संस्कृतीसंकर' म्हणजेच 'Cross - culture' चे उत्तम उदाहरण आहे. या सीमाभागातील प्रदेशात वावरत असताना हा संस्कृतीसंकर अगदी सहज नजरेस येतो. तेथील दुकानांच्या पाट्या कन्नड, मराठी, इंग्रजी, हिंदी भाषा

मिश्रित असतात. कारण तो भाग ठळकपणे दिसणाऱ्या दोन संस्कृतींचा संकर आहे. त्या अंतर्गत इतर उपसंस्कृती सुद्धा आहेत. महाराष्ट्र व कर्नाटक सीमाप्रश्न बाजूला ठेवला तर दोन्ही राज्यांचा एकमेकांवर साहित्यिक, असहित्यिक असा प्रभाव पडला आहे. राजकीय वाद दोन संस्कृतींचा संकर थांबवू शकत नाहीत. महाराष्ट्रात "कानडा राजा पंढरीचा" असे म्हणत जयघोष केला जातो तेव्हा भाषिक भेद बाजूला जातात दोन संस्कृती एकत्र येतात व एक होऊन जातात. याशिवाय महाराष्ट्र व आंध्रप्रदेश म्हणजे आजचे तेलंगणा यांच्यामध्ये सांस्कृतिक आदानप्रदान झाल्याचे पुरावे "गाथासप्तशती" ग्रंथामध्ये दिसून येतात. मराठी मध्ये आज वापरले जाणारे शब्द व संस्कृत,कन्नड,पाली, तेलगू भाषांतील शब्द यांच्यामध्ये साम्य असल्याचे अभ्यासकांचे मत आहे. महाराष्ट्राचे दैवत श्री विठ्ठल,शिव आंध्रप्रदेश मध्ये लोकप्रिय आहे तर तिथले तिरुपती बालाजी हे दैवत महाराष्ट्राचे मध्ये लोकप्रिय आहे. महाराष्ट्रातील मराठवाड्याचा भाग व आंध्रप्रदेश यांच्या सीमारेषेवर संस्कृतीसंकर झाला आहे. याशिवाय पालघर, नाशिक, धुळे यांचा गुजरात राज्याशी, उत्तरेच्या जिल्यांचा मध्यप्रदेश बरोबर, पूर्वेच्या गोंदिया, गडचिरोली जिल्यांचा छत्तीसगड बरोबर अगदी सहज सांस्कृतिक संबंध येत असतो त्यामुळे त्या सीमावर्ती भागात संस्कृतीसंकर ची उदाहरणे दिसून येतात. गोवा राज्याचे महाराष्ट्रा बरोबर घट्ट नाते आहे. गोव्याबद्दल गोमंतकीय साहित्यातून आलेले चित्रण तेथील संस्कृतीचा लिखित नमुना आहे.

**४) निष्कर्ष-**

अ) आपला देश, आपली संस्कृती यांचे इतर देशांच्या संदर्भातील संबंध तटस्थ भावनेने साम्य- भेद, प्रभव- प्रभाव या अंगाने तपासणे हे जोखमीचे काम तुलनात्मक साहित्याभ्यासामुळे शक्य होते.

ब) भारतीय संस्कृती श्रेष्ठ आहेच त्याबद्दल दुमत नाही, पण भारतीय संस्कृती व जपान, चीन, अमेरिका, युरोप इ. सारख्या अनेक देशांची संस्कृती यांचा तुलनात्मक अभ्यास केल्या नंतर वेशिष्ट्यांबरोबर कित्येक अनाकलनीय गोष्टी समजण्यास मदत होते.

क) आपल्यात अदृश्य स्वरूपात वावरणारी 'संस्कृती' पाश्चात्य देशांच्या नैतिकतेसमोर नष्ट झाली नाही. किंबहु ना भारत देशाची संस्कृती पूर्वीपासून पाश्चात्य संस्कृतीपेक्षा विकसित होती याची साक्ष शिलालेख, मंदिरे, हडप्पा संस्कृती इ. पुराव्यांवरून होते.

ड) संस्कृतीचे अस्तित्व शब्दांमधून व्यक्त करणे व तिचा इतर संस्कृतींशी तुलनात्मक अभ्यास करणे ही अरुपाला रूप देण्याची एक अवघड कला आहे याचा प्रत्यय अभ्यासकाला आल्याशिवाय राहणार नाही.

इ) अधिकाराने व्यक्तिच्या मनावर संस्कार करणारी संस्कृती समजून घेताना, सामान्य ते असामान्य, लहानग्यांपासून ते मोठ्यांपर्यंत, जातीपातीच्या पलीकडे जाऊन फक्त 'माणूस' म्हणून गणल्या जाणाऱ्या प्रत्येकाकडून तिच्या अस्ताव्यस्त जाणिवांची माहिती मिळवून त्याचा तुलनात्मक अभ्यास झाला तर संस्कृतीचा अभ्यास उत्तम रीतीने पार पडेल.

**५) समारोप-**

'संस्कृती म्हणजे काय?' हे पर्यटनाच्या नावाखाली मजा - मस्ती करून समजण्यासारखे नाही. ते समजण्यासाठी तिच्यावर प्रेम हवे, तिच्याबद्दल आत्मीयता हवी. संस्कृतीकडे बघण्याचा दृष्टिकोन उदात्त व भव्य असेल तर एका संस्कृतीचा इतर संस्कृती बरोबर होणारा तुलनात्मक अभ्यास म्हणजे अनेक संस्कृतींचा संकर कसा झाला, त्यामागे कोणती कारणे होती याचा लिखित पुरावा असेल.

**६) संदर्भ ग्रंथ-**


1. बापट वसंत, "तौलनिक साहित्याभ्यास मूलतत्त्वे आणि दिशा", मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, १९८१.
2. मंचरकर र. बा., "तौलनिक साहित्य आणि मध्ययुगीन मराठी वाड्मय", प्रतिमा प्रकाशन, पुणे २००३.
3. चौधरी इंद्रनाथ, "तुलनात्मक साहित्यकी भूमिका", नैशनल पब्लिकेशन हाऊस, दिल्ली १९८३.
4. डॉ. जाधव भरत, "तौलनिक साहित्याभ्यास: नव्या दिशा", अप्रकाशित २०२१.
5. आबा बीदन, " मॉरिशसमधील मराठी लोकजीवन", दर्या प्रकाशन, पुणे, २०१३.
6. जैन प्रदीप कुमार, "भारतीय संस्कृति", राहु लपब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली.

# विद्यानिवास मिश्रजी के 'गाँव का मन' निबंध संकलन में, 'मानवी समाज '

**अशोक बाळू पाटील**
(शोध छात्र)
हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्व विद्यालयल, कोल्हापूर

हिंदी गद्य साहित्य के नाटक, उपन्यास, कहानी और निबंध आदि साहित्यिक रुपों का विकास समय के गति के अनुसार हो चुका है। निबंध हिंदी साहित्य की आधुनिक विधा है। निबंध का जन्म और विकास वस्तुतः भारतेंदु युग के उन्मेष के साथ हुआ है। भारतेंदु युग से लेकर आज तक अनेक निबंधकारों ने निबंध लिखे उनमें से एक है, विद्यानिवास मिश्र। डॉ. मिश्रजी ने यद्यपि उच्चकोटि के विचारात्मक और समीक्षात्मक निबंधों की भी रचना की है। मिश्रजी के अनेक निबंध संग्रहोंमे से एक निबंध संग्रह ''गाँव का मन'' पंद्रह निबंधोंका संकलन है। इन निबंधोंमें गाँव से बने भारत की अस्मिता संस्कृति की पहचान की गयी है। जिन मानवीय मूल्योंपर हमारी संस्कृति स्थित है, इसका सूक्ष्म अंकन मिश्रजीने गाँव का मन निबंध संग्रह मे किया है। मूलतः सभी मूल्यों का संबंध मनुष्य के जीवन से हैं। पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, अध्यात्मिक, सांस्कृतिक, क्षेत्रो निहित मूल्य मानवी मूल्यों के अंतर्गत आते हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल मे मानवीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में तीव्र परिवर्तन और भोगवादी प्रवृत्तिने जन्म लिया। इस भोगवादी वृत्ति के कारण आज मूल्योंका विघटन हो रहा है। इस मूल्य टूटने की प्रक्रिया को रोकने के लिए मानवी जीवन मे मूल्य स्थापन करके स्वस्थ मानव समाज की प्रतिष्ठा बढ़ाने का काम ''गाँव का मन'' संग्रह में मिश्रजीद्वारा चित्रित है।

**मूल्य विघटन –**

विद्यानिवास मिश्र के ''गाँव का मन'' निबंध संग्रह में मूल्य विघटन से प्रभावित अनेक विचार मिलते हैं। तीव्र गति से भारत में औद्योगिक और भौतिक विकास हुआ है। इसका प्रभाव ग्रामीण और शहरी जीवनपर पड़ा है। बढती जनसंख्या, मँहगाई एवं मूल्यविघटित राजनीति के कारण बंधुत्त्व, त्याग, समर्पण, सेवा, आदि मूल्य भी दरकने लगे हैं। बढ़ती समस्याएँ मनुष्य से संबंधित परिवार, समाज, अर्थव्यवस्था, धर्म, राजनीति आदि क्षेत्रों में भी मूल्य टूटन की प्रक्रिया को गति देते हैं। आज ग्रामीण समाज में पाप पुण्य की धारणा, ईश्वर संबंधी विचार, सामाजिक रीति-रिवाज के प्रति नए दृष्टिकोन उभर रहे हैं। श्यामाचरण दुबे के मतानुसार, ''उनका धर्म जीववाद, जीवीवाद, बहु-ईश्वरवाद और एकेश्वरवाद का अद्भुत मिश्रण हैं। इनमें प्रेतात्माओं, भूत, दैत्यों, चुडैलों और जादू में जीवतं आस्था को भी जोडा जाना चाहिए।''[१] यह स्पष्ट है की ग्रामीण क्षेत्रों में रहनेवाले लोगों के अंधविश्वासों के कारण समाज में मूल्य-विघटन की क्रिया गतिमान हो रही है। विद्यानिवास मिश्रजी के 'गाँव का मन' निबंध संकलन में लिखे निबंधोद्वारा मानवी मूल्य विघटन के अनेक पहलुओं के दर्शन होते हैं।

नगरो और महानगरो में बढ़ते हुए औद्योगिक विकास के कारण गाँव के लोग भी नौकरी पाने के लिए शहरो में आने लगे हैं। गाँव-घर छोड़कर शहर में आनेवाले लोग पैसा तो कमाते है, लेकिन बढ़ती भाग दौड में अपनी जींदगी को नकली बना देते है। आज की तकनीकी युग में मनुष्य अपनापन, आत्मीयता को ढुँढता है। मिश्रजी 'मेरा गाँव घर' निबंध में लिखते है कि, ''एक अजनबी शहर में रहता हुँ जहाँ पर हर क्षण चौकन्ना रहना पडता है। कोई भय नहीं, बस लगता है कि अपनेपन का फैलाव बस कुछ गडबड कर देता है। लगता है, मुखौटों के बीच मुखौटानुमा भाषा में एक क्षण भी चूक हुई कि नकली जिन्दगी का सुख छिन जायेगा।''[२] याने आज मनुष्य के जीवन में हर क्षण और पैरो-पैरोंपर खतरा है। मनुष्य शहर में रहता है लेकिन आज मानव जीवन में उदासीनता है। निबंधकार ने अपने अनुभवी प्रसंगों को चित्रित करके बढते हुए पुंजीवाद, आर्थिक विषमता और दबाव के कारण, भौतिक लालच आदि मानवीय मूल्य विघटन कारण के रुप में उभरने लगे हैं। यह स्पष्ट किया है।

आज का मनुष्य भोगवादी बन गया है। लालची बन गया है। वह तकनीकी विकास के महाजाल में फस गया है। इस तकनीकी विकास के कारण पत्तियों की हरियाली, फुलों का रंग, आदमी की साँस सब निगलती जा रही है। जिसतरह फसलों को कीड लगती है उसी तरह आदमी के जीवन को तकनीकी विकास की कीड लगी है। आदमी तकनीकी का उपयोग और गरिबों का आधार लेकर खुद तो बडा होता है लेकिन वह अपना जीवन रेंगते कीडों की तरह जी रहा है। विद्यानिवास मिश्र 'गाँव का मन' निबंध में लिखते है कि, ''गाँव से उखडकर दो कौर अन्न के लिए खुले आकाश की छत छोडकर महाव्याल के मुँह में जाने को तैयार झुग्गी की साया लेने को लाचार है। वह आदमी झुग्गियों का मालिकाना हक पा चुका है। खुद बिल बिलाने वाला कीडा बन गया है।''[३] याने समाज में ऐसे लोग हैं जो सिर्फ अपना स्वार्थ चाहते हैं। गरिबों का शोषण करनेवाले इस पुँजीवादी लोगों में दया, सहानुभूति, प्रेम का भाव नही है। लोगों के विलासी भौतिकवादी प्रवृत्ति ने मानवी मूल्यों को तोड दिया हैं।

मिश्रजी ने कुछ निबंधों में अंधबातों कों स्पष्ट किया है। गँवार लोग कोई मृत्यु होने के बाद उसके मृत्यु के बारे में भी तर्क वितर्क करते हैं। मृत्यु हुई हो, असाधारण हो तो उसे दैवि कारणो, जैसे देवताओं और पूर्वजोंका क्रोध, काले जादु आदि का फल माना जाता है। मृत्यु होने के बाद वह मृत्यु किसी शुभ या अशुभ घडी में हो गयी उसकी चर्चा करते हैं। और अशुभ घडी में हो गयी हो तो कई प्रकार की धार्मिक क्रिया की जाती है। जो क्रिया समाज मे भिन्न भिन्न भूत, आत्मा, परमात्मा, मोक्ष संबंधी अंध बातों को फैलाती हैं। जिसका बुरा असर मानवी जीवनपर पडता है। निबंधकार 'प्रात तब द्वार पर' निबंध में गाँव के आदमीओं के बारे में लिखते है कि, ''इतने अंधविश्वासों में, इतने घोर, अकर्तव्य नियतिवाद में इतना लिपटा हुँआ क्यों है? क्या काली-पूजा, भूत प्रेत-पूजा के स्तर की ही निकृष्ट मानसिकता नही है?''[४] यहा मिश्रजी ने विज्ञान युग में अंधविश्वासों में फसनेवाले लोगों का विवेचन किया है। प्रगतशिल समाज में लोग तंत्र-मंत्र पढते हैं। चुनाव के वक्त बडे बडे नेता भी वोटों के लिए देवी देवताओं के पिछे, साधुओं के पिछे भागते रहते हैं। इसका यथार्थ चित्रन निबंधकार ने किया है।

लोगोंपर पाश्चात प्रभाव इतना पडा है की क्या करना चाहिए और क्या नही इसका होश खो बैठे हैं। भौतिक सुख प्राप्ति के लिए निरतंर छटपटा रहे हैं। आधुनिक जीवन आज के मनुष्य के लिए भीषण संकट का अभिशाप बन गया है। मिश्रजी 'मधुवन जाऊँगा रे' निबंध में लिखते है कि, ''लोग जन्म-दिन मनाते है, मोमबत्तियाँ जलाकर बीतें सालों की गिनती का इश्तहार बाँटते है। बन्द खिडकीयों वाले बिजली या गॅस से गरमाये कमरे को शराब और सिगारेट से और गरमाने की कोशीश करते है।''[५] मतलब अद्यतन समाज के लोग नशा करते हैं। पार्टियाँ मनाकर धूम्रपान और मदिरापन करके भारतीय संस्कारों को दुषित करते हैं। जिसके कारण बडी मात्रा में मानवी मूल्यों का ऱ्हास हो रहा हैं। अतः कहना सही होगा की विद्यानिवास मिश्रजी ने लिखे 'गाँव का मन' निबंध संकलन में मानवी मूल्यों का विघटन करनेवाले विचारों को स्पष्ट किया हैं।

**मूल्य विस्थापन –**

वर्तमान ग्रामीण तथा शहरी जीवन में जिस प्रकार मूल्य विघटन हो रहा है, जो मूल्य स्थापना करके ग्रामीण और शहरी जीवन में स्वस्थता लायी जाती है। समाज में फैली हिंसा, परस्पर वैमनस्य, लालच, स्वार्थ बढ रहा है। तो यह बढते दूषित जीवन से मनुष्य को बचाने के लिए और स्वस्थ जीवन जीने के लिए मानवी मूल्यों की समाज में स्थापना करना आवश्यक है। नैतिक मूल्यों, स्वस्थ संस्कारों, सामाजिक दृष्टिकोन और राष्ट्रीय दायित्त्वों का बोध जगाना और विकसित करना विद्यानिवास मिश्रजी के 'गाँव का मन' निबंध में संकलित निबंधों का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। डॉ. विभुराम मिश्र 'गाँव का मन' निबंध संग्रह मे चित्रित मिश्रजी के बारे में लिखते हैं कि, ''लेखक के अनुसार भारतीय लोक जीवन विश्वजीवन से एकाकार है, क्योंकि वह सबका पारिनार्थिक मंगल मनाता है और सभी के मंगल में अपना मंगल देखता है।''[६] मतलब भारतीय जीवन विश्व मे अलग है। अनेकता में एकता होकर भी यहाँ के लोग मिल जुलकर रहते है। विद्यानिवास मिश्र शहर में रहकर भी उनका लगाव गाँव के प्रति है। मिश्रजी ग्राम संस्कारों को श्रेष्ठ मानते है। सभ्य संस्कारों को प्रस्तुत करना 'गाँव का मन' संकलन का महत्त्वपूर्ण काम है। डॉ. दिलीप देशमुख लिखते है, ''गाँव का मन डॉ. विद्यानिवास मिश्र

के गाँव के प्रति मोह का चित्रन है। शहराती जीवन से जुडे रहने पर भी उनका व्यक्तित्त्व गाँव के संस्कारों को भुल नही पाता, उन्हे शहर के जजबाजी संस्कार खोखले लगते है, जिनमें कोई आत्मियता नही बंधुभाव नही।"[७] याने आज भी भारतीय ग्रामीण जीवन में लोगो में आत्मीयता, बंधुभाव, साहचार्य, विश्वास, एकनिष्ठता, त्याग, समर्पन, उदारता, स्नेह, प्रेम, सहानुभूती आदि विविध मानवी मूल्य एक दुसरे के प्रति रिश्तों की डोर मजबुती से बाँधती है। मिश्रजी ने 'गाँव का मन' में मूल्य स्थापना करनेवाले प्रसंग पात्रों का यथार्थ वर्णन किया है। यहाँ विभिन्न जाती धर्मों के लोग एकता से रहते हैं। इसका उदाहरण देते निबंधकार लिखते हैं कि, "मेरे घर के पडोस का एकदम सीधा हरिवंश बढई (अब वह इस लोक में नही है), हॅसलोन पारस माली, पास के गाँव के सीताराम और रामनवल दोनों ही बढिया खुशखत लिखनेवाले (जब कि मेरी लिखावट कौए की टाँग होती थी) छोटे गाल चेहरेवाला दुबरी तिवारी, जहीन शिवनाथ तेली और बहुत परिश्रमी रामसनेहीधर, और भी बहुत से संगी साथी, जिनमें से एक एक के बारे में लिखने बैठूँ तो मन भीग उठे।"[८]

ग्रामीण जीवन में उगादी, रामनवमी, नीलगौरा, नरसिंह जयन्ती, राखी पुर्णिमा, होली जैसे त्योहार मनाए जाते हैं। गाँव के धार्मिक रीति-रिवाज अभी भी जीवित है। भिन्न धर्मों के लोग एक दुसर के समरोह में भाग लेते हैं। मिश्रजी होली की याद दिलाते लिखते हैं कि,"मेरे गाँव में शिवरात्री से ही फाग की धूम मचती थी, झाँझ और मृदंग की गूँज से आकाश भर जाता था, भोर होते-होते तक चाँचर मची रहती, हम लोग गा नही पाते तो गोइँठा माँगने पर मिलता तो गोहरा उजाडते, सम्मति भैया(संवत्सर) की लगडी का बंदोबस्त करते।"[९] याने गाँव में आज भी उत्सव बडे धुमधाम से मनाते है। त्यौहारों को विश्वास और प्रेम का प्रतिक माना जाता है। इस निंबध संकलन के कुछ निबंधों मे भारतीय लोक संस्कृति के सभ्यता का दर्शन होता है। कोनसा भी मंगल कार्य और विवाह जैसे संस्कारों में देवी देवताओं का स्मरण किया जाता है। औद्योगिकता के कारण भारतीय समाज में जो जटिलता दिखाई देती थी। इस जटिलता को सुलझाने के लिए मानवी मूल्यों को परिवार, धर्म, संस्कृति आदि क्षेत्रों मे मिश्रजी ने निबंध लेखनद्वारा विस्थापित किया है।

उपरोक्त विवेचन के बाद निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आधुनिक हिंदी साहित्य में निबंध विधा के अंतर्गत विद्यानिवास मिश्रजीने निबंध लिखे है। मिश्रजीद्वारा लिखे अनेक संग्रहो मे से एक संकलन 'गाँव का मन' है। इस संकलन के प्रत्येक निबंध में मनुष्य से संबंधित धार्मिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, सामाजिक संदर्भ में विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है। आधुनिक काल में औद्यागिक और भौतिक विकास के कारण मनुष्य स्वार्थी बन गया है। इस स्वार्थ से मूल्यों का टूटन हो रहा है। लोगों के मानसिक स्थिती को बदलने का प्रयास मिश्रजी ने 'गाँव का मन' संकलन में किया है। अतः इसमे मिश्रजी का मानवी मूल्यो संबंधी चिंतन विस्तृत रुप में मिलता है।

**संदर्भ –**

१. श्यामाचरण दुबे, भारतीय ग्राम, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्र. सं. १९९६ पृ. ९१
२. विद्यानिवास मिश्र, गाँव का मन, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्र. सं. १९८५ पृ. १५
३. वही पृ. ८७
४. वही पृ. ६७
५. वही पृ. ३६
६. डॉ. विभुराम मिश्र, प्रतिनिधि हिंदी निबंधकार, शिल्पी प्रकाशन इलाहबाद, सं. १९९२ पृ. २२३
७. डॉ. दिलीप देशमुख, विद्यानिवास मिश्र का निबंधालोक, विद्या प्रकाशन कानपुर, प्र. सं. २००६, पृ. ७६
८. विद्यानिवास मिश्र, गाँव का मन, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्र. सं. १९८५ पृ. ११
९. वही पृ. २७

# 'ज्वार' में व्यक्त नारी का आत्मसंघर्ष

**डॉ.कल्पना किरण पाटोळे**
गोपाळकृष्ण गोखले महाविद्यालय,
कोल्हापूर – ४१६०१२,
**Corresponding author e-mail**: kalpanapatole707@gmail.com,

**सारांश :**

*शोषण नारी जाति की नियति है। पुरूष प्रधान व्यवस्था में नारी सदैव पुरूष की अधीनस्थता एवं अत्याचार को सहने के लिए विवश है। हर समझौता या हार अपनी नियति मानकर पुरूष की दासता वह स्वीकार करती आ रही है। अशिक्षा, अज्ञान और दमन के युग से लेकर शिक्षा और जागरण के इस युग में आने के बाद भी वह शोषण के अधिन दिखाई देती है। शिक्षित एवं आत्मनिर्भर होते हुए भी घर और बाहर दोनों जगह वह अन्याय एवं अत्याचार का शिकार बनी है।*

***सुचक शब्द –*** *दोहरा कार्यभार, उत्तरदायित्व, दासता, स्वतंत्र अस्तित्व, आत्मसंघर्ष।*

**प्रस्तावना :**

भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान सदैव पुरूष से उँचा एवं महत्त्वपूर्ण रहा है। नारी घर–परिवार का संचालन कुशलता से करती है। इसलिए उसको गृहलक्ष्मी की महत्ता प्रदान की गयी। लेकिन पितृसंत्तात्मक परिवार तथा पुरूष प्रधान सामाजिक व्यवस्था के चलते नारी का यह महत्त्व कम होता गया। पुरूष अधिपत्य के प्रभाव में रहने के कारण परिवार तथा समाज में नारी का स्थान निम्न एवं हीन होने लगा। नारी सदैव पुरूषों की अधीनस्थता एवं अत्याचार को सहने के लिए विवश होने लगी। हर समझौता या हार अपनी नियति मानकर वह पुरूष की दासता स्वीकार करती आ रही थी । परंतु कालांतर में शिक्षा के प्रचार–प्रसार और नारी मुक्ति आंदोलन के फलस्वरूप स्त्री में सामाजिक जागरूकता बढने लगी। वह परिवार के सीमित, एवं संकुचित दायरे से निकलकर समाज, सृष्टि एवं मानव जीवन का ज्ञान प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व का विकास स्वयं करने लगी। डॉ.हेमेंद्रकुमार पानेरी के मतानुसार, ''परंपरागत ग्राहस्थ एवं पतिव्रत के परिवेश में कुंठित नारी उच्चशिक्षा और नारी स्वातंत्र के प्रभाव में स्वच्छंद जीवन जीने की और अग्रेसर हुई। परंपरागत अबला ने परिवर्तन के परिवेश में सबला बनकर पुरूष के समक्ष अपने स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा की।''[१] परंतु इसके लिए उसको आजीवन संघर्ष करना पड रहा है। हिंदी के महिला उपन्यासकारों ने नारी के इस संघर्षमय जीवन को प्रमुख प्रतिपाद्य मानकर अपनी रचनाओं का सृजन किया है। उपन्यासकार मधु भादुडी के 'ज्वार' उपन्यास में चित्रित नारी के संघर्षमय जीवन के विविध आयाम प्रस्तुत शोधालेख में समेटने का प्रयास किया है।

हिंदी की सुपरिचित लेखिका मधु भादुड़ी का 'ज्वार' उपन्यास नारी के आत्मसंघर्ष को अधोरेखित करता है। प्रस्तुत उपन्यास में सुषमा, निशा, लाजो आदि नारी पात्रों के द्वारा लेखिका आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नारी तथा नारी–स्वातंत्र्य के संदर्भ में कुछ बुनियादी सवाल उठाती है। दोहरा कार्यभार सफलता से निभानेवाली आज की नारी घर तथा कार्यालय दोनों जगह अन्याय एवं अत्याचार का शिकार क्यों हो रही है? 'ज्वार' उपन्यास की नायिका सुषमा पढी–लिखी, सुशिक्षित एवं नौकरीपेशा नारी है। वह दफ्तर के साथ–साथ घर की सारी जिम्मेदारीयों को बखुबी निभाती है। उसका पति अशोक प्रोफेसर है । वह विचारों से बडा ही प्रगतिशील लगता है। परंतु व्यावहारिक रूप से वह परंपरागत पतियों से भिन्न नहीं है। अशोक अपने परिवार को बांध रखने के लिए लालायित नहीं है। उसे परिवार एक झमेला प्रतित होता है। सुषमा अपने सामर्थ्य से बढकर सहनशक्ति से अपनी

दोनों भूमिका अदा करती है। परंतु उसे न घन में पति का प्रेम और सम्मान मिलता है और न ही दफ्तर में। वह दफ्तर की बातें सहन कर सकती है, परंतु घर की नहीं। उसका पति अशोक स्वार्थी, आत्मकेंद्रित एवं भावनाहीन है। पत्नी की राय का उसे कोई महत्त्व नहीं है। ''हर बात पर अशोक की स्पष्ट राय होती थी।''[२] सुषमा की भावनात्मक अभिरूची, आस्था, विश्वास यहाँ तक की उसके व्यक्तित्व को भी अशोक कोई महत्त्व नहीं देता है।

अशोक सुषमा की हर बात उपेक्षा के भाव से लेता है और अपना अधिकार जताना चाहता है। वह पत्नी के सगे संबंधियों के आने और रहने पर भी रोक लगाता है। सुषमा के भाई-बहन घर आते है तो वह कहता है, ''शादी का तो मतलब ही यह है कि आदमी अपना निजी जीवन कैसा चाहे वैसा नहीं गुजर सकता.... हर वक्त इधर-उधर के तमाम बेकार के लोगों के साथ वक्त गँवाना...... मैं तंग आ गया हूँ।''[३] इस प्रकार वह हर वक्त सुषमा को अपमानित करता रहता है। सुषमा पति, दफ्तर, मायका, ससुराल व अन्य संबंधों को संजोकर रखना चाहती है। इसलिए अपने सामर्थ्य से बढकर सहनशक्ति से आगे निकलकर अपनी भूमिका अदा करना चाहती है। परंतु स्वार्थांध पति के कारण वह निराश होती है। सुषमा रसोई में काम करती है तो अशोक को अच्छा नहीं लगता वह उसे डांटता है। अब सुषमा रसोई के काम स्वयं न कर नौकरानी से करवाती है, तब भी वह असंतुष्ट हो उठता है। ''तुम भी तो कभी रसोई में जाकर नजर डाल सकती हो कि क्या बन रहा है, क्या नहीं।''[४] इस प्रकार अशोक हर बात में पत्नी की उपेक्षा एवं अपमान करता है। वह अपनी नौकरानी पर भरपूर ध्यान रखता है, परंतु पत्नी पर नहीं। अत: पति के प्रेम के अभाव में विवश होकर सुषमा धीरे-धीरे समझने लगती है कि यह घर अपना नहीं अशोक का है। अशोक जैसे पुरूष पत्नी से सबकुछ चाहते हैं परंतु बाँधना नहीं चाहते, उन्हें परिवार एक झमेला प्रतीत होता है। स्वार्थी एवं आत्मकेंद्रित अशोक चाहता है की पत्नी अपने मायके तक न जाए। सुषमा अपने ही घर में घुटन महसूस करने लगती है और घर तथा दफ्तर के दोहरे कार्यभार से जूझने लगती है।

इसप्रकार सुषमा को न घर में पति का प्यार और सम्मान मिलता है और न ही दफ्तर में। घर में पति उसका शोषण करता है, तो दफ्तर में बॉस उसका शोषण करता है। संपादक साहनी साहब सुषमा की ओर आकर्षित होते हैं। इसी कारण उससे संबंध रखने के लिए बार-बार कोशिश करते हैं। एक बार सुषमा को घर पहुँचाने का बहाना करके गाडी में बिठाकर इधर-उधर की बातें करके अपने घर बुलाते हैं। वह इस आमंत्रण को स्वीकारती नहीं। इस तरह अपनी कोशिशें कामयाब न होने पर साहनी साहब सुषमा को त्याग पत्र देने के लिए मजबूर करते हैं। इस प्रकार नारी का शोषण सिर्फ घर में ही नहीं दफ्तर में भी होता है। उसे केवल उपभोग की वस्तु कें रूप में देखा जाता है। स्त्री दफ्तर की बातें सहन कर सकती है, परंतु घर की नहीं। घर में पति के साथ कैसे व्यवहार करें उसकी समझ में नहीं आता। सुषमा का पति अपनी पत्नी पर संदेह भी करता है। दफ्तर से थकी हुई सुषमा दफ्तर की गाडी से घर आती है तो वह पूछता है, 'यह किसकी गाडी, तुम्हें छोडकर गई है?' वह एक भावनाहीन व्यक्ति है। इसप्रकार नारी का एक बार पत्नी बनने के बाद किसी अन्य पुरूष के साथ भावानात्मक संबंध स्थापित करने के लिए वह स्वतंत्र नहीं मानी जाती है। अत: पति का प्यार और विश्वास न मिलने पर सुषमा टूट जाती है। डॉ.कश्मीरी लाल के अनुसार, ''जिस पति ने अपनी कमाऊ, सुशील, एकनिष्ठ, विनम्र गुणवती पत्नी से कभी प्यार की दो बातें नही बोली हो, कभी सहानुभूति न जताई हो, कभी उसकी तकलीफ न पूछी हो, कभी उसके दफ्तर के अनुकूल संगति लाने का प्रयास न किया हो उसको स्वाभिमानी नारी कब तक तन और मन सौंप सकती हैं।''[५] पति के दुर्व्यवहार से सुषमा तंग आ चुकी थी अंतत: उसके अंदर का ज्वार बाहर निकल आता है,

''मुस्कुराते हुए अशोक ने अपना हात सुषमा की ओर बढाया लेकिन उसने अशोक के हाथ को झटकते हुए कहा,

''खबरदार।''

''इतनी गरम क्यों हो रही हो?''

''पागल हूँ, इसलिए।''६ सुषमा पति के उपेक्षा भाव का करारा जवाब देती है।

उपर्युक्त संवांदों से स्पष्ट होता है की सुषमा का वैवाहिक जीवन उस मोड पर है जहाँ पर विपरीत दिशाओं में जानेवाले दो रास्ते दिखाई देते हैं। सुषमा को उसमें से एक रास्ता चुनना है अपमान का या स्वाभीमान का, अधिकार का दासतां का। अंत में घुटनभरी स्थिती से ऊबकर वह अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं ढूंढ लेती है। अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए सुषमा पति से तलाक लिए बिना, उसका नारकीय साहचर्य छोडकर नैनिताल के स्कूल में नौकरी के लिए चली जाती है। ''वह अशोक को तलाक नहीं देती, लेकिन उसके अपेक्षा भाव का यह करारा उत्तर है, जो पुरूष को अपनी भूल सुधारने का पूरा अवसर देता है।''७ इस प्रकार सुषमा अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य से अपने अधिकार तथा संम्मान के प्रति जागृत होकर मुक्ति का मार्ग अपनाती है।

वर्तमान नव-जागरण के इस युग में भी दहेज प्रथा नारी जीवन के लिए दुर्दान्त विडम्बना बनी हुई है। कानूनन दहेज लेना एवं देना मना होते हुए भी इसका प्रचलन खुले आम पाया जाता है। उपन्यास का दूसरा नारी पात्र है निशा जिसको दहेज प्रथा निगल जाती है। सुषमा की बहन निशा का रिश्ता नरेश के साथ तय होते ही नरेश के माता-पिता उसके आगे-पिछे घूमने लगते हैं। विवाह से पूर्व वह जो चीजें खरीदना चाहते हैं वे सभी नरेश की पसंद की। नरेश सभी महंगी चीजें ही पसंद करता है। नरेश के पिता भी कम लोभी नहीं। वे अपने समधी को पीडित करते हैं। निशा को पिता की बातों से स्पष्ट होता है कि, ''वे, बारात में सौ लोग लाऐंगे.... चंदीगढ से आनेवालों का यहाँ पर तीन दिन रहने का इंतजाम करना होगा... और सुनोगी? नरेश का काम चलनाने के लिए तीस-चालीस हजार की नकद रक्कम..।''८ इतना दहेज देने के बाद ही निशा की शादी हो जाती है ।

विवाहोपरांत निशा की उत्पीडन यात्रा शुरू होती है। इस दहेज को मामूली समझकर निशा के ससुरालवाले उस पर अत्याचार करते हैं। आखिर वह चुपचाप मुंह लटकाए गुनहगारों की तरह ससुराल से मायके चली आई। मायके में उसे पति की ओर से आदेशात्मक पत्र मिलता है कि विलायती टेलिविजन अपने साथ लेती हुई आए। उसके पति ने कहीं भी यह लिखना आवश्यक नहीं समझा कि वह जल्दी लौटे। बस एक रूखा-सा आदेश। निशा का दिल बैठ जाता है। वह देर तक चुपचाप बैठी रहती है। पति यदि कभी उसे दिल्ली में टेलीफोन भी करता है तो हाल पूछने के लिए नहीं बल्कि माँग का एक अस्त्र धोंपने के लिए। ''फोन पर उसने एक लंबी लिस्ट उन चीजों की बताई जिसे सास-ससुर निशा के हाथ चंदीगढ भेज दें।''९ इन चीजों के अलावा दस हजार रूपये नगद लेकर निशा ससुराल जाती है। फिर भी ससुराल में उसपर जुल्म होते हैं और निशा फिर से पिताजी के साथ नंगे पैरों मायके चली आती है। नन्ही बेटी के साथ निशा मायके में रहने लगती है तो वहाँ उसका अपना ही भाई असुविधा में पड जाता है। कुछ ही समय के बाद उसे लगने लगता है कि 'निशा को ससुराल में जाकर रहना चाहिए या कोई उपाय करना चाहिए।''१० वह निशा को घर से बहिष्कृत कर डालता है। निशा अपनी बहन सुषमा के घर चली जाती है परंतु वहां भी उसे सुषमा के पति अशोक की उपेक्षा व खीझभरी दृष्टि का सामना करना पडता है। निशा के लिए सब रास्ते बंद हो जाते हैं। वह अपनी बेटी को लेकर उस नरक की ओर प्रस्थान कर जाती है जहाँ उसका अंत हो जाता है। निशा अपनी ममता-मोह त्यागकर इस संसार से उठ जाने को विवश कर दी जाती है। प्रश्न यह उठता है कि निशा की मृत्यु (या हत्या) का उत्तरदायी कौन है? यहाँ पर लेखिका निशा का पति नरेश के साथ साथ भाई राजन और अशोक को भी अपराधी मानने के संकेत देती है।

उपन्यास का तिसरा नारी पात्र है लाजो। पति के दुर्व्यसन एवं दुर्व्यहार से लाजो का जीवन कष्टप्रद बन गया है। उसका पति शराबी है। वह पत्नी के कमाएँ पैसों से शराब पिता है। अर्थाभाव एवं घर की जरूरते पूरी करने के लिए लाजो दूसरों के घर में बरतन मांझना तथा कपडे धोने का काम करती है। परंतु वह ''जो भी बरतन मांझकर खुद कमाती थी, उसका पती वह भी लेकर चल देता था।''९ और रात को शराब की बू से लडखडाते पैरों से वह घर लौटता था। पत्नी तथा बच्चों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भूलकर वह पत्नी के पैसों पर जीवन बिताता है। छोटी के जन्म से पहले ही वह अपनी गर्भवती पत्नी तथा घर

छोडकर चला जाता है। अत: पति के दुर्व्यसन तथा परिवार की आर्थिक आवश्यकता को पूरी करने के लिए लाजो को कष्ट उठाने पडते हैं । अत: उसका जीवन संघर्षमय हो जाता है। इसप्रकार नारी घर–परिवार, कार्यालय आदि सभी जगह पुरूष के शोषण का शिकार बनी है। जिसका यथार्थ चित्रण 'ज्वार' उपन्यास में दिखाई देता है।

**निष्कर्ष :**

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है की शोषण नारी जाति की नियति है। पुरूष प्रधान व्यवस्था में नारी सदैव पुरूषों की अधीनस्थता एवं अत्याचार को सहने के लिए विवश है। वह हर समझौता या हार अपनी नियति मानकर पुरूष की दासता स्वीकार करती आ रही है। नारी शिक्षित एवं आत्मनिर्भर होते हुए भी घर और बाहर दोनों जगह अन्याय एवं अत्याचार का शिकार बनी है। निशा दहेज प्रथा की शिकार होती है तो लाजो पति के दुर्व्यवहार एवं दुर्व्यसनों के कारण जीवनभर संघर्ष करती दिखाई देती है। सुषमा पति का प्यार, विश्वास और सम्मान न मिलने पर टूट जाती है। वह अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए पति से अलग रहकर नौकरी करके जीवन–यापन करती है। सुषमा समाज से नारी के अधिकार की मांग करती है किंतु पुरूष के प्रति उसमें द्वेष की भावना दिखाई नहीं देती है। वह पुरूष के आश्रय में रहकर स्वतंत्रता के साथ जीना चाहती है। परंतु उसे पुरूष से असहयोग ही मिलता है। पति की हृदयहीनता एवं असहयोग के कारण वह घर छोडकर अकेले रहने का निर्णय लेती है। आत्मनिर्भर नारी का यह निर्णय उसकी दृढता और आत्मविश्वास का सूचक है। परंतु उसकी यह दृढता परिवार तथा समाज पर गहरी चोट करती है।

**संदर्भ सूची :–**

१. डॉ.हेमेंद्रकुमार पानेरी, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास : मूल्य संक्रमण, पृ.७४।
२. मधु भादुडी – ज्वार, पृ.३६
३. मधु भादुडी – ज्वार, पृ.११३
४. मधु भादुडी – ज्वार, पृ.९२
५. डॉ.कश्मीरी लाल, महिला कथाकार : समाजशास्त्रीय एवं भाषिक संकल्पना, पृ.१५०–१५१।
६. मधु भादुडी, ज्वार, पृ.३६
७. गोविंद सिंह, प्रकर १९८९, पृ.३१
८. मधु भादुडी – ज्वार, पृ.१७६
९. मधु भादुडी – ज्वार, पृ.११०

# मानवीय अधिकारों की ओर बढ़ते शब्द

**डॉ.सुनिल चव्हाण,**
अध्यक्ष, पदव्युत्तर हिंदी विभाग एवं शोध निर्देशक,
ए.सी.एस.कॉलेज, लांजा, जि. रत्नागिरी
ईमेल- sunil8012@gmail.com

**सार संक्षेप -**

अमरीका के रेल्फ एलिसन ने अपने उपन्यास 'दि इनविजिबल मॅन' में कहा था, "मैं एक अश्वेत व्यक्ति हूं और यही वजह है कि कोई मेरी उपस्थिति को देखता ही नहीं।" बस यही बात भारत में दलित साहित्यकारों की 1990 तक हुई थी। भारत में महात्मा बुद्ध की मानवता की विचारधारा संतश्रेष्ठ रविदास जी के दोहों से शुरु होती है। आधुनिक काल में अमानवीय अत्याचारों के ख़िलाफ़ अपनी कविता में पहली बार असहमति व्यक्त करने का साहस हीरा डोम ने किया था। बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर जी की प्रेरणा से हिन्दी में मानवीय अधिकारों और मूल्यों को स्थापित करने वाली कविताएं लिखी जाने लगी। सूरजपाल चौहान अपनी भावनाएं व्यक्त करते कहते हैं - क्यों विश्वास करूं...

अमरीका के श्रेष्ठ उपन्यासकार रेल्फ एलिसन ने अपने चर्चित उपन्यास 'दि इनविजिबल मॅन' में कहा था, "मैं एक अश्वेत व्यक्ति हूं और यही वजह है कि कोई मेरी उपस्थिति को देखता ही नहीं। लोगों के लिए मैं होता ही नहीं हूं।"[1] बस यही बात भारत में दलित साहित्यकारों की 1990 तक हुई थी। हिंदी में दलित साहित्य विविध विधाओं, रूपों में लिखा एवं छापा जा रहा था, परंतु बुद्धिजीवी वर्ग के लिए यह साहित्य न के बराबर था। उनका मानना था कि इसमें सौंदर्य और शिल्प नहीं दिखाई देता। परंतु मानवता के सच्चे प्रहरी साहित्यकारों ने अपनी कलम को शिद्दत के साथ अपनी संवेदनाओं में प्रस्तुत किया। इस विराट साहित्य के प्रभाव को विरोधियों को स्वीकार करना पड़ा और हिंदी में दलित साहित्य विविध विधाओं में प्रस्तुत होने लगा।

भारत में सबसे पहले मानवता को सर्वोच्च स्थान देने वाले महात्मा बुद्ध थें। उनकी प्रेरणा से सैंकड़ों सिद्धों ने मानवतावादी साहित्य की विविध रूपों में निर्मिति की। जिसका प्रभाव नाथ सम्प्रदाय पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। आगे चल कर यही विचारधारा मानवतावादी साहित्यकार संतश्रेष्ठ रविदास जी के दोहों, पदों से शुरु होती है, जिन्होंने अपनी कविताओं में पुरजोर कोशिश की थी कि वर्ग भेद को मिटा कर अखिल मानवता की स्थापना की जाए । इसके लिए उन्होंने अपने काव्य में 'विश्व कुटुंबकम' की व्याख्या की थी और इस संकल्पना को उन्होंने अपनी रचनाओं से जन-जन तक पहुंचाने के लिए वे 'बेगमपुरा' की कामना करते हैं। इसके लिए उन्होंने अपनी रचनाओं में अखण्ड मानवता को सर्वोच्च स्थान दे कर बे गम अर्थात दुख हीन जीवन की स्थापना की है। यही बात महात्मा कबीर जी ने भी अपने काव्य में व्यक्त की थी। ऐसे अखण्ड मानवतावादी, कालजयी साहित्य को जाति, वर्ण, वर्ग को वरियता देने वाले साहित्यकार शूद्र या दलित साहित्य कहते हैं। दरअसल यह उनकी मानसिकता की शूद्र उपज रही है, जो अखण्ड मानवता को पहचानने से इन्कार करती है।

आधुनिक काल में शूद्र करार दिए गए वर्ग में बढते अमानवीय अत्याचारों के ख़िलाफ़ अपनी कविता में पहली बार रुदन व असहमति व्यक्त करने का साहस हीरा डोम ने सन 1914 में अपनी कविता में किया था, उसे एक वर्णवादी पत्रिका 'सरस्वती' में तुलसी की 'विनय पत्रिका' की तरह 'एक अछूत की शिकायत' प्रकाशित करने का साहस वर्णवादी संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया था। जिससे बिखरी मानवतावादी कविता की कड़ी जुड़ने में सहयोग मिला।

पुरोगामी विचारधारा विरासत प्राप्त महाराष्ट्र में मानवतावादी साहित्यकार और उनके साहित्य को काफी सराहा गया। इसी के प्रभाव स्वरूप हिन्दी क्षेत्र में भी मानवीय अधिकारों और मूल्यों की रक्षा व मांग करता संवेदनाओं का साहित्य सृजन होता गया। जिसे दलित साहित्य के रूप में बंदिस्त किया गया।

वर्ण व्यवस्था के चलते जहां जातिवाद खूब फैल रहा था, वहीं ब्राहमण वर्ण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियों से अमानवीय व्यवहार करता था। उसकी देखा-देखी में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियों से और उसकी देखा-देखी में वैश्य, शूद्र जातियों से अमानवीय व्यवहार करता था। शूद्र जातियों ने शूद्रेतर जातियों से अमानवीय व्यवहार शुरू किया, जो समाज व्यवस्था का हिस्सा भी नहीं थीं। 'क्योंकि वे करते हैं इसलिए हम भी करते हैं' की यह समस्या बन कर रह गई। यह व्यवस्था एक दूसरे की इस तरह गुलाम बन गई कि, यह गुलामी है यह तक वे भूल गईं । इसका विरोध सर्व प्रथम महात्मा ज्योतिबा फूले जी ने किया। फिर उन्होंने शूद्र और शूद्रेतर जातियों के लिए स्कूल खुलवाएं। आगे यही कार्य महाराजा सयाजीराव गायकवाड़, छत्रपति शाहू जी महाराज, क्रांतिकारी संत गाडगे जी महाराज, कर्मवीर भाऊराव पाटील, बाबासाहेब डॉ.आंबेडकर आदि महान विद्वान समाज सुधारक क्रांतिकारियों ने शुरू किया। जिससे इन जातियों, वर्गों में गुलामी की भावना जाती रही और शिक्षा, मानवता के बारे में चेतना जागृत होती गई। हिन्दी में मानवीय अधिकारों और मूल्यों को स्थापित करने वाली कविताएं लिखी जाने लगी। हीरा डोम, अछुतानंद,मलखान सिंह, दयानन्द बटोही, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिषराय, एन सिंह, सुशीला टाकभौरे जैसे अनेक कवियों ने हिन्दी काव्य क्षेत्र में मानवीय अधिकारों और मूल्यों को स्थापित करने की भरसक कोशिश की। रुदन, असहमति, रोष, अधिकारों के प्रति सजगता, वेदना, निराशा, बगावत, क्रांतिकारी परिवर्तन का स्वर आदि इन कविताओं की विशेषताएं हैं। जिन महात्मा, क्रांतिकारी, समाज सुधारक विद्वानों ने परिवर्तन और मानवीय मूल्यों के बीज समाज में बोए, उनके प्रति विनम्रता की भावना भी व्यक्त हुई है । कवि सूरजपाल चौहान का कविता संग्रह - 'क्यों विश्वास करूँ' इस संदर्भ में विचारणीय है। बाबासाहेब के प्रति अपनी भावनाएं व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं -

"मानवता के प्रतीक
तुमने
इस भारत भूमि पर आकर
भूखे नंगे
और
शोषितों को जगाया।"[2]

मानवता की राह वर्ग व्यवस्था के कुपमंडुक प्रवृत्ति वाले लोगों ने रोकी है। उन लोगों से एक सरल सवाल कवि पुछतेहैं-

“रास्ते का
पत्थर बन कर
क्यों मेरे मार्ग को
अवरूद्ध करते हो ?”[3]

शूद्रेतर समाज में आई चेतना व शिक्षा से उनमें मानवतावादी विचार और विचारों के प्रेरणास्रोत प्राप्त हो रहे हैं। अब तक यह वर्ग अपने अवरूद्ध रास्तों को अपना भाग्य मानता था,सवाल उठाता नहीं था। पर अवरोधकों को अब पहचान कर अपनी ख़ामोशी तोड़ते कवि पुछते हैं -

“मेरे प्रबल विरोधियों
मेरी चुप्पी से
तुम
मुझे गूंगा मत समझो।”[4]

गांव- गांव में आज भी आधुनिक आचार -विचार मानवीयता, समानता बहुत कम देखने मिलती हैं। बल्कि वर्ग व्यवस्था और भी सख्त हुई दिखाई देती है। आज़ादी के बाद इस व्यवस्था में सुधार अपेक्षित था, पर कानून और व्यवस्था तक गांव-गांव में नहीं पहुंच पाई। कवि गांव की प्रचलित व्यवस्था पर निराशा व्यक्त करते हैं -

“उनका खेत,उन्हींका बैल
और उन्हींका है ट्यूबवेल
मेरे हिस्से मेहनत आई
उनके हिस्से है आराम।“[5]

कवि गांव, नगरों में प्रचलित व्यवस्था से हताश होता है। देश दुनिया में समाज की मुख्य धारा से विविध कारणों से न्याय की और कानून व्यवस्था की मांग कर आंदोलन चलाए जाते हैं। पर देखा गया है कि आज तक जातिवाद को खत्म करने के लिए कोई आंदोलन नहीं हुआ है । और न ही शूद्रेतर जातियों को मानवीय अधिकारों की सुरक्षा प्राप्त हुई है। अतः इस वर्ग का शारीरिक,मानसिक शोषण होता रहा है। इस पर कवि चिंता जताता है -

“न जाने कब शुरू होगा
कोई आंदोलन इस देश में
मेरी रक्षा के लिए।“[6]

वर्ण, वर्ग और धर्म व्यवस्था से शूद्रेतर जातियों को इस कदर प्रभावित किया है कि, वे अपने साथ होते फ़रेब को पहचान ही नहीं पाते। गर्व के साथ इस व्यवस्था को अपनाते हैं। फिर भी वर्णवादी अपनी शोषणकारी प्रवृत्ति से बाज़ नहीं आते। शूद्रेतर जातियों को समय-समय पर अपमानित किया जाता रहा है। कवि अपनी वेदना व्यक्त किए बिना नहीं रहता -

“मैं तुम्हारे

झूठे धर्म पर
करता रहा गर्व
लेकिन
तुम्हारा मेरे प्रति
छिपा रहा सदैव
अपमान का भाव ही।“[7]

शारीरिक, मानसिक वेदना का दर्द वही व्यक्ति समझ सकता है, जिसके साथ घटना हुई है। अत्याचारी या शोषणकारी वर्ग पीड़ितों की भावना या दर्द समझ नहीं सकता। अतः अत्याचारियों से कवि कहता है -

“काश !
तुम
किसी दलित के घर पैदा होते
विशेषकर
दलितों में दलित कहे जाने वाले भंगी के घर
तुम्हें उठानी पड़ती
बजबजाती गन्दगी
और ढोना पड़ता
गू- मूत से भरा टोकरा
सिर पर रख कर।“[8]

आज कल मानवतावादी साहित्य जिसकी दलित साहित्य कह कर उपेक्षा की जाती है। वर्णवादी साहित्यकारों द्वारा इसका विरोध भी होता है। उन्हें ड़र है कि कहीं यह मानवतावादी साहित्य हमारे काल्पनिक, पौराणिक आख्यानों पर भारी ना पड़े। कवि इस बात को जानते हुए उनके राज़ का पर्दाफ़ाश करता है -

“बात है
दलित साहित्य की
कहीं
देश की शोषित जनता
जो हज़ारों वर्षों से
पौराणिक कथाएं सुन सुन कर
सोई पड़ी है
सच्चा साहित्य पढ़ कर
जाग न जाए
और
बन्द कमरे में लिखे
तुम्हारे साहित्य की

धज्जियां न उड़ जाएं।"[9]

आज़ादी के बाद भारत देश की राजनीतिक, आर्थिक वैज्ञानिक, सांस्कृतिक स्थिति काफी सुधरी है, वहीं सामाजिक और धार्मिक स्थितियां काफी सख्त बन गई हैं। लगता है कि, धार्मिक और सामाजिक कोठरियां कड़ी सुरक्षा में कैद हैं। अंदर और बाहर आना जाना आसान नहीं है। इसमें मानवता का दम घुटने लगता है। इससे अत्याचार और हत्याएं बढ़ गई हैं। दूसरी ओर देश में आर्थिक भ्रष्टाचार हदें पार कर गया है, जिससे देश का विदेशी कर्ज़ अंगद की पूंछ के समान बढ़ता जा रहा है। जातियों के जंजाल में जनता मकड़ी के जाले में फंसी तितली के समान है। अतः भारत की स्थिति काफी भयावह बन चुकी है। कवि कहता है -

"हत्याएं, चोरी, ठगी, लूटमार
और नेता मालामाल
जातियों का जाल
विदेशी कर्जे से
डूब चुका
बाल बाल।" [10]

मानवता को सर्वोच्च स्थान देने वाले साहित्य में मानवीयता समानता की भावना प्रधान रही है। जातियों में बांटने वाले और लूटने वाले समाज को कवि सीधे तौर पर बताता है -

"मेरा और मेरे
परिवार के सदस्यों का रक्त
मांस,मज्जा
और वीर्य
तुम्हारे जैसा ही है।"[11]

दलित चेतना तो शूद्रेतर जातियों में बाबासाहेब डॉ.आंबेडकर जी के कारण आने लगी है। पर आज तक अधिकतर शिक्षित पीढ़ी अपने अपने आर्थिक,भौतिक सुख सुविधाओं में ही जुटी है। विशेष बात है कि, जिनके कारण ये शिक्षा,रोज़गार और सुविधाओं का लाभ उठा रहे हैं, वे उन्हें ही भूल चुके हैं या याद रखना नहीं चाहतें । अशिक्षित वर्ग की तो बात ही दूर है। ऐसे कृतघ्न शिक्षित पीढ़ी को चाहिए कि, पारिवारिक और सामाजिक एकता बनाए रखें और धूर्त ढोंगी लोगों से बचें, जिससे पारिवारिक और सामाजिक विषमता ना पैदा हो। कवि इस पीढ़ी को आगाह करता है -

"एकता के गीत मिल कर
ऐ दलित तू गाता चल
राह में तू बचके रहना
धूर्त ढोंगी हाथ से ।"[12]

वर्ण व्यवस्था ने मनुष्य और मानवता को तोड़ दिया है। इससे भारत देश टूट चुका है। इसकी अखण्ड शक्ति टुकड़ों में बंट गई है। पर संविधान ने इन टुकड़ों को जोड़ने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। साथ ही समता, बंधुता, न्याय और मानवाधिकार दे कर भारतवासियों को गणतंत्र प्रदान किया है। संविधान के पूर्व इस

बड़े मानव वर्ग को अस्पृश्यता, अज्ञानता, अंधश्रद्धा के धोखे में रखा गया था। इसे कवि याद दिलाना चाहता है -

"बहरुपियों ने आज तक
बता तुझे क्या दिया ?
संविधान में मिला है न्याय
बाबा के ही हाथ से।।" [13]

शूद्रेतर जातियों में आज़ादी के तिहत्तर साल बाद भी दस प्रतिशत ही उच्च शिक्षा और नौकरी व्यवसाय बड़ी मुश्किल से पाते हैं। बाकी अशिक्षित, अर्धशिक्षित, मजदूर बनने में ही धन्यता मानते हैं। जबकि उच्च वर्ग के युवाओं में उत्कृष्ट क्षेत्र में नौकरी व्यवसाय पाने की होड़ हैं। वहीं इस वर्ग के युवाओं में चपरासी, सफाई कर्मचारी के पद पाने में खुशी मिलती है। इस सोच को बदलने का आवाहन करते हुए कवि कहते हैं -

"आखिर क्यों व्याप्त है
तुम्हारी सोच में असफलता का भूत ?
जूझने की हिम्मत पैदा कर
आशा और विश्वास के बीज बो
आगे बढ़
और
अपनी सोच बदल।"[14]

अशिक्षित वर्ग विचारधारा और अपने इतिहास से कटा हुआ है। अपनी और परिवार की रोटी के लिए तरह तरह की बेगारी करता फिरता है। पर शिक्षित और आत्मनिर्भर वर्ग भी किताबों से दूर रहता नज़र आता है। इस पीढ़ी के आधे से अधिक लोगों को अपना इतिहास भी मालूम नहीं है और न ही वे जानना चाहते हैं। अतः इतिहास और ऐतिहासिक महात्माओं को भूलने वाले इतिहास नहीं गढ़ सकते। इसलिए कवि ऐसे लोगों को फटकारते हुए पूछते हैं -

"बिरसा ऊधम खो गये,खो गई पन्ना धाय।
झलकारी बलिदान को, काहे दिया भुलाय।।"[15]

कवि सूरजपाल चौहान की कविता सहृदय पाठकों को सोचने पर बाध्य करती हैं। शिक्षित पीढ़ी को चाहिए कि वे अपने अतीत को याद करते हुए नई पीढ़ी को संस्कारवान, बुद्धि और विवेक प्रदान करें। सामाजिक विषमता को अपने विचार और व्यवहार से दूर कर सामाजिक सौहार्द्रता गांव-गांव में बढ़ाने में सहायक हो। जो लुटेरे,चोर उचक्के देश को वर्ग, वर्ण, धर्म, अर्थ के नाम पर लूटते हैं उनके आगे नरसिंह अवतार धारण कर उस मानसिकता को खत्म कर देश की प्रगतिशील चेतना को आगे बढ़ाने में योगदान देना चाहिए। कवि कहता है -

"वे सब चोर डकैत हैं, लूटा मेरा देश।
सेंध लगाकर आ धंसा, धर नरसिंह का भेष।।"[16]

**संदर्भ सूची -**

1. मुद्राराक्षस - नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ दलित कहानियाँ - पृष्ठ क्र. 8, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004
2. सूरजपाल चौहान - क्यों विश्वास करूं - पृष्ठ क्र. 15, वाणी प्रकाशन, 2004
3. वहीं - पृष्ठ क्र 16
4. वहीं - पृष्ठ क्र 19
5. वहीं - पृष्ठ क्र 22
6. वहीं - पृष्ठ क्र 25
7. वहीं - पृष्ठ क्र 26
8. वहीं - पृष्ठ क्र 27
9. वहीं - पृष्ठ क्र 29
10. वहीं - पृष्ठ क्र 37
11. वहीं - पृष्ठ क्र 38
12. वहीं - पृष्ठ क्र 39
13. वहीं - पृष्ठ क्र 40
14. वहीं - पृष्ठ क्र 42
15. वहीं - पृष्ठ क्र 43
16. वहीं - पृष्ठ क्र 44

# Ñ".kk lkcrh d miU;kl lkfgR; e :<heDr L=h

lJh-lo.kk ujl dkcG-
हिंदी विभागाध्यक्षा
कला व वाणिज्य महाविद्यालय, सातारा
भ्रमणध्वनी –9850112596

हिंदी उपन्यास साहित्य के प्रारंभिक काल में नारी का चित्रण आदर्श त्यागमयी रूप में रेखांकित हुआ। क्योंकि, प्रारंभिक लेखन पुरूषो द्वारा होने के कारण उन्होंने आदर्श परिवार, आदर्श समाज के निर्माण के लिए नर–नारी पुरूष संबंधों को लेकर परिवार, विवाह एवं दांपत्य जीवन में निर्माण होनेवाली समस्याओं से मार्ग निकालनेवाली त्यागमयी समर्पित नारी रूप को रेखांकित किया। जिसमें नारी को आदर्श माता,पत्नी, बहू, बेटी के रूपों में उसे देवत्व प्रदान कर समर्पण भाव की श्रेष्ठता प्रदान की। परंतु, उसके अपने जीवन की समस्याएँ, अधिकार एवं इच्छाओं को कही जगह नही दिखाई देती है। फिर भी सामाजिक समस्याओं को लेकर नारी संबंधी गलत रूढी–परंपराओं को रेखांकित करनेवाला साहित्य और साहित्यकारो का योगदान भी महत्वपूर्ण है।

स्वतंत्रता के बाद साठ के दशक में हिंदी उपन्यास साहित्य लेखन में महिला लेखिकाओं का बडी संख्या में आगमन हुआ। इस साहित्य में 'नारी अस्मिता' का स्वर प्रमुख था। जो नारी 'स्व' के प्रति जागृत होकर अपने अधिकार प्राप्ती के लिए संघर्षरत चित्रित हुई है। पुराने रीति–रिवाजो', रूढी–प्रथाओं को त्यागकर नए मूल्यों की स्थापना प्रारंभ हुई, जिसमें नारी का अनुगामिनी नही बल्की, सहगामिनी बनने का संघर्ष रेखांकित हुआ है। इस दशक के हिंदी महिला लेखिकाओं में उषा प्रियवंदा, कृष्णा सोबती, मेहरूनिस्सा परवेज, मृदुला गर्ग, निरूपमा सेवती, मन्नू भंडारी, सूर्यबाला आदि कई साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान है। इन महिला लेखिकोओ में कृष्णा सोबती का अपना विशिष्ट स्थान है। क्योंकि, उन्होने प्रथम बार अपनी नारी पात्रों को 'स्व' के लिए चेतित चित्रित किया। नारी 'वस्तु' नही। बल्की, वह भी 'व्यक्ति' है। इसका एहसास भारतीय समाज को करा दिया। योनी–शुचिता को लेकर नारी को सदियों से बंदिनी बनाकर रखनेवाली साखल को तोडकर नारी की आत्मा की आवाज डंके के चोट पर चौराहे पर लाकर ध्वनित की। परिणाम स्वरूपःनारी के दैहिक, आर्थिक मॉग पर आवाज उठाने वाली उनकी प्रत्येक कृती 'मील का पत्थर'है। जिसमें भारतीय नारी को'योनी शुचिता' से मुक्त कर परंपरागत रूढियों को त्यागकर 'व्यक्ति' बनकर जीने का एलगार है। परिणाम स्वरूप उनकी प्रत्येक रचना विवाद का विषय जरूर रही है। फिर भी निर्भिक, नीडर स्वभाव की कृष्णा सोबती जीवन के अंत तक भारतीय नारी के मुक्ति के लिय लेखनी चलाती रही। वह कहती है,''हम सिर्फ लेखक है। हम स्वतंत्रता चाहते है। में तो अपनी आजादी का बहुत ख्याल करती हूँ। में ही नही दुनिया भर के लेखक ऐसे हैं। आजादी छोटी चीज नही' है।, बहुत बडी चीज है। ''1 भारत देश को विभाजन के दरम्यान सबसे ज्यादा यातना झेली नारी की व्यथा को अपने कहानियों में शब्द–बध्द करनेवाली कृष्णा सोबती ऐसी लेखिका ही जिसे आजादी का सही अर्थ समझा था। इसलिए उन्होंने भारतीय नारी को वस्तू, भोग्या इस रूप से बाहर निकालकर एक 'व्यक्ति' होने और जीने के अधिकार का संग्राम कलम के माध्यम से प्रारंभ किया । डॉ.ब्रिजिट पॉल कहती है ''उनके अनुसार स्वतन्त्रता का आधिकार हर व्यक्ति का होता है, चाहे वह पुरूष हो या स्त्री। उनके पात्रों मे इसका अनुगूंज मुखरित है। अपनी स्वतंत्र व्यक्तित्व चेतना और युगीन यथार्थ के साक्षात्कार से उन्होंने जिस दृष्टिकोन को अपनाया है, उसे अपने रचनाओं के द्वारा व्यक्त करने का प्रयास किया। मौलिक प्रतिभा से मण्डित कृष्णा सोबती का यह स्पष्टवादी व्याक्तित्व हिंदी साहित्य जगत में बिल्कुल असाधारण है। '' 2 बचपन से ही आर्य समाज के संस्कारों में पली–बडी कृष्णा सोबती ने व्यक्ती स्वतंत्रता को महत्वपुर्ण माना परम्परावादी नारी संबंधी दकियानूसी मूल्यों को नकारकर नये मुल्यों की स्थापना करना अपने साहित्य का लक्ष्य रखा। और स्वतंत्रता और नये मूल्यों की स्थापना करनेवाले अमर नारी पात्र हिंदी साहित्य को प्रदान किये।

कृष्णा सोबती का सन 1967 में प्रकाशित उपन्यास 'मित्रो–मरजानी' बहुचर्चित उपन्यास है। 'सेक्स' नर–नारी की प्राकृतिक आवश्यकता है। भारतीय समाज नारी को सारा जीवन सेक्स इस प्राकृतिक आवश्यकता

को काबू में रखने पर ही आदर्श चरित्रवान नारी की उपाधी देता है। उसके लिए विवाह संस्था निर्माण कर आजीवन नारी जीव्कन पिता,पति और पुत्र भाई के रूप में रक्षक खडे कर दिये जाते है। नारी के सेक्स की पूर्ति के लिए कभी महत्त्वपूर्ण नही व उस पर बोलने की इजाजत दी 'मित्रो पूर्ण समझा मरजानी'की नायिका 'मित्रो' पति के पौरूष्यहीन होने पर सेक्स की पूर्ती की मागॅ खुले आम करती चित्रिन करके कृष्णा सोबती ने समाज में भूचाल लाया था। सदियों से नारी को बालविवाह, विधवा, अनमेल विवाह जैसे कुरूढियों का शिकार होकर दैहिक जबरदस्ती को सहना पडा था। परंतू उसके मानसिकता शरीरिक आवश्यकता एवं इच्छा के अनुसार सेक्स की मॅाग करते की मौहलत नही थी। कृष्णा सोबतीने प्रथम बार 'मित्रो' के माध्यम से खुलेआम दैहिक पूर्ति की मॉग करते तहलका मचाया था। पति अगर पत्नी की शारीरिक आवश्यकता पूर्ण करने में असमर्थ हो तो पत्नी को अपनी शारीरिक आवश्यकता किसी अन्य से प्राप्त करना कोई पाप नही हैं। कृष्णा सोबती ने प्रथम बार नर–नारी के दैहिक अधिकार को लेकर समाज ने बनाये दोगले व्यवहार पर प्रश्न चिन्ह उठाया है। मित्रो कहती है ''देवर तुम्हारा भैया मेरा रोग नही पहचानता... बहुत हुआ हफ्ते पखवारे मेरी इस देह में इतनी प्यास है कि मली सी तडपती हूॅ। ''3 सेक्स प्रत्येक जीव की आवश्यकता है। भारतीय नारी को योनी शूचिता के नाम पर परंपरा से बंदिनी बनकर पशुवत जीवन जीना पडा था। कृष्णा सोबती ने प्रथम बार परंपरागत मिथ को तोडकर भारतीय नारी को योनी–शूचिता के कैद से मुक्त होने के लिए आवाज उठाते 'मित्रो'का चित्रिण किया । मर्यादाओं के आड में अपनी इच्छाओं का दमन न करनेवाली 'मित्रो'को निर्माण कर कृष्णा सोबती ने आधुनिक भारतीय नारी के आगमन की सूचना भारतीय समाज को प्रस्तुत की । जिस के लिए उन्हें साहित्य जगत् के विवाद का सामना करना पडा। साथ ही 'बोल्ड' लेखिका का किताब प्राप्त हुआ।

सन 1972 में प्रकाशित सूरजमुखी अंधेरे के' उपन्यास में कृष्णा सोबती ने बलात्कार का शाप भोगती नायिका रती के शारीरिक और मानसिक द्वंद्व को रेखांकित किया है। बलात्कार के कारण समाज द्वारा प्रताडना झेलती गंदी लडकी का लेबल लेकर बालिका से युवती बनी'रती' यौकन उत्पीडन से मुक्त होना चाहती है। बलात्कार के कारण फ्रीजीडिटी बीमारी की शिकार बनी रती अनेक युवकों से यौन संबंध रखकर भी बीमारी से मुक्त नही हो पाती है। क्यों कि भारतीय पुरूष मानसिकता के अनुसार उसके जीवन में आनेवाला हर पुरूष उसे भोग वस्तु के रूप में लूटने आते है। बल्कि, रती को इतंजार है, उसे व्यक्ति मानकर उसके कोमल भावनाओं को प्रस्फुटित कर उसे सम्पूर्ण स्त्री होने का एहसास करा दे। बलात्कारी रती की तरफ वस्तू के रूप में देखने की पुरूष मानसिकता तो दूसरी तरफ फ्रिजीडीटी की बीमारी से बाहर निकलने के लिए उनके पुरूषो के साथ चलनेवाली रती पुरूषप्रधान समाज को सवाल करती है–की भोगवादी वृत्ती किसकी है? यह सवाल बार–बार 'सूरजमुखी अंधेरे के' उपन्यास का प्रत्येक पृष्ठ करता है। क्यों कि स्त्री सृजन करता है। वह बना–बनाया तोडना नही जानती इसलिए कुछ भी छिनकर प्राप्त नही करती है। अपना अधिकार मॉगती है। 'सूरजमुखी अंधेरे के' उपन्यास में कृष्णा सोबती ने सती' के माध्यम से दैहिक तृप्ती हर एक नारी की आवश्यकता को प्रस्तुत किया है। चाहे समाज ने उसे गंदी लडकी क्यों न ठहराया हो। नायिका रती का जीवन लक्ष्य स्त्री–को प्राप्त करना था। जिसके लिए वह दूसरो का बसा–बसाया संसार उधेडना नही चाहती है।''मैं जुडे हुऐ को नही तोडूॅगी, विभाजन नही करूॅगी। मेरी देह अब तुम्हारी प्रार्थना है दिवाकर । ''4 नारी के समर्पण भाव को उसकी कमजोरी न समझकर उसके सृजन शक्ती को जानना आवश्यक है। दूसरी ओर नारी का सम्मान करना चाहिए इस ओर रती का चरित्र पाठका का ध्यान आकृष्ट करता है। व रती का अनेक पुरूषो' से संबंध रखना उसकी बीमारी है का इलाज है। परंतु,बलात्कार करनेवाले, स्त्री को भोग्या समझनेवाले पुरूषप्रधान समाज के कुप्रवृत्ती पर इलाज ढूंढने के लिए यह उपन्यास पाठक को बाध्य करता है।

भारतीय पुरूष प्रधान समाज ने लिंगभेद करके नारी को हेमशा दोयम स्थान दिया। नारी को एक प्रजनन की वस्तु, एक भोग्या के रूप में ही देखा। सदियों से रूढि–परंपराओं के बोझ तले 'स्व'को जीना भूल बैठी नारी की जीजिविषा को कृष्णा सोबती ने 'ऐ लडकी'उपन्यास के अम्मू के माध्यम से वाणी दी है। 'ऐ लडकी 'की नायिका अम्मू नारी के सृजन शक्ति को जानती है। परंतु,मॉ–बेटी ,बहन और पत्नी बनकर जीवन भर जिम्मेदारी उठाते–उठाते अपने लिए उसे कही अवकाश प्राप्त नही होता है। बल्की, उसे वह अवकाश प्राप्त करके नही दिया जाता है। पुरूष प्रधान समाज ने नारी को हमेशा अनुगामिनी बनाकर सदियों सें चली आई रूढि–परंपराओं पर

चलना ही उसके जीवन का ययार्थ बताया था। परंतु, आधूनिक युग के आगमन से चेतित नारी अपने 'स्व' के बारे में सोचने लगी है। अम्मू कहती है ''उसका वक्त तब सूधरेगा जब वह अपनी जीविका आप कमाने लगेगी । सोचने की बात है। मर्द काम करता है तो उसके एवज में अर्थ—धन प्राप्त होता हैं। औरत दिन—रात जो खटती है, वह बेगार के खाते में ही न। ''5 त्याग, समपर्ण में जीवन बीताने पर भी नारी का समाज परिवार में अपना को स्थान नही है, न उसे अपनी कोई जगह है। नारी को 'स्व' के लिए कोई जगह बनानी हा तो परंपरा से चली आई त्यागमूर्ति प्रतिमा को त्यागकर उसे एक 'व्यक्ति' बनकर जीवन का आनंद उठाना चाहिए। नारी को जीवन का आनंद उठाना हो तो उसे आत्मानिर्भर होने के साथ—साथ आर्थिक निर्भर होना आवश्यक है। नारी का अर्थ प्राप्ती करना उसका पुरूष के साथ प्रतियोगिता करना नही है। बल्की, अपने 'स्व' को जीना अपने पहचान बनाने के लिए तैयार होना है। डॉ. सुधा बी कहती है ''जब तक लिंग भेद की राजनीति रहेगी स्त्री दोयम दर्जे की नागरीक बनी रहेगी। स्त्री को रूढियों की इस खोल से मुक्त होना है। त्याग समर्पण आदर्श की रूढिग्रस्त मान्याताएँ समाप्त हो गई है। हाशिये कृत स्त्री को जो वेदना है उसे कोई सुनता नही बल्की उसे और भी अपमानित करने की कोशिश की जाती है। समाज की इसी व्यवस्था पर अम्मू अपना आक्षेप प्रकट करती है। ''6 भारतीय समाज ने सदियों से रूढि—परंपराओ,कुप्रथाओ के नाम पर नारी को उसके अपने सृजन को अवकाश नही दिया था। उसके व्यक्ति अधिकार' को नकारकर पुरूष प्रधान समाज के हाथ की कठपुतली बनाकर रखा था। उसी कठपुतली बनकर रखने वाले पुरूष प्रधान समाज के हाथ में रही अर्थिक डोर से मुक्त होना महत्त्वपूर्ण माना है। नारी अस्मिता को जागृत कर उसके व्यक्ति अधिकार, दैहिक अधिकार एवं आर्थिक आत्मनिर्भर होने केलिए रूढियों को त्यागनेवाली नारी पात्रों का निर्माण कृष्णा सोबती की हिंदी साहित्य जगत् को देन है। उनका सपूंर्ण साहित्य भारतीय पुरूष प्रधान समाज को नारी की ओर एक व्यक्ति रूप में देखने का नजरियाँ प्रदान करता है।

**fu"d"k %&**

भारती नारी को रूढि मुक्त होने के लिए अपने लेखनी से उसके 'स्व' को जागृत करने वाली कृष्णा सोबती हिंदी साहित्य की शोर्षस्थ लेखिका है। नारी को रूढि मुक्त करने के लिए उसे आत्मनिर्भर आर्थिक निर्भर होने के साथ—साथ अपने दैहिक अधिकार को पाना उसका अधिकार माना है। जिसके लिए मित्रो, रती, अम्मू जैसी अनेक नारी पात्रों के माध्यम से 'स्व' अस्मिता जागृत होने पर अपने अधिकार के लडती नारी पात्रों का निर्माण किया। कृष्णा सोबती को प्रत्येक नारी पात्र रूढियों को तोडकर नये मूल्यों की स्थापना करता है। जिव्ह मूल्यों में उसे अपने लिए 'स्पेस्' है। इसलिए हिंदी साहित्य जगत में भारतीय नारी को रूढिमुक्त करनेवालो साहित्य प्रदान कर उसके न्याकि अधिकार का नारा कलंद करनेवाली कृष्णा सोबती का साहित्य हिंदी साहित्य जगत में 'मील का पत्थर' बनकर रहेगा।

**InHk Iph %&**

1) डॉ. पॉल ब्रिजिट, कृष्णा सोबती ; व्यक्ति एवं साहित्य ; जवाहर पुस्तकालय, मथुरा ( 3.प्र)281001.प्र.सं. 2005,पृ—19—20
2) वही,पृ—21—22
3) सोबती कृष्णा, मित्रो मरजानी ; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली,पहली आवृत्ती—2009, पृ—67
4) सोबती कृष्णा, सूरजमुखी अंधेरे के ; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं.1972, पृ—125
5) सोबती कृष्णा, ऐ लडकी ; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम आवृत्ती 2013 पृ—63
6) डॉ. बी.सुधा, हिंदी कथा साहित्य में रूढिमुक्त स्त्री ; जवाहर पुस्तकालय, हिंदी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक मथुरा ( 3. प्र ) प्र.स.2010, पृ—55—56

# 21वीं सदी के दौर में बदलती भारतीय संस्कृति और हिंदी साहित्य

**डॉ. एस. बी. देसाई**
के. एच कॉलेज, गारगोटी

वर्तमान समय भूमंडलीकरण का है। जिसमें चीजें अपनी स्थानीय पहचान का त्याग करके 'ग्लोबलाइज्ड' होने के लिए बेकरार हैं। भूमंडलीकरण ने मनुष्यों के सामने नयी चुनौतियाँ निर्माण की हैं जिससे बचना बहुत ही मुश्किल लग रहा है। भूमंडलीकरण जिस उपभोक्तावादी संस्कृति को सम्पूर्ण विश्व में स्थापित करने में लगा है, उससे भारत भी अछूता नहीं है। आज हम बाज़ार में जीने के लिये अभिशप्त हैं।बाज़ार हमारे घर में घुसता जा रहा है। अगर हम कहे कि बाज़ार ही हमारा खाना, पीना, ओढ़ना, बैठना, उठना यहा तक की हमारा सोना भी बाजार ही तय कर रहा है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

बाज़ार तो भारतीय समाज में पहलेसे ही उपस्थित है मगर आज के बाज़ार का स्वरूप पुराने बाज़ार से काफ़ी भिन्न है। पहले हम जरूरत के समय ही बाजार जाते थे लेकिन अब बाज़ार की आकर्षण शक्तिहमें बाजार की ओर खिंच रही है और जिस वस्तु की हमें जरूरत नहीं उसेहम खरीद रहे हैं। अगर आपके पास पैसा नहीं है तो कंपनियाँ उधार या किस्तों पर सामान देने के लिए खड़ी हैं, या बात 'कलि-कथा वाया बाइपास' उपन्यास में अलका सरावगी ने उठायी है। इस प्रकार उपभोक्तावादी संस्कृति का शिकार भारतीय जनमानस सबसे ज़्यादा हो रहेहैं। बाज़ार का चरित्र निर्माण करने में विज्ञापन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बड़ी-बड़ी मल्टीनेशनल कंपनियाँ अपने 'प्रोडक्ट' को प्रचारित एवं प्रसारित करने के लिये विज्ञापन रूपी हथियार का इस्तेमाल करती हैं। इस संदर्भ में प्रभा खेतान कहती हैं-"स्वतंत्र बाज़ार ने विज्ञापन द्वारा प्रत्येक देश की संस्कृति को प्रभावित किया है। विज्ञापनों की हवा पर सवार होकर उपभोक्तावाद दूर-दूर तक यात्रा करता है"

बाज़ार ने अगर किसी को सबसे ज़्यादा प्रभावित किया है तो वह है 'स्त्री'। इस नयी सदी ने जहाँ एक तरफ स्त्रियों को आर्थिक आज़ादी दी, वहीं दूसरी तरफ उसे बाज़ार के बीच लाकर खड़ा कर दिया है। बाज़ार स्त्री की पारंपरिक छवि को बदलकर अपने फ़ायदे के अनुसार गढ़ रहा है।आधुनिकता की आड़ में वह स्त्री को व्यक्ति से वस्तु के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करने में लगा है। जिससे स्त्री की पारंपरिक छवि को बहुत बड़ा धक्का लगा है। अपनी आर्थिक जरूरतों और महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए स्त्रियाँ अक्सर गलत कदम उठाती हैं जहाँ से वापस लौट पाना बेहद मुश्किल हो जाता है।इसका ही नतीजा है कि आज भारत में अनेक लडकियाँ आत्महत्या कर रही है, या उनकी हत्या हो रही है। यह सब भारत जैसे देस में हो रहा है जिस देश में नारी की पूजा की जाती है तथा नारी विमर्श के नाम पर स्वतंत्रता के बाद नारी सुधार के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं। आज लडकियाँ पढी -लिखी है मगर बाजारु संस्कृति की चपेट में आ चुकी है। नारी की उन्नती हो यह अच्छी बात है मगर आज के बाजार की वस्तु बने यह बहुत ही चिंताजनक बात है। इस संदर्भ में कवियित्री प्रभा दीक्षित कहती है -

*"विश्वसुंदरी बोलो तुमने क्या खोया, क्या पाया है*
*तन के बाजार में तुमने कितना कष्ट उठाया है*

*देह तुम्हारी विज्ञापन बनती है किसी तिजारत की*

*किन लोगों की खातीर तुमने अपना रूप सजाया है...”.*

इस नयी सदी में स्त्री की सोच में हो रहे परिवर्तनों को इस युग के साहित्यकारों ने बहुत करीब से महसूस किया है न केवल महसूस किया बल्कि उसे अपनी लेखनी का विषय भी बनया। बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद किस तरह से स्त्री को प्रभावित कर रहा है, आधुनिकता और भौतिकता के युग में कैसे एक स्त्री उपभोग की वस्तु बनती जा रही है?जिसका वर्णन हिंदी के अनेक उपन्यासों में मिलता है। जिसमें काशीनाथ सिंह का ‘रेहन पर रग्घू’, अलका सरावगी का ‘शेष कादम्बरी’,‘एक ब्रेक के बाद’, अनामिका का ‘तिनका-तिनके पास’, कमल कुमार का ‘पासवर्ड’, लता शर्मा का ‘सही नाप के जूते’, और जयंती का उपन्यास ‘ख़ानाबदोश ख्वाहिशे’ आदि। इन उपन्यासों में परंपरागत स्त्री छवि में हो रहे बदलाओं को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। अब स्त्रियाँ अपनी निजता पर खुल कर बोल रही हैं, अपनी शारीरिक जरूरतों और यौन इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए विवाह से पहले या विवाहेत्तर संबंध बनाने से भी परहेज नहीं कर रही हैं।यह इस युग की नई नैतिकता है जिसे आधुनिक नारी गढ़ रही है। अभी तक स्त्री जिन मुद्दों पर बात करने से शर्म महसूस करती थी, अब उन्हीं मुद्दों पर बोल्ड होकर बात करती हुई दिखाई देती हैं। मैत्रेयी पुष्पा तो अपनी आत्मकथा के माध्यम से खुदको स्त्री को लेकर परंपरागत भारतीय मापदंडों को तोडकर अपने आप को समाज के सामने खोलती है। यह नई नारी की सोच है।

‘लिविंग इन रिलेशनशिप’की संस्कृति का चलन भारतीय समाज में आम होता जा रहा है। जिसका प्रभाव भारतीय स्त्रियों पर भी पड़ा है। आज की ‘स्त्री’बिना विवाह बंधन में बंधे ही किसी पर पुरुष के साथ रहने में कोई संकोच नहीं करती। इस तरह की मानसिकता महानगरों की स्त्रियों में ज़्यादा नज़र आरही है। जिसका जिक्र अनामिका ने अपने उपन्यास में कुछ इस तरह से किया हैं-“मुझे सहजीवन और विवाह में बुनियादी फ़र्क़ नज़र नहीं आता। फ़र्क़ है तो इतना कि विवाह के सिर पर क़ानून की छतरी और धर्म का चंदोवा टंगा है और सहजीवन बिना छतरी और चंदोवे के धूप और बारिश साथ झेलने और भोगने के रोमांस से नहाया हुआ है। विवाह एक परम ठोस सामाजिक व्यवस्था है.... सहजीवन है खुले द्वार का पिंजड़ा, जब तक मिठास से निभे, रहो, वरना तुम अपने रास्ते, हम अपने”

उपभोक्तावादी संस्कृति ने स्त्री को भोग की वस्तु बना दिया जिसकी वजह से पुरुष स्त्री को भोगने के लिए हमेशा तत्पर रहता है। पुरुष की अतृप्त वासना सदैव स्त्री को आकर्षित करती है। कविपवन करण लिखते हैं:-

*“मैं उसकी देह को अपना घाव चाटते*

*कुत्ते की तरह चाटना चाहता था*

*मैं उसकी देह को गंडेरी की तरह चाहता था चूसना*

*मैं उसे अपने मुंह में भरकर*

*शक्कर के दानों की तरह चबाना चाहता था”।*

मगर एकबात दिखाई देरही है किनारी अपने अस्तित्व,अपने अधिकारों की रक्षा केलिए जागृत हो रही है।

*"दिखती है वह स्वयंगर्भपातकरवालेतीहै।*
*भाईसाहब हमउसदेशकेरक्षकहै!*
*परिवार नियोजन के पक्के समर्थक हैं*
*उन्होंनेजबभीजन्मलेनाचाहा*
*तब-तब मैंने स्वयं ही गर्भपात करवाया है"।*

हमारी संस्कृति इतनी बदल चुकी है कि पिताजी डैडी बन गए और अम्मी मॉम। यह एक पराजीत मानसिकता का परिणाम है। पूँजीवादी उत्तर आधुनिकता के नाम पर इतिहास, संस्कृति, विचार, ईश्वर, मनुष्य, लेखक, आलोचक आदि को नकार रहे हैं।नकारने वाले की न ही कोई संस्कृति है न इतिहास, न मूल्य और न ही भाषा-नीति।आज हर मनुष्य, हर देश तनावपूर्ण जीवनजी रहे हैं। आज दुनिया में विचार पर प्रचार हावी है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में हैं। आज व्यक्ति को मजबूर किया जा रहा है, वैसा सोचने पर जैसा व्यवस्था चाहती है। आज हमारी संस्कृति जिनके पास बची हुई है उन आदिवासियों को भी उनकी अपनी जगह से उखाडा जा रहा है।

आज वैश्वीकरण के युग में आर्थिक और मानसिक रूप से पूरी तरहहम गुलामी की ओर बढ़ रहे हैं। हम अपनी संस्कृति को भूलकर अपनी पहचान खोतेजा रहे हैं। आज व्यक्ति को अपने देश की तुलना में विदेशी चीजें अधिक आकर्षित कर रही है। आधुनिक समय के साथ हम दौडते दौडते हमारे परंपरागत मूल्योंको छोडकर नए मूल्योंके साथ दौड रहे हैं।

*खूबसूरत घरों में नहीं रहते, पीतल के लोटे,*
*कांसे के कटोर, मिट्टी के घड़े, खील- बताशे*
*वहां नहीं रहती गंगाजल की बोतल,*
*गीता, रामायण, राधा-कृष्ण-शिव के कैलेंडर...।*
*खूबसूरत घरों में उगे रहते हैं तमाम तरह*
*के विदेशी फूल, खूबसूरत घरों में नहीं उगता तुलसी का पौधा।*

आज कोयला घोटाला, आदर्श घोटाला, सिंचनघोटाला, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी अपने पग फैलाए देश को खोखला बना रही है।वीरेंद्र मिश्र ने समाज में व्याप्त रिश्वतखोरी का चित्रण इस प्रकार कियाहै -

*नील गगन सा बेकारी का साया है*
*कुछ निशा सी महंगाई की छाया है*
*शासन का दीपक मरघट सा जलता है*
*रिश्वत का रथ राजमार्ग पर चलता है।*

किसीभी देश की संस्कृति अपना प्रभाव सीधे-सीधे नहीं जमाती है, पहले वह वहाँ प्रचलित संस्कृति को पिछडी साबित करती है और फिर उसके समानांतर एक नई संस्कृतिका विकल्प प्रस्तुत करती है। भूमंडलीकरणकी संस्कृति इसीरूपमें अपना प्रभाव जमाने में सफल हुई है। भारतमें व्हेलेंनटाई डे रोज डे,फ्रेंडशीप डे शादि-ब्याहमेंभी अनेक रस्म जैसे प्रीवेडिंग इसीकातो नतीजा है।

गांधी जी ने विकास में अंतिम आदमी को ध्यान में रखने की बात कही थी, आज के विकास में इस तथ्य को अनदेखा कर दिया गया है। आम-आदमी ही सबसे अधिक इस व्यवस्था में प्रताड़ित है। उसकी जमीनों को विकास के नाम पर ले लिया जाता है और बदले में उसे कुछ रुपए देकर उसे हमेशा के लिए मालिक से मजदूर बना दिया जा रहा है। विकास का कोई विरोधी नहीं है मगर इस बात पर आपत्ति है कि इनकी बडी कीमत समाज के एक बडे तबके को चुकानी पडती है। आज इस व्यवस्था, नीतियों का जो विरोध करता है उसे विकास विरोधी माना जाता है।

भूमंडलीकरण से शहर ही नहीं ग्रामीण समाज भी इससे बहुत अधिक प्रभावित हुआ है। यह बदलाव परिवार की संरचना से लेकर मूल्यों में बदलाव के रूप में देखा जा सकता है। गाँव अब शहर में तबदील हुआ है। शहर मोबाईल कंपनियों के विज्ञापन से रंगा हुआ है। आज विज्ञापन के माध्यम से भूमंडलीकरण की संस्कृति पूरे समाज में फैलायी जा रही है।

आज उन्हीं वस्तुओं को बेचा जा रहा है जो बेचनेवाला बेचना चाहता है। यह नव संस्कृति है। इस संस्कृति में जरुरते पैदा की जा रही है वह चाहे वस्तुओं के माध्यम से हो या किसी दूसरे रूप में।

शहरी समाज में संवेदनहीनता बढ रही है। इस संस्कृति के प्रचार प्रसार में टीवी ने सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस संस्कृति के प्रभाव में सबसे अधिक युवा हैं जो ज्यादा पैसे कमाने के लालच में लगातार लगे हुए हैं। निर्वासनउपन्यास में तेंदुलकर और सूर्यकांत के भाई को इस रूप में देखा जा सकता है। तेंदुलकर कहता है - अगर अपने को बेचने का शऊर हो तो आज की दुनिया में क्या नहीं बेचा जा सकता है! बस आपको चाहिए एक चांस और खुली भरीपुरी दुनिया।

युवा वर्ग पैसे के लिए आसानी से अपना देश बहुत आसानी से छोडने के लिए तैयार है। आज पढलिखे लोगी की विदेश जाने की संख्या लगातार बढ रही है यह काफी चिंता का विषय है। जब कोई भी संस्कृति अपने तरीके से लोगों की सोच बदलने लगती है तब समस्या गंभीर हो जाती है। भूमंडलीकरण की संस्कृति आज दुनिया के अधिकांश लोगों को अपने हिसाब से संचालित कर रही है। यही बात 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में काशीनाथ सिंह ने उठाई है।

आज युवा गाव छोडकर शहर की ओर जा रहा है यह अच्छी बात है मगर गाँव में बुजुर्गों को जिस यातना से गुजरना पडता है वह भी कम नहीं है। इस संस्कृति के कारण मनुष्य में असुरक्षा का भाव भरा हुआ है। जो रेहन पर रग्घू, निर्वासन उपन्यास में देखा जा सकता है।अकेलेपन पर कवि कुँवर नारायण अपनी कविता ' बाजारों की तरफ भी' में लिखते हैं -

*"वैसे सच तो यह है कि मेरे लिए*
*बाजार एक ऐसी जगह है*
*जहाँ मैंने हमेशा पाया है*
*एक ऐसा अकेलापन जैसा मुझे*
*बडे-बडे जगलों में भी नहीं मिला"।"*

'दौड' उपन्यास का पात्र वैश्वीकरण की एक उपज है। जिसमें हमारी संस्कृति के लिए कोई स्थान नहीं है। पवन माता पिता से कहता है , "पापा मेरे लिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है कैरियर है। ......मैं ऐसे शहर में

रहना चाहता हूँ जहाँ कल्चर नहीं कैज्यूमर हो। मुझे संस्कृति नहीं ,उपभोक्ता संस्कृति चाहिए तभी मैं कामयाब रहूँगा।'

आज आम मनुष्य को अपनी ही चीजों से दूर किया जा रहा है। जो मेहनत करके अच्छा अनाज उगाता है, उसे वह चीजें नहीं मिल रही हैं। वह चीजें बाजार में बड़े-बड़ेमॉल की शोभा बढ़ा रही हैं। उन्हीं वस्तुओं पर पूरी तरह से बाजार का हक जम गया है इसलिए कवियित्री निर्मला पुतुल कहती है-

*"कौन है जो हमारे पेडों पर आम लगते ही पेडों का सौदा करता है।*
*और हम अपने घर के पिछवाडे फले आम से वंचित हो जाते हैं।*
*कैसे वह बोतलों में बंद होकर पहुँच रहा है? बाजारों तक..."*

**निष्कर्ष**

इस प्रकार आज के भूमंडलीकरण के इस युग में पूरी दुनिया झकझोर उठी है। लोगों पर बाजार हावी है। मनुष्य को बाजार नियंत्रित कर रहा है। अपने पुराने मूल्य, संस्कृति पर बाजार हावी है। स्त्री बाजार की वस्तु बन चुकी है। बाजार तो मनुष्य के विकास का नाम लेकर आया है मगर उनकी सोच कुछ और ही है। भूमंडलीकरण से थोडा-बहुत विकास हुआ है लोगो में जागृतता आई है मगर पूँजीवादी ताकते लोगों की स्वतंत्र सोच, विचार को अपनी ताकत के बल पर कुचलने का काम कर रही है।

**संदर्भ**

1. प्रभाखेतान,भूमंडलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र,सामयिक प्रकाशन,नई दिल्ली,2010
2.प्रभाखेतान,बाज़ार के बीच: बाज़ार के खिलाफ़, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,2010
3. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू,राजकमलप्रकाशन, दिल्ली, 2014
4. अलका सरावगी, शेष कादम्बरी,राजकमलप्रकाशन,2008
5. अलका सरावगी,एक ब्रेक के बाद,राजकमलप्रकाशन, दिल्ली 2012
8. लता शर्मा, सही नाप के जूते, भारतीयपुस्तकपरिषद, दिल्ली, 2012
9. जयंती, ख़ानाबदोश ख्वाहिशें, सामाईकप्रकाशन,नईदिल्ली, 2010
10. अनामिका, दस द्वारे का पिंजरा, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2008
11. डॉएनसिंह, सतहसेउठतेहुए, राजपब्लिशिंगहाऊस, 1991
12. अखिलेश, निर्वासन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2014
13. (संपादक) आग्रवाल, पुरुषोत्तम, कुँवर नारायण प्रतिनिधि कविताएँ

# हिंदी साहित्य में नारी की यथार्थ स्थिति का अंकन

**प्रा. डॉ. अशोक बळी कांबळे**
हिंदी विभाग,
कर्मवीर हिरे कॉलेज, गारगोटी.

आज के युग में समाज और परिवार में नारी की बड़ी अहम भूमिका दिखाई देती है। आज की नारी और प्राचीन की नारी में अंतर है। प्राचीन काल में पत्नी अपने पति को देवता मानती थी। पति के प्रति विश्वास एवं समर्पण की भावना दिखाई देती थी, जो आधुनिक काल में सर्वत्र नजर नहीं आती। मिथिलेश्वर ने अपनी कहानियों में ग्रामीण नारी का चित्रण किया है। वह अनपढ़, भोली-भाली, सहनशील तथा शोषित है। कुछ नारियाँ पढ़ी-लिखी, समाज सेविका, अन्याय-अत्याचार एवं शोषण के खिलाफ पड़नेवाली भी हैं। ग्रामीण जीवन में नारी विवाह के उपरांत सुखी नहीं है। गाँव की नारी मध्यकालीन नारी की तरह आज भी शोषित और पीड़ित है। उसके विचारों की परवाह किए बिना कहीं भी ब्याह दिया जाता है। आज भी गाँव में अज्ञान, अशिक्षा, रूढ़िप्रियता और पुराने विचारों का बोलबाला है। मिथिलेश्वर ने अपनी 'सावित्रीदीदी', 'संगीता बॅनर्जी', 'वैतरनी भौजी' आदि कहानियों में इसका चित्रण अंकित किया है। ग्राम-जीवन में अशिक्षा, अंधश्रद्धा, स्वार्थी वृत्ति, स्त्रियों का अधिकार से वंचित रहना आदि बाल-विवाह के प्रमुख कारण हैं। आज भारतीय समाज सुशिक्षित होने के कारण बाल-विवाह की मात्रा कम होती जा रही है और एक समस्या है- अनमेल विवाह। अनमेल विवाह पद्धति में पति और पत्नी की उम्र में ज्यादा अंतर रहता है। इस बुरी प्रथा का कारण डॉ. सुरेश तिवारी के अनुसार - ''नारी की स्वतंत्रता का अपहरण''3 होता है और उस नारी को जीवनभर पीड़ा और दु:ख को झेलना पड़ता है। 'तिरिया जनम', 'रिश्ते' आदि कहानियों में मिथिलेश्वर ने बहु-विवाह का चित्रण किया है। पुरुष शादी-शुदा होकर भी अन्य नारियों के साथ नाजायज संबंध रखते हैं। कभी-कभी नारी भी अपने पति से तलाक लेकर दुसरे पुरुष के साथ विवाह करती है। मिथिलेश्वर के कहानियों में प्रगतीशील दृष्टि का परिचय मिलता है। अपनी कहानी के माध्यम से वे प्राय: विधवाओं के पक्षधर हैं। उनकी कहानी की विधवा नारी अपने नसीब को कोसते रहने के बजाय आत्मनिर्भर बनना चाहती है। 'पहली घटना' कहानी में इसका चित्रण है। मिथिलेश्वर ने अपने कहानी-साहित्य में स्पष्ट और अस्पष्ट रूप में नारी यौन-शोषण की ओर भी संकेत किया है। मिथिलेश्वर ने 'रास्ते', 'सिंबागो की वापसी', 'नये दंपति' जैसी कहानियों में नारी के परिवर्तीत स्थिति का चित्रण किया है। मिथिलेश्वर के विचार से ''पुरुष और नारी की मित्रता ही अच्छी और टिकाऊ होती है।''[2] मिथिलेश्वर ने सास-बहू संबंध, नारी का मॉं का रूप, श्रमिक वर्ग की नारियों पर भी प्रका डाला है। अत: नारी मुक्तिके बिना देश का उद्धार नहीं। समकालीन हिंदी कहानी में ग्रामीण नारी की यथार्थ स्थिति का अंकन करना मिथिलेश्वर का नि:संदेह एक महत्त्वपूर्ण योगदान है।

ग्रामीण जीवन से जुड़े और उसके आसपास रहनेवाले अन्य पेशावाले लोग हैं, जिनमें हलवाई, भालू का नाच दिखानेवाला मदारी, दातौन बेचेनेवाली गरीब लड़की, सेंधमारी करनेवाले, चोरी और डकैती करनेवाले असामाजिक तत्व। हलवाई की युवा लड़की अपने घर की गरीबी के कारण मजबूर होकर गॉंव-गॉंव अकेली घूम कर जलेबियाँ बेचती हैं। काम-पीड़ित लोगों की विषैली निगाहों से झुलसी जाकर अंतत: बलात्कार का शिकार होती है। मदारी अपने तमाशे से इतना कमाई नहीं कर पाता कि उसके परिवार के सदस्यों का पेट भर सके, इसलिए उनके घर की स्त्रियॉं वेश्यावृत्ति करने के लिए बाध्य हैं। दातौन बेचनेवाली गरीब लड़की भी काला व्यवसाय करनेवालों की कामवासना का शिकार होती हैं।

पूँजीवादी सभ्यता ने धोखाधड़ी के द्वारा उसके कौमार्य को खंडित किया है । असमाजिक तत्वों को गलत रास्ते पर ले जाने के लिए विषमतापूर्ण निष्ठुर समाज ही उत्तरदायी है ।

पति अपने व्यवसाय के खातिर अपनी पत्नी से पर-पुरुष संबंध रखने के लिए कहता है, जिससे उसे व्यवसाय में कोई रूकावट पैदा न हो । 'दिप्ती खंडेलवाल' का 'प्रतिध्वनियाँ' उपन्यास की अचला पूँजीपति पिता की एकलौती बेटी है । प्रेमी को छोड़कर पिता द्वारा चुने गए निलकांत नामक पुरुष की पत्नी बनना पड़ता है । विवाह उपरांत भी वह अपने प्रेमी को छोड़ना नहीं चाहती वह अपने पति को कहती है- ''केवल पिताजी के खातिर मैंने तुम्हारे साथ विवाह किया है । मैं अपने विवाहपूर्व प्रेमी से पूर्ववत प्रेम और यौन संबंध रखूँगी, तुम भी अपने प्रेमिका से संबंध रखने के लिए आझाद हो ।''[3] इसमें अर्थासक्ति और यौन संबंध स्पष्ट होता है ।

मनोविज्ञान में ''निष्क्रिय कल्पना को दिवा-स्वप्न कहते हैं ।''[4] अर्थात 'दिवा स्वप्न' में कोरी कल्पनाएँ होती हैं । 'कृष्णा सोबती' का 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में मित्रो विवाहिता नारी है । वह पति के संयमित क्रिया-व्यापार से कुंठित बन जाती है । सोते वक्त वह यौन भावनाओं की तृष्टि करती है । स्वप्न में बनारसी थानेदार को बाहें फैलाकर कहती है- ''वाहा रे कमजात बिल्ले मलाई देख मुँह मारने आया है ।''[5] मित्रो का यह स्वप्न उसकी अतृप्त यौन वासना का द्योतक है ।

अर्थ के आधार पर ही प्रकृतिदत्त आवश्यकताओं को परखा जाता है । परिणामत: नारी मन की यह कोमल भावनाएँ कभी-कभी कुचल दी जाती है । रेवतीशरण शर्मा का 'न मित न मंजिल' उपन्यास की 'राज' अर्थ के अभाव के कारण नौकरी करती है । अत: इस निर्धन परिवार की युवा नारी को विवाहपूर्व ही अनेक पुरुषों के हाथ अपना जिस्म सौंपना पड़ता है । अपने से उम्र में बड़े अफसर के बारे में सोचती है- ''यह आदमी जीवन की उस अवस्था में है, जिसमें स्त्री का प्रेम रखने की कोशिश करेगा ।''[6] ढलती उम्र में अर्थ प्राप्ति के साधन रूप में राज ने मि. साह से प्रेम करना शुरू किया ।

आधुनिक युग में नारी इन बंधनों को ठुकराने लगी है । शिक्षा, नारी-जागरण, समाज सुधारकों के विचार और नारी विषयक नए कानून आदि कारणों से अपने अधिकारों से परिचित हो चुकी है । मन्नु भंडारी का 'सौदामिनी (स्वामी)' उपन्यास में सौदामिनी शिक्षित नारी है । उसके मामा नारी स्वतंत्रता पर बोलते हैं, लेकिन जिते हैं दकियानुसी पैटर्न के अनुसार । वह कहती है- ''क्या आप भी यही मानते हैं कि शादी के बाद औरत का प्रेम करने का अधिकार समाप्त हो जाता है यह सौभाग्य केवल पुरुषों को ही प्राप्त होता है ।''[7] यही वाक्य नारी के प्रति परंपरागत धारणाओं पर प्रकाश डालता है ।

निष्कर्षत: उपर्युक्त विवेचन से हिंदी साहित्य में नारी का यथार्थ चित्रण करके प्रेम और यौन विचार जीवन की दो अनिवार्य जरूरतें बन गई हैं और दोनों जरूरतें पाने के लिए वह हमेशा प्रयत्नशील रहती है । उन्होंने इन संबंधों को विविध रूपों में रूपायित किया है । आलोच्य साहित्य में नारी के विवाहपूर्व और विवाहोत्तर प्रेम और यौन संबंधों को खुलकर चित्रित किया है। नगर तथा ग्रामीण नारी मुक्ति का प्रतिपादन करना, ग्रामजनों के सामने विधवा-विवाह और अंतवर्गीय विवाह का नया आदर्श प्रस्तुत करना आदि का हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है ।

**संदर्भ सूची -**

1. डॉ. सुरेश तिवारी, हिंदी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, 1972, पृ. 186
2. मिथिलेश्वर - एक में अनेक, 1994, पृ. 79
3. दिप्ती खंडेलवाल – प्रतिध्वनियाँ, सं. 1978, पृ. 23
4. डॉ. प्रिती वर्मा - आधुनिक सामान्य मनोवैज्ञानिक, पृ. 40
5. कृष्णा सोबती - मित्रो मरजानी, सं. 1989, पृ. 20
6. रेवतीशरण शर्मा - नमी न मंजिल, सं. 1975, पृ. 95
7. मन्नु भंडारी - स्वामी, सं. 1975, पृ. 95

# 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' में किन्नर जीवन का दर्दनाक सच और स्वार्थी राजनीति

**डॉ. एकनाथ श्रीपती पाटील,**
हिंदी विभाग प्रमुख,
राधानगरी महाविद्यालय,
राधानगरी, जिला-कोल्हापुर।

**सार (Abtract)**

*लेखिका चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' यह साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित उपन्यास है। पत्रात्मक शैली में लिखे प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने विनोद उर्फ बिन्नी के माध्यम से किन्नर जीवन के विविध पहलुओं को उठाया। किन्नरों को परिवार से बिछुड़ने से होनेवाला दर्द, उनकी पीड़ा वंचना, सामाजिक उपेक्षा आदि बातों को प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित किया है। साथ ही किन्नरों के संदर्भ में की जानेवाली स्वार्थी राजनीति का भी पर्दाफाश किया है। प्रस्तुत उपन्यास के विधायक को किन्नर दुख-दर्द से कोई सरोकार नहीं है, वे सिर्फ किन्नरों के माध्यम से अपना राजनीतिक मकसद पूरा करना चाहते हैं। वे किन्नरों की ओर वोट बैंक के रूप देखते हैं। इस वोट बैंक को अपने पक्ष में करने के लिए विनोद का उपयोग करना चाहते हैं। इसमें वे जब कामयाब नहीं होते तब विनोद की ही हत्या की जाती है। इस प्रकार लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से किन्नरों की समस्याओं को उठाते हुए गंदी राजनीति का भी पर्दाफाश किया है।*

***की-वर्ड-*** *पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, किन्नर जीवन की पीड़ा, किन्नरों के संदर्भ में स्वार्थी राजनीति, किन्नर जीवन का दर्दनाक सच।*

लेखिका चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' यह साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास किन्नर जीवन पर आधारित है। इसमें लेखिका ने पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने उपेक्षित किन्नर जीवन, उनके दुःख, दर्द, पीड़ा, वंचनाओं समेत स्वार्थी राजनीति का बेहतरीन ढंग से चित्रण किया है।

कुल 224 पृष्ठों के इस उपन्यास में किन्नर विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ विमली की कथा है। उनके माध्यम से लेखिका ने किन्नर जीवन के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। विनोद उर्फ बिन्नी और उसकी माँ के बीच जारी पत्रों के सिलसिले के माध्यम से कथा आगे बढ़ती है। सभी पत्र विनोद ही अपनी माँ को भेजता है। माँ की भी भावनाएँ बिन्नी के पत्रों के माध्यम से उद्घाटित होती है। बिन्नी अपनी माँ को कुल 17 पत्र भेजता है। उनमें सात पत्र मोहन बाबा नगर, दिल्ली से, दो पत्र लाजपतनगर दिल्ली तो आठ पत्र चंदीगढ़ से भेजे गए हैं। प्रस्तुत उपन्यास का अंत भी अनोखे ढंग से किया है। अंत में उपसंहार शीर्षक देकर उसमें दो समाचार दिए हैं। इसमें पहला समाचार एक स्वर्गवासी माँ का माफीनाफा है जो परिवार से बहिष्कृत अपने बेटे को घरवापसी की अपील करती है। तो दूसरी खबर किन्नर के हत्या के संदर्भ में है। इस खबर के साथ उपन्यास का समापन

होता है। उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक उपन्यासकार ने किन्नरों के संदर्भ पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि विभिन्न पहलुओं को बेबाकी से उठाया है।

प्रस्तुत उपन्यास में विनोद उर्फ बिन्नी किन्नर होने का पता होने पर परिवार में मचनेवाली हलचल, बड़े भाई सिद्धार्थ अर्थात मोटाभाई की प्रतिक्रिया, माता-पिता को सतानेवाली चिंता, बेटे को किन्नर समुदाय तथा समाज से बचाने के लिए करनी पड़ने वाली भागदौड़ आदि बातों का चित्रण किया है। माता-पिता अपने बच्चे को सौंपना नहीं चाहते थे लेकिन विनोद का बड़ा भाई सिद्धार्थ उसे घर में नहीं रखना चाहता। माँ का विनोद के प्रति विशेष लगाव है। विनोद को किन्नर लेने जाने के लिए खबर जब उसे मिलती है तब वह बाथरूम में छिपाती। आखिर बच्चे को बचाने के उसके सभी प्रयास असफल हो जाते हैं। विनोद को किन्नर डेरे की मुखिया चंपाबाई को सौंपते हुए उसका दिल कसमसाता है। विनोद का भी इस डेरे में मन नहीं लगता। इसलिए वह अपनी माँ को इसके लिए दोषी ठहराते हुए कहता है-"तूने, मेरी बा, तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया।"[1] इसप्रकार विनोद का इस नई दुनिया में बिल्कुल मन नहीं लगता।

बिन्नी में स्त्रैण लक्षण बिल्कुल नहीं है। वह आम दिखने में आम बच्चों की तरह है लेकिन उसमें लिंग संबंधी विकृती है। वह पढ़ाई में तेज है तथा खेल प्रतियोगिता में भी पुरस्कार हासिल करता है। वह पढ़ कर एक अच्छा इन्सान बनना चाहता है। बिन्नी अर्थात विनोद परिवार छोड़ कर जाना नहीं चाहता है लेकिन मोटाभाई जबरन उसे चंपाबाई को सौंपता है। मोटाभाई की पत्नी सेजल गर्भवती है। इसलिए उसे लगता है कि बच्चा विनोद की तरह किन्नर पैदा न हो। इसलिए वे डाॅक्टर के पास जाकर सोनोग्राफी करवाता है तथा एक बाबा के पास भी जाता है। विनोद को चंपाबाई को सौंपने के बाद उसे किसी प्रकार का संपर्क न करने की स्पष्ट हिदायत मोटाभाई देता है। इतना ही नहीं तो मुंबई के कालवा देवी इलाके का मकान बेचकर नाला सोपारा में लिया जाता है। यह है पारिवारिक राजनीति, इसमें बिन्नी के माता-पिता का हाथ न होकर मोटाभाई बहुत बड़ा हाथ है। वह किसी भी हालत में बिन्नी की काली छाया अपने परिवार पर पड़ना नहीं चाहता है। इसलिए तो माँ जब नए घर में बिन्नी की लगाई तस्वीर, स्कूल बैग आदि चीजें संजोकर रखती है तब मोटाबाई उसे फटकारता है। उसे अपने मातृ दिल को आहत पहुँचाने में कोई बुरा नहीं लगता। उसे अपने माता-पिता और किन्नर से ज्यादा अपनी पत्नी सेजल और होने वाले बच्चे की चिंता है।

माँ द्वारा किन्नर बिन्नी की याद निकालना भी उसे उचित नहीं लगता लेकिन माँ तो आखिर माँ होती है। बेटे ने बिन्नी से संपर्क करने के लिए मना करने के बावजूद वह नाला सोपारा के पोस्ट बॉक्स में जाकर अपना निजी पोस्ट बॉक्स नं. 203 निकालती है। इस पते पर उसे बिन्नी के पत्र आते रहते हैं। वह खुद नाला सोपारा के डाकघर में जाकर पत्र लेती रहती है। इस पोस्ट बॉक्स नंबर के माध्यम से दोनों के पत्रों का सिलसिला जारी रहता है। इसी के माध्यम से माँ और बेटा एक-दूसरे को दुःख-दर्द को बाँटते रहते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में विनोद द्वारा को लिखे ही पत्र हैं। माँ के पत्रों का उल्लेख विनोद के पत्रों के माध्यम से आ जाता है। इन पत्रों में माँ-पुत्र का प्रेम और दर्द समाया हुआ है।

विनोद चंपाबाई के डेरे दाखिल होने के बावजूद परिवार के प्रति यादें उसका पीछा नहीं छोड़ती। उसे परिवार और विशेष रूप माँ की याद सताती रहती है। किन्नर समुदाय के अन्य किन्नर उसके सगे-संबंधी बन जाते हैं। इस डेरे की किन्नरी पूनम उसे सबसे ज्यादा चाहती है। पूनम दिखने में सुंदर है। उसकी काया पूरी

तरह से स्त्री की तरह है लेकिन योनि मूत्र विसर्जन की जगह मात्र है। उसकी योनि गढ़ने में भगवान में भूल की गई होगी ऐसा बिन्नी को लगता है। यही पूनम बिन्नी को को उसकी अगली पढ़ाई के लिए 8000 रुपये की मदद भी करती है। जिसके माध्यम से बिन्नी इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय में प्रवेश लेता है। जीविका के लिए बिन्नी जब सुबह जल्दी गाड़ियाँ धोने के लिए जाता है तब पूनम जल्दी उठ कर उसे चाय बनाकर देती है। पूनम के माध्यम से ही विनोद दिल्ली में विधायक के ऑफिस में नौकरी पर लग जाता है। यहीं से असली राजनीति का चित्रण उपन्यास में शुरू हो जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास के विधायक जी अर्थात् बाऊजी समाजसेवा की चादर ओढ़े मंजे हुए राजनेता दिखाई देते हैं। वे अपनी साख बढ़ाने के लिए अनेक राजनीतिक चाल चलते हुए दिखाई देते हैं। इसके लिए वे किसी भी स्तर पर जाने के लिए तैयार है। राजनीति में सिर्फ समाज सेवा का नाटक किया जाता है। इस संदर्भ मधु खराटे लिखते हैं-“राजनीतिज्ञों द्वारा किन्नरों के प्रति मानवीय संवेदना उतनी नहीं है, जितना उनका स्वार्थ है। वे उन्हें वोट बैंक ही मानते हैं और राजनीति के शतरंज पर उन्हें मोहरे के रूप में देखते हैं।”[2] विधायक जी की कोठी में हररोज सुबह जनता दरबार लगाया जाता है। इसमें जनता की समस्याओं को सुनकर संबंधित शासकीय विभागों को पहुँचाने का काम किया जाता है। इसमें पार्टी का विस्तार एकमात्र मकसद होता है। विधायक जी मुख्यमंत्री को हमेशा खुश रखने के लिए उनके विविध कार्यक्रमों में वे उनके आगे-पीछे करते रहते हैं। क्योंकि वे वे जनसेवा से ज्यादा मुख्यमंत्री को को दिखते रहना बहुत जरूरी समझते हैं। ऐसी मानसिकता किन्नरों का क्या भला करेगी।

राजनीति के माध्यम से सेवा के बजाय मेवा हासिल करना ही अनेक नेताओं का उद्देश्य रहता है। इसलिए राजनीति में जितना पैसा लगाया जाता है उससे कई गुना वसूला जाता है। इसमें नाम सिर्फ जनता का होता है। विधायक जी द्वारा विनोद को अपने ऑफिस में नौकरी पर रख कर सुविधा देना का उद्देश्य भी यही हैं। इसे उनकी सोची-समझी राजनीति का हिस्सा माना जा सकता है। विनोद राजनीतिक दल के झमेले में नहीं फँसना चाहता है। फिर विधायक जी के कहने पर उनके पी.ए. तिवारी जी उन्हें पार्टी के काम में ही लगाना चाहते हैं। अपने किन्नर समुदाय के लिए कुछ करने के लिए उकसाते हुए कहते हैं- “इतने खुदगर्ज न बनो। खुद पढ़-लिखकर आत्मनिर्भर होना चाहते हो। शेष बिरादारी को कुएँ का मेंढक बने रहने के लिए विविश कर रहे हो।

हालांकि, हालांकि एकाध लोग पहले आए हैं राजनीति में। हैं भी मगर वे अपेक्षित जागरूकता पैदा कर पाए ट्रांसजेंडर बिरादरी के लिए।”[3] विधायक जी जानते हैं कि विनोद पढ़ा-लिखा होने के कारण तथा किन्नर समुदाय का प्रतिनिधि होने के कारण वह पार्टी के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। वह अपनी किन्नर होने की पहचान भी छिपाना नहीं चाहता। वे चंदीगड में किन्नरों का सबसे बड़ा सम्मेलन आयोजित करते हैं इसके लिए वहाँ का सबसे बड़ा कम्युनिटी सेंटर बुक करते हैं। इस सम्मेलन के बीज वक्ता तथा प्रमुख अतिथि के रूप में विनोद को नियुक्त किया जाता है। इस सम्मेलन में विधायक जी की ओर से पूरी तरह से सावधानी बरती जाती है कि इस किन्नर सम्मलेन से अन्य समाज नाराज न हो। इसलिए तो विनोद को भाषण में किन्नर शब्द का प्रयोग न करने के लिए कहा जाता है। क्योंकि किन्नौर निवासी लोगों को भी किन्नोर कहते हैं। अगर सम्मेलन में किन्नर शब्द का प्रयोग किया तो यह समाज नाराज हो सकता है। अपनी पार्टी के माध्यम से

किन्नरों की समस्याओं को उठाना भी अपनी कुर्सी मजबूत करने का ही हिस्सा है। इसलिए तो वे विनोद के माध्यम से किन्नरों को संगठित करके उनकी वोट बैंक अपने पक्ष में करना चाहते हैं। साथ ही अपनी आम स्त्री-पुरुषों की वोट बैंक भी हाथ ने जाने नहीं देना चाहते। क्योंकि वे जानते हैं कि लिंगपूजक समाज यह बर्दाश्त नहीं करेगा। इसलिए विनोद को किन्नर सम्मेलन में आम स्त्री-पुरुष के विरोध में कुछ भी न बोलने की सूचना देते हैं। वे किन्नर आंदोलन को अधिक तेज करने के लिए सोशल मीडिया से जोड़ देना चाहते हैं।

विनोद की इच्छा न होते हुए भी उसे राजनीति में लाने का प्रयास करना विधायक जी की सोची-समझी राजनीति ही मानी जा सकती है। किन्नरों की समस्याओं को आगे करते हुए विनोद को भावनिक बना कर राजनीति में आने के लिए उकसाते हैं। इसलिए वे कहते हैं-"देखो, यह मुद्दा हमारे लिए शोभा भर नहीं है। साथ देंगे किन्नर हमारा तो हम उनके आरक्षण की मुहिम चलाएँगे। जोड़ेंगे उन्हें विकास के समान अवसरों से। शिक्षा, रोजगार, सम्पत्ति, ऋण, बूढ़ों की पेंशन, बेरोजगार युवाओं का भत्ता, लेकिन ताली एक हाथ से नहीं बजती। संगठित होना पड़ेगा। आवाज उठानी पड़ेगी। देशव्यापी आंदोलन छेड़ना पड़ेगा। जेले भरने होंगी, धरने देने होंगे।"[4] इसप्रकार विधायक जी आंदोलन के लिए उकसाते हैं।

विनोद किन्नर सम्मेलन में प्रमुख वक्ता के रूप में भाषण देने के लिए तैयार होता है लेकिन सत्-सत् विवेक बुद्धि से किन्नरों की समस्याओं को उठाता है। विधायक जी विनोद के माध्यम से जो चाहते थे उसे बराबर उल्टा विनोद करता है। विनोद अपनी दृष्टि से किन्नरों के बारे में सोचता है। विधायक जी द्वारा बताई बात किन्नर सम्मेलन में बताने के बजाय विनोद उनके आत्मसम्मान की बात करता है। वह किन्नर जीवन को अभिशाप के रूप में न देखते हुए इस समस्या को स्वीकार करते हुए उसे सकारात्मक दृष्टि से लेता है। वह किन्नर सम्मेलन के माध्यम से किन्नर समुदाय और उनके परिवार की मानसिकता में परिवर्तन लाना चाहता है। विनोद कहता है-"जरूरत है सोच बदलने की। संवेदनशील बनने की। सोच बदलेगी, तभी जब अभिभावक अपने लिंग दोषी बच्चों को कलंक मान किन्नरों के हवाले नहीं करेंगे। उन्हें घूरे पर नहीं फेंकेंगे। ट्रान्सजेंडर के खांचे में नहीं ढकेलेंगे।"[5] वह इस सम्मेलन के माध्यम से किन्नरों की घर वापसी की मुद्दा उठाता है। जिन अभिभावकों ने किन्नर होने के कारण बच्चे को घर से बहिष्कृत किया है उनके लिए वह घरवापसी का अभियान चलाना चाहता है। जननांग दोषियों बच्चों को घर निकालने वाले माँ-बाप के विरोध में स्त्री-भ्रूण हत्या विरोधी कानून की तरह कानून बनाने की अपील सरकार को करता है। किन्नर सम्मेलन में किया गया बर्ताव विधायक जी को रास नहीं आता। यही बात विनोद के हत्या का कारण बन जाती है। उपन्यास के अंत में एक किन्नर की हत्या का जो समाचार है वह किन्नर विनोद अर्थात् बिन्नी ही है। यह हत्या विनोद अपनी माँ को देखने के लिए मुंबई जाने के बाद की जाती है। क्योंकि इससे विधायक जी से कोई संबंध जोड़ा नहीं जा सके। इस समाचार में कहा है-"मुंबई 27 दिसम्बर। कुर्ला, कालीना कॉम्प्लेक्स से लगी हुई मिठी नदी में पुलिस ने एक किन्नर की फूली लाश बरामद की है। शव की शिनाख्त नहीं हो पाई है। सिर बुरी तरह कुचला हुआ। पुलिस इस वारदात को आपसी रंजिश का नतीजा मान रही है। उसका अनुमान है, हत्या का संबंध अंडरवर्ल्ड में इन दिनों सक्रिय 'मुन्ना भाई' किन्नर गिरोह से हो सकता है।"[6] यह गंदी राजनीति का ही परिणाम है। विधायक जी यह बात अपने पर लाना नहीं चाहते इसलिए वे इसे अलग रंग देते हैं। हत्या मुंबई में की जाती है और उसका संबंध मुन्ना भाई किन्नर गिरोह से जोड़ा जाता है। इससे पता चलता है कि आज की राजनीति

कितनी गिरी हुई है। इस गंदी राजनीति की आलोचना करती हुई पुष्पा गुप्ता लिखती है-“इसे मात्र साधारण घटना समझ कर छोड़ा नहीं जा सकता। यहीवह मुख्य बिन्दु है जहाँ से राजनीति का घृणित स्वरूप उजागर होता है। सामान्य जनता के बीच सामन्य मानव बने रहने की बात करते विधायक जी उर्फ बाऊजी अपने क्षेत्र के एक मंजे हुए खिलाड़ी हैं। जितना वह देंगे, उससे अधिक वसूलना राजनीति का धर्म है।”[7] विधायक जी जिस आशा से विनोद पर पैसा लगाते हैं वह राजनीतिक मकसद पूरा न होने के कारण ही विनोद की हत्या की जाती है।

इस हत्या के पीछे और भी एक कारण हो सकता है। विधायक का विदेश से आया भतीजा किन्नरी पूनम को फार्म हाऊस पर नृत्य कार्यक्रम के लिए बुलाकर उसपर अपने मित्रों से समेत पाशवी बलात्कार करता हं◌ै। इसमें पूनम के जननांग से बड़े पैमाने पर खून बहने से वह बेहोश हो जाती है। ऐसे गंभीर मामले को विधायक पुलिस तक जाने नहीं देते। पैसे के बल पूनम का अस्पताल का पूरा खर्च उठाकर उसे पूरी तरह रफादफा करते हैं। इससे स्पष्ट है कि विधायक जी को किन्नरों को किसी प्रकार की संवेदना नहीं है। भविष्य में विनोद ने यह मामला उठाया तो राजनीतिक करिअर खतरें में आ सकता है इसलिए कुछ दिनों के बाद वे विनोद का ही काम तमाम कर देते हैं। इससे स्पष्ट है कि विधायक जी को किन्नरों के भविष्य की कोई चिंता नहीं है। उन्हें अपने राजनीतिक भविष्य की चिंता है। इसप्रकार उपन्यासकार ने स्वार्थी गंदी राजनीति का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में बेहतरीन ढंग से किया है। उन्होंने किन्नरों के संदर्भ में की जानेवाली गंदी राजनीति का पूरी तरह से पर्दाफाश किया है।

**निष्कर्ष:**

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ‘पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा’ यह लेखिका चित्रा मुद्गल का किन्नर जीवन के संदर्भ में बेहतरीन उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने विनोद उर्फ बिन्नी तथा अन्य किन्नरों के माध्यम से किन्नर जीवन के विविध पहलुओं को उठाते हुए उनकी पीड़ा को उद्‌घाटित किया है। साथ ही किन्नरों के संदर्भ में की जानेवाली स्वार्थी राजनीति का भी पर्दाफाश विधायक जी के माध्यम से किया है। उपन्यास में चित्रित विधायक जी को किन्नर जीवन से कोई सरोकार नहीं है वे सिर्फ किन्नरों के माध्यम से अपना राजनीतिक मकसद पूरा करना चाहते हैं। वे किन्नरों की ओर वोट बैंक के रूप देखते हैं। इस वोट बैंक को अपने पक्ष में करने के लिए विनोद का उपयोग करना चाहते हैं। इसमें वे जब कामयाब नहीं होते तब विनोद की ही हत्या की जाती है। इस प्रकार लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से किन्नरों की समस्याओं को उठाते हुए गंदी राजनीति का भी पर्दाफाश किया है।

**संदर्भ:**

1. चित्रा मुद्‌गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2019, पृ. 11
2. डॉ. मधु खराटे, हिंदी उपन्यासों में किन्नर विमर्श, विद्‌या प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2018, पृ. 127
3. चित्रा मुद्‌गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, पृ. 157
4. वही, पृ. 153
5. वही, पृ. 112
6. वही, पृ. 224
7. सं.डॉ. शगुफ्ता नियाज, थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ (चित्रा मुद्‌गल कृत नाला सोपारा के संदर्भ में), विकास प्रकाशन, कानपुर, द्‌वितीय संस्करण 2019, पृ. 60

# दलित समाज की व्यथा-गाथा : 'सुअरदान '

**डॉ. श्रीकांत पाटील**
हिंदी विभाग,
कला वाणिज्य आणि विज्ञान
महाविद्‌यालय,कोवाड
तह-चंदगड,जि-कोल्हापुर

रूपनारायण सोनकर हिंदी साहित्य के युवा पीढी के चर्चित एवं विख्यात दलित साहित्यकार है। उनका 'सुअरदान ' उपन्यास सन् २०१० ई में सम्यक प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास की कथा दस अध्यायों में विभाजित है। इस उपन्यास में लेखक ने दलितों के जीवन के विविध पहलू और दलित अस्मिता का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने प्रस्तुत उपन्यास में दलित समाज की पीडा, त्रासदी, वेदना, शोषण आदि बॉतों का मार्मिक अंकन किया है। इस उपन्यास का कथानक अधिक मात्रा में सुनयना, सज्जन खाटिक, घसीटे चमार, सलंवत यादव आदि दलित पात्रों के ईद गिर्द घुमती हुई दिखाई देती है। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद, मोहनदास नैमिशराय, नमिता सिंह, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, वीरेंद्र जैन, डॉ.शौराज सिंह बेचैन, डॉ. तुलसीराम, भगवानदास मोरवाल, श्रवण कुमार, यादवेंद्र शर्मा, रमणिका गुप्ता, गिरीराज किशोर, संजीव, गुरूचरण सिंह आदि अनेक साहित्यकारों ने दलित समाज का यथार्थ चित्रण किया है।

'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति 'दल' धातु से हुई है। 'नालंदा विशाल शब्दसागर' में दलित शब्द का अर्थ है, - ''१. मसला, रौंदा या कुचला हुआ २. नष्ट किया हुआ। ''[१] विषय को अधिक तथा आवश्यक प्रसंग में स्पष्ट करने में सुगमता आ सके इसलिए केवल दलित शब्द का अर्थ जान लेना पर्याप्त नहीं है,इसके परिभाषा को देख लेना आवश्यक है। अतः 'दलित' की परिभाषा निम्न प्रकार से है-एच.आर. गौतम -, ''दलित कहा जानेवाला ही कभी 'शुद्र', 'अनार्थ', 'अच्छुत' और गॉधीजी का हरिजन कहा जाता हैं। इसमें आदिवासी,घुमंतू,अपराधशील, जातियॉ, महिलायें और बंधुवा मजदूर भी सम्मिलित हैं । सदियों से इस पार विचार किया गया हैं। इनका अपमान, शोषण,दलन,प्रताडन किया गया हैं। पशुओं से भी बदतर इन्हें माना गया है। ईन को छूना भी पाप माना गया हैं। वर्णश्रम व्यस्था द्‌वारा इन्हें समाज से पृथक कर दिया गया। आगे चलकर वर्ण व्यवस्था से ही जाति व्यवस्था बनी शुद्र के घर पैदा होनेवाला अस्पृश्य माना गया।''[२]

भारतीय समाज में धर्म, कर्म और वर्ण का प्रभाव अधिक है। इसीकारण जातिव्यवस्था में शोषण का प्रभाव अधिक है। भारतीय समाज का एक अंग परंपरा से शोषित है जिसे हम लोग उसे दलित कहते हैं। 'दलित' शब्द के संदर्भ में मोहनदास नैमिशराय कहते है, ''दलित शब्द मार्क्स प्रणित सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है। लेकिन इन दोनों शब्दों में पर्याप्त भेद भी है। दलित की व्यक्ति अधिक है तो सर्वहारा की सीमित दलित के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण का अंतर्भाव होता है, तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है। प्रत्येक दलित व्यक्ति सर्वहारा के अंतर्गत आ सकता है, लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य या हानी हो सकते - अर्थात सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है, जबकि दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार हाता है। ''[३]

भारतीय समाज में अस्पृश्यता और जॉति - पॉति भेदभाव का प्रभाव अधिक मात्रा में दिखाई देता है। सामाजिक जीवन में वर्णस्तरण होने की वजह से आज भी जॉति - पॉति, छुआछूत, उॅच - नीच आदि अनेक भेद दिखाई देते है। स्वाधीनता के बाद इस भेद को मिटाने के लिए डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, महात्मा गांधी, महात्मा फूले आदि अनेक नेताओं ने अथक प्रयास किए फिर भी गामीण जीवन की असमानता तथा रूढि परंपरा की वजह से छुआछूत तथा उच्च - नीच भेद में कोई ठोस बदलाव नही हुआ है। ''जातिप्रथा और अस्पृश्यता भारत के सामाजिक जीवन का एक अद्‌वतीय अभिशाप है। ग्रामीण समाज व्यवस्था में जो इस कलंक का रूप और भी जटिल पाया जाता है।''[४] आज व्यक्ति स्वातंत्र,

औद्योगिकरण, नागरीकरण, शिक्षा, समाज सुधारकों के प्रयास, कानूनी प्रावधान आदि की वजह से परंपरागत वर्णव्यवस्था में अधिक बदलाव आ गया है। साथ ही इस युग में वर्णव्यवस्था के स्थान पर वर्ग व्यवस्था को अधिक महत्त्व प्राप्त हो गया है। अतः रूपनारायण सोनकर द्वारा लिखित 'सुअरदान' (२०१०) उपन्यास में दलित समाज का चित्रण निम्नलिखित हैं -

गॉवों में सवर्ण लोग अपनी कामलिप्सा की पूर्ति के लिए निम्न वर्ग की नारियों के साथ अमानवीय व्यवहार करते है और उनका शोषण करते है। जिसके कारण वर्तमान परिवेश में नैतिक मूल्यों का पतन तेजी से होने लगा है। विवेच्य उपन्यास में चित्रित सिंहासनखेडा गॉव का मुखिया सत्यनारायण त्रिपाठी अपनी हवस मिटाने के लिए दलित, गरीब सुनयना को अक्सर शिकार बनाता है। तब सुनयना सत्यनारायण त्रिपाठी को कहती है, ''तुम हमरी जैसी दलित लडकियों की इज्जत - आबरू से खेलते हो। तुम हमरे साथ कउनसे भलाई थोडे करत हुआ। तुम हमार इज्जत लूटत हो। हमार मॉ - बाप असहाय हैं। गरीब है, कमजोर है। तुम हम सबका डराय धमकाय के हमका अपनी रखैल बना लिएबा।''[५] यहॉ लेखक ने सवर्णोंद्वारा निम्न जाति की नारी पर किए जानेवाले अत्याचार एवं शोषण का चित्र प्रस्तुत किया है।

आज अन्याय और अत्याचार करना समाज की एक आदत सी बन गई हैं। प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित धरमू पासी और उसकी पत्नी ठेकेदार जयतसिंह की ईट भट्टी पर काम करते हैं। ठेकेदार जयंतसिंह ने ईट भट्टी के चारों तरफ से कृत्रिम जेल निर्माण किया हैं क्योंकि यहॉ काम करनेवाले मजदूर भाग न जाए। एक दिन धरमू पासी और उसकी पत्नी भागने की कोशिश करते हैं तो ठेकेदार के गुंडे उन्हें लाठियों से पीटते हैं। तब धरमु पासी की पत्नी चिल्लाकर ठेकेदार से कहती है, ''तू हिजडा है। अगर तू हिजडा न होता तो औरत पर इस तरह अत्याचार न करता। छोड मेरा हाथ नासपीटे। दादा गयादीन तुम लोग आओ इस हरामी को ठीक कर दो। आज यह मेरे साथ अत्याचार कर रहा है।''[६] यहॉ धरमू पासी की पत्नी अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए अपने उपर होनेवाले अन्याय के प्रति विरोध प्रकट करती है।

गॉवों में सवर्णोंद्वारा निम्न वर्गीय भोली - भाली जनता को आसानी से फॅसाया जाता है इसका मार्मिक अंकन 'सुअरदान' उपन्यास में हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित रामचंद्र त्रिवेदी ब्राम्हण है और घसीटे चमार, सलवंद यादव, सज्जन खाटिक ये तीनों दलित हैं। इनका सिंहासनखेडा गॉव में पिगरी फार्म है। इस पिगरी फार्म में गॉव के पुजारी दयाशंकर के तीन बेटियों को नौकरी दी जाती है। मिस हैरी सिल्वा को मैनेजिंग डायरेक्टर बनाया जाता है। बाद में गॉव के सवर्णोंद्वारा पुजारी दयाशंकर को मिस हैरी सिल्वा और तीनों बेटियों की प्रेम कहानी बताई जाती है। इसके परिणामस्वरूप गॉववालों में जातिवाद का नशा धीरे - धीरे चढने लगता है। इस संदर्भ में कमला प्रसाद बिष्ट कहते है, ''सारे आम सज्जन खाटिक, घसीटे चमार और सवलंत यादव ने पुजारी जी की बेटियों को विदेश ले जाते हैं। कैसा घोर कलयुग आया है।''[७] यहॉ सवर्णों और दलितों के बीच निर्माण हुए जातिवादी भावना का चित्रण हुआ है।

भारतीय ग्रामीण सामाजिक जीवन में वर्णस्तरण होने की वजह से आज भी छुआछूत का प्रभाव अधिक मात्रा में दिखाई देता है इसका मार्मिक अंकन 'सुअरदान ' उपन्यास में हुआ है। विवेच्य उपन्यास में चित्रित पुजारी दयाशंकर एड्स की बीमारी का शिकार होता है। मुखिया त्रिपाठी ने सिंहासनखेडा गॉववालों के मन में इस बीमारी का डर पैदा करता है। यह बिमारी छुने से होती है। सभी गॉववालें मुखिया त्रिपाठी जैसे कहते हैं वैसे करते हैं। इस गॉव का नवयुवक संकटा प्रसाद चिकवा सत्यनारायण त्रिपाठी और गॉव के लोगों के सामने पुजारी दयाशंकर का हाथ पकडते है और कहते है कि यह बीमारी डॉक्टरी इलाज से ठीक होती है। तब पुजारी की पत्नी श्यामा संकटा प्रसाद चिकवा से कहती है, ''तुमने इन निर्दयी लोगों से पुजारी जी को बचा लिया। जाति, धर्म कुछ नहीं होता है। मानवता ही सब कुछ होती है। विपत्ति के समय अपनी जाति वाला सत्यनारायण त्रिपाठी कहॉ काम आया? बेटा! तुम काम आए। तुमने इंसानियत दिखाई पुजारी जी को छुने से भी डरते हैं।''[८] यहॉ लेखक ने पुजारी दयाशंकर और संकटा प्रसाद चिकवा इन दो पात्रों के माध्यम से समता या मानवतावादी विचारों का संदेश दिया है। साथ ही समाज को विभाजित करनेवाली छुआछूत की भावना को समाप्त करने की संकेत लेखक ने दी है।

ग्रामीण समाज में वर्ण स्तरण होने से आज भी उॅच्च - नीच का भेदभाव अधिक मात्रा में दिखाई देता है। विवेच्य उपन्यास में चित्रित सिंहासन खेडा गॉव के हायस्कूल में दलितों के बच्चों को भोजन के लिए अलग पंक्तियों में बिठाया

जाता है। ग्रामप्रधान संकटा प्रसाद चिकवा इस भेदभाव का विरोध करता है और कहता है,''दलित- गैर दलित, सभी बच्चे एक पंगत में बैठकर खाना खाएँगे। बडे दुर्भाग्य की बात है बच्चों में शुरूआत में ही छोटे-बडे ,उँच्च- नीच, छुआछूत की भावना भरी जा रही हैं। ये सारी बातें समाप्त होनी चाहिए।''[९] यहॉ लेखक ने प्रधानाचार्य द्वारा स्कूल के बच्चों के साथ किए जानेवाले उँच्च- नीच के भेदभाव का विरोध करते हुए समतावादी विचारों को प्रेरणा दी है।

भारतीय ग्रामीण समाज व्यवस्था में रूढि एवं परंपराओं का प्रभाव अधिक मात्रा में दिखाई देता है। गॉव के लोग परंपरागत रूढिओंका पीढी- दर पीढी पालन करते आ रहे है। धार्मिक रूढि परंपराओं के अनुसार मृतक व्यक्ति की आत्मा की शांति के लिए धार्मिक विधि - विधान और क्रिया कर्म किया जाता है। विवेच्च उपन्यास में चित्रित पुजारी दयाशंकर के मृत्यू के समय कामना प्रसाद बिष्ट , मार्कण्डेय अग्निहोत्री सीताराम भट्ट और सत्यनारायण त्रिपाठी जैसे धूर्त, चालाक और स्वार्थी ब्राम्हणों ने पुजारी दयाशंकर को गाय का दान करने को कहते हैं लेकिन पुजारी दयाशंकर गाय के दान के बदले सुअर का दान करते हैं। इस संदर्भ में रूपनारायण सोनकर कहते है, ''यदि मुझे दान करतना पडा तो मैं प्यार, भाईचारा, सांप्रदायिक सद्भावना समानता, देश-प्रेम, जानवरों और मानवों के प्रति लगाव का दान करूँगा।''[१०]

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि रूपनारायण सोनकर ने 'सुअरदान' उपन्यास में दलित समस्या का मार्मिक अंकन किया है। उन्होंने प्रस्तुत उपन्यास में दलित समाज की पीडा, शोषण, वेदना, त्रासदी, नैतिक मूल्यों का पतन, छुआछूत, जातिवाद, दलित समाज का स्वाभिमान, अस्मिता आदि बॉतों का सजीव चित्रण किया है। अतः यह कहना उचित होगा कि 'सुअरदान' उपन्यास में लेखक नें दलित नारियों का सम्मान, दलित समाज की पीडा और समतावादी विचारों को अपनी कलम के माध्यम से वाणी देने का सफल प्रयास किया है। साथ ही इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने दलितों के प्रति स्वातंत्र, समता और बंधुता की मॉग की है।

**संदर्भ संकेत**

१. सं. श्री. नवलजी - नालंदा विशाल शब्दसागर, पृ - ५३८
२. डॉ. हरपाल सिंह - दलित साहित्य की भूमिका, पृ.३
३. ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ - १३०
४. प्रो. रामेश्वरलाल रामपुरिया और श्री. द्वारकादास गोयल - ग्रामीण समाजशास्त्र, पृ.३१
५. रूपनारायण सोनकर - सुअरदान, पृ. ३१
६. वही, पृ. २६
७. वही, पृ. ८१
८. वही, पृ. ८२
९. वही, पृ. ४८
१०. वही, पृ. १६०

ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com

# स्त्री-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में ‘शेष कादम्बरी’ उपन्यास

**शोधछात्रा- वर्षा गजानन पाटील**
हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर।
ई-मेल: patilvg14@gmail.com

सृष्टि के विकासक्रम में स्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल से वर्तमान काल तक कीस्थिति में काफी उतार-चढ़ाव आए हैं। आधुनिक नारी बाहरी तौर पर काफी आगे बढ़ चूकी है। स्त्री-विमर्श के युग में स्त्री की स्थिति में आये सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यहै है कि वह पुरुष के समान ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत है। स्त्री-चिंतन आज विश्व चिंतन का सशक्त चिंतन बन चुका है।

प्राचीन काल से आज तक साहित्य सर्जना के क्षेत्र में पुरुषों के साथ महिलाओं का योगदान रहा है। कहानी, उपन्यास, कविता आदि में स्त्रियाँ निरंतर लेखन कर रही हैं। हिंदी साहित्य में स्त्री लेखिकाओं का आगमन कई दृष्टियों से युगांतकारी रहा है। हिंदी कथा साहित्य में अलका सरावगी के साहित्य का एक अलग स्थान है। कहानी और उपन्यास साहित्य में उनका उल्लेखनीय योगदान है। उन्होंने उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में नये-नये विषयों का प्रयोग किया है। अलका सरावगी ने अपने उपन्यास साहित्य में जीवन के उन पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है जो व्यक्ति की जिंदगी में हर पल घटित होते है। दैनंदिन जीवन में अन्वेषित इनकी कथाओं के केंद्र में नारी अपनी पूरी सामर्थ्य के साथ विद्यमान है। यद्यपि अलका सरावगी स्त्री के सबल और दुर्बल दोनों पक्षों को मान्यता देने की पक्षधर दिखाई देती है। नारी के माध्यम से नारी की समस्याओं के जटिल रूप को प्रस्तुत करती है। “अलका सरावगी का संपूर्ण कथा लेखन सामाजिक संस्कृति का आदर्श प्रस्तुत करता है। इनका रचना-संसार अश्लीलता के परे है, क्योंकि लेखिका का मानना है कि भारतीय संरचना में मर्यादाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके नारी पात्र कम बोलते हैं लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे कमजोर हैं।”[1] उपन्यास की मुख्य कथा में नारी प्रतीकों का प्रयोग न्यून मात्रा में भले ही रहा हो पर गौण कथाओं में इनकी भरमार है। अलका सरावगी के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंधों का वह रूप दिखाई देता है जो स्त्री और पुरुष के व्यवहारों को नापने का अवसर देता है।

अलका सरावगी का दूसरा उपन्यास ‘शेष कादम्बरी’ महिलाओं की त्रासदी के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रस्तुत उपन्यास में कादम्बरी की नानी रूबी गुप्ता का वैवाहिक जीवन यातनाओं की पराकाष्टा है। यही कारण है कि लेखिका इस उपन्यास में विवाह की परंपरा से ज्यादा महत्त्व प्रेम को देती है। यह उपन्यास पीढ़ी के अंतराल और नवयुवकों व नवयुवतियों में उभरती जनचेतना को रेखांकित करता है। उपन्यास की नायिका कादम्बरी में जीवन का उत्साह है। चेतना से युक्त कादम्बरी का जीवन प्रभावपूर्ण है। “यह उपन्यास महिला संगठनों के व्यावसायिक होने तथा मुख्य लक्ष्य से भटक जाने के प्रति समाज का ध्यान आकृष्ट करता है। लेखिका ने सोशल वर्क से अधिक सोशल जस्टिस पर ध्यान देते हुए महिला कल्याण के प्रति

समाज को सावधान किया है।"[2] इस उपन्यास का यह दृष्टिकोण इस बात को स्पष्ट करता है कि शिक्षा और रोजगार के माध्यम से महिलाओं में जागरूकता आ रही है।

'शेष कादम्बरी' उपन्यास स्त्री मन के द्वंद्व और असहाय अकेले जीवन का आख्यान है।उपन्यास की शुरुआत रूबी गुप्ता की 'परामर्श' संस्था से होती है। 'परामर्श' संस्था के द्वारा रूबी गुप्ता सोशल वर्क का कार्य करती है और उनकी मुलाकात हस्तरेखाओं को देखने वाली सविता नामक स्त्री से होती है। सविता अपने शांत और संकोची स्वभाव के कारण अपने मन में चल रहे प्रश्नों को किसी से नहीं पूछ पाती। सविता से रूबीदी का आत्मीय लगाव हो जाता है। अब रूबी सविता के जीवन के बारे में काफी कुछ बातें जान गयी है। वह एक ऐसे माता-पिता की संतान होती है जिनके लिए उसका होना कोई मायने नहीं रखता। सविता को पति, पिता, भाई, बहन कोई अपने साथ नहीं रखना चाहते। "इस लड़की में भला ऐसा क्या दोष है कि कोई इसे अपने साथ नहीं रखना चाहता-न पिता, न बड़े भाई-भाभी, न पति?"[3] सविता के पिता ने दूसरी शादी की है और उनके लिए सविता और उसकी माँ की कोई अहमियत नहीं है। सविता के पिता की दृष्टि में औरत सिर्फ एक वस्तु है, जब जैसी जरूरत हो उपभोग कर लो। "उन्हें वही घर पसंद आता है, जहाँ आस-पास कोई अकेली औरत रहती हो।"[4] अपने पिता के इन्हीं आदतों के कारण सविता उनके अलग दूर रहने लगी है। विवाह के पश्चात् उसके जीवन में पिता का इतिहास फिर पति द्वारा दोहराया जाता है। "उसके हाथों में मेरे पापा के हाथ जैसी रेखाएँ थीं यानी दो शादियाँ- सविता ने अचानक कहा।"[5] उसका पति न जाने कितनी औरतों के लिए रातों को शहर की गलियों के चक्कर लगाया करता। सविता का होना उसके जीवन में कोई अर्थ नहीं रखता। जब उसे जरूरत होती तो वह उसकी देह पर अधिकार पाने के लिए उसके पास आता।

माँ अपनी बेटी को संसार की सारी सुख-सुविधा देने का प्रयास करती है। रूबी दी अपनी बेटी गौरी की प्रशंसा लोगों के सामने करती है। माँ की इच्छा होती है कि अपनी संतान आगे बढ़े। जब वह आगे बढ़ती है तो उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं होता। मगर बेटी माँ के इस व्यवहार से दुखी होकर बताती है-"तुम्हें मेरे स्कूल आने की कोई जरूरत नहीं, तुमने चाचाजी के सामने क्या कहा कि मैं तेज हूँ, तुम्हारे सहेली मुझे बधाई दे रही थी कि मुझे स्कूल-शील्ड मिली है। उससे तुमने मेरे बारे में बात क्यों की?"[6] माँ अपनी बेटी की खुशी को बाँटना चाहती है मगर बेटी आज के फैशन की दुनियावाली है। इसीलिए अपनी माँ से कटु व्यवहार करती है।

स्त्री अपने ससुराल वालों से प्रेम चाहती है। वह परिवार के लिए अनेक मुश्किलों को भी सहती है। फिर भी परिवार वाले उसे प्रेम नहीं करते रूबीदी को जब ससुराल में प्रेम नहीं मिलता तो वह अपने पति से इसके प्रति पूछती है, तो उसके पति उसे कहते है-"तुम्हारा पहला दोष यह है कि तुम पढ़ी-लिखी है। औरों की तुलना में तुम अलग हो। दूसरा दोष यह है कि तुम्हारे पास अपना पैसा है, जो औरों के पास नहीं है।"[7] यहाँ पर हम देख सकते हैं कि पति अपनी पत्नी के ऐसे दोष बता रहा है जो समाज में उसे सम्मान प्राप्त करने में मदद करते हैं। लेकिन यहाँ पर स्त्री के शिक्षित और आर्थिक ऐसे दो पक्ष दिखाई गए है, जिनकी सहायता से वह अपना जीवन सुख कर कर सकती है।

अलका सरावगी हिंदी महिला साहित्यकारों में प्रभावशाली हस्ताक्षर हैं। उनकी रुचि नारी साहित्य में दिखाई देती है। 'शेष कादम्बरी' उपन्यास में स्त्री यातना और उत्पीड़न का अनुभव प्रत्यक्ष रूप में मिलता है।

**संदर्भ:**

1. वीर बैसवारा-(11 दिसंबर, 2010), पृष्ठ 4
2. सं. अरुण तिवारी, प्रेरणा-(जुलाई-दिसंबर, 2010), पृष्ठ 106
3. अलका सरावगी, शेष कादम्बरी, पृष्ठ 7
4. वही, पृष्ठ 10,11
5. वही, पृष्ठ 69
6. वही, पृष्ठ 105
7. वही, पृष्ठ 78

# मंजुल भगत की कहानियों में कामकाजी नारी जीवन

**Dr. Shaheen Ajaj Jamadar**
Head, Dept of. Hindi,
Miraj Mahavidyalaya, Miraj
jamadarshaheen79@yahoo.com

**प्रस्तावना-**

साठोत्तरी महिला कहानीकारों में मंजुल भगत का नाम सर्वोपरि है। उनकी कहानीयों में वर्तमान जीवन की आकांक्षा और निराशा तथा हास्य और रूदन का अति सूक्ष्म चित्रण देखने मिलता है। समसामायिक समस्याओं तथा मानवी जीवन की विभिन्न छटाओं का सुंदर अंकन इनकी कहानीयों में हु आहै। बहु आयमीरचनात्मक सामर्थ्य को व्यक्त करती हु ईउनकी कहानीयों में नारी मन की अनार्व्यथा गुंजती हु ई दिखाई देती है। उन्होंने समाज के भिन्न-भिन्न वर्गो में संघर्षरत नारी की दुःखद स्थितियों का चित्रण किया है। उन्होंने अपनी अनोखी कलम नारी के प्रश्न को व्यक्त करने के लिए चलाई है। नारी के मन की व्यथा को केंद्र में रख कर उन्होंने अनेक कहानियों की रचना की है। मंजुल भगतजीने अपने भोगे हु ये यथार्थ के माध्यम से नारी के संघर्ष पूर्ण जीवन का चित्रण किया है। वर्तमान जीवन की बदलती स्थितियों का अंकन उनकी कहानियों में हु आ है। नारी संघर्ष, अकेलापन, घुटन, अजनबीपन, पति-पत्नी के बीच बिगडते सम्बंध आदि का यथार्थ अंकन उनकी कहानियों में हु आ है। खासकर उन्होंने आधुनिक परिवेश की जटिल समस्याओं को उठाया है। व्यक्तिपरक प्रवृत्ति उनकी कहानियों में अधिक दिखाई देती है।

मंजुल भगत की कहानियों में नारी चित्रण का अध्ययन करते समय यह प्रतीत होता है कि उनकी कहानियों में एक ऐसी नारी चित्रित हु ई है जो कहीं पर परम्परा के प्रति मोहग्रस्त नहीं है। साथ ही नारी जीवन की समस्याओं और मनोवैज्ञानिक गुल्थियों का गहन अध्ययन कर जिन सूक्ष्म तंतूओं का अविष्कार किया है, उन्हीं तंतुओं पर नारी जीवन के विविध पहलुओं का चित्रण उन्होंने किया है। नवीन जीवन मूल्यों का अन्वेषण रूढियों का तिरस्कार और परम्पराओं के नवीन सन्दर्भो के साथ पुनर्मूल्यांकन उनकी कहानियों का मूल सार है। उन्होंने नारी के विविध रुपों को लेकर नारी जीवन की अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। यहाँ हम कामकाज करनेवाली महेनती नारी पर प्रकाश डालने की कोशिश करेंगे।

कामकाजी नारी

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के बगैर व्यक्ति और व्यक्ति के बगैर समाज का कोई अस्तित्व नही है। भारतीय समाज तथा उसकी जीवन पद्धति दुनिया के लिए एक मिसाल हैं, जिस में नारी का अस्तित्व समाज का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। वह जन्म से लेकर मृत्यू तक अपने परिवार के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाती है। इस तरह की भूमिकाएँ निभाना वह अपना कर्तव्य समझती हैं। बचपन में वह किसी की बेटी बनकर घर की नाक होती है तो ज्वानी में किसी की पत्नी बनकर घर की शान होती है। माता, बहन, बहु, भाभी, चाची, मुमानी, फूफू, नानी, दादी इस तरह की हर भूमिकाएँ उसे निभाना पडती हैं।

आज नारी पढ-लिख कर स्वाभिमानी बन गयी है। आज के आधुनिक युग में 'अर्थ' ही जीवनधारा है। घर की आर्थिक स्थिति को सदृढ बनाने के लिए नारी ने विविध व्यवसाय अपना लिया है। आज अर्थाजन के लिए नारी ने यह कदम रखा है।

आज की सुशिक्षित नारी और कामकाजी नारी का चित्रण अनेक महिला कहानिकारों ने किया है। मंजुल भगत ने अपनी अनेक कहानियों में कामकाजी नारी का चित्रण किया है। नारी किस प्रकार से घर और बाहर दोनों मोर्चो पर संघर्ष करते

हु येअपना स्वतंत्र को टिकाए रखने का प्रयास कर रही है। आज के दौर की सुशिक्षित तथा कामकाजी नारी अपने ढंग से जीना चाहती है। उसके विचार स्वतंत्र हैं। साथ ही वय अपने परिवार को लेकर भी चिंतित है। ऑफिस के काम को निपटाने के बाद वह घर के कामकाज भी संभालती है। साथ ही अपने पति एवं परिवार के प्रति भी पूर्ण सजग रहती है। मंजुल भगत की कही कही कहानियों में कामकाजी नारी का दायित्वपूर्ण व्यक्तित्व के साथ अहं को लेकर जीने वाली नारी का रूप भी दिखाई देता है। साथ ही अपने कर्तव्य के प्रति पूर्ण सचेत और दायित्व के निर्वाह के प्रति विश्वास रखनेवाली नारी भी चित्रित है। इस प्रकार लेखिकाने अपनी कहानियों में कामकाजी नारी के विविध रुपों को चित्रित किया है।

मंजुल भगत ने अपनी कहानी 'ब्यूटी सैलून' में कामकाजी नारी का चित्रण करते समय जीवन के अनुभवों का चित्रण यर्थाथता के साथ किया है। ब्यूटी सैलून चलाने वाली नारी अपने व्यवसाय में पूरे समय व्यस्त रहती है। इसी कारण वह अपने परिवार के सदस्यों को समय नही दे पाती। इस कहानी की नायिका चीची एक सफल ब्यूटीशियन है। इसके ब्यूटीसैलून में रोज फैशन परस्त नारीयाँ आती हैं। लेखिका का मत है कि आज नारीयाँ अपने आपको सजाकर पुरषों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनकर रहना चाहती है। यहाँ चीची बडे मनोयोगी से ब्यूटीसैलून चलाती है। घर का सारा खर्चा इसी सैलून से चलता है। चीची की माँ एक बहेतरीन सैलून थी उसीने अपनी बेटी को यह व्यवसाय सिखाया था। चीची एक चीनी परिवार से है। यहाँ चीची अपने व्यवसाय में खूब तरक्की करती है। वह हर रोज नये नये तरीके अपना कर काम करती है। जैसे- "इन निढाल स्त्रियों को ताजगी और चुस्ती प्रदान करते-करते उसने और भी बहुतकुछ सीख लिया है। अपने कितने ही अधकचरे प्रेमियों को यह समझदारी के खतरे के उस और रोके रहती है"[१] यहाँ चीची ने सदा ही अपने काम को महत्त्व दिया है। इसी कारण वह अपनी कुशल कला के माध्यम से अपने व्यवसाय का रुख बदला है।

उसीप्रकार मंजुल भगत ने 'अलग-अलग दायरे' कहानी में भी कामकाजी नारी का चित्रण किया है। इस कहानी में स्मिता स्वयं कार्यरत रहकर अपने माता-पिता और अपने छोटे भाई अनुज के जीवन निर्वाह करती है। वह हमेशा अपने परिवार का ख्याल रखती है। जब उसे अपने माता-पिता का पत्र आता है तो उसे बोध होता है, वह सोचती हैं "ममी-डैडी को तो, जब रुपए के लिए, तकाजे भरे खत आते है या उसे मनी ऑर्डर भेजना होता है, तभी लगता है कि वह भी हैं।"[२] उसे अपने भाई के प्रति अति लगाव है। वह अपने परिवार के साथ वक्त गुजरना पसंद करती है। यहाँ स्मिता अपने कर्तव्य के प्रति इमानदार दिखाई देती है। उसी प्रकार 'खोज' कहानी में एक कामकाजी नारी नीलिमा का यर्थाथ चित्रण देखने मिलता है। नीलिमा एक 'क्रिएटिविटी एडवरराहजिंग एजेंसी' में कॉपी राईटर है। उसके विषय में कहा जाता था कि वह एक ओरिजनल एवं कल्पनाशील नारी है। उसके पति उससे बहुतखुश हैं। कभी कभी वह गर्व से कहते हैं, "यह नीलिमा, मेरी पत्नी भई। आय एम रियली बेटी बेटी लकी, घर और बहार दोनों दक्ष।"[३] इस प्रकार यहाँ नीलिमा के पति नीलिमा को पा कर खुश है। नीलिमा रोज के काम से ऊब जाती है। वह कुछ दिन दफ्तर से बाहर जाना चाहती है। उसकी तमन्ना है कि उसके पति भी साथ चले लेकिन मिस्टर वर्मा उसे अकेली ही मुबंई जाने का सलाह देते हैं। वह न चाह कर भी अकेली मुबंई जाती है। वहाँ जाने के बाद वह सिर्फ नीवू रह जाती है। वहाँ जाकर भी वह आपने आपको तलाशती है। सोचती है कि उसकी पूरी जिंदगी घर और दफ्तर तक ही सीमित रही। समय बीतता गया लेकिन उसके अस्तित्व की खोज जारी रही। यहाँ नीलिमा अपने अस्तित्व एवं स्वत्व की खोज करती नजर आती है।

'नालायक बहू' मंजुल भगत की एक चर्चित कहानी है। इस कहानी में मंजुल भगत ने निःसंतान नारी की व्यथा का चित्रण किया है। इसकी नायिका कामिनी जिस की शादी शेखर से हुईहै। शादी के बाद वह घर की सारी जिम्मेदारीयों को संभालती नजर आती है। लेकिन अचानक शेखर की नौकरी जाने पर वह खुद नौकरी करने का इरादा करती है। और उसके

पिता की मदद से शीघ्र ही नौकरी मिल जाती है। नौकरी करते-करते वह अपनी सास और पति का पूरा ध्यान रखती है। दोनों को बस औलाद की चिंता है। शेखर की माँ कामिनी को अच्छे डॉक्टर को दिखाने कहती है। लेकिन कामिनी अपनी सूनी गोद भरने के लिए एक अनाथालय से अनाथ बच्चा लाती है। और अपने सास से कहती है, "अम्मा इस बेचारे को यह सभी कुछ मिल जाएगा जिससे वह वंचित है। बडा होकर हमीं को मानेगा।"[४] यहाँ कामिनी ने अपनी सूनी गोद को भी पूरा किया और एक अनाथ बच्चे को भी सहारा दिया है। यहाँ कामिनी का निर्णय सचमूच उल्लेखनिय है। जिस से समाज कल्याण की भावना को निर्वहण करती है। इस कहानी में लेखिकाने कामिनी के माध्यम से एक एसी कामकाजी नारी का चित्रण किया है। जो अपने परिवार के साथ सामाजिक कर्तव्य निभाती है।

निष्कर्ष- साठोत्तरी महिला कहानिकारों में सबसे अधिक ताजगी मंजुल भगत की कहानियों में दिखायी देती है। उनकी कहानियों में नारी जीवन कि विडम्बनाएँ, अनास में गहराई तक चोर करती है। नारी मन की अनार्व्यथा को व्यक्त करते हु ए उन्होंने समाज के भिन्न भिन्न वर्गों में संघर्षरत नारी के समभ्र रूप को यथार्थ अभिव्यक्त किया है। उनके मतानुसार आज की नारी आत्मनिर्भर रह कर स्वतंत्र रूप से अपना जीवन व्यतीत करना चाहती है। कभी कभी वह अपने अस्तित्व की खोज करती नजर आती है। यहाँ कामकाजी नारी अपने साथ अपने परिवार का पालन पोषण करती नजर आती है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची:**

1) मंजुल भगत, ब्यूटी सैलून, कितना छोटा सफर, पृ. ९५
2) मंजुल भगत, अलग-अलग दायरे, कितना छोटा सफर, पृ. २८
3) मंजुल भगत, खोज, गुलमोहर के गुच्छे, पृ. ११
4) मंजुल भगत, नालायक बहु, गुलमोहर के गुच्छे, पृ. ४५
5) प्रतिनिधि महिला कहानीकारों में चित्रित नारी- डॉ. मीना जोशी

# pndkrk dh dgkfu;k e fpf=r ukjh foe'k

**Mk-HkkLdj mejko Hkoj**
हिंदी विभाग प्रमुख
कर्मवीर हिरे महाविद्यालय, गारगोटी
ई मेल – drbhaskarbhavar@gmail.com

---

नारी समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है । किसी भी समाज की श्रेष्ठता का निर्णय मुख्यतः समाज में नारी की स्थिति पर निर्भर करता है । प्राचीन धर्म शास्त्र ने उस पर आने की निर्बंध लगाए थे नारी का जीवन एक अभिशाप माना जाता है । तथा परिवार में नारी को पुरुषों की तुलना में है ।यह समझा गया लड़के की पैदाइश पर जहां प्रसन्नता प्रकट की जाती है । वहां लड़की पैदा होने पर हंगामा मचाया जाता है । परिवार के लड़के की तुलना में लड़की को कम प्यार मिलता है । अतः बचपन से ही उसमें ही उत्पन्न होती है । और वह जीवन भर अत्याचारों को चुपचाप सहती है ।

महेंद्र कुमार जैन ने नारी समस्या को बड़े ही उचित शब्दों में व्याख्या की किया है । उनके अनुसार '' भारतीय समाज में शताब्दियों से उपेक्षित नारी पुरुष के अत्याचार से पीड़ित रही उसके स्वतंत्र अस्तित्व की किसी को कल्पना तक नहीं निर्जीव पदार्थों के समान उसका क्रय विक्रय हो रहा वह असमर्थ है । इसलिए वह अत्याचार से होती है । समाज में उसका स्थान भाग्य मात्र रहा धीरे–धीरे परिस्थितियां अनुकूल पाकर नारी अपनी अलग पहचान बनाती गई आज समाज में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। ''[1]

इस बदलते समाज में नारी का स्थान महत्वपूर्ण है । पुरातन काल से नारी समस्या का प्रमुख कारण प्रायः आर्थिक पराधीनता था वर्तमान काल में नारी शिक्षा का प्रसार होने के कारण आज नारी भी पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर नौकरी करती है । उसकी आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आ रहा है । फिर भी पुरुष प्रधान समाज अवस्था के कारण नारी समस्या जटिल बनती गई । आधुनिक युवा लेखिकाओं साहित्यकारों ने आज की नारी की सामाजिक स्थिति और मानसिकता को बड़ी गहराई से चित्रित किया है ।

चंद्रकांता ने अपनी कहानी में पढ़ी–लिखी अभिजात वर्ग के मध्यम और गई की नारियों की समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई है । आज चाहे पढ़ी–लिखी कामकाजी महिला हो या घर की चार दीवारों में रहने वाली नारी हो सभी वर्ग की नारियों को भिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है । चंद्रकांता ने अपनी कहानियों में नारी समस्याओं को चित्रित किया है ।

**^fQygky** ' कहानी की नायिका के सामने अनेक समस्या है । नायिका आरती उम्र के 30 साल पूरे हो चुकने पर भी उसकी शादी नहीं होती अतः अंत तक कुंवारी रह कर अपनी आंधी मां और बीमार बहन की सेवा करती है ।

उसका भाई राजन जब तक शादी नहीं होती तब तक घर में रहता है । लेकिन शादी होने के बाद अपनी पत्नी के साथ अलग रहता है । वह अपनी मां और बीमार बहन को भी नहीं संभालता और आरती जी– तोड़कर आठ से पॉच तक की नौकरी करके घर वापस आकर घर का सारा काम करती है । आरती नौकरी करने वाली औरत होकर भी व्यस्त रहती है । विवाह नहीं करती अपनी मां और बहन के लिए कुंवारा पन स्वीकार करती है ।

**'/kjk'kk;h*** कहानी की नायिका अपना संघर्षपूर्ण जीवन बिताती है । नायिका वीवी अपने काम में ज्यादा सतर्क रहने वाली युवती है । वीवी पन्नालाल ट्रेडर्स कंपनी के ऑफिस में काम करती है । कंपनी के मालिक सत्याग्रही जो अपनी प्रशंसा करते हैं, उसकी पदोन्नति करते हैं। वीवी सबसे सीनियर होकर भी उसकी पदोन्नति नहीं होती । तब वीवी सत्याग्रह साहब के खिलाफ आवाज उठाती है । यूनियन के नेताओं के साथ मिलकर हड़ताल उपोषण करती है । लेकिन उसके सहयोगी कर्मचारी अंत तक उसे साथ नहीं देते फिर भी वह अकेली सत्याग्रही के खिलाफ लड़ती है । वीवी जैसे पात्रों के माध्यम से चंद्रकांता ने आज पूरी नारी अन्याय के विरुद्ध लड़ रही है । आवाज उठा रही है । इसका यथार्थ चित्रण किया है ।

**'ujkckbZ*** कहानी की नायिका नूरा एक मध्यमवर्ग परिवार में रहने वाली गरीब औरत है । उसका पति सूफी शराब और वेश्या के पास जाने के कारण बीमार पड़ता है । अब घर चलाने का दायित्व उस पर पड़ता है । वह जी तोड़कर मेहनत कर घर चलाती है । लेकिन उसके पति का मित्र जददेशहा उसकी इज्जत लूटता है । वह कुछ नहीं कर सकती जददेशहा उसे मिल में नौकरी दिलवाता है । सेठ के यहां वह नौकरी करती है ।एक दिन नूरा बीमार पड़ने के कारण सेठ नूरा को अपनी बेटी हसीना को काम पर भेज कर आराम करने की सलाह देता है । नूरा भी सेठ के बहकावें आकर हसीना को काम पर भेज देती है । उसी दिन सेठ हसिना पर बलात्कार करता है । नूरा जवाब पूछने जाती है तब सेट पुलिस के नाम से उसे डराता है । और उसे पचास की नोट जेब में निकाल कर देता है । तब नूरा बेबस सर्पिणी सी फुंकारते नोट सेठानी के मुंह पर फेक की कहती है – '' ये नोट देना अपनी कोखजायी को। हम गरीबों की कीमत इतनी ज्यादा नहीं । ''[2]

सेठ के ऊपर थूक कर नूराबाई घर लौट आती है । जददेशहा भी एक दिन नूरा को बस स्टॉप पर मिलने बुलाता है । लेकिन खुद नहीं आता । नूरा के घर जाकर हसीना पर बलात्कार करता है । जब नूराई हो अपनी आंखों से देखती है तो कहती है – ''जददे तू उसके बाप की जगह पर था तुझे खुदा भी माफ नहीं कर सकता ।''[3]

नूरा यह कहकर लोहे की भारी ओखली उठाकर मारकर उसका खून करती है । गरीब औरत और उसकी बेटी पर अत्याचार करने वाले लोगों का यथार्थ चित्रण लेखिका ने किया है

**^ngyht ij U;k; *** काहानी की नायिका रूक्की को भी अनेक समस्याओं का सामाना करना पडता है । रूक्की का जब बच्चा होता है तब से उसे समस्याएँ घेर लेती है । गॉव के महंत उसके बेटे की बली देना चाहते है । इसीलिए वह भागकर पुलिसथाना जाती है । लेकिन जो आदमी की रक्षा करनेवाले पुलिस ही भक्षक बन जाते है । रूक्की पर पुलिसवाले ही आत्याचार करते है । वहॉ से भागकर रूक्की दुसरे गॉव जाती है । वहॉ सरदार अत्तरसिह के घर रहती है। वहॉ जो कुछ काम मिले, वह करती है। सरदार अत्तरसिंह और सरदारनी उसे अच्छी तरह से सॅभालते है । एक दिन सरदारनी कुछ काम के लिए आपने मायके जाती है। तब सरदार अत्तरसिंह रूक्की को अकेली पाकर उसकी इज्जत लुटने की कोशिष करता है। लेकिन रुक्की हिम्मत नहीं आरती सरदार अत्तरसिंह का सामना करके उसके हाथ से छूट जाती है । रूक्की हर एक समस्या को अत्याचार को निपट कर संघर्ष पुर्ण जीवन बिताती है ।

दहेज समस्या समाज में बहुत ही भयावह रूप धारण कर रही है । इस प्रथा के कारण गरीब तथा मध्य वर्ग के लोगों को आर्थिक दृष्टि से तकलीफ उठानी पड़ती है । वर पक्ष विवाह में वधू पक्ष से रुपए पैसों तथा दहेज के रूप में ग्रहों पर की वस्तुओं की मांग करता है । वधू पक्ष की स्थिति अगर देने लायक नहीं होती तो भी स्त्री पर जुल्म जबरदस्ती करके उसे प्राप्त करने की प्रवृत्ति समाज में आज बढ़ गई है । सामाजिक दहेज समस्या ने मानवीय रूप धारण किया है । इस समस्या को दूर करने के लिए कानूनी तौर पर प्रतिबंध लगाए गए हुए हैं । परंतु जनसाधारण के सिवा इस समस्या का मुकाबला करना मुमकिन नहीं ऐसा दिखाई देता है ।

**'lp vkSj lp dk Qklyk '** कहानी में चंद्रकांता ने दहेज की विकराल समस्या का चित्रण किया है कहानी की नायिका प्रेमा बेहद सुंदर है वह मोती नामक लड़के से प्यार भी करती है मोती भी प्रेमा के साथ शादी करना चाहता है लेकिन मोती की मॉ दहेज के लालच में मोती ना चाहते हुए भी उसका विवाह निक्की नामक लड़की के साथ करना चाहती है

मोती की मां जान–बूझकर प्रेमा को कहती है कि बिटिया यह मोती शादी करने से फिलहाल मना कर रहा है । मनीष के लिए चीफ इंजीनियर लाल जी साहब की निक्की पसंद की है, बड़ा अच्छा घर है। यह घर हाथ से जाएगा तो उम्र भर पछताना पढेगा वह लोग फिएट कार भी दे रहे हैं मोती के लिए ।

मोती की पसंद या चाहत को ना देखे उसकी मां दहेज के लालच में अपनी बेटे का विवाह करना चाहती है। प्रेमा और मोती एक दूसरे को चाहते हुए भी शादी नहीं कर पाते दहेज के कारण प्रेमा की शादी नहीं होती लेखिका ने दहेज के कारण शादी में आने वाली बाधाओं का चित्रण इस कहानी में किया है

अंतरजाति विवाह को मान्यता देने के लिए माता–पिता आज भी इस लकीर को तोड़ना उन्हें असंभव हो जाता है। फिर भी समाज ऐसे विवाह से घृणा करता है। अंतर जाति विवाह करने वाले स्त्री–पुरुष समाज में चर्चा के विषय बन जाते हैं। परंतु आज इस दिशा में बहुत कुछ परिवर्तन दिखाई दे रहा है।

**'vukj d Qy*** कहानी में नीरा और नसीर अंतर जाति विवाह करते हैं। नीरा मुसलमान युवक नसीर के साथ शादी करती है। मेरा हिंदू होने के कारण उसके घरवाले उसकी शादी नहीं कर देना चाहते । नसीर की मां भी नसीर को अपने ही जमात की लड़की से शादी करने की सलाह देती है

नीरा सुंदर जिम्मेदार एवं शिक्षित लड़की है । वह नौकरी भी करती है दोनों काफी विरोध होने के बावजूद भी वहां विवाहबध्द होते हैं । नीरा शादी होने के बाद जब नसीर के घर में जाती है तब नसीर की मां अपने समाज में जो रीति रस्म नियम है। वह सीखना पड़ेगा यह कह के सताती है । और कहती है कुरान शरीफ सीखना होगा। नीरा से नूरी बनना होगा, बुर्का नही पहनो मगर मुंह उजड़ कर पराए मर्दों से रूबरू होना नहीं चलेगा ।

नासिर की मां मीरा को हर वक्त सताती है । शादी के बाद नीरा को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है लेखिका ने अंतरजातीय विवाह करने के बाद कितनी समस्या आती है इसका चित्रण निरा के माध्यम से किया है ।

**'lp vkj lp dk QSlyk dgkuh*** की नायिका बेहद सुंदर लड़की है । गरीबों के कारण उसकी शादी नहीं होती उसकी दो बड़ी बहन ने अभी तक कुंवारी है । इसकी कारण प्रेमा नाराज होती है प्रेमा सुंदर होने के कारण लोग प्रेमा को ही पसंद करते हैं । इसी कारण वह किसी अन्य जाति के काका नामक लड़के के साथ भाग कर शादी करते हैं । लेकिन उसके घर वाले भी समाज के ताने खाने पसंद करते हैं । लेखिका ने कहानी में अंतर जाति विवाह की समस्या को चित्रित किया है ।

## lnHk lph

1) महेंद्र कुमार जैन हिंदी उपन्यासों में पारिवारिक चित्रण प्रावकथन से
2) चंद्रकांता दहलीज पर न्याय, पृ. 140
3) वही,पृ. 141

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com

# मधुराज मधु लिखित उपन्यासों के शीर्षक की यथार्थता

– डॉ. कुसुम विजयकुमार चौधरी
चेंबुर शिक्षणशास्त्र महाविद्यालय,
चेंबुर, मुंबई ७१

**सारांश**

*प्रस्तुत संशोधन में उपन्यासों के शीर्षक की यर्थाथत जानने का प्रयास किया गया है। मधुराज मधु लिखित पहला उपन्यास 'चक्रवात' में पगली लाली सामाजिक चेतना का प्रतिबिंब है, उसके अंदर समाज के घिनौने सत्य से डस नहीं है, क्योंकि वह पगली है, उसका सन्मान, परिवार सब लुट गया, खाने के लिए अब कुछ नहीं है, इसलिए वह भय के भाव से हीन हो गयी है, परंतु सत्य बोध से संपन्न। दुसरा उपन्यास 'गंगातट' के पात्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आजादी के इतने साल गुजर जाने के बावजूद समाज का एक ऐसा तबका है, जो इल्म, तालीम, खुशफहमी, तरक्की से नावाकिफ है, एक जंग-धडंग असभ्य और अनजान यात्री के जरिए लोगों के सामने सवाल खड़ा कर दिया है, जो तरक्की, अमनपरस्ती, इंसानियत और मजबूत लोकतंत्र की वकालत करते रहे है, फिर भी देश सामाजिक विषमता से आज तक मुक्त क्यों नही हो सका। तिसरा उपन्यास है 'मोड' की नायिका तुलसी एक शहीद सेनानी की विधवा पत्नी और शिक्षिका है। उसकी जिंदगी कैसर खुशहान थी, उधर पति प्रताप के सरहदपर दुश्मनों के साथ लडते हुए सेना में वीरगति प्राप्त हुए, इधर तुलसी की जिंदगी के रंग बदलना शुरू किया। यहाँ लेखक यह दर्शाने सफल रहा है कि धनदौलत और ताकत ही सर्वोपरि नहीं है, बल्कि जनशक्ति ईन दोनो शक्तियों से उपर है। मधुराज मधु के इन तिनों उपन्यासों में नारी जीवन पर प्रकाश डाला है। जनशांति, समाजता, मानवता विकास और राष्ट्रीय एकता के लिए परिवर्तन का आहवान किया है।*

*इस संशोधन में साहित्यकार मधुराज मधु के तिन उपन्यास लिये गये है। और उसी तिन उपन्यासों का विश्लेषण करके यथार्थता जानने का प्रयास किया गया है।*

**प्रस्तावना –**

मधुराज मधु साहित्य क्षेत्र के एक चर्चित नाम है, जिसकी आम व्यक्ति विशेष उनकी रचनाओं से परिचित है। साहित्य के क्षेत्र में अपना आलौकिक योगदान दिया हुआ है। जिसका आज पूरा साहित्य जगत इस बात से इन्कार नही कर सकता। वरिष्ठ पत्रकार, चिंतक और साहित्यकार मधुराज जी का जन्म जुलाई १९४९ में बक्सरजिले कजरिया नामक ग्राम में हुआ है । मधुजी के साहित्य में कथनी और करनी में सर्वथा समानता रही, इनकी सर्जना कागज के पन्नों तक सीमित नही है। उनकी सर्जन वास्तव में लोकसाहित्य है। मधुजी ने अपने संपूर्ण जीवन को साहित्य व पत्रकारिता के नाम पर समर्पित किया है। मानवता के पक्षधर मधुराज मधु की सामाजिक चेतना और सजग साहित्यकार की सक्रियता की पहल शोषण और विषमता के विरूध्द तैनात है। जीवन के जिस किसी भी क्षेत्र में उन्हे अमानुषिक स्थितियाँ दिखाई देती है, बेबख्शता नही, सेवा, विश्वास और आर्थिक क्रांती को मधुराज जी मानव कल्याण मानते है, किंतु विषम अर्थव्यवस्था और नियंत्रणकारी सामाजिक परिस्थितियाँ इससे व्याघ्यात उत्पन्न करती है और मनुष्य को उदारता, प्रेम, सहानुभूती और करूणा जैसे स्वाभाविक गुणों के स्थान पर घृणा, वैमनस्य, और दुर्भावना का शिकार बनाती है। इनत माम बुराईयों का समाधान ये मानववाद में पाते है। मानववाद को निर्देशित करते हुए कहते है कि, ''मानववाद ऐसी सुव्यवस्था है, जिसमें समाज न खंडीत हो सके और न व्यक्ति उपेक्षित हो सके ''मानवतावाद आपकी अपनी विचारधारा है जिसमें समाज में एकता, समानता, शांती, मानवता, विकास और सद्भावना का अनूठा सुत्र प्राप्त होता है। यही चित्रण उपन्यासकार ने अपनी उपन्यासों में पुरी सावधानी और कुशलता से किया है।

**आवश्यकता और महत्व :**

मधुराज मधुजी का साहित्य मधुराज जी के विचारो का पोषक है उनके साहित्य में सामाजिक चेतना, दायित्व तथा सुधार का अलख जलाया है। वह पाठकों को सामाजिक परिस्थितीयों पर चिंतन करने के लिए विवश कर देता है। मधुजी के साहित्य में नारी पात्र

केंद्र में है। उनका 'गंगातट' और 'मोड' उपन्यास के लोकार्पण समारोह में शामिल होने का मौका मिला। तब ऐसा प्रतित हुआ की मधुराज मधु जी है इन्होंने जो लिखा वह अवलोकन के लिए ही नही बनी, बल्कि मार्गदर्शन के लिए भी बनी है। इसी दृष्टिकोन मे मुझे चिंतनशील बनाया और शोध करने के लिए मुझे प्रेरित किया। इसलिए मैंने शोध हेतु मधुराज मधु लिखित उपन्यासों के शीर्षक की यथार्थता इस विषय चयन किया।

**उद्दिष्टये :**

१. उपन्यासों को पढ़कर उसके शीर्षक की यथार्थता स्पष्ट करना।
२. मधुराज मधु के उपन्यास साहित्य की सामाजिक उपयोगिता पर प्रकाश डालना।
३. उपन्यास साहित्य जगत में मधुराज मधुका योगदान स्पष्ट करना।
४. स्त्रीयों पर जो अत्याचार हो रहे है, उनपर सरकार की ओर से प्रयत्न होते है। जनजागृती होती है, लेकिन उसे उजागर करने का छोटा सा प्रयास करना।
५. सामाजिक विषमता के बारे में उपन्यासकार के दिये विचारों को स्पष्ट करना।
६. मधुराज मधु द्वारा अपेक्षित सामाजिक परिवर्तन पर दिये विचारों को समझना।

**संशोधन की कार्यपध्दती:**

प्रस्तुत संशोधन कार्य में मधुराज मधु के प्रकाशित पहले तीन उपन्यास चक्रवात, गंगातट, मोड के लिए आलोचनात्मक शोध पध्दती का उपयोग किया गया है। और उसपर निष्कर्ष प्रस्थापित किये गए है।

**कथावस्तु का विश्लेषण :**

**१. चक्रवात** : यह उपन्यास दर्दमंदी का आइना है, जिसमें दर्द भी खुशी बाँटता दिखाई देता है। 'लाली' इस उपन्यास की नायिका है, जो अभाव में भी उत्साह के साथ जिन्दगी जीने की कायल है, गरीबों को यह नायिका आदरभाव से देखती है और महसूस करती है कि अंधेरे में ही उजाले का दीया जलता है, वह मानती है :

*गरीबी रोग से हर दिन हमें लडना सिखाती है,*
*हमेशा बिन किताबों के हकें पढना सिखाती है।*

गरीबी आदत न इन्सान को रोने नही देती, पसीने में नहाकर भी खुशी गढ़ना सिखाती है।

मधुराज मधुजी गरीबों, असहाय्य बच्चों और लाचार महिलाओं के प्रति वे बेहद चिंतित है, उस बदहाल समाज के लिए संघर्ष करना ही उनका लक्ष्य है, 'चक्रवात' में उन्होंने यह निम्न वाक्यों में लिखा हुआ दिखाई देता है।

*मानव-मानव एक है, मानव का धर्म एक है,*
*दीप बनकर जलना है, अंधकार मिटाना है।*
*आओ भोर की ओर चले, नई सुबह की खोज करें।*
*नया पथ सजाना है, नया समाज बनाना है।*

'चक्रवात' में नारी पात्र लाली कथा के केंद्र में है, यह एक नायिका प्रधान उपन्यास है, विषम से विषम परिस्थितीयो में भी वह विचलित नही होती, वह अत्याचार और शोषण के सम्मुख नतमस्तक नही होती है । शोषिता होते हुए भी दीन-दलित, दुखित व अनैतिक नही है। वह संघर्ष करती है, वह अपने अधिकारों की भीख नही माँगती है, और न ही छीनती है, बल्कि उसे सामाजिक व न्यायिक तरीके से हासिल कराती है कि समाज में ऐसी चेतना जागृत करती है कि, समाज स्वेच्छा और सम्मान से उसको उसका हक दें।

पगली लाली सामाजिक चेतना का प्रतिबिंब है। उसके अंदर समाज के घिनौने सत्य से डर नही है, क्योंकि वह पगली है, उसका सन्मान परिवार सब लुट गया, अब खोने के लिए कुछ नही है, इसलिए वह भय के भाव से हीन हो गयी है परंतु सत्यबोध से संपन्न।

'चक्रवात' में बाहुबलियों व राजनेताओ का विभत्स घिनौना ताण्डव दिखाया गया है, जिसमें गरीब दलित जनता दबती व कुचलती रहती है। वह अपना सबकुछ लुटाती रहती है और रणविजय जैसे लुटेरा, दानवीर बने सीना ताने चलता है, उस दमन, चीत्कार, दर्द में दबते-पीसते हांड-मांस का आदमी पत्थर बन जाता है। शोषण की पाटी पर घिसते-घिसते चिनगारी निकलती है। ऐसी चिनगारी तो शोषण और अमानवीयता की लंका को जलाकर भस्म करने की ताकद रखती है। 'चक्रवात' का अंत भी एक नव प्रभात की उम्मीद जलाता है, लाली नारी के अटल अस्तित्व की प्रतिरूप है, पुरूष उसे कुचल सकता है, मस सकता है, पर मिटा नही सकता।

**२. गंगातट :**

'गंगातट' की मुख्य पात्र 'गांगी' की जीवन शैली से यह स्पष्ट हो जाता है कि आजादी के इतने साल गुजर जाने के बावजूद समाज का एक ऐसा तबका है, जो इल्म, तालीम, खुशफहमी, तरक्की से नावाकिफ है। पुन तंग-धडंग असभ्य और अनजान 'गांगी' को विशेषित कर उपन्यासकार ने उन लोगों के सामने सवाल खडा किया है, जो तरक्की, अमनपरस्ती स्त्री इंसानियत और मजबूत लोकतंत्र की वकालत करते रहे है। मुल्क के आजाद नुमाईंदे और समाज के संभ्रांत लोग स्वच्छता की डींगे हांकते है और स्वच्छता को अंजाम तक पहुंचाने की कोशिशों का ढिंढोरा पीटते रहे है, मगर देश आज तक उस सामाजिक विषमता से मुक्त क्यों नही हो सका? गांगी के जीवन चरित्र को पढकर यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि इस देश में एक ऐसा भी समाज है, जिसके लोग आज भी ज्ञान, शिष्टाचार और विकास से वंचित है। नंग-धडंग जिंदगी उस अंधेरा का साजो-सामान है, जहाँ विकास और शिक्षा नहीं, बल्कि भटकाव है। अंधेरा उनके जीवन का लिबास ही नही तो श्रृंगार भी है। 'गंगातट' इस उपन्यास में लेखक ने गांगी को अपने दृष्टिकोन से प्रभावित कर एक नयी ऊँचाई दी है और आम जनता को उसपर सोचने के लिए आग्रह किया है।

'गंगातट' इस उपन्यास में महादलित समाज की जीवनशैली की परोधि का मुख्य केंद्र बिंदु है। एक ऐसा अभागा समाज जिसका कोई अपना ठिकाना नहीं, कोई अपनी पहचान नहीं। गंवारपन, पिछड़ापन और अनाड़ीपन जैसी विसंगतियों में जीना नंग-धडंग जिंदगी का खुला सबूत है। इस सच को उपन्यासकार ने 'गंगातट' के माध्यम से विस्तार दिया है, सिर्फ परिस्थितीयों का ही पर्दाफाश नही किया गया है बल्कि समस्याओं के समाधान के लिए पात्रों को प्रभावित कर नये अभियान की तस्वीर पेश की है। 'गंगातट' की मुख पात्र गंगि, अति उपेक्षित समाज की गंवार, अनाडी और अंधेरे में भटकने वाली जिंदगी है, जो अंधेरे से उजाले में आती है । वकील शिवप्रकाश जैसा इंसान अपने पास रखकर उसकी जीवन शैली बदल देता है। वह ज्ञान, आचरण, शिष्टाचार, तर्क, भाषा तथा साहस से लैस हो जाती है। उस ज्ञान के प्रकाश में उसकी चेतना जाग उठती है। वह अपने आप में स्वाभिमान की प्रतिज्ञा बन जाती है। उसमे अदम्य उत्साह, साहस, ज्ञान और सक्रियता से लैस होकर महा अछुत महादलित समाज के उस अंधेरे में दीप जलाती है, वह दलित और महादलित के बीच की खाई को पाटने में सफल हो जाती है। और बिखरे हुए समाज के लोगों को एक धागे में पिरोकर समग्र समाज के बीच एकता और समानता स्थापित करने के लिए निकल पडती है। अब वह अकेली नहीं, बल्कि एक कारवां है। समाज में बिखराव को दूर कर एकता कायम करना असका मकसद है। वह एक वैचारिक क्रांती है। तो अपने आप में चेतना का शंखनाद भी है और समाज को बाँटना वाले दस्तूर को रोंद देना उसका सफरनामा है, जिसमें हर शख्स्त सकून की सांस ले के। यह सक्रियता 'गंगातट' का सार है, इस सार को उपन्यासकार ने खुप मनसे स्वच्छ व निष्पक्ष स्त्रोत के जरिये विस्तारीत किया है।

इस तरह 'गंगातट' में उपन्यासकार ने ऐसे समाज को अपनी धारधार कलम से विश्लेषित किया है, जिसका गंगा सत्तासीन सियासत के लिए खुली चुनौती है, तो लोकतंत्र पर करारी चोट भी है।

**३. मोड :**

मोड नायिका प्रधान उपन्यास है । उपन्यासकार ने 'मोड' उपन्यास में एक गांव का किस्सा बयां किया है। परंतु वह किसी एक गांव की दास्तान नही है। यह ऐसे तमाम भावों का प्रतिनिधित्व भी कर रहा है, जिनमें विसंगतियां है और चौधरी जैसे लोग है, जो अमीर-गरीब, और ऊँच-नीच की परंपरा को शाश्वत रखना चाहते है। उनके खिलाप तुलसी, मुसाफिर, रहिम, शबाना और रूपा

जैसे लोग दबे-कुचले लोगों के साथ मिलकर 'संघर्ष कर यह जतलाने का प्रयास करते है कि जो हो रहा है, वह मानवता के खिलाफ है इसमें बदलाव आवश्यक है। तुलसी और मुसाफिर बहुत संघर्षो के पश्चात मानवीय शिष्टाचार से गाँव में शांति स्थापित करने में सफल होते है। तुलसी एक शहीद सेनानी की विधवा पत्नी है और शिक्षिका भी। कभी उसकी भी जिंदगी खुशहाल थी, उपर उसके पति प्रताप सरहद पर दुश्मनों के साथ लडते हुए सेना में वीरगति को प्राप्त हुए, इधर तुलसी की जिंदगी ने रंग बदलना शुरू किया । गाँव वालों ने मुँह फेरना शुरू कर दिया। गलियों के टपोरी नौजवा तुलसी से छेडखानी, छींटाकशी और तानावाशी करते नजर आये। उनकी नीयत बढत गयी। शिक्षिका तुलसी कभी बच्चों व गांव वालों को सर उठाकर जीने की नसीहत देती, तो कभी अपने हक के लिए लढने की शिक्षा भी देती, जो चौधरी को बिलकुल बर्दाश्त नहीं था। तानाशाह चौधरी का बेटा ददन उसे बार-बार निरूत्साहित करने का प्रयास करता, परंतु सफल न हुआ, तो मुखिया और चौधरी को भड़काने लगा कि वह बदचलन है, उसे गांव से बाहर करने के आदेश दिये जायें। फिर क्या था, सभी लोग तुलसी को गांव से बाहर करने लगे।

उपन्यासकार सामाजिक व्यवस्था में बदलाव चाहता है, वह जानता है कि नारी जब तक डरी, सहमी और बेजुबान बनी रहेगी, तब तक उस पर अत्याचार होते रहेंगे। अतः इन्होंने नारी को सशक्त बनाया, उन्हें जुबान दी। रूपा के माध्यम से ये कहते हैं, ''ऐ पुरूष! नारी जीवन में झांकने से पहले अपनी उस तबीयत में झांककर देखो, जिसमें घृणा है, साजिश है और फिर औरत की पवित्रता को रौंदने वानी बदलीयत पनती है, बदलो ऐसी तबीयत को, बदलो अपनी सोच को और बदल डालो ऐसे आदेश को, जो गांव की सभ्यता के नाम पर बोझ है। याद रखना, औरत मोम की गुड़िया नहीं। औरत औरत हैं। उसे अपने सम्मान का पूरा ख्याल है।''

उपन्यास के नारी पात्र चाहे वे मुख्य हों या कहीं कम समय के लिए ही आयी हों। वे कहीं भी रोती गिड़गिड़ाती नजर नहीं आती हैं। सभी को अपने सम्मान व अधिकार का एहसास है। मुसाफिर की बूढ़ी मां भी चौधरी को नहीं बख्शती है, उसे खरी-खोटी सुनाती है। यह समस्त नारी समाज के लिए अनोखा उदाहरण है। शबाना, रूपा और रहीम ने तुलसी की रक्षा की, किंतु मुसाफिर के जेल से लौटने पर जब उसे पता चलता है तब वह आग-बबूला हो उठता हैं।

मुख्य पात्र मुसाफिर पहले तो उत्तेजक प्रवृत्ति का था, ताकत के बल पर समाज में बदलाव लाना चाहता था, लेकिन सजा काटकर गांव आने के पश्चात तुलसी के मार्गदर्शन में बदलाव लाना चाहता था, लेकिन सजा काटकर गांव आने के पश्चात तुलसी के मार्गदर्शन में उसने पहले स्वयं को बदल लिया। ताकत के बल पर समाज को बदलने के बजाय स्वयं में बदलाव लाकर, मानवीय शिष्टाचार के द्वारा पूरे गांव की विसंगतियों को समाप्त करने के प्रयास में जुट गया । इतने जुल्मो-सितम सहकर भी सर उठाकर जीने की हिम्मत करती है तुलसी, और तो और अन्य लोगों को भी सर उठाकर जीने की प्रेरणा देती रही। महिलाओं में जागृति लाने का कारगर कार्य करती रही। तुलसी कर्तव्यनिष्ठ, कर्मठ, जुझारू, परोपकारी व करूणामयी भी है। रघु को रोता बिलखता देखकर तुलसी का अंतर्मन द्रवित हो उठा। वह महिलाओं के साथ चौधरी के द्वार पर जाकर कहती है, ''क्या यही है लोकतंत्र?''

रघु के माध्यम से बाहुबलियों के अन्याय, अत्याचारों को उजागर किया है। कर्ज के लिए चौधरी द्वारा रघु को मारना-पीटना व उसकी बेटियों को बंधक बनाकर और बांधकर रखना - इस तरह की सोच सामाजिक व्यवस्था पर बदनुमा दाग है। मानवता का प्रदर्शन करते हुए तुलसी रघु को घायलावस्था मे देखती है, तो वह मदद हेतु आगे बढती है। चौधरी के द्वार पार जाकर उससे कहती है, ''रघु के साथ इस तरह का बर्ताव क्यों किया?'' कर्ज के विषय में ज्ञात होने पर वह पांच हजार रूपये अदा करके बेटियों को छुडाती है। इस प्रसंग में लेखक कमजोर वर्ग के हिमायती के रूप में नजर आते हैं इन्हें शोषित, पीडित वर्ग से हमदर्दी है। लेखक कहता है-''कर्ज के बदले आपने इस गरीब की दो मासूम बच्चियों को बंधक बना रखा है। आजाद भारत की यह कितनी घिनौनी सच्चाई है। चौधरी साहब, इंसानियत का गला घोंटने वाले आप जैसे लोग भले न शर्मिंदा हों, मगर ऐसे घिनौने सच से देश का लोकतंत्र जरूर शर्मिंदा है।''

उपन्यास में मुसाफिर ने परोपकार कर और दुराचारियों का हृदय परिवर्तन कर गांव में कलह, कोहराम, आतंक, भय व दहशत के साये को दूर करने का नया मार्ग अपनाया है।

दीपावली के अवसर पर मुसाफिर और तुलसी ने घर-घर जाकर दीप जलाए। लोगों के सुख-दुख में शरीक हुए, इतना ही नहीं, जिनके जुल्म का शिकार बनी तुलसी अनके घर पर भी जाकर अपने हाथों से दीप जलाए।

रक्तहीन क्रांति पर, अहिंसा के मार्ग पर चलकर तुलसी और मुसाफिर ने गांव वालों को एकजुट किया, असहाय की सहायता की, जो इंसानियत के लिए लडा, जिस विषमता को पुजारी ने खत्म करने की कोशिश की, उसी विषमता को एकजुट किया, असहाय की सहायता की, जो इंसानियत के लिए लडा, जिस विषमता को पुजारी ने खत्म करने की कोशिश की, उसी विषमता को संभ्रांत समाज ने भय और ताकत के बल पर बनाए रखना चाहा। एकजुट समाज ने उस विसंगति को नेश्तनाबूद करने में अपनी एकता प्रदर्शित की। लेखक लिखता है- ‘‘यह हाथ विवश्ता का बंधन नहीं, बल्कि भीष्म प्रतिज्ञा का बंधन है, कभी टूट नहीं सकता। संकल्प कभी बिक नहीं सकता।

सुखदेव और धनिया के वार्तालाप के माध्यम से राजनीतिओं, नेताओं, सत्तासीनों के असली चेहरे को सामने लाने में सफल रहा है। वह कहना चाहता है कि अशिक्षित, गरीब, दबे-कुचले लोग भी राजनीतिक हथकंडो से अनभिज्ञ नहीं। वे नेताओं के दाँवपेंच, झूठे वादे, लुभावने क्रियाकलापों से अच्छी तरह से वाकिफ हैं।

पुजारी द्वारा रूपा को मंदिर में प्रवेश की अनुमति दे देने पर अन्य पुजारी व चौधरी द्वारा उन्हे बांधकर और मार-पीट कर लहूलुहान कर दिया जाता है। इस अन्याय में मुसाफिर ने मानवता के एक नही अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये है। दुराचारी ददन को पिटते हुए देखकर मुसाफिर का ह्रदय परीज जाता है। वह पलटू से लडकर, लहूलुहान होकर भी ददन की रक्षा करता है। मुसाफिर ने जनशक्ति को मजबूत करके यह साबित कर दिया कि जनशक्ति के सामने दौलत व दंभ की ताकत शून्य है और ऐसी घिनौनी ताकत घुटने टेक देती है। नायक मुसाफिर ने समाज के समक्ष एक मिशाल कायम की, कि स्वयं को बदलो। इस उपन्यास की भाषा, शैली, विश्लेषण का अपना खास अंदाज है, जो उपन्यास की विषय-वस्तु को सुदृढता तथा उत्कृष्टता प्रदान करता है।

उपन्यासकार मधुराज मधु ने अपने उपन्यास ‘मोड’ में उन तमाम सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक विसंगतियों का पर्दाफाश किया है, जिनकी मौजूदगी राष्ट्र और लोकतंत्र के लिए घातक है। इन्होंने काल्पनिक पात्रों के द्वारा ऐसी दुराचारियों के खिलाप आवाज उठायी है। यह उठती आवाज समस्याओं के समाधान का आधार है। नये समाज और नवपथ का आवाहन है।

**निष्कर्ष** :-

१. नारी को अबला समझा जाता है।
२. मानवतावाद के पक्षपर मधुराज मधु की सामाजिक चेतना और सजग साहित्यकार की सक्रियता की पहल शोषण और विषमता के विरूध्द तैनात है।
३. ‘गंगातट’, ‘मोड’, ‘चक्रवात’ इस उपन्यासों में समाज में एकता, समानता, शांति, मानवता, विकास और सद्भावना का अनूठा सूत्र पात्र होता है।
४. ‘चक्रवात’ मनुष्य को विषम से विषम परिस्थितीयों मे जीने और जिताने का दम भरता है।
५. उपन्यासकार ने इन उपन्यास के जरिए नारी शोषण, राजनैतिक भ्रष्टाचार व अत्याचार का पुरजोर विरोध किया है।
६. नारी सशक्तिकरण के आवश्यकता पर बल दिया है।
७. समाज को बदलने की कोशिश इस उपन्यासों के द्वारा की गयी है।
८. मधुराज के उपन्यास सामाजिक परिवर्तन पर आधारित क्रांतिकारी उपन्यास है।
९. उपन्यासकार मधुराज मधु साहित्य को व्यावहारिकता प्रदान करने का अनुरोध करते है।
१०. ‘गंगातट’ इस उपन्यास में मधुजी ने ऐसे समाज को अपनी धारदार कलम से विश्लेषित किया है, जिसका नंगा सच सत्तासीन सियासत के लिए खुली चुनौती है, तो लोकतंत्र पर करारी चोट ।
११. मधुराज मधु ने सामाजिक विषमता को उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया है और पाठक श्रोताओ को सामाजिक परिवर्तन, स्वतंत्रता और धार्मिक पाखंड, अडंबर पर चिन्तन के लिए मजबूर किया है।

**संदर्भ सूची** :

१. मधु, मधुराज, (२०१७) : चक्रवात, दिल्ली, साकेत प्रकाशन
२. मधु, मधुराज, (२०१९); गंगातट, दिल्ली, साकेत प्रकाशन
३. मधु, मधुराज, (२०१९); मोड, दिल्ली, साकेत प्रकाशन
४. गोपालबाबू शर्मा (२००७) अनुसंधान और अनुशीलन

# भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी उपन्याससाहित्य और समाज

**डॉ. एस. पी. शिंदे**
के. एच कॉलेज, गारगोटी

समकालीन भूमंडलीकरण की अवधारणा किसी ऐतिहासिक प्रकिया का स्वाभाविक विकास नहीं समझी जा सकती। आज जिस संदर्भ में भूमंडलीकरण की चर्चा गर्म हुई है वह अमेरिकी पूंजीवाद, पश्चिमी जनतंत्र वाली प्रणाली के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी है। वैसे तो इस जादू के पिटारे को खोलते समय इस बात की तथाकथित घोषणा की गयी थी कि इस प्रक्रिया के तहत वैश्विक रूप से असमानता में कमी आयेगी।यह संसार में शिक्षा, रोजगार तथा व्यापार को मजबूती प्रदान करेगा और आपसी सहभागिता बनेगी, पर वर्तमान परिदृश्य पर दृष्टिपात करें तो यह दावा पूर्णतया खोखला और दोहरा चरित्र का निर्माण करने जैसा है। प्रख्यात वैज्ञानिक प्रो. यशपाल जी भूमंडलीकरण की अपसंस्कृतिकरण से चिंतित नजर आते हैं। उनका मानना है कि,“भूमंडलीकरण का अर्थ यह नहीं है कि यह सब लोगों के लिए बराबर है। इसमें ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ जैसी बात बिल्कुल नहीं है।भूमंडलीकरण एक स्वेच्छाकारी प्रक्रिया है जिसके नियमों का पालन हमें करना पड़ेगा और हम सबको उसके पीछे चलना पड़ेगा। ये यह भी तय करेंगी कि हमारी स्थितियाँ कैसी होगी। उन्हें कैसे होनी चाहिए। आपको अनुकूलित किया जाए।”

भौगोलिक सीमाओं के समाप्त होने, घरेलु बाजारों को नियंत्रण मुक्त किये जाने और विज्ञान और संचार टेक्नोलॉजी के चमत्कारी आविष्कारों ने विश्व के छोटे बड़े राज्यों को आपस में इस तरहजोड़ दिया है कि विश्व ‘ग्लोबल विलेज’ में परिवर्तित हो गया है। भूमंडलीकरण ने हमारे आर्थिक जगत को प्रभावित करने के साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, पारिवारिक, साहित्यिक जगत को भी प्रभावित किया है।अब व्यक्ति का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा है वह भी वैश्विक हो गया है। इससे स्पष्ट है कि अब सबकुछ बाजार तथा बाजारी व्यवस्था है। हम सिर्फ उस बाजार के खिलौने बन गए हैं। जिसे कहीं भी, किसी भी दाम में सिर्फ बेचा जा सके।

हिन्दी साहित्य-जगत् में लगभग पिछले दो दशकों से भूमंडलीकरण पर चर्चा हो रही है, किन्तु उस यथार्थ को सशक्त प्रभावशाली और मार्मिक रूप में अभिव्यक्ति देने का श्रेय जाता है, ‘रेहन पर रग्घू’ (काशीनाथ सिंह) ‘दौड़’ (ममता कालिया) ‘एक ब्रेक के बाद’, ‘कलि-कथा वाया बाइपास’ (अलका सरावगी) ‘विसर्जन’, ‘हलफनामे’ (राजु शर्मा), ‘ग्लोबल गाँव के देवता’ (रणेंद्र), ‘उधर के लोग’ (अजय नावरिया), ‘मुन्नी मोबाईल’ (प्रदीप सौरभ),‘क्याप’(मनोहर श्याम जोशी), कितने पाकिस्तान (कमलेश्वर)आदि उपन्यासों को। इन उपन्यासों में भूमंडलीकरण से बदलता समाज का वर्णन मिलता है। सोवियतसंघ के विघटन के बाद अमेरिका के नेतृत्व में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने दुनिया के बाजार पर कब्जा जमाना शुरू किया तो इसे ‘भूमंडलीकरण’ का नाम दिया गया।

‘रेहन पर रग्घू’ प्रख्यात कथाकार काशीनाथ सिंह की अत्यन्त सशक्त औपन्यासिक कृति है। भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप संवेदना, सम्बन्ध और सामूहिक दुनिया में जो निर्मम ध्वंस हुआ है, बदलाव का जो तूफान आया है, उसका प्रामाणिक और गहन अंकन है ‘रेहन पर रग्घू’। यह उपन्यास वस्तुत: गाँव शहर

अमेरिका तक के भूगोल में फैला हुआ अकेले और निहत्थे पड़ते जा रहे समकालीन मनुष्य का बेजोड़ आख्यान है। इस वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने सर्वाधिक गहरा घाव भावनात्मक स्तर पर किया है। आज व्यक्ति और समाज मानवीय भावबोध से निरंतर दूर होता जा रहा है। उपन्यास का नायक रघुनाथ के इस कथन में इसकी अनुगुँज बहुत साफ सुनी जा सकती है “देखों जग्गन परायों में अपने मिल जाते है ,लेकिन अपनों में नहीं मिलते ऐसा नहीं है कि अपने नहीं थे- थे लेकिन तब जब समाज था, परिवार थे रिश्ते-नाते थे, भावना थी। भावना यह थी कि यह भाई है, यह भतीजा है, भतीजी है, यह कक्का यह काकी है, यह बुआ है, मामी है।भावना में कमी होती थी तो उसे पूरा कर देती थी लोक-लाज कि यह ऐसा नहीं करेंगे तो लोग क्या कहेंगे? धुरी भावना थी, गणित नहीं, लेन-देन नहीं।”

आधुनिकता के कारण हमारा संयुक्त परिवार पहले ही टूट कर बिखर चुका है। और भूमंडलीकरण ने समाज के एक बडे हिस्से को विस्थापित एवं उपेक्षित जीवन जीने को बाध्य कर दिया है। अपने बेटों का गाँव, गाँव की जमीन से उपराम होना रघुनाथ को भीतर तक सालता है। उनकी पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त होती है – “शीला हमारे तीन बच्चे है, लेकिन पता नहीं क्यों कभी मेरे भीतर एक ऐसी हूक उठती है जैसे लगता है मेरी औरत बाँझ है और मैं निस्संतान पिता हूँ।” रेहन पर रग्घू उपन्यास के माध्यम से लेखक हमें यह कहना चाहता है कि किस तरह बाजार हमारे गाँव घर में घुस चुका है? किस तरह हमारी चेतना, हमारी संस्कृति को कैप्चर किया जा रहा है? “ जिस कंपनी में और जिस कांट्रेक्ट पर अमरीका जाना है, उससे तीन साल में कोई भी इतना कमा लेगा कि अगर उसका बाप चाहे तो गाँव का गाँव खरीद ले”।,

‘दौड़’ हिन्दी का ऐसा एक उपन्यास है, जो हमारे समक्ष कुछ मज़बूत समस्याओं और सवालों को उपस्थित करता है।'दौड़' आज के उस मनुष्य की कहानी है जो बाज़ार के दबाव, उनके परोक्षअपरोक्ष मारक - तनाव, आक्रमण और निर्ममता तथा अंधीदौड़में नष्ट होते मनुष्य को उजागर करता है। दौड़ उपन्यास बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, व्यावसायिकतावाद, आजीविकावाद का प्रतीक है। भूमंडलीकरण, उदारीकण और निजीकरण ने 21वीं सदी में युवाओं के सामने सपनों की एक अलग और नितांत नई दुनिया का द्वार खोला दिया है, जिसके चलते कई नए ढंग के रोजगार और नौकरियाँ उपलब्ध हो गई। युवाओं ने इस नए दौर में नए तंत्र पर सवार होकर सफलता तो खूब अर्जित की, लेकिन मानवीय सम्बन्ध और आपसी रिस्तें इनसे कहीं छूटकर बहुत दूर चले गये हैं।

अलका सरावगी ने ‘एक ब्रेक के बाद’ उपन्यास के विषय का ताना-बाना समसामायिक कोर्पोरेट जगत को कथावस्तु का आधार लेते हुए बुना है । यह कोर्पोरेट जगत की वैचारिकता और धोखाधड़ी को प्रस्तुत करता है उपन्यास में कोर्पोरेट जगत की चकाचौंध के बीच देश की एक तिहाई जनता को ‘कुत्ते’ की तरह जिंदगी बिताते हुए दिखाया है, जो देश की सबसे बड़ी विडम्बना है, अलका जी ने ‘कलि-कथा वाया बाइपास’ उपन्यास को पूंजीवाद के विस्तार तथा बहुराष्ट्रीय निगमके बढ़ते हुए प्रभाव को 21 वीं सदीके परिप्रेक्ष्यमें वर्णित किया हैं। भूमंडलीकरणकेद्वारा बाजारवादी संस्कृतिके आगमनको एवं उसके प्रभाव को अलकासरावगीने बखूबी अपने इस उपन्यासमें दर्शाया हैं। समाज एवं व्यक्तिको हाशियेपर ढकेलकर बहुराष्ट्रीय कंपनियोंद्वारा स्वार्थसे परिपूर्णलोभ एवं लालच की संस्कृति को परोसा जा रहा है। जिसके लिये राजनीतिक, सामाजिक एवं सांसकृतिक विघटन उत्तरदायी हैं। उपन्यास में अलका सरावगीद्वारा उक्त विघटनको किशोर बाबूके अंतर्द्वंद्वद्वारा दर्शाया है।

राजू शर्मा का उपन्यास 'विसर्जन' ऐसे समय में आया है जबकि हिन्दी साहित्य में भूमंडलीकरण व उसकेप्रभावों को लेकर प्रचुर मात्रा में रचनात्मक व आलोचनात्मक लेखन हो रहा है।राजू शर्मा के इस उपन्यास की कथावस्तु बहुत व्यापक हैपर कथा छोटी।बाजार से शुरू हुआ यह उपन्यास अंतिम में बाजार के सच को उजागर करता हुआखत्म होता है अर्थात् बाजार राष्ट्र व समाज को बीमार बना रहा है। इसका वर्णन बहुतही बारीकीसे किया है। राजू शर्माने 'हलफनामे' उपन्यासमें किसान आत्महत्याको दर्शाया है। जो अनोखा और प्रामाणिक प्रयास है। लेखक ने उपन्यास में किसान आत्महत्या और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा नवसाम्राज्य फैलाने की रणनीति आदि विसंगतियों का भयावह तरीके से चित्रित किया है। यह उपन्यास भारत के उन नीति-निर्माताओं पर भी सवाल खडा करता है जो हर समय किसान हितैषी होने का डंका पीटते रहते हैं।

रणेन्द्र ने अपने उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में एक ऐसे समाज को केंद्र बिंदु माना है जो आज के दौर का सर्वाधिक शोषित समाज है- आदिवासी समाज। विस्थापन की त्रासदी भूमंडलीकरण का एक परिणाम है। लेखक ने 'असुर जनजाति' की संघर्ष गाथा के माध्यम से दुनिया के अनेक भागों में फैले हुए आदिवासियों के संघर्ष की पड़ताल की है।प्रभा खेतान का मानना है कि, "ब्रांड से निर्मित होता हुआ उपभोक्ता स्वयं में एक ब्रांड बन जाता है - एक भोगा जाता हुआ ब्रांड। इसी प्रवृत्ति को फैशन रूचि, जीवन-शैली कहा जाता है और उत्तर आधुनिक समाज में इसी के आधार पर सामाजिक भिन्नताएँ आधारित होती हैं, जो पहले वर्गीय समाज और राजनीतिक पक्षधरता से भिन्न हैं।

अजय नावरियाका 'उधर के लोग' उपन्यास में भारतीय संस्कृति की विशिष्टता और वयक्तिक सत्ता के साथ अंतर्राष्ट्रीय मद्दों को रेखांकित किया है। उपन्यास में बाजार की भयावहता, वेश्यावृत्ति, यौन-विकार, प्रेम, विवाह, तलाक आदि पर खुलकर बात की है। प्रदीप सौरभ का मुन्नी मोबाईल महानगरीय जीवन की भयानक त्रासदी, भूमंडलीय यथार्थ,सांप्रदायिक तनाव, युवा वैचारिक तनाव, नारी जीवन के विभिन्न रूपसमसामयिक सबंध, नारी सशक्तिकरण आदि का सामाजिक प्रस्तुतिकरण है।

प्रदीप सौरभके 'मुन्नी मोबाईल' उपन्यास में धर्म, राजनीती, बाजार और मीडिया आदि के द्वारा सामाजिक विकास की प्रक्रिया किस तरह प्रेरित व प्रभावित हो रही है इसका चित्रण किया है। समकालीन समाज में उत्तर आधुनिक युग की क्रूर सच्चाईयों को उद्धृत करता उपन्यास 'मुन्नी मोबाइल' एक दिलचस्प कथा साहित्य है। लेखक ने उपन्यास के कथानक में धर्म, राजनीति, बाजार, मीडिया, शिक्षा व बेरोजगारी से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों द्वारा बदलते सामाजिक परिवेश को दर्शाया है। प्रदीप सौरभ ने बाज़ारवादी संस्कृति के बढ़ते हुए प्रकोप को केन्द्र में रखते हुए'मुन्नी मोबाइल' की रचना की है। बाज़ारवाद के प्रसंग को उठाते हुए लेखक ने एक ऐसी औरत को चित्रित किया है जो पूरी तरह से इस प्रणाली से ग्रसित है। उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र 'मुन्नी मोबाइल' के माध्यम से एक महत्वकांक्षी स्त्री के चरित्र का उसकी सोच व क्रियाकलापों का वर्णन लेखक ने किया है।

**निष्कर्ष**

वर्तमान में मानवीय विरोधी शक्तियों ने पूरी तरह से आर्थिक क्षेत्र पर एकाधिपत्य कर रखा है। भूमंडलीकरण के पास अलगाववाद, सांप्रदायिकता, सामाजिकता, सामाजिक भेदभाव औरतुष्टीकरण के रूप में अमोघ अस्त्र हैं। वही सांस्कृतिक उपनिवेशीकरण के माध्यम से साम्राज्यवादी विस्तार नीति की भी नई परिभाषा

गढी जा रही है। ठीक एसे समय में नई सदी के उपन्यासों का महत्त्व अधिकाधिक प्रासंगिक हो जाता है। अराजकता, तानाशाही, अपसंस्कृतिकरण, सांप्रदायिकता, पूँजीवादी चरित्र, तथाकथित विकास मॉडल आदि शोषणकारी एवं असामाजिक प्रवृत्तियों का वर्णन करने के साथ-साथ एक जागरुक वर्ग का निर्माण करना 21 वी सदी के हिंदी उपन्यासों का लक्ष्य है।

**संदर्भ**

१. भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास - पुष्पपाल सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
२. प्रो. यशपाल उदधृत अक्षर पर्व, मार्च 2004
३. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू , राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
४. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, 2013,
५. ममता कालिया , दौड़, वाणी प्रकाशन, 2000
६. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, 2010
७. अलका सरावगी, कलि-कथा वाया बाइपास, राजकमल प्रकाशन, 2000
८. राजु शर्मा, विसर्जन, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2009
९. राजु शर्मा, हलफनामे, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2006
१०. अजय नावरिया, उधर के लोग, राजकमल प्रकाशन, 2013
११. प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाईल, वाणी प्रकाशन, 2016

# इतिहास और समय की दस्तक : कितने पाकिस्तान

**डॉ . आर. एन. तहसिलदार**
कर्मवीर हिरे महाविद्यालय गारगोटी

---

**प्रास्ताविक**

हिंदी साहित्य की उपन्यास विधा सबसे सशक्त विधा मानी जाती है। आधुनिक काल में विकसित यह विधा आज अपने चरमोत्कर्ष पर है। हिंदी का हर एक कलाकार अन्य विधाओं के साथ ही उपन्यास में अपना योगदान देना चाहता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में जीवन के हर एक पहलु को बडी सफलता से उपन्यास ने चित्रित किया है। उपन्यास एक ऐसी विधा है जो पूरे जीवन को चित्रित करने में सक्षम है। सन १९४७ को भारत आझाद हुआ। इस आझादी को लेकर कई लोगों ने कई सपने देखें थे पर कुछ ही दिनों में एक-एक सपना टूटता गया, पीछे पडता गया। इस मोहभंग के साथ ही राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक बदलाव और बढ़ती अपेक्षाओं को पूरा न करता शासन इस उलझन में सारा देश प्रभावित हो गया। इसी दौरान देश का विभाजन हो गया और उसके परिणाम आज भी भुगतने पड रहे हैं। इन सारी बातों को अपने साहित्य का आधार बनाकर कई सारे लेखकों ने उपन्यास के माध्यम से पाठकों के सामने रखा।

कमलेश्वर एक ऐसे मेधावी कथाकार है जो नयी कहानी, समांतर कहानी के पुरोधा रहें और अपने कथा साहित्य के जरिए सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक वास्तविकता, आर्थिक विपन्नता को दर्शाते रहे। उन्होंने साहित्य सिर्फ समाज का आईना ही नहीं उससे जादा वह पथदर्शक भी हो सकता है यह दिखाने का हर बार प्रयास किया। समाज के दुर्लक्षित अंगों को अपने कथ्य का विषय बनाकर अपने अंतिम समय में एक ऐसी कृति निर्माण की जो इस शतक की महत्त्वपूर्ण कृति बन गयी वह है 'कितने पाकिस्तान'। माना जाता है कि कलाकार अपने जीवन के अंतिम चरणपर आने के बाद या तो श्रेष्ठतम कलाकृति की रचना करता है अथवा किसी अधूरी रचना को छोडकर चला जाता है। ऐसा ही कुछ कमलेश्वर के बारे में कहा जा सकता है। **"क्योंकि सन १९९९ के अंत में प्रकाशित 'कितने पाकिस्तान' इस उपन्यास के सन २००३ तक दस संस्करण प्रकाशित हुए। मार्च २००३ में इसका उर्दू अनुवाद प्रकाशित हुआ। जनवरी, २००१ में इसका श्री. पद्माकर जोशी द्वारा मराठी अनुवाद प्रतिभा प्रकाशन, पुणे ने प्रकाशित किया।** (डॉ.सुरेशकुमार जैन- उत्तरशती का हिंदी साहित्य पृ.१२ प्रथम संस्करण, २००५) अतः इससे स्पष्ट हो जाता है कि लेखक अपने विषय को लेकर उसे पाठकों को सामने रखने में सफल हुए इसी में उनकी प्रतिभा और कलम की ताकद स्पष्ट हो जाती है। बीसवीं शती के अंतिम दशक के महान उपन्यास के रुप में इसे स्वीकारा जा रहा है। सूर्यनारायण रणसुभे के मतानुसार **"पाठकों द्वारा सराहा गया यह उपन्यास लोकप्रिय उपन्यास की कोटि में नहीं माना जाता क्योंकि वह पूर्णतः गंभीर और पाठकों को बेचैन करनेवाला उपन्यास है। यह उपन्यास मनोरंजनप्रधान नहीं है, इसमें कोई पारंपारिक कथावस्तु नहीं है, कथा वस्तु ही नहीं है, इसमें न कोई व्यक्ति नायक है और न खलनायक। इसमें न श्रुंगार है, न प्रेम, न वीर रस और न व्यंग।"** (वही, पृ.१२)

'कितने पाकिस्तान' यह शीर्षक ही प्रतीकात्मक है। इस उपन्यास का फलक (कॅनवास) बहुत बडा है। मनुष्य की उत्पत्ति से लेकर आज तक की मनुष्य की यात्रा को पकडने का प्रयत्न यहाँ हुआ है। अर्थात केंद्र में भारत है, यहाँ की संस्कृति है। आर्यों से लेकर कारगील युध्द तक के कालखंड को यहाँ स्वीकारा गया है। प्रत्येक कालखंड में मनुष्य और मनुष्य के बीच दीवारें खडे करनेवालों को यहाँ काल के कट घरे में खडा किया गया है। और एक उपद्वीप-एक साहित्यकार इन्हें सच्चाई बयान करने के लिए कह रहा है। विभिन्न काल के प्रतिष्ठित लोग यहाँ कटघरे में खडे हैं और इनसे पूछा जा रहा है कि बताओ उस समय क्या हुआ था। **"फिर उसने डिस्पैचेज पढ़े.... वही फिर हुआ था .... सन १९४८, १९६५ और १९७२ की तरह!** (कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान, पृ.१२, दसवां संस्करण, २००७) कारगील युध्द की घटना को सामने रखकर प्रधानमंत्री और रक्षामंत्री को खत लिखकर सवाल करते हुए वह कहता, **"प्रिय प्रधानमंत्री और रक्षामंत्री जी! आप दोनों के नाम हम यह खुला खत बहुत भारी दिल और अफसोस के साथ लिख रहे हैं! हमने पिछले**

**सप्ताह अपने पाठकों को कारगील की भयानक युध्दस्थिति की वह खबरें और जानकारी दी थी जिससे आप दोनों बेखबर हुए थे।''** (वही, पृ.१४)पिरामिड के इतिहास से भी प्राचीन प्रेम का इतिहास है। सम्राट गिलगमेश मृत्यू से मुक्ति पाने की औषधि ढूँढ़ने का प्रयास करता है। वह पाता है कि प्रेम ही वह नव संजीवनी है जो कभी खत्म नहीं होती इसका दाखिला लेखक ने देवदासी रुना और वन्य पुरूष एकिंदू के प्रेम का उदाहरण देते है। उनकी प्रेम कहानी दुनिया की प्रथम प्रेम कहानी है जिसके बाद मिस्र में पिरामिड बनें। यथः **''पिरामिडों के इतिहास में जादा बडा और पुराना है मनुष्य के प्रेम का इतिहास। देवदासी रुना और वन्य पुरुष एकिंदू के वे एकांत क्षण, जब वासना के बाद उन्होंने एक दूसरे की आँखों में अपने अस्तित्व की तलाश की थी और उसे प्राप्त किया था। .... प्रेम की यही शाश्वत कहानी तब से साँस ले रही है!''** (वही,पृ.३६)

इसी बीच बूटासिंह और रेतपरी कहानी के माध्यम से देश विभाजन, पाकिस्तान की निर्मिति, उसी समय हुई मनुष्य हानि, धर्मांधता, मनुष्य-मनुष्य के बीच आया अलगाव और हुआ रक्तपात चित्रित करते हुए लिखा है **''बूटासिंह जब जेनिब के लिए कपडे लेने निकला तब तक पाकिस्तान नाम की लकीर तो खिंच चुकी थी। मौसम विशेषज्ञों दी भविष्यवाणी सही साबित हुई। रक्त की वर्षा हो रही थी।''** (वही,पृ.४१) आज भी कश्मीरी लोग पहचान के लिए संघर्ष कर रहे हैं। भारतीय उन्हें कश्मीरी कहते हैं तो कश्मीर में हिंदू और मुस्लिम धर्म को लेकर हर बार झगडा ही होता है। धर्म के नाम पर काटने-मारने को तैयार कश्मीरीयों की तहकीकात बताते हुए लेखक ने लिखा है, **''अदालत ने पूछा - तुम कौन हो? उन्होंने उत्तर दिया - हम कश्मीर में हिंदू है पर हिंदुस्तान में कश्मीरी कहलाते है।''** (वही,पृ.६२) इसी पहचान को लेखक बाबर तक खिंचता लेकर चला गया। बाबर ने भारत पर आक्रमण करके मुगल तख्त की स्थापना के साथ ही इस देश में मुस्लिम धर्म की नींव डाली, प्रसार किया। उसी वजह से आज भी मुसलमान और हिंदू दोनों में अधिकार को लेकर झगडा हो रहा है। लेखक बाबर से सवाल करते है कि उसने भारत पर आक्रमण क्यों किया? **''अदालत में जब बाबर हाजिर हुआ तो बहुत थका हुआ और नाराज था। कब्र से निकल कर आने में उसे बहुत तकलीफ हुई थी। उसे अच्छा नहीं लगा था कि मर जाने के बाद भी उसके चैन में खलल डाला गया था। वह काबुल से चलकर आया था।**

**जैसे ही वह अदालत में हाजिर हुआ, अदालत ने मुर्दों से पूछा -**

***- इसे पहचानते हो?***
***- नहीं... नहीं हम नहीं पहचानते! सारे मुर्दे बोल पडे थे।***
***- ये बाबर है! अदालत ने बताया।***
***- एक भयानक सन्नाटा वहाँ भर गया।***
***अदालत ने अर्दली से कहा - इन्हें एक कुर्सी दो!***
***- बैठने के लिए मुझे अपना शाही तख्त चाहिए..... आखिर मैं शहंशाह हूँ .... हिंदुस्तान का बादशाह! बाबर गरजा।***
***- ताजो-तख्त खत्म हो गए हैं। अब राजा और बादशाह भी नहीं है।अब नेता लोग अपनी जनता के कंधो या गर्दनों पर बैठते हैं। तुम इनकी गर्दनों पर बैठना चाहोगे? अदालत ने सवाल किया।***
***- मैं तो आराम से लेटा हुआ था। अब बुलाया है तो कहीं भी बैठा दीजिए! बाबर बोला।***
***- ठीक है, जहाँ मर्जी हो बैठ जाओ और मेरे सवालों के उत्तर दो! अदालत ने कहा।***
***- जी!***
***- तुमने हिंदुस्तान पर हमला क्यों किया था?***
***- हमला! तो एक बादशाह और क्या करता? .......''*** *(वही,पृ.६८)*

यहाँ एक बात स्पष्ट होती है आज के नेता जनता की गर्दन मरोडना अच्छी तरह से जानते हैं। लोगों का शोषण करना जैसे उनका कर्तव्य बन गया है। औरंगजेब की धर्मांधता को स्पष्ट करते हुए कहा है - ''यह पहला शहंशाह था जिसने धार्मिक सेंसर लगाया!'' आज भी जिसका पालन किया जा रहा है। माना जाता है, आज का युग कलियुग है। कलि याने बुराई का प्रतीक। इसी युग की पहचान ही बुराई है इसी बात को पाठकों के सामने लाने का प्रयास करते हुए लेखक लिखता है -

*"जी हाँ हुजूर! मैं कलियुग हूँ!*

*अदीब एकदम चौंका। उसे देखकर बोला - तुम कलियुग हो! लेकिन तुम तो वक्त हो - वक्त! समय!*

*- मेरा नाम मनीषियों ने बदला है..... अपनी सुविधा के लिए आजकल मेरा नाम कलियुग है.... और मैं अब तक आपकी अदालत में हिंदुस्तान और दाराशिकोह की बदनसीबी से भरी कहानी सुनाने और बताने के लिए रुका हूँ क्योंकि इस कहानी से ज्यादा नृशंस और बर्बर कहानी और कहीं नहीं है। अगर इजाजत हो तो सदियों पहले दिलों -दिमाग में जो पाकिस्तान बना था, मैं उसकी कहानी बयान करुँ!"* (वही,पृ.२३०)

आज हम मानते है कि पाकिस्तान की निर्मिति सन १९४७ के बाद हुई पर असल में यह निर्मिति सदियों पहले की है जब हिंदू और मुसलमान के झगडे शुरु हुए तब से। पाकिस्तान की निर्मिती को लेकर हम माऊंट बेटन पर आरोप लगाते हैं। शायद उसमें सत्यता भी है भौगोलिक सीमा खिंचने का काम माऊंटबेटन ने ही किया। उस पर खुद भगतसिंह आरोप लगाते हैं -

*"नहीं-नहीं। यह सरासर गलत है... माऊंटबेटन चीखा।*

*-नहीं! यह गलत नहीं है, क्योंकि तुम और तुम्हारी साम्राज्यवादी सत्ता, हमसे, हमारी १८५७ की कौमी एकता का बदला लेना चाहती थी!.... आवाज तो जैसे ब्रह्मांड से आई थी। आवाज का मालिक तो अमूर्त था, पर आवाज गूँज रही थी। उसकी खनक को कबीर ने पहचाना। उसने बताया - यह आवाज शहीदे आजम भगतसिंह की है।"* (वही,पृ.२८६) माऊंटबेटन सिर्फ निमित्तमात्र था लेकिन यह लकीर सन १८५७ में खिंची गयी थी यह आरोप भगतसिंह लगाते हैं। इस सीमा को सन १७५७ जहाँगीर के समय तक पीछे ढकेलते हुए लेखक कहता है - **"यह खता जहाँगीर ने की थी। अर्दली पागलों की तरह चीख रहा था - जब हमने इन अंग्रेज व्यापारियों को सूरत के बंदरगाह पर लंगर डालने और गोदाम बनाने की इजाजत दी थी!"** (वही,पृ.२८७) अतः इससे स्पष्ट होता है कि व्यापार करने को आए अंग्रेजों ने व्यापार के साथ ही यहाँ की स्थिति का फायदा उठाकर राजनीतिक अधिपत्य स्थापन करके शासन करते हुए भारत का शोषण तो किया ही, साथ ही देशविभाजन और हर एक मनुष्य के मन में धर्मांधता का बीज बोकर गए। अगर उनको यहाँ व्यापार करने की इजाजत न दी होती तो ये सभी टाला जा सकता था ऐसा लेखक सूचित करना चाहता है।

दूसरे महायुध्द की विभिषिका को प्रस्तुत करते हुए लेखक ने हिरोशिमा पर किए अणु हमले का उदाहरण देते हुए उससे हुआ संहार उसके परिणाम आदि बातों के साथ ही वैज्ञानिकों के प्रतिभा का स्वागत भी करना क्यों जरुरी है यह बताया है-

*- " आपका परिचय? हिरोशिमा ने सख्ती से पूछा।*

*- मेरा नाम प्योत्र कपित्जा है.... मैं रुसी हूँ ... मैं अंग्रेज विज्ञानी आचार्य अर्नेस्ट रदरफोर्ड का शिष्य हूँ!*

*- तुम मानव विरोधी अणु-वैज्ञानिकों को हमारी मजलिस में आने की इजाजत नहीं है। हिरोशिमा ने क्रोध से कहा - बेहतर यही होगा कि आप यहाँ से तत्काल चले जाएँ।*

*उसे मोंतेजुमा ने शांत किया -*

*हिरोशिमा! मैं तुम्हारे जख्मों की पीडा पहचानता हूँ....*

*लेकिन हमें कपित्जा जैसे विज्ञानी का स्वागत करना चाहिए।* (वही,पृ.३४३) विज्ञान कितना भी भयानक क्यों न हो उसका प्रयोग कैसे किया जाता है उसपर उसका महत्त्व अवलंबित होता है। अणु की निर्मिति मानव की ताकद बढ़ाने में की थी लेकिन उसका गलत प्रयोग करने से क्या हो सकता है उसका उदाहरण हिरोशिमा है। अंत में लेखक कबीर के माध्यम से शांति का महत्त्व प्रस्तुत करते हुए बोधिवृक्ष लगानेवाले कबीर को हमारे सामने लाते हैं। कबीर जो अंधा है पर अदालत की हर बात को सुन रहा है उसने मिस्र से लेकर भारत, हिरोशिमा, दूसरा महायुध्द, भारत की आझादी, देश विभाजन आदि कई बातों को समझा है इसलिए वह इन सबसे दूर जाना चाहता है और बोधिवृक्ष लगाकर शांति प्रस्थापित करना चाहता है-

*- "कबीर तुम कहाँ जा रहे हो..... बांद्रा मस्जिद या माऊंट मेरी?*

*- वहाँ नहीं .... मैं इस बार लंबे सफर पर जा रहा हूँ..... पहले पोखरन जाऊँगा फिर चगाई!*

*- अदीब ने उसे आश्चर्य से देखा। पूछना चाहा क्यों?*

कबीर ने उसका प्रश्न ताड लिया और खुद ही उत्तर दे दिया – कुछ पागल लोग है पोखरन में शक्तिपीठ की स्थापना करना चाहते हैं। विस्फोट की जहरीली राख रज की तरह बाँटना चाहते है.... तुमने अखबारों में देखा नहीं .... यह सब उन्हीं धर्मांध पागलों के चेहरे हैं जिन्होंने कई साल पहले सोमनाथ से रथयात्रा निकाली थी.... और वहाँ से चलकर बाबरी मस्जिद गिराई थी.....

*– लेकिन तुम तो मेरा मतलब है....*

*अंधा हूँ, यही न ..... अंधा होने के कारण ही मैं सब कुछ साफ-साफ देख लेता हूँ....*

*–लेकिन तुम वहाँ जाकर करोगे क्या? तुम कर क्या सकते हो? मेरा मतलब है, वहाँ जाने का मकसद?*

*– वहाँ जाकर मैं वृक्ष लगाऊँगा।*

*– वृक्ष!*

*– हाँ बोधिवृक्ष .... मेरे इस झोले में उसी का पौधा है। बोधिवृक्ष की जड़ें नीलकंठ की तरह सारा विष पी लेती हैं.... पहला बोधिवृक्ष मैं पोखरन लगाऊँगा... फिर सरहद पार करके दूसरा वृक्ष मैं चगाई की पहाडियों में लगाऊँगा... तो मैं चलूँ.. अदीब ने उसे देखा।*

पहले कबीर की सफेद छडी ने कदम उठाया फिर उसके पैर चल पडे।" (पृ.३६३)

उपन्यास की शुरुआत लेखक ने कारगिल युध्द की घटना से की है तो अंत पोखरन, बाबरी मस्जिद के गिराने की घटना से। अतः यहाँ एक बात स्पष्ट हो जाती है कि लेखक धर्म का आधार बनाकर मनुष्य-मनुष्य में झगडे लगानेवालों को पाठकों की अदालत में पेश किया है।

**निष्कर्ष**

स्पष्ट है कि साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत यह उपन्यास पाठकों को गंभीर करता है कि क्या जीवन में युध्द ही उपाय है? धर्म का आधार लेकर मनुष्य-मनुष्य में संघर्ष करानेवाले क्या पाना चाहते है? क्योंकि यहाँ समस्या है बँटने की, टूटने की, एक दूसरे से अलग होने की, बिछुडने की है। मनुष्य को मनुष्य से तोडने का काम धर्म के नाम पर राजनीति करनेवाले लोग करते रहे हैं और आज भी कर रहें हैं यह दिखाया है। इस उपन्यास ने न केवल देश को लाँघा है अपितु भूगोल, इतिहास और काल को भी लाँघ दिया है। यहाँ एक संवेदनशील साहित्यकार ने अपनी प्रतिभा द्वारा इतिहास को खंगाल कर देखना चाहा है कि आखिर आम आदमी को बाँटनेवालों का उद्देश्य क्या था? यहाँ धर्म अथवा धर्म प्रमुख की अवहेलना नहीं है, उनके प्रांत पूर्ण सम्मान का भाव है, आदर है। धर्म के नाम पर आम आदमी को ठगनेवालों पर सवाल उठाया है। गुरु धर्म के नाम पर गुलाम बनानेवाले, वर्णाश्रम धर्म की स्थापना करनेवाले, द्वैष फैलानेवाले, दंगे करनेवालों का पर्दाफाश किया है। वह कोई भी हो उन्हें बक्शा नहीं गया है। इस धरती पर आज आम आदमी आराम से जीना चाहता है परंतु प्रत्येक काल में और प्रत्येक देश में एक ऐसा तबका रहा है, जो इस आम आदमी का उपयोग करते हुए सारे सुख सारी सत्ता केवल अपनी ओर बटोरना चाहता है, इस वर्ग का असली चेहरा कमलेश्वर जी ने बतलाया है।

कमलेश्वर के ३६३ पन्नोंवाले इस उपन्यास का लेखन सोद्देश्यपूर्ण है। केवल इस देश के संवेदनशील लोगों के सम्मुख ही नहीं अपितु विश्वभर के ऐसे लोगों के सम्मुख यह प्रश्न चुनौती के रुप में खडा है कि सामान्य मनुष्य की नियत क्या होगी? कुछ मुठ्ठीभर लोग धर्म तथा सत्ता के नामपर जो खेल कर रहें हैं उससे बहुसंख्य के जीवन पर असुरक्षितता के बादल मंडरा रहे हैं। लेखक ने कारगील की घटना को भी प्राचीन घटनाओं से संबंध्दित दिखाया है। मिस्र के पिरामिड, प्रेम और शांति का संदेश, वर्णाश्रम व्यवस्था, बोधिवृक्ष का महत्त्व, कबीर का धर्म, मुगल शासक-शासन, अँग्रेजी शासन व्यवस्था, देशपर हुए आक्रमण, सन १९४७ में हुआ देश विभाजन आदि कई बातों को हमारे सामने लाते हुए लेखक हमें सोचने को मजबूर कर रहा है। औपन्यासिक विशेषता से भरा हुआ यह उपन्यास बीसवीं शती के अंतिम दशक का एक महान उपन्यास कहा जा सकता है। जिसमें इतिहास को खंगाल कर समय को कटघरे में करके मानव मस्तिष्क पर दस्तक देते हुए वास्तव जीवन का दर्शन कराया है।

# Numbers And Patterns Of Women In Sub-Districts Of The Kolhapur: A Gender Imbalance Evidence From Indian Census 2011

**Arvind Jadhav[1],**
PhD Scholar,
International Institute for Population Sciences, Mumbai.
Email address: arvind.jadhav4821@gmail.com , 9699 020 648
**Shrikant Banda Desai[2]**
Assistant Professor,
Karmaveer Hire Arts, Science, Commerce and Education College, Gargoti, Kolhapur.
Email address: shrikant9209@gmail.com, 9764 385 025

## Abstract:

***Background:*** *A substantial number of studies have reported, on average,the number of women are not matching with number of men. Although, that has to be matched, however, mis-matching and imbalanced pattern across the sub-district shows the population numbers are manipulated with control of number of women. This study focuses a case of western India with number of women in social categories and sub-districts that is little explored in relatively fewer studies.* ***Aim:*** *The aim of this study is (i) to assess the number of women across the social categories, and (ii) to examine the share of number of women across the sub-districts of the Kolhapur.****Methods:*** *Using the 2011 data of Indian census abstract reveals the number of women are dissimilar. All the social categories of population comprising scheduled caste, and scheduled tribe are considered to assess the sex ratios. Furthermore, all the 12 sub-districts are examined for share of number of women in it. The standardization of number of population is done with relative frequency or percentage calculation to compare the population across the social groups and sub-districts. The sex ratios and number of women share is compared against the value of district average. This has been allowed to find patterns of numbers of women within the district.* ***Results:*** *The numbers of women in the population of Kolhapur are dissimilar across the social groups and sub-districts. The Schedule Castes and Scheduled Tribes are better in gender balance than other social categories. The remote sub-districts from district headquarter are also better in gender balance than the closer sub-districts.* ***Conclusion:*** *These results confirm the existence of gender imbalance, which is favouring to men. However, the gender imbalance is more at advantageous social groups rather than scheduled castes or scheduled tribes, and economically lower sub-districts.*

***Key words :*** *Sex ratio, gender, women, female, Kolhapur, census*

## Introduction

Gender imbalance has the context to study its prevalence and causes in areas of social, cultural, and historical domains (Batra&Reio, 2016). India is historically evidenced with constant shortage of number of women in its population. The both child sex ratio and overall sex ratio are low in India. The child sex ratio of India is steadily downgrading (976 in 1961) and reached toits lowest level over the years (918 in 2011)that reveals the uninterrupted trend of reducing number of women. Furthermore, the overall sex ratio settles little better in between 927 to 941 in last five decades (941 in 1961 to 940 in 2011)(Sumanjeet, 2016). India records low performance in gender-based inequality in the areas of reproductive health, empowerment, and economic activity (Lal, 2016). The higher gender inequality corresponds to the lower income and vice versa, hence gender balance plays crucial role in development as well (Arora, 2012).

In Indian context, the gender-based inequality is a distinct among schedule castes and tribes, which further denies women of these category toaccess to both educational and employment resources (Dunn, 1993). Furthermore, the gender imbalance is observed in upper levels of academic domain as

well. The academic field where, the participation at conferences among the women is lower than that of scheduled caste academics and for men and upper-caste academics (Sabharwal et al., 2019) showing the widespread prevalence of gender imbalance.

The gender imbalance in number of women shows restriction of resources and opportunities to her for current and future generations. The fewer number of women for every 1000 men in the population (defined in Indian sex ratio) indicate imbalance in gender, which needs attention to siege further downgrading and improve the number of reducing women per men counterpart.

To further inform gender discussions about the restoring number of women in each of sub-districts, we assessed number of women through estimation of sex ratios across the social groups, and their proportions across the sub-districts in Kolhapur.

## Methods

### Study population

Using the 2011 Indian Primary Census abstract, we purposively selected Kolhapur district with its all sub-districts for number of women in comparison to men and number of women among its sub-districts(Census of India: Office of RGI & CC, 2011). The data for Indian census was collected in 2011 with inclusion of all the households and living persons in the territory of Kolhapur district as like other parts of the country. In fact, none of the part or person living in the district were excluded in the census. In the analysis of this study, we considered all the household (8,40,240) and persons (38,76,001) living in the district. The share of these household and person is distributed among sub-districts of the Kolhapur. The consideration of list of 12 sub-districts is as per the handbook of Primary Census abstract of Kolhapur, 2011(Census of India: Office of RGI & CC, 2011).

### *Analysis plan*

The census has been collected data pertaining to demographic and social variables in addition to other variables, we had focused our analysis to demographic and social variables only that include: number of men and women, composition of population in different social groups, and composition of population in different sub-districts. Thus, with a comprehensive nature, reliable data, and a good access of the it, the census provides a better way to look population and gender dynamics up to village level in every part of country.

## Results

As the study is focused on assessing the gender imbalance in Kolhapur for its sub-districts with the analysis of Indian Census data collected in 2011. The results of this study primarily aims to answer the question of: (1) how sex ratios of different social categories score in each of the sub-district in Kolhapur?, and (2) in what social category, the percentage share of women scores above the average of district or exceeds the number of men in the corresponding social category?

### *Sex ratio across the social groups*

The sex ratio in social category of Schedule Caste (SCs) represents highest number of sub-districts (at five sub-districts) with exceeding number of women in corresponding sub-district, followed by overall and others category (at four sub-districts each) (Table 1.1). Furthermore, the sex ratios in Scheduled Tribe (STs) category alone shows that highest number of sex ratios in most sub-districts are exceeding the average sex ratio of district. Conversely, the sex ratios at social category of overall and others indicate more sub-districts with lower sex ratios than the districts average.

The Ajara, Bhudargad, Chandgad, Gadhinglaj, and Shahuwadi sub-districts point out that their most of sex ratios in social categories are either with average value of district or exceeding the number of men. While, Hatkangale, Karvir, and Panhala sub-districts are below to the average sex ratio of district in all social categories of sex ratio. The Bavda, sub-district is also performing the similar

phenomenon of lowest values of sex ratios in all social categories, except exceeding sex ratio at STs social category.

Table 1.1: Social category wise women's percentage share in each sub-districts of Kolhapur, 2011

| Sub-district | Average (Kolhapur) | Ajra | Bavda | Bhudargad | Chandgad | Gadhinglaj | Hatkanangle | Kagal | Karvir | Panhala | Radhanagari | Shahuwadi | Shirol |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| Overall sex ratio | 957 | 1095 | 937 | 983 | 1019 | 1039 | 932 | 948 | 937 | 915 | 935 | 1021 | 957 |
| SC sex ratio | 991 | 1076 | 977 | 1028 | 1014 | 1040 | 975 | 995 | 982 | 978 | 996 | 1021 | 990 |
| ST sex ratio | 952 | 888 | 1038 | 878 | 953 | 994 | 938 | 974 | 940 | 876 | 989 | 928 | 966 |
| Others sex ratio | 952 | 1097 | 930 | 979 | 1020 | 1039 | 925 | 941 | 929 | 906 | 928 | 1021 | 951 |

*Share of women across the sub-districts*

The women's percentage share in social category of SCs scores more number of women than men for highest number of sub-districts (five) in Kolhapur (Table 1.2). The more number of women in the sub-district at second rank are followed for four sub-districts in each of the social category of overall and others.

The women's percentage share in social category of SC scores more number of women than men or equal to average value of district for highest number of sub-districts in Kolhapur. At second rank, the women's percentage share in social category of overall and ST scores more number of women than men or equal to average value of district for highest number of sub-districts.

The sub-district Panhala is unique, never shows excess women's percentage share nor equal or greater to the corresponding score of social category in average of the district. The other sub-districts, including Panhala namely Hatkanangle, Kagal, Karvir, Radhanagari, and Shirol never showed women's percentage share greater than men in corresponding score of social category.

The sub-districts in terms of women's percentage share in literate social category, never crossed the men's percentage share.

Table 1.2: Social category wise women's percentage share in each sub-districts of Kolhapur, 2011

| Sub-districts | Average (Kolhapur) | Ajra | Bavda | Bhudargad | Chandgad | Gadhinglaj | Hatkanangle | Kagal | Karvir | Panhala | Radhanagari | Shahuwadi | Shirol |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| women's % share in Overall | 48.9 | 52.3 | 48.4 | 49.6 | 50.5 | 50.9 | 48.3 | 48.7 | 48.4 | 47.8 | 48.3 | 50.5 | 48.9 |
| women's % share in SC | 49.8 | 51.8 | 49.4 | 50.7 | 50.3 | 51 | 49.4 | 49.9 | 49.5 | 49.5 | 49.9 | 50.5 | 49.7 |
| women's % share in ST | 48.8 | 47 | 50.9 | 46.8 | 48.8 | 49.8 | 48.4 | 49.3 | 48.4 | 46.7 | 49.7 | 48.1 | 49.1 |
| women's % share in Others | 48.8 | 52.3 | 48.2 | 49.5 | 50.5 | 51 | 48.1 | 48.5 | 48.2 | 47.5 | 48.1 | 50.5 | 48.7 |
| women's % share in Literate | 44.8 | 46.5 | 40.7 | 43.5 | 44.1 | 45.9 | 45 | 43.6 | 45.8 | 42.9 | 41.4 | 44.5 | 45.3 |

## Discussion

Here, we identified sex ratio in social category of SC only represents the highest number of sub-districts with exceeding number of women than the men. This is also evident in the other studies who report the social category of SC along with ST also show distinct inequality of gender imbalance (Dunn, 1993). Here the SCs sex ratio represents better and a natural uninterrupted number of women, which is not such distinct in other social categories in the district. The current study again provides an evidence that the ST social category furthermore emphasises the more number of sub-districts are falling in favour of STs sex ratio, otherwise the phenomenon would have been reflected in almost all categories of in Other category i.e Non-SC and Non-ST. Thus, the study finds that the gender imbalance is not much distorted at social category of SC and ST, but rather a features such occurrence (of imbalance) is at Non-SC and Non-ST population.

The well evident finding of the women's percentage share in social category of SCs scores moreover, confirms the more number of women than men for highest number of sub-districts (five) in Kolhapur. This shows that SC and ST (this is also supported in the study) has more number of women for highest number of sub-districts. The Panhala is also an adjacent sub-district to districts headquarter shows fewer number of women than the men at districts average score.

The sub-districts of the Kolhapur, located around the district headquarter who are having better resources and opportunities of development, score major gap of reduced number of women than the men. The Hatkangale, Karvir, and Panhala sub-districts are thus a reflection of below to the average sex ratio of district in all social categories of sex ratio.

The similar results of recent study, furthermore, highlight that the index of gender parity in the South Asia (includes India) stands behind the sub-Saharan Africa, moreoveremphasises distinctness and denotes the lowered gender balance (World Economic Forum, 2019). As the gender imbalance is low at family, the child of the family and future of generation of community gets benefitted (STEMM Equality Congress, 2017).

As these estimates of sex ratio and shares of women population are calculated from data of Indian Census, 2011(Census of India: Office of RGI & CC, 2011), however, population features such as education or social issues like gender imbalance took their pace to change over time, thus the time of 10 years does not restrict the realization of gender imbalance in Kolhapur or in any other district of India. The consideration of these results present a true sense of observed facts, if other better data is not available. So, the interpretation of the results to other similar situation should be cautioned because of other intermediate variables like place of residence, developments activities, and vicinity of urban habitant has more influence on the phenomenon of the gender imbalance.

## Conclusion

Thus, the study concludes that the social groups of schedule castes and schedule tribes are not much distorted in number of men and women, but gender imbalanceis distinct in others (non-SC and non-ST) social groups. The place of residence, here sub-district, exerts its influence to shape gender balance. Hence, sub-districts near to district headquarter representing better scope of economic conditions, access to resources, and opportunities; which reduces number of women than those sub-districts who are located far from the district headquarter.

## References

1. Arora, R. U. (2012). Gender Inequality, Economic Development, and Globalization: A State Level Analysis of India. *The Journal of Developing Areas*, *46*(1), 147–164. https://doi.org/10.1353/jda.2012.0019
2. Batra, R., &Reio, T. G. (2016). Gender Inequality Issues in India. *Advances in Developing Human Resources*, *18*(1), 88–101. https://doi.org/10.1177/1523422316630651

3. Census of India: Office of RGI & CC. (2011). *Census of India Website : Office of the Registrar General & Census Commissioner, India*. Https://Censusindia.Gov.In/. https://censusindia.gov.in/
4. Dunn, D. (1993). Gender inequality in education and employment in the scheduled castes and tribes of India. *Population Research and Policy Review*, *12*(1), 53–70. https://doi.org/10.1007/bf01074509
5. Lal, N. (2016). *India Needs to "Save its Daughters" Through Education and Gender Equality*. Inter Press Service. http://www.ipsnews.net/2016/01/india-needs-to-save-its-daughters-through-education-and-gender-equality/
6. Sabharwal, N. S., Henderson, E. F., & Joseph, R. S. (2019). Hidden social exclusion in Indian academia: gender, caste and conference participation. *Gender and Education*, *32*(1), 27–42. https://doi.org/10.1080/09540253.2019.1685657
7. STEMM Equality Congress. (2017). *Gender Equality in STEM: Empowering women through leadership and engineering education strategies*. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=3cI3w3c4eQ8
8. Sumanjeet, S. (2016). The State of Gender Inequality in India. *Gender Studies*, *15*(1), 139–157. https://doi.org/10.1515/genst-2017-0009
9. World Economic Forum. (2019). *Global Gender Gap Report 2020* (ISBN-13: 978–2-940631-03-2). http://www3.weforum.org/docs/WEF_GGGR_2020.pdf

# The Internet Based Open Access e- Resources for e- learning

**Rajendra Sakharam Savekar**
Librarian,
Dr. Ghali College, Gadhinglaj.
Dist- Kolhapur -416502
rajendrasavekar76@yahoo.in

## Abstract:

*In this 21 st century, Libraries are undergoing total transformation due to the impact of the threefold revolution i.e. technology revolution, network revolution and information revolution which is rousing entire world in many ways.*

*Libraries are now playing as an active information center where all management techniques can profitably be applied. It is not only a store house but a powerhouse of knowledge. It preserves as well as generates and disseminates knowledge. The Information and Communication Technologies (ICT) have made a great impact on libraries. Library and information centers play an important role in enhancing the quality of academic and research environment and basic and core activity center, which helps the user to identify and access the knowledge resources in an academic institution. To meet the end users demands effectively, the academic libraries moving from print media to non-print media or electronic media with the advent of latest technologies.*

*The rapid changes in the ICT influencing the libraries of today should equip themselves and change in the tune with times and technology. This paper discusses the concept of e-resources, e-learning, e-book and useful open access e-resources available on Internet. These online resources useful for creating good e-learning environment. These e-resources are useful for self study in all subjects from K.G. level to P.G. level. Learners can do their own study with these good and quality study material available on various websites. List of some important e-resources is also supplied in this paper. According to changing scenario in these Covid-19 pandemic situation one should adopt change in Library and Information Services to meet their users with changing needs and growing expectations.*

***Key Words:*** *E-learning, E-resources, E-books, Resourceful library.*

## Introduction:

Development in computers and telecommunication technology as well as discovery of Internet changed the world. The changes created by information technology was a revolution for libraries, it changed the very paradigm within which they functioned.

In the changed context, Library and library services should change according to changing needs of learners from all disciplines like arts, commerce, science, humanities, engineering, medical, law etc. It is very important to provide important information resources to all type of learners in these various disciplines to provide them instant, authentic and easily accessible open access e-resources available on Internet .

Users can access these information resources from their offices or homes, or from their college library also, access of such information resources definitely increase knowledge and all round development of all type of learners. This type of e-learning is becoming more popular in these changing scenario in 21 st century.

## E-learning:

E-learning is becoming more common in academic institution as a delivery mechanism for information content. Successfully deploying e-learning technologies requires cooperation and exchange among professors, educational coordinators, librarians, and information technology professionals.

Increasingly librarians and information managers are directly involved in developing e-content and delivering services to support e-learning. Library and information centers must consider to support and effectively manage e-learning for all type of learners. E- learning helps students, it can engage the motivated students, it is more stimulating and students centered and increases self confidence of learners.E-Learning gives students more responsibility for their own learning.

**Definition**

**"Learning facilitated and supported through the use of information and communication technologies" (Beetham, Review, 2004 p1)**.

This definition gives emphasis on to communication technologies being used as a mediating device allowing students to access learning resources that inform them of new ideas, then reflect upon and integrate these into their existing knowledge. Current models of education, place constructive activity at the heart of any teaching and learning exchange. Learners do not just acquire information but more importantly he become self-reliant by using e-learning process.

**E-resources**

An "electronic resources" is defined as any work encoded and available for access through the use of a computer. It includes electronic data available by (1) Remote access and (2) Direct access (fixed media).

In other words: Remote access (electronic resources) refers to the use of electronic resources via computer networks. (AACR2, 2002 edition; glossary). Direct Access (electronic resources) refers to the use of electronic resources via carriers (e.g., discs/disks, cassettes, cartridges) designed to be inserted into a computerized device or its auxiliary equipment. The library acquires electronic resources which rank high on the following list of criteria.

Usefulness in serving the current or future informational needs of students and researchers.

The e-resources market is now undergoing a period of strengthening. Publishers are merging to produce larger dataset, and pricing models are generally becoming suppler. Equally, information purchasers are responding to these challenges in a variety of ways: acting in unity via consortia, putting more of their creative output into local and open access repositories. Libraries and publishers are also developing initiatives to ensure continued access to older runs of material e.g. via LOCKSS (Lots of Copies Keeps Stuff Safe), and Portico, which aim to make both archival and more current electronic information permanently available.

In this context, the term **"e-resources"** is taken to mean material in electronic form, created by commercial, learned and other organization and individuals. It may be freely available, or available with minimum charge. Examples include e-journals,
e-books, databases of images, maps, teaching material etc.

The library is committed to preserving its electronic resources just as it is to ensure permanent access to its collection in other formats. When the library collects both electronic and print versions of a resource, both versions are retained as permanent holding of the Library. For both direct and remote access resources, the Library will endeavor to archive these resources following standard practices, guidelines and legal requirements. Furthermore, the Library will negotiate permission to archive electronic resources either upon collecting or for future archiving should the content provider on longer be able to provide to the resource. For remote access resources, when permissions to archive them is unattainable, the Library will only provide link to the resources which are freely available for open access to all leraners.

Electronic resources includes audio, video or text files in the form of e-journals, e-books, e-newspapers, e-images, e-maps etc.

## E-book

An **electronic book** is a book publication in digital form, consisting of text, images, or both, readable on computers or other electronic devices. Although sometimes defined as "an electronic version of a printed book", many e-books exist without any printed equivalent. Commercially produced and sold e-books are usually intended to be read on dedicated e-book readers, however almost any sophisticated electronic device that features a controllable viewing screen, including computers, many mobile phones, and all smart phones_can also be used to read e-books.

An e-book can be offered indefinitely, without ever going "out of print". In the space that a comparably sized print book takes up, an e-reader can potentially contain thousands of e-books, limited only by its memory capacity. If space is at a premium, such as in a backpack or at home, it can be an advantage that an e-book collection takes up little room and weight. There are so many e book vendors are there to sale the online version of the books. They have worldwide network to give access to their contents.

Development in the information Communication Technology facilities available in the present made tremendous change in the library operations. It is boon for technocrats, usage of the electronic product enriches the knowledge of users. While good ICT infrastructure is a prerequisite for the effective use of e-resources, there has to be a well organized plan for the promotion of use. Various methods need to be explored in order to make the e-resources visible.

E-mails and RSS alerts bring the information for the personal attention of the user. Improvement in Infrastructure like high speed network, wi-fi campus, LAN portal is at various access points in the campus and also in departments can be made to improve the usage effectively.

## Resourceful Library:

**Isaac Asimov**: "It isn't just a library. It is a spaceship that will take you to the farthest reaches of the Universe, a time machine that will take you to the far past and the far future, a teacher that knows more than any human being, a friend that will amuse you and console you,and most of all, a gateway, to a better and happier and more useful life.

Library plays a very important role in promoting and progress of knowledge of learners of all disciplines. Open access learning e- resources are very much useful for all type of leaners to enrich their knowledge. List of various e-resources with their web addresses is given below in order to save the time of users in searching proper and authentic websites.

## List of Open Access Learning Resources

| | | |
|---|---|---|
| 1 | National Digital Library | https://ndl.iitkgp.ac.in |
| 2 | SWAYAM Online Courses | https://swayam.gov.in/explorer |
| 3 | National Knowledge Network | http://nkn.gov.in/en/ |
| 4 | NPTEL (National Program on Technology Enhanced learning) | https://nptel.ac.in |
| 5 | InfoPort | https://infoport.inflibnet.ac.in/ |
| 6 | Talks to Teacher | https://www.ted.com/playlists/182/talks_from_inspiring_teachers |
| 7 | A-VIEW | https://aview.in/ |
| 8 | Virtual Labs | https://www.vlab.co.in/ |
| 9 | FOSSEE | https://fossee.in/ |
| 10 | Spoken Tutorial | https://spoken-tutorial.org/ |
| 11 | e-Yantra | https://www.e-yantra.org/ |
| 12 | Oscar++ | https://www.it.iitb.ac.in/oscar/ |
| 13 | E-Kalpa | https://icar.org.in/content/e-kalpa |

| | | |
|---|---|---|
| 14 | NCERT Text Books (class I to XII) | https://ncert.nic.in/textbook/textbook/htm |
| 15 | Directory of Open Access Books | https://doabook.org/ |
| 16 | Directory of Open Access journals | https://doaj.org/ |
| 17 | Open Knowledge Repository – World Bank | https://openknowledge.worldbank.org/ |
| 18 | UG/PG MOOCs | https://ugcmoocs.inflibnet.ac.in/ugcmoocs/ |
| 19 | e-PG Pathshala | https://epgp.inflibnet.ac.in |
| 20 | e-Content Courseware in UG subjects | https://cec.nic.in/cec/ |
| 21 | SWAYAMPRABHA | https://www.swayamprabha.gov.in |
| 22 | e-Shodh Sindhu | https://ess.inflibnet.ac.in |
| 23 | Shodh Ganga Thesis Reservoir | https://shodhganga.inflibnet.ac.in/ |
| 24 | Vidhwan | https://vidwan.inflibnet.ac.in |
| 25 | SNLRT | https://nltr.org/ |
| 26 | Oxford Open | https://academic.oup.com/journals/pages/open access |
| 27 | Cambridge University Press | https://www.cambridge.org/core/what-we-publish/open-access |
| 28 | Science Direct Open Access Content | https://www.sciencedirect.com/browse/journals-and_books?accessType=openAccess |
| 29 | ILOSTAT | https://ilostat.ilo.org/ |
| 30 | Project Euclid | https://www.projecteuclid.org/librarians/lib oa |
| 31 | AidData | https://www.aiddata.org |
| 32 | Springer Open Journals | https://www.springeropen.com/journals-a-z |
| 33 | Taylor & Francis Open Access | https://www.tandfonline.com/openaccess |
| 34 | Open Access Thesis & Dissertations | https://oatd.org/ |
| 35 | Legal Information | https://www.commonlii.org/resources/221.html |
| 36 | Legal Information Institute of India (LIIofIndia) | http://liiofindia.org/ |
| 37 | The OAPEN Foundation | https://oapen.org/content/ |
| 38 | PubMed Central (PMC) | https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/ |
| 39 | Project Gutenberg | https://dev.gutenburg.org/ |
| 40 | High Wire | https://www.highwirepress.com/ |
| 41 | AGRIS | https://agris.fao.org.agris-search/inex.do |
| 42 | Southern Connecticut State University | https://libguides.southernet.edu/openaccess/ |
| 43 | https://swayam.gov.in/ | All Subjects |
| 44 | https://nptel.ac.in | Engineering & Science & Humanities |
| 45 | https://www.edx.org/ | All Subjects |
| 46 | https://www.saylor.org/ | Arts & Science |
| 47 | https://www.coursera.org/ | All Subjects |
| 48 | https://online-learning.harvard.edu/ | All Subjects |

| | | |
|---|---|---|
| 49 | https://academicearth.org/ | All Subjects |
| 50 | https://swayam.gov.in/ | All Subjects |
| 51 | https://nptel.ac.in | Engineering & Science & Humanities |
| 52 | https://www.doabooks.org/ | All Subjects |
| 53 | https://www.pdfdrive.com/ | All Subjects |
| 54 | https://www.free-ebooks.net/ | All Subjects |
| 55 | https://www.gutenberg.org/ | All Subjects |
| 56 | https://manybooks.net/ | All Subjects |
| 57 | http://www.openculture.com/free_ebooks | All Subjects |
| 58 | https://www.kobo.com/us/en/p/free-ebooks | All Subjects |
| 59 | https://www.adobe.com/solutions/ebook/digital-editions.html | All Subjects |
| 60 | https://bookboon.com/ | All Subjects |
| 61 | http://e-library.net/free-ebook.htm | All Subjects |
| 62 | https://www.planetebook.com/ | Literature |
| 63 | https://pdfbooks.co.za/ | Literature &History |
| 64 | http://www.ebooklobby.com/ | Arts & Science |
| 65 | https://www.baen.com/allbooks/ | All Subjects |
| 66 | https://www.bookyards.com/en/welcome | All Subjects |
| 67 | https://www.scribd.com/ | All Subjects |
| 68 | http://freecomputerbooks.com/ | Computer |
| 69 | https://www.getfreeebooks.com/ | All Subjects |
| 70 | https://openlibrary.org/ | All Subjects |
| 71 | https://archive.org/details/texts | All Subjects |
| 72 | http://www.freebookspot.es/ | All Subjects |
| 73 | https://issuu.com/ | All Subjects |
| 74 | https://librivox.org/ | Audio books |
| 75 | http://bookspics.com/ | Children books |
| 76 | https://knowfree.tradepub.com/ | All Subjects |
| 77 | https://www.onlineprogrammingbooks.com/ | computer |
| 78 | https://leanpub.com/ | All Subjects |
| 79 | http://digital.library.upenn.edu/books/ | All Subjects |
| 80 | https://www.myanonamouse.net/login.php?returnto=%2F | All Subjects |
| 81 | https://avxhm.se/ebooks | All Subjects |
| 82 | https://www.oreilly.com/?cmp=af-npa--home_cj_11246204_7018660 | All Subjects |
| 83 | https://www.bookrix.com/download-free-ebooks.html | All Subjects |
| 84 | https://www.obooko.com/ | All Subjects |

| | | |
|---|---|---|
| 85 | http://www.authorama.com/ | literature |
| 86 | http://en.childrenslibrary.org/ | children |
| 87 | https://knowfree.tradepub.com/ | All Subjects |
| 88 | https://open.ieee.org/ | Engineering |
| 89 | https://plos.org/research-communities/ | All subjects |
| 90 | https://www.onlineschools.org/open-access-journals/ | All subjects |
| 91 | https://www.omicsonline.org/open-access-journals-list.php | All subjects |
| 92 | https://www.longdom.org/open-access-journals-list.html | All subjects |
| 93 | https://www.tandfonline.com/openaccess | All subjects |
| 94 | https://www.cambridge.org/core/what-we-publish/open-access | All subjects |
| 95 | https://symbiosisonlinepublishing.com/journals.php | Medicine |
| 96 | https://www.karger.com/OpenAccess | All subjects |
| 97 | https://www.biomedcentral.com/journals | Science, Medicine |
| 98 | https://home.liebertpub.com/open-access/Open-Access Home/129 | All subjects |
| 99 | https://www.scienceopen.com/ | Science, Medicine |
| 100 | https://www.sciencedirect.com/ | All subjects |
| 101 | https://www.worldscientific.com/page/open | All subjects |
| 102 | https://about.jstor.org/oa-and-free/ | All subjects |
| 103 | https://www.jscimedcentral.com/journals.php | All subjects |
| 104 | https://publishingsupport.iopscience.iop.org/questions/gold open-access-journals/ | All subjects |
| 105 | https://medcraveonline.com/OAJS/ | Medicine |

**Conclusion**

The Internet based open access e- resources are useful for obtaining latest information and knowledge in various disciplines from K.G. level to P. G. level . Users can complete various online courses and also get undergraduate and post-graduate degree from recognized universities. They could improve their communication and other skills in language and literature study. They could crack various competitive examinations like NEET,JEE, UPSC, Banking,staff selection and various entrance examinations like TOFEL,MBA,MCA etc. These resources gives quick updates and developments that are happening all around the World.. The role of Librarian is widening day by day as wide number of open access web resources are available on Internet. Open access e- resources are also helpful to save the environment as paper media require trees for it's making. Librarian must try to provide authentic and accurate information of various e-resources links to to their users to provide right information, to the right users, at the right time. This will definitely improve knowledge of all users and all knowledge seekers all around the world.

## References

1. Miller,p.(2020) Coming together around Library ,D-Lib Magazine 12(4)
2.Nathu,sagar. "ICT in Library training,Education and Technolgy"
3. Nikam, K . Use of Information Technology in Information Centres: N.P.,2019.Web.21 Dec 2019.
4.http://asuleimany.blogspot.in/2020/03/advantages-disadvantages-of-e-resources.html
5.http://www.elecroniclibrarian.com
6.http://eprints.rclis.org/
7.https://www.soas.ac.uk/library/resources/
8.http://en. wikipedia.org/wiki

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com

# Indian Society & Third Gender

**Sandeep Bajirao Bodke**
M.A., M.Ed., Set, Ph.D.
Asst. Prof.
Gokhale Education Society's
College Of Ducation & Research,
Parel, Mumbai-12
sbbodke14@gmail.com

## Introduction:

India is a plural society. It is rightly characterized by its unity and diversity. A grand synthesis of cultures, religions and languages of the people belonging to different castes and communities has upheld its unity and cohesiveness. In spite of several foreign invasions, Mughal rule and the British rule, national unity and integrity have been maintained. It is this synthesis which has made India a unique mosaic of cultures. India fought against the British Raj as one unified entity. Foreign invasions, immigration from other parts of the world, and the existence of diverse languages, cultures and religions have made India's culture tolerant, on the one hand, and a unique continuing and living culture, with its specificity and historicity, on the other.

Key Words: Societys, Gender, Hijra, Transgender, LGBTQ+ etc.

## What is the Third Gender?

In April of 2014, the Supreme Court of India formally recognized the existence of a third gender. There is no formal definition of the third gender in India. People who identify as neither man nor woman are commonly referred to as Hijra or transgender. The transgender have been subject to discrimination, harassment, and persecution for their gender queer self-identification. Along with the queer community, transgender have been targeted by law enforcement and government officials under Section 377. This law was used to criminalize any queer sexual acts and has been used to justify discrimination and mistreatment of the LGBTQ+ community since its enactment in British colonial era India.

## What Is the History of the Third Gender In India?

Although the transgender have been subject to much hate and discrimination in recent times, this has not always been the case. Transgender were well-respected and revered in ancient India. In fact, transgender play important roles in many Hindu religious texts. One such text talks about the life of Lord Rama, one of the most virtuous Hindu heroes. At some point, Lord Rama was banished from his kingdom. After being banished, he told his followers that the men and women should wipe their tears and leave him. All of the men and women left. However, a group of people known as the transgender remained standing before him. They were neither men nor women and refused to leave until Lord Rama returned fourteen years later. This community was praised for showing such loyalty.
Transgender also held religious authority and important court positions and administrative roles in Mughal era India. Believed to have the ability to bless, many would seek out transgender for blessings during important religious ceremonies. In ancient India, the transgenders were a community that was respected for being extremely loyal and were well trusted enough to be given important religious and governmental roles. This begs the question. If transgenders played an important role in ancient Indian society, then why are transgenders ostracized and persecuted in modern India?

## Why Is the Third Gender Ostracized Today?

The answer is due in large part to the British colonization of India. When the British took over direct rule of India and absolved the British East India Company, government officials sought to

enforce their western ideas and beliefs on Indians. Lawmakers accomplished this goal by enacting moral laws that banned anything that western society viewed as unclean and dirty. This included the creation of Section 377 of the Indian Penal Code which made illegal any "unnatural offenses" that were deemed "against the order of nature." From when Section 377 was implemented in 1858 to when it was recently deemed unconstitutional on 6 September 2018, Section 377 was used as justification to mistreat and punish transgenders, queers, and the LGBTQ+ community.

The western concept of hating and marginalizing anybody who was not straight and cisgender took hold in Indian society. The transgender community was forced from a well-respected role as pillars of religious and governmental society to being social outcasts. This social exile is responsible for the socioeconomic and medical difficulties that transgenders face. Transgender s are prone to being economically challenged because of the stigmas that they face. They are denied educational opportunities, jobs, and discriminated against in every area of their lives.

## What are the Social, Economic, and Medical Problems Caused By Lasting Social Stigmas?

Despite gaining their independence from Britain in 1947, India has only recently begun to make progress on removing legislation that has been used to attack the transgender and LGBTQ+ population. The many decades of subjugation stretching back generations have left a mark. Many of the hateful western views towards LGBTQ+ people have become deeply ingrained in India's culture. Even with many public relations campaigns along with a growing group of supporters, the vast majority of Indians still are against transgenders. Many Indians don't respect transgenders worth. Transgenders are often called to come to auspicious events such as marriages and child-births for blessings. Many Indians view the transgenders as bringing good luck and warding off evil spirits. Yet because of widespread discrimination, the majority of transgenders are forced to beg for money since they are barred from most employment opportunities. Due to this, some of the common means of living for transgenders are begging, dancing, and prostitution.

Open employment discrimination has run rampant because of the lack of workplace protections and discrimination laws that are not comprehensive or well-enforced. Continued police harassment has also burdened the transgender community. Many police officers have jailed and imprisoned the transgender community over offenses such as begging, prostitution, and having queer sex. This community has had to resort to such practices because of the refusal to integrate transgenders into the economy. Yet despite not being able to find work, transgenders are attacked even more for trying desperately to survive in a society that has practiced institutionalized, pursued, and encouraged harmful policies towards this community since colonial times.

In addition to facing issues with getting employed, transgenders also have difficulties receiving access to basic medical care. There have been many unfortunate instances of medical malpractice against transgender people. The Civilian Welfare Foundation is an NGO that conducted studies on the medical problems faced by the transgender community. The study found that the majority of doctors are not educated on gender identity issues and that a transphobic stigma is ingrained amongst medical professionals which is responsible for the lack of proper medical care for transgenders.

The study highlighted the stories of Saikat and Anushri. Saikat was a transgender patient who died from lack of treatment following a train accident. The reason is that doctors could not decide whether to admit her to the male or the female ward. Anushri was gang-raped by several men and sought medical treatment. However, doctors refused to treat her because she was transgender and even denied her access to anti-HIV medication. These two stories highlight the dangerous impact that social stigmas have on our society. In addition to facing persecution and discrimination daily, transgender people are at risk for bodily harm and even death from bigoted doctors and nurses who are not trained to deal with gender identity issues.

Fear of the social stigmas for being associated with the transgender community is a major reason why many doctors try to avoid seeing transgender patients and why some outright refuse treatment altogether. Adding on to social fears, healthcare professionals have been hesitant to treat transgender people because of the risk of criminal prosecution under Section 377. Up until the recent 2018 Supreme Court decision, it was illegal to commit queer sexual acts as well as to aid and abet these acts. There have been cases of individuals being arrested simply for selling condoms to transgender and queer people. The lack of proper medical care and access to safe sex talks and practices has led to an HIV rate amongst transgenders that is 100 times the national average. Doctors fear transgender patients because they are misinformed and believe in multigenerational social stigmas. Transgender patients fear doctors because of the risks of being mistreated and harmed by substandard or complete refusal of medical care. This toxic mutual distrust can only continue to harm the transgender community.

### What Are the Recent Successes For the Hijra Community?

There are some recent successes that have helped the Hijra people. The Right for Transgender Persons Bill drafted in 2014 and passed in 2016 has been a major milestone in protecting the transgender community. The law declared many forms of discrimination against transgenders to be illegal and banned the forcing of transgenders to beg or to leave their homes. Other benefits include the creation of a committee that focuses on helping transgender pursue education by giving access to scholarships and textbooks among other needs. The bill has also allowed for transgenders to be recognized as socially and economically disadvantaged which qualifies transgenders for benefits from India's Affirmative Action program. However, there are downsides to the bill as well. transgender people have to go through a district screening process to receive their third gender certification and ID cards. This approach can lead to refusal of benefits to transgenders based upon the decision of a committee without oversight and comprised of people not trained in gender identity issues.

Also occurring in 2014 was the landmark Supreme Court decision that officially recognized the existence of the third gender. This has allowed for transgenders to opt for third gender classification on official legal documents such as driver's licenses and passports. The decision has also signified acceptance of the transgender community's existence by a government that has continuously sought to marginalize those who aren't cisgender. However, this decision has also come up short in addressing the many problems transgender face. Third gender IDs, while motivated by good intentions, do not address many basic rights. When getting married, transferring property, or adopting children there are only cisgender ordinances in place. This means that transgenders cannot get married, cannot leave behind property for their kids, and cannot adopt kids that desperately need good homes while being recognized and identifying legally as the third gender.

Another recent Supreme Court decision that has increased the rights of transgenders happened in 2017. The court declared that the Right to Privacy was a fundamental right to all individuals and enacted protections for the privacy of transgender sexual orientations. This will go a long way toward helping prevent socioeconomic and medical discrimination.

In addition to legal successes, there have also been gains in societal acceptance and integration of the transgenders community. In 2017 India accomplished many firsts. Joyita Mondal became India's first third gender judge, Tamil Nadu became India's first transgenders police officer, Natasha Biswas became India's first third gender beauty pageant winner, and Kochi Metro Rail Ltd. became India's first government-owned company to provide bulk employment to transgenders. There are plenty more transgender success stories out there which are a sign of widespread societal change. There is hope that the social stigmas that have plagued the transgenders community will soon be fully erased.

It is clear that transgenders face many challenges in modern times. Widespread social stigmas and discrimination against this community were promoted for generations. It is also clear that such large

problems take a long time to fix. However, if legal efforts and public relations campaigns are continued then India can one day become a society that fully embraces and supports all people regardless of sexual or gender orientation.

## Conclusion:

Though, transgenders are full of talent and abilities they are struggling to get basic rights as human being. They are denied opportunities to get developed. They have reached on many higher positions but still society's attitude towards transgenders is negative and pessimistic. Transgenders also must be treated as equal to us. Respectful treatment is required to them if we believe on democratic principle of equality.

## References:

1. Ahuja, Ram. 2002. Social Problems in India. Jaipur and New Delhi: Rawat Publications.
2. Ahuja, Ram (1999). Society in India: Concepts, Theories and Changing Needs
3. Ahuja, Ram (1992). Social Problems in India
4. Eitzen, D. Stanley, Maxine Baca-Zinn and Kelly Eitzen Smith. 2009. Social Problems. (11th Ed.) Boston: Allyn and Bacon.
5. Kendall, Diana. 1998. Social Problems in a Diverse Society. Boston: Allyn and Bacon.
6. Srinivas, M.N. 1995. Social Change in Modern India. New Delhi: Orient Longman Pvt.

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com

# Surnames Derived From The Names Of Arms – A Historical Study

**Dr. M.V. Jadhav**
Department of History,
Y.C.College, Halkarni, Tal-Chandgad,
Dist-Kolhapur- 416552
University of Kolhapur
E-mail:- mvjhistory12@gmail.com

## Introduction-

Arms and weapons occupy a significant role in the evolution of civilization in human History. As much the history of man is directly linked with the history of weapons and that of weaponry and implements to the history of warfare. In a society riddled with a strong nation of high and low, and inferior and superior status, war was a means and medium for those sections of the society designed as lower classes to vision the social scale. The notion of using weapons was greatest to every individual from the different classes; all were using the weapons without any difference. Political power then was directly depended on the military strength of the ruler who nuded to win the wars, conquer the territories and foil the rebellions. In order to achieve it the ruler needed help and support from every quarter it came from unmindful of caste, rural, regional identity of the source.

## Objectives-

1. Today as well there are various Surnames, We founds that are based on the names of arms.
2. These surnames are belongs from the arms which were used in Medieval Era.
3. To show, relation between society and arms.
4. Through the names of arms we came to know about the bravery.
5. To understand, significance of arms through the approach of society.
6. We came across various people's information through these kinds of surnames.

## Methodology-

Systematic methodology is the key to success of any research article to substantiate objectives. The researcher uses primary and secondary sources. The primary and secondary sources include the documents like Government Gazetteers, Book, Articles, Periodical, Journals, Magazines and Newspaper etc.

## Research Study-

The warfare left a strong impact on society also as it called for certain merits and traits those who possessed such qualities always raised to highway. It's very simplistic project medieval India as a history of struggle between Hindus and Muslims. This interpretation dose not holds against the background of weapons and warfare. Hindus fought on the sides of Hindus and Muslims fought on the sides of Muslims. It's interesting to note that the use of arms gave rise to various surnames.

The arms had their own significance in cultural traditions. In many of the festivals such as 'Dasara', 'Khande Navami' arms are made their objects of worship in almost all the Hindu families even today. Many of the traditional customs and practices such as giving a contract of any work or any assignment by giving a beetle nut is still in practice as a symbol of honors the beetle leaf is given even today.

In the medieval period the recruits in the army were from different age-groups-some very young, some middle-aged and some older-but in so far as valor, dependability etc. are concerned they were equally effectively in performance either. In Chh. Shivaji Maharaj's army, Chh. Shivaji Maharaj's period Mahars and Brahmins fought together under one flag. No differences were made among them on any count. Chh. Shivaji Maharaj was the maker of this revolution in Maharashtra Competence and

capabilities of men of all castes-Maratha, Brahmin, Prabu, Nhavi, Koli, Bhandari, Katkari, Hetkari flourised freely and fully in those days.

In the Medieval society Brahman, Kshartriya, vaisha, and shudhra all this types of peoples have used weapons. There was no difference between reach and poor for using weapons. Women also were using weapons in the warfare. Women in Maratha Sardar families occasionally partook in the events of spear-throw and sword-fighting. For these women, horse-riding and weapon-using were essential. In Maratha period the events that were encouraged and concentrated were Lathi, Bothati, Farigadga, Wrestling, Lazim etc. Wrestling arenas and independent Gymnasia came into being in the Chh.Shivaji Maharaj's period. For healthy physique, and best muscle-power, the exercises like Dand, Jor-Baithaka (dips and squats), Surya-Namaskar, Malla-khamb were practiced by boys and youth.

Weapons were the best friends of the brave, the symbol of authority and to the command of men. Man, with the help of weapons alone could conquer the most ferocious species on this planet. The warfare used various weapons such as Sword, Daggers, Spear, Arrow, Mace, Bow, Quiver, Maru, Armour, Artillery, Gun, 'Patta' 'Tiger-claws', 'Shield', Vita, Axe, Dragger, Kuckry, battle-stick, Helmet, Dastan, Match-lock, Fant-lock etc. Etc.

As such, the weapons had social, significance for all sections of the society, including the women known to have acquired skill in the use of weapons. Similarly, many surnames were derived from the names of various weapons, Ex. - Bhalerao, Kattare, Tofkhane, Rankhambe, Ghorpade, Chabukswar, Ghodeswar, Barchibahaddar, Bane, Banedar. Bandukwale, Tope, Topekar, Talwar, Talware, Talwarwale, Talwari, Tofe, Bhale, Bhalekar, Bhaleswar, Banduke, Banduk, Katyari, Katyare, Kadtuse, Rangade, Dandekar, Dastane, Musale, Lokhande, Waghmare, Waghnake, Waghmode, Waghe, Wagha, Sang, Sange, Sangikar, Dorugade, Dhanwade, Daruwale, Bankar, Khandekar, Khande, Khambe, Ghorpade, Ganpatil, Surunge, Patte, Pattekari, Pattewale, Gunpatte, Shingade, Tophakhane, Dhale, Gole, Zende.Vitakari, Kurhade, Jamdade, Chilkhate, Bandukwale, Ranshinge, Jiretopem, Tope, Topewale, Topaeale, Mandavakar, Mandawekar, Khanjire, Khande, Chikhate, Khand, Anjire, Itakarnkar, Kate, Ganim, Katyar, Janjire, Jasud, Gupte, Dabir, Dastane, Bahadur, Sarkhela,Tophe, Tophakhane, Shikarkhane, Shiledar, Beldara, Ghanakari, Jingar, Khasdar, Bandar, Bandukawale, Dhalait, Bhalait, Dharkari, Pattekari, Vite, Vitekari, Khabayte, Pistule etc.

**Epilogue –**

On making, using and keeping Arms itself put the surnames. In medieval Indian people of all cast were expert in any one arm and made command of him. We can find and the influence of arms on the surnames in each and every cast and religion. It reveals the social and religious equality among the society. It is symbol of similarity.

**Reference-**

1. Kunte B.G, Gulshan-I-Ibrahimi, Mumbai, 1934, P-636.
2. Joshi Lakshaman Shastri, Marathi Vishwakosh, Vol. VII, Mumbai, 1990.
3. Balshstri Hardas, Punyashlok Chh.Shivaji, 1962, P-211
4. Khare,V.V, Harivansh Bakhar, Miraj,1909,P-34.
5. Samel, Somnath, Yuddhan Aani Yudhoomi, Mumbai, 1972, P- 43
6. Sahasrabuddhe P. G, Mahashtra Sanskriti, Pune, 2003, P-43
7. Sardesai G. S, Marathi Riyasat, Mumbai, 1935.
8. Bhave V.K, Shivkalin Maharashtra, Pune, 1988.
9. Pagadi Setu Madhavarao, Shivacharitra, Mumbai, 1922.
10. Interviews-i. Shri Jadhav Girish Laxman, Mumbai.
11. Chopdar V. S., *Olakh Aitihasik Mardani Khelachi*, Kolhapur, 2003, P. 12.
12. Modak B. P., *Dakshinetil Musalmani Rajyacha Itihas*, Pune, 1891, P. 15.
13. PagdiSetumadhavrao, *Shivcharitra*, Mumbai, 1989, P. 131.

# Improvising Skill Development Through Higher Education in India

**Dr. Sagar R. Powar**
Head,
Department of Commerce,
Karmaveer Hire Mahavidyalaya, Shri Mouni Vidyapeeth,
Gargoti, Dist- Kolhapur – 416209. Maharashtra.
E-mail: drsrpowar@gmail.com.

## Abstract

*The strength and the level of development of any nation depend upon the strength and development of her human resources. Efficient human resources are made via the education systems especially, higher education systems available in the nation. Skills development related curricular is core to development of any nation. India has gradually evolved as a fast developing modern economy due to the abundance of qualified, capable, motivated and flexible human capital. However, there is a need to further develop and empower the human capital to ensure that country should compete in global competiveness. In the globalized economy, competition has become intensified among firms and industries in developing and developed countries alike, requiring their workers to have higher levels of skills to enable them to engage in innovation, improve the quality of products/services, and increase efficiency in their production processes or even to the point of improving the whole value chain process. The term skills development is used to describe a wider array of institutions and activities influencing employment and earnings. Skills development is a much broader concept, more diverse, hence, more difficult to monitor. The present study attempts to analyze the challenges with respect to the skill development in India. In the context of changing international business and growing trade and commerce, the curriculum of higher education should be reengineered and restructured with life skills to meet the challenges of the industry. Knowledge, skill and practical these three components should be imparted in curriculum.*

***Keywords:*** *Skill Development, Higher Education, India.*

## Introduction:

*"Education, vocational training and lifelong learning are central pillars of employability, employment of workers and sustainable enterprise development"* - International Labour Organization

The strength and the level of development of any nation depend upon the strength and development of human resources. Creative human resources are made via the education systems especially, higher education systems available in the country. Skills development related curricular is core to development of every nation. Higher education is a medium through which peoples acquire required skills to function. Higher education is precarious to India's aspirations of evolving as a major player in the global knowledge economy. Higher education should be both affordable and accessible to all. Emphasizes need to be given for greater adaptability in the higher education system so that it continues to provide the needed skills and trained workforce. The advent of ICT and general advancement in technology has made liberal education which was paramount in the pre-colonial era to become almost irrelevant in the modern day of technological advancement. Higher education institutions of learning are centers for imparting knowledge and skills into the learners. Whatever skills acquired must be translated into practicality for it to benefit the individual and the society at large (Adebisi, 2014). Many of the graduates from the institutions of higher learning are not with employable skills. Hence, the high rate of unemployment in the country becomes the order of the day. Thus higher education has a crucial opportunity to affect the future of our society through substantially improving the skill development of our citizens.

India has gradually evolved as a fast developing modern economy due to the abundance of qualified, capable, motivated and flexible human capital. However, there is a need to further develop and empower the human capital to ensure that country should compete in global competiveness (Pandey 2016). In the globalized economy, competition has become intensified among firms and

industries in developing and developed countries alike, requiring their workers to have higher levels of skills to enable them to engage in innovation, improve the quality of products/services, and increase efficiency in their production processes or even to the point of improving the whole value chain process. Rapid technological change demands a greater intensity of knowledge and skills in producing, applying and diffusing technologies. In turn, all these have changed the nature, contents, and types of skills that industry demands. As a result, most countries recently moved to reform their education systems, to upgrade the skills of their workforces (Okada 2012). The global competitiveness of Indian industry and also its employment generation potential is clearly dependent on availability of required skills and trained human resource. The term skills development is used to describe a wider array of institutions and activities influencing employment and earnings. Skills development is a much broader concept, more diverse, hence, more difficult to monitor. Despite the utmost important and attention given to education and training, there is still a shortage of skilled manpower in India to address the mounting needs and demands of the economy. In the current scenario, the government is dedicatedly striving to initiate and achieve formal/informal skill development of the working population via education/vocational education/skill training and other upcoming learning methods.

**Skill Development: Concept**

Majority of countries in the world have achieved the goal of universal primary education and others are moving closer to this goal. Young people from these countries who expect to pursue further education and training to improve their chances for employment and higher earnings get benefited from these goals.

**Skill:**

A skill is the learned ability to carry out a task with pre-determined results often within a given amount of time, energy, or both or the abilities that one possesses. Skills can often be divided into two categories like domain-general and domain-specific skills, e. g., in the domain of work, some general skills would include time management, teamwork and leadership, self motivation and others, whereas domain-specific skills would be useful only for a certain job. Skill usually requires certain environmental stimuli and situations to assess the level of skill being shown and used. People need a broad range of skills in order to contribute to a modern economy. Skill development has always been an important agenda for all the governments in India. Different types of skills are needed to be developed in an individual in order to meet lifestyle and industrial needs. A few can be named as Labor Skill, Life Skill, People Skill, Social skill, soft skill, hard skill, etc. Realization of type of skill required for a specific job or task is an essential need of the hour (Pandey 2016).

**Skill Development:**

According to the International Labour Organization (ILO), "Skill development is of key importance in stimulating a sustainable development process and can make a contribution in facilitating the transition from an informal to formal economy. It is also essential to address the opportunities and challenges to meet new demands of changing economies and new technologies in the context of globalization." The objective of Skill Development is to create a workforce empowered with the necessary and continuously upgraded skills, knowledge and internationally recognized qualifications to gain access to decent employment and ensure India's competitiveness in the world market. It aims at increasing the productivity and employability of workforce (wage and self-employed) both in the organized and the unorganized sectors. It seeks increased participation of youth, women, disabled and other disadvantaged sections and to synergize efforts of various sectors and reform the present system with the enhanced capability to adapt to changing technologies and labour market demands. Skills development can help to build a "virtuous circle" in which the quality and relevance of education and training for all genders fuels the innovation, investment, technological

change, enterprise development, economic diversification and competitiveness that economies need to accelerate the creation of more jobs (Pandey 2016).

**Methodology:**

The present study attempts to focus on skills development through higher education with special reference to India. The data have been collected for the present study through secondary sources. The secondary data have been collected from the published and unpublished sources. The data have been collected through the sources such as, websites, annual reports and statements, books, Journals, Periodicals and reports.

**Objectives:** The objectives of the study are as follows:

1. To review the system of skill development through higher education in India.
2. To know the challenges with respect to the skill development in India.

**Review of Literature:**

The different aspects of skill development and higher education have been covered by several scholars. It is widely discussed in various research publications some of them have been reviewed in this section.

Kawalekar (2017) stresses on the significance of life skills and life skill based education in improving the quality of life, and understanding the value of life skills in higher education. She describes the core life skills and importance of life skills education. Washer (2007) proposes a practical framework for key skills that can be used or adapted for use in any discipline at university level. Although the skills agenda has been widely criticized on several fronts, he argues that key skills need not threaten the notion of a liberal education. Rather, it argues that revisiting the issue of key skills in university curricula can enhance content learning by promoting experiential and active learning innovations. Finally, it examines some of the issues relating to implementation of such a framework. Gogoi (2016), conclude as there is a need of ICT policy to be evolved strategically for institutional practice including well equipped ICT infrastructure, education-industry collaboration, competence building of teachers and pedagogy-ICT integration. Allan & Clarke (2007) findings suggest that responses ranging from a lack of engagement in the module to evidence of increased confidence, criticality, self-reflection and change as a learner. The conclusion posits alternative ways of promoting the learning of study skills, which, whilst potentially including all learners, bring significant ramifications for the professional development of university lecturers. Adebisi (2014) gives an overview of the National Policy on Education (NPE) on higher education in Nigeria. It reviews those aims and objectives of higher education that have to do with skills acquisition and development. He concludes that if the higher education institutions in the country operate within the content of the provision of the NPE on higher education, there would be unprecedented improvements in the skill acquisition among the Nigerian youths. Recommendations on ensuring productive implementation of the prescriptions in the NPE as regards higher education in Nigeria are consequently made. Okada (2012) reviews the current state of education, skills development, and employment for Indian youth, and considers the challenges facing India's skills development system. The paper discusses recent initiatives to facilitate young people's transition to the world of work. He concludes as to speed its economic growth and take advantage of its "demographic dividend," the country has recently embarked on drastic policy reforms to accelerate skills development. Sharma & Nagendra (2016) finds that the "demographic dividend" explains for India being the youngest workforce country in the world. The country will have the lowest median age much below that of China and Organization for Economic Co-operation and development (OECD) Countries. So India can be the largest provider of workforce to the world. But still, India has difficulty to fill up jobs due to a shortage of applicants with the right

skills and knowledge. It also brings out the difficulty the country faces with matching the jobs to the skills available. India is still behind countries like China and Singapore in imparting skills. Pandey (2016) focused on education, research and innovations contribution in to the field of youth and adult education on skills development in India. The objective is to look in to the current policies and identifying of gaps between govt. and private programs. She concludes as there is a urgent need for a paradigm shift in the skill development sector, in favour of innovation, improvements and high quality training. Saikia & Borah (2015) concludes as skills are not developed, nut obtained through a constant process of sincerity, devotion, hard work and constrained study towards the activity on which anyone is engaged. The stress is given on how to develop these characteristics in the student while pursuing a degree in higher education.

## Skill Development in India: Challenges

1. **Skilling Huge number of Youth:** Along with, a huge challenge of evolving a skill development system which can equip the workforce adequately to meet the industries requirements, India also faces the big challenge of skilling millions of youth entering workforce each month. The workforce needs to be trained from the high end specialized skills jobs to the low-level skills of the jobs. Also, these skills have to be adequately linked to the available job opportunities. Several factors have inhibited the skill development eco-system in India to scale up to the desired levels. The skill development system in India is plagued with various issues related to awareness, perception, cost, quality and scale.
2. **Limited Capacity & Insufficient scale:** The current physical and human infrastructure is inadequate in institutions considering the projected demand for skilled labour. There is a need to create additional capacity in existing institutes and to create sufficient infrastructure even in small towns and villages. In terms of faculty the training infrastructure is also insufficient.
3. **Lack of Awareness:** A skill development course in India is way below the requirements due to a lack of awareness on the type as well as information. In India, there is limited acceptance of skill development courses as a viable alternative to formal education. Skilling is often viewed as the last resort meant for those who have not been able to progress in the formal academic system. Moreover, skill development is often associated with blue collar jobs, which is largely perceived to be of low dignity and provides low wages/salaries. The perceived 'stigma' associated with skill development has resulted in low enrolments in vocational education courses.
4. **High Cost :** In India skill development initiatives continue to be largely dependent upon the government aids. Skill development is often looked at as a non-scalable model and remains underinvested due to high capital requirements and low return on investments. Also a fee-based model also faces challenges as prospective students are often unwilling or unable to pay high fees for training. In India the willingness of financial institutions to lend for skill development courses is low as educational loans are perceived as high risk products due to uncertainty with respect to future employment.
5. **Mismatch of Skills:**There is a huge mismatch between the requirements of industry and the skills imparted in educational institutes. To solve this issue, considerable improvement is needed in the quality. The issue relates to the quality of infrastructure, trainers, curricula and pedagogy. In terms of infrastructure, the institutes often lack appropriate machinery to give students hands-on training. Even the course curricula often are outdated, redundant and non-standardized. Additionally, the lack of industry-faculty interaction on course curricula leads to irrelevant training modules. The availability of good quality trainers is also important.
6. **Mobilization:** In India, educational qualification is mostly preferred instead of vocational training. It is due to educational qualification is associated with better employment opportunities, in terms of salary and quality of work. Also, in India there is limited mobility between formal education and vocational training due to lack of equivalent recognition for the vocational training. Most important is a student enrolled in vocational training often cannot migrate to institutes of higher education due to eligibility restrictions.

7. **Ignorance of Non Technical Skills:** In India, the vocational training Schools are only focusing on developing the technical skills and ignore the development in behavioral skills like communication, honesty, integrity, adaptability, interpersonal skills, domain expertise etc. These behavioral skills are not covered as an important aspect of skill development, which become major challenge.

## Conclusion:

Skill development is integral part of educational system. Higher education has the potential to deliver skills and research for productivity and innovation. It is important to remember that Education with skills is not another subject but it humanizes education. Skill development is the most important aspect for the development of the country. It requires coordinated effort from all the agencies, stakeholders and youth to make it a successful program. The policies, if are able to reach a larger audience will make a difference in the employment scenario of the country. India has a 'demographic dividend' and it has to work toward making it useful for the country. It will not only add value to the economy of the country but will be supporting the 'Make in India' campaign by providing the skilled workforce in the country. Skill development would be a way of empowering youth to build their lives and their dreams. It would be a means of handholding them through the critical stages in their life and helping them tap their potential to the fullest. Thus, it is hoped that the current education system with its oppressive rigidity would open up and make life skills education a part of its mainstream curriculum. This would enable the nation to build individuals who believe in themselves, who are efficient leaders and administrators, who are able to understand their potentials and achieve them. In the context of changing international business and growing trade and commerce, the curriculum of higher education should be reengineered and restructured with life skills to meet the challenges of the industry.

## References:

1. Adebisi T. A. (2014), 'Higher education and skills development: An overview of Nigerian National Policy on Education (NPE) - International Journal of Development and Sustainability, 3 (12) pp. 2218-2227.
2. Allan & Clarke (2007), 'Nurturing Supportive Learning Environments in Higher Education Through the Teaching of Study Skills: To Embed or Not to Embed? - International Journal of Teaching and Learning in Higher Education, 19 (1), pp. 64-76.
3. Fernández-Santander & et al (2012). Development and assessment of key skills in undergraduate students: an action-research experience. Higher Learning Research Communications, 2(1), pp. 32-49.
4. Gogoi L. (2016), 'Education with ICT for Developing Employability in Higher Education Institutions' - International Journal of Educational Technology, 6(2) pp.45-53
5. Kawalekar J. S. (2017), 'The value of Life Skills in Higher Education' – IOSR Journal of Research & Method in Education, 7(3) pp. 43-46.
6. Okada Aya (2012), 'Skills Development for Youth in India: Challenges and Opportunities' - Journal of International Cooperation in Education, 15 (2) pp.169-193.
7. Pandey Seema (2016), 'Improvising Skill Development & Employability Potential through Higher Education, Research & innovations in India' – IJIRSET 5(1) pp. 680-688.
8. PSPM, YES Bank (2014), 'Skill Development and Higher Education in India'- YES BANK Ltd. & ASSOCHAM.
9. Saikia & Borah (2015), 'Skill Development through Higher Education' – International Journal of Science & Research, 6(7)
10. Sharma & Nagendra (2016), 'Skill Development in India: Challenges & Opportunities' – Indian Journal of Science and Technology, 9(48) pp.1-8.
11. Washer Peter (2007), 'Revisiting Key Skills: A Practical Framework for Higher Education'- Quality in Higher Education, 13 (1) pp.57-67.
12. http://www.nationalskillsnetwork.in/heraud-india-australia-training
13. http://www.undp.org – Innovative Approaches of Creating Livelihoods
14. www.skilldevelopment.gov.in

# Role of Educational Technology in Improving Quality of Teacher Education

**Mr. Rahul Anandrao Chitrakar**
Karmaveer Hire Arts, Science, Commerce
and Education College, Gargoti

Quality' is becoming the keyword in current educational system all over the world in the competition of market oriented peoples. If we have to survive in this Competitive Global village, we required some skills, competencies, values and so many things for improvement of quality. i. e. excellence, efficiency &effectiveness we require education. The process of education has mainly five aspects.

- Syllabus
- Research
- Faculty
- Teaching
- Evaluation

These aspects are very important to improve the quality. To facilitate the Aspectual education we require good teachers and to provide good teacher obviously good teacher education. In this process of teacher education the main areas concern area

- Training and teaching teacher.
- Institutional materials. T
- Building and facilities.
- Curricula.

As concerning above areas of teaching-learning strategies the educational technology played a oracle role. In brief educational technology is developing a source of education which uses a host of methods, techniques & resources that assist the teacher and support the students in their effective learning. One of the standard definitions of educational technology is presented below.

*As defined by commission on Instructional Technology, USA.*

***"Educational Technology is systematic way of designing, implementing and evaluating the total process of learning and teaching in terms of specific objectives, based on research in human learning and communication and employing a combination of human & non-human resources to bring about more effective instruction".***

There are major 4 types of activities in educational technology.

1. **Curriculum development**
   Defining overall and specific objectives constructing criteria, & evaluation tools to assess results
2. **Systematic analysis-**
   Analysis of learning situation, selection of techniques & media, and preparing instructional material to help learners agreed objectives.
3. **Arranging feedback- information**
   To improve the teaching-learning process arrangement of feedback information.
4. **Planning**
   Classroom environment organizational setup etc. to promote learning.

As per the major activities in educational technology the forms are mainly as follows.

- Teaching Technology.
- Instructional Technology.
- Behavioral Technology.
- Instruction Design System

There are three kinds of educational technologies.

1. Hardware approach (Technology on Educational)
2. Software approach (Technology of Educational)
3. System Approach
   - Educational. Objectives Of a course of Instruction
   - Determination of teaching learning method & techniques
   - Evaluation of courses material in terms of course obj.

These all types of Educational Technologies will definitely help us in improving the quality of teacher education as the technology of education concerns about programmed learning, flankers International analysis analysis category system,micro-teaching, models of Teaching, Action Research, Communicative process teaching & learning process. And technology in Education concerned with ICT approach, Media Intervention in pedagogy.

In this paper we thought about Role of Educational technology in improving the Quality of teacher Education. So, we must have thought about 21 Century Educational system & obviously about teacher education which is the roof of educational technology. If we want to strengthen it or to improve it we should use the methods & techniques which are helpful to improve it. Educational Technology is the key ward to improve it. About teacher education suggest the mainly fields as below.

- ✓ Curriculum planning & design.
- ✓ Curriculum transfer and evaluation.
- ✓ Research development & extension work.
- ✓ Organization and management.
- ✓ Delightful activities for students.

Also, suggestion to improve the teacher education can be stated as below.

1. Upgrade own knowledge & techniques through human life.
2. Teaching learning has to inculcate a view of teaching that transcendent the Utilitarian & encourages question& consideration of several alternative hypothesis.
3. One of the main functions of teacher education both pre-service & in-service is to equip teacher with ethical intellectual and educational where with also to develop the same range of qualities in their profiles.
4. Teacher education should include a stronger component of training in research.
5. Attention paid to the training of teachers for science & technology and to making with new technologies.

So, there are some areas in which there are recommendations by Delor's Commission.

1 Syllabus framework.
2. Training of Research Methodology.
3. Teaching Materials.
4. In service teacher education programme using appropriate communicational technologies (Distance mode).
5 Use of Media's.
6. Recruitment of teachers.
7. Supervision.
8 Community participation.
9 Conditions of working.
10. Drawing teacher in Decision-making.

All the above suggestion was to enhance quality of teacher education. We use Educational technology as below.

1) To design the syllabus/framework we can use the basic principles of learning and teaching also we can use the system approach to improve it i.e. Objective effectiveness, need analysis, evaluation

process, tools used different methods and techniques also models of teaching, virtual learning respects etc..

2) Training Research Methodology is made easy as we can use medium of text, also CAI, CAL, also the technology in education i.e. Internet, use of computer for perfect analysis, the Research Report writing. Also with the help of hardware & software we can effectively train the students for research methodology.
3) In service teacher education can be given with the help of teleconferencing, video cassettes, tape-records, also the use of media's like Radio, T.V. etc. for training the teacher for different skills & techniques we arrange the workshop with the help of educational technology. Also are of simulation, new methods which are discussion and used in ET well useful. Also by minimizing noise we can effectively communicate with the help of Educational Technology. Also we can use the distant mode with the help of printed made as use linear and branching mode. Use of ICT is now a day is a new phasing which famous and used education to improve quality.
4) Teaching material are designed by system approach (need analysis). The cost, used sources were used & the material is made more & more effective with the help of projected & non-projected materials also the Dictionaries & glossaries should have the & printed information which ever be needed. The textbooks need the information as well as simulation condition to learn, to make decision and to evaluate.
5) Use of Media's- Educational technology emphasis & studies the importance and use of media's. We can use the media with the help of educational technology effectively. The types of media's, its style, writing scripts e.g. Radio, T.V. script writing, creative writing is studied in educational technology, that is helpful in teacher education as to inform about policies knowledge & what not.
6) As the Recruitment of teachers, supervision is done with the help of Educational technology as software & communication strategies as Flanders interaction model etc.
7) Community participation is more important in now a day for all type or education. As teacher is the mediator between society & student, he has to use ET to participate community in school process. So, teacher education process Can be interacting with community with the help of ET as media, also discussion, Panel discussion, e-libraries etc.
8) The most important part of teacher is decision making in classroom & out of it. Education technology can provide simulated conditions & trained teacher for decision making.

Thus, Education Technology plays a crucial role in improving a quality of Teacher education. The use of Education Technology important because the minor to major programme of Training Educational. Technology enhances it and improve it. Although there is no only way to improve a teacher education.

**Reference:**

1. Chitrasen, (Ed), (2006) 'Modern Education Technology: Nature & Scope': New Delhi.
2. Dahiya, S.S. (2004) Educational Technologv New Delhi: Shipra Publication Pvt.Ltá.
3. Kumar,K.L (2001),Educational Technologv' New Delhi : New Age International Publishers.
4. Sharma, RN., Chandra, S.S. (2003) 'Advanced Educational Technology New Delhi :Atlantic Publishers Pvt.Ltd.
5. जगताप ह . ना. (२००६. ) . *प्रगत शैक्षणिक तंत्रविज्ञान आणि माहिती तंत्रविज्ञान* , : नित्य नूतन प्रकाशन ,पुणे
6. येवले सीमा (२००६. ) , *शैक्षणिक तंत्रविज्ञान आणि माहिती तंत्रज्ञान* , : नित्य नूतन प्रकाशन ,पुणे

# साहित्यरत्न कॉम्रेड अण्णा भाऊ साठे यांच्या साहित्यातील मार्क्सवादी व डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरच्या विचाराचा मागोवा

**प्रवीण प्रकाश डांगे**
मौनी विद्यापीठाचे, कर्मवीर हिरे कला, शास्त्र, वाणिज्य आणि शिक्षणशास्त्र महाविद्यालय, गारगोटी
तालुका – भूदरगड जिल्हा –कोल्हापूर पिन ४१६२०९

**प्रस्तावना**

अण्णाचा जन्म १ ऑगस्ट १९२० रोजी सांगली जिल्ह्यातील वाळवा तालुक्यातील वाटेगाव येथे झाला. ते १८ जुलै १९३२ रोजी मुंबई गोरेगाव येथे कामासाठी आले. वाटेगावाहून मुंबईला स्थलांतरित झालेल्या अण्णांनी उदरनिर्वाहासाठी पडेल ती कामे केली. गावाकडच्या दारिद्र्याने मुंबईत आल्यावरही पाठ सोडली नाही. परिणामी दारिद्र्याची खरी कारणमीमांसा करणाऱ्या मार्क्सवादाकडे ते आकर्षित झाले. त्यातूनच त्यांनी१९३६ पासून मुंबई गिरणी कामगार संघटनेच्या संपात सक्रीय सहभाग घेतला. १९४३ ला मुंबईला कम्युनिस्ट पार्टीचे कार्यालय सुरु झाले. पुढे ते कम्युनिस्ट पक्षात कार्यकता (कार्ड होल्डर) म्हणून लालबावटा (१९४४) कलापथकातून कामगारांचे प्रबोधन करत राहिले. मुंबईत तेव्हा कॉंग्रेस व कम्युनिस्ट पक्ष यांचा प्रभाव होता. अण्णाभाऊ साठेना पडणाऱ्या प्रश्नांची उत्तरे मार्क्सवादात सापडली आणि ते कम्युनिस्ट पक्षात पूर्ण वेळ आजन्म कार्यकर्ते झाले.

मार्क्सवाद त्यांनी ‘दिमाख’ पेक्षा ’दिल’ से स्वीकारला. कारण त्याचातील कलावंताच्या संवेदनशील मनाने मार्क्सवाद व समाजवाद स्वीकारला होता. म्हणूनच त्यांनी तळागाळापर्यंत मार्क्सचा क्रांतिकारी समाजवादी विचार पोहचवण्यासाठी जाणीवपूर्वक प्रयत्न केले. त्यांच्या विचारावर व साहित्यावर कार्ल मार्क्स, मक्झिम गार्की, महात्मा ज्योतीराव फुले, डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर, अमृत केशव डांगे, प्र. के. अत्रे ईत्यादींचा प्रभाव होता. डॉ.बाबासाहेब आंबेडकराच्या विचारधारेतील लढाऊ व विमोचक भूमिकेचा अण्णाभाऊ साठेंवर विशेषत: प्रभाव पडला होता.

Keyword: अण्णा भाऊ साठे , मार्क्सवाद , आंबेडकरवाद, समाजवाद

**१. मार्क्सवाद व अण्णा भाऊ साठे :-**

माणूस हा सदासर्वकाळ गरीब नव्हता, दरिद्री नव्हता. तसेच तो सदासर्वकाळ श्रीमंत नव्हता. समाज बदलत राहिला. समाजव्यवस्था बदलत राहिली. उत्पादनाची साधने बदलत राहिली. कधी काळी अस्तित्वात नसलेले वर्ग अस्तित्वात आले. मानवाकडून मानवाची पिळवणूक होऊ लागली. त्यातून असमानता, विषमता निर्माण झाली. असे सांगणाऱ्या मार्क्सवादाशी अण्णाची गट्टी कायमचीच जमली.

समाज स्थितीशील नसून गतिशील व परिवर्तनीय आहे, असे सांगणाऱ्या शास्त्राची अण्णांनी कास धरली. जग बदलू शकते पण आपसूक नव्हे.तर योग्य कृती करून बदलते. दारिद्रय लादणाऱ्या वर्गीय व्यवस्थेवर घाव घालण्याची गरज असल्याचे त्यांना मनोमन पटले. त्यातूनच त्यांनी आपल्या साहित्यातून भांडवलशाहीवर घाव घातले.

सावकारी, शेतकरी व कष्टकऱ्याचे रक्त पिऊन गलेलठ्ठ झालेला धनाढ्य, मुजोर सत्ताधारी, प्रचंड पिळवणूक, विषमता, महानग चे आक्राळविक्राळ रूप त्याचा साहित्यतून उमटते. त्यांनी आपल्या साहित्यात अन्यायाविरोधात मुग गिळून बसण्याऐवजी, तडजोड करण्याऐवजी संघर्ष करणाऱ्या नायक- नायिका आपल्या साहित्यात चितारल्या. सर्वहार, नाहीरे वर्गाची बाजू सातत्याने घेतली हीच भूमिका घेऊन अण्णा भाऊ साठे यांनी ३२ कादंबऱ्या, १६ कथासंग्रह, १४ लोकनाट्य, ११ पोवाडे, २ नाटके, १ प्रवासवर्णन अशी साहित्यनिर्मिती करून विविध सामाजिक समस्या मांडल्या. यात मार्क्सवादी दृष्टीने आथिक विषमता, भांडवलशाहीचे दोष, दारिद्र्य, बेरोजगारी, दुष्काळ, निरक्षरता रोगराई, राष्ट्रीयकरण, ब्रिटीशकालीन जमीनदारी, आर्थिक विषमता कमी करण्यासाठी सरकारी सहभाग आवश्यक्ता इत्यादी समस्यांचा विचार त्याचा साहित्यातून प्रतिबिंबित होतो.

जगाचा पोशिंदा श्रमिक त्यामुळे त्याचे शोषण थाबवले पाहीजे. अण्णा भाऊ साठे यांच्या मते 'ही पृथ्वी शेषाच्या मस्तकावर तारली नसून दलित, कष्टकऱ्यांच्या तळहातावर तारलेली आहे.' त्यांचा वैचारिक दृष्टीनकोनातून पाहता साम्यवाद, समाजवाद, आर्थिक विकास, नियोजन यावर त्यांनी भर दिलेला दिसतो. 'बरबाध्या कजारी' कथेच्या निमिताने अण्णा भाऊ साठे यांना प्रश्न विचारण्यात आला होता. तुम्ही कथा कशा लिहिता? आशाच आशयाचा एक प्रश्न रशियन मासिकाने विचारला होता. तेव्हा अण्णा भाऊनी सांगितले. माझी जीवनावर फार निष्ठा आहे. मला माणसे खूप आवडतात, त्यांची श्रमशक्ती महान आहे. ती जगतात. जगाला जगवतात. त्याच बळावर हे जग चालले आहे. त्याची झुंज व यश यावर माझा विश्वास आहे. त्यांना विद्रूप करणे मला आवडत नाही. ज्याच्या हातावर पृथ्वी उभी अशा माणसांना वैफल्याच्या नावाखाली विद्रूप करू नये. वैफल्य तलवारीवरील धुळी सारखे असते, धूळ झटकून तलवार लखलखीत करता येते.

मी जे जीवन जगतो, पाहतो, अनुभवतो तेच मी लिहितो. मला कल्पनेची भरारी मारता येत नाही. त्याबदल मी स्वत:ला बेडूक समजतो. ''बरबाध्या कजारी कथासंग्रहातील सारी पात्रं या-ना-त्या नात्याने माझ्या आयुष्यात येऊन गेली आहेत. माझी माणसं जिवंत वास्तव आहे. त्यांचा गुणवगुणाची मी चर्चा करत नाही.'' अण्णांनी आपल्या साहित्यतून सामाजिक विषमतेवर प्रहार केला. अन्यायाच्या विरोधात रडायचे नाही, तर लढायचं आहे असा संदेश ते देतात.

'फकीराची' कैफियत सादर करताना ते म्हणतात, ''प्रतिभेला सत्याचंजीवन दर्शन नसेल तर प्रतिभा, अनुभूती वगैरे शब्द निरर्थक ठरतात. कारण सत्याला जीवनाचा आधार नसला की प्रतिभा अंधारातील आरशाप्रमाणे निरुपयोगी ठरते. मग कितीही प्रयत्न केला तरी त्यात प्रतिबिंब दिसत नाही. आणि कल्पना निर्बल होते.'' त्यांचे सर्व साहित्य कल्पनेच्या भराऱ्या घेणारे नव्हते. तर कामगार कष्टकऱ्यांच्या जीवनाचे प्रतिबिंब त्याच्यात उमटले होते.

'भांडवलशाही जगात कल्पनेलाही लाजवेल अशी वास्तवता आहे. खरी भूतं गावात राहतात तर मेलेली स्मशानात राहतात', 'सत्य कधी लपत नाही', 'मारावे तर श्रीमंताने, जगावे तर गरीबाने (स्मशानातील सोनं), 'शेतातील कुंदा या तनाप्रमाणे सावकारी, जमिनदारीचे उच्चाटन केले पाहिजे. सोन्याबरोबर शिलही विकल जातं हे मला समजलं.' (चित्रा कादंबरी वेश्या व्यवसायवर आधारित) 'शौर्य, ध्येय हे गुण अनुवंशिक नसतात तर फक्त रोग अनुवंशिक असतात. अशी वाक्य माणसाला विचार करायला भाग पडतात.

जनार्दन वाघमारे यांनी 'जनवादी साहित्यिक अण्णा भाऊ साठे' संपादित पुस्तकात आपल्या लेखात त्याच्या क्रांतीकार्याचे वर्णन पुढीलप्रमाणे केले आहे, ''अण्णा भाऊ साठेंनी अनेक पोवाडे लिहिले व गायले. त्यांची शाहिरी ही त्यांच्या हातातली तलवार होती. कामगार चळवळीने त्याचे व्यक्तिमत्व घडत गेले होते. ते साम्यवादी होते 'जगातील कामगारानो एक व्हा' ही कार्ल मार्क्सची हाक त्याच्याही कानी पडली. कामगार चळवळीत त्यांनी वारकऱ्यांच्या श्रद्धेने भाग घेतला होता. मुंबईतील गिरणी कामगारचा क्रांतिकारी श्वासोच्छ्वास त्यांना स्पर्श करत होता. कामगार हा उद्याच्या इतिहासाचा नायक ठरणार यावर त्यांचा ठाम विश्वास होता. भांडवलशाही नष्ट होऊन जगात कामगाराचे राज्य येणार, ही आशा बाळगून ते लेखणी चालवत होते.''

अण्णा भाऊजवळ अन्यायाची चीड होती. गुलामगिरीविरुद्ध लढण्याची खुमखुमी होती. दु:ख, दैन्य, दारिद्र्य यांचा नाश करू इच्छिणाऱ्या शब्दरूप गोळयाचं कोठारच्या कोठार होतं आणि त्याच्या मानवतावादाला समाजवादाची शास्त्रीय साथ होती.

**२. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर व अण्णा भाऊ साठे.**

लेबर कँपातील आंबेडकरी व कम्युनिस्ट कार्यकर्त्याच्या चर्चांमध्ये ते घडत गेले. अण्णा भाऊ साठे शेवटपर्यंत कम्युनिस्ट होते. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांच्या दलितमुक्तीच्या व जातीअताच्या लढ्याचे महत्व ते स्वत: दलित माग समाजाचे असल्यामुळे ओळखले होते. जे कम्युनिस्टांनीकधीच जाणले नव्हत. म्हणून त्याच्या वाङ्मयात लाल सलाम सोबत जयभीमचा सुरेख संयोग झाला आहे. भारतात केवळ वर्गविरहित समाज निर्माण करून समता येणार नाही. जातविहीत समाज निर्माण झाला तरच समता व बंधुता येईल.आणि शोषणमुक्ती होईल, हे त्यांनी जाणल होत. म्हणून 'जग बदल घालून घाव सांगून गेले मज भीमराव' असही कवन त्यांनी केल होत.हे लक्षात घेण्यासारखे जोगे आहे.

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांच्या वर्ग अंताबरोबर जातीअताच्या विचारांचा व कार्याचा प्रभाव त्यांच्यावर पडला, तेव्हापासून लाल सलाम व जय भीम राजकारण खऱ्या अर्थाने सुरु झाले. वर्ग आणि जाती अंताची लढाई एकमेकांच्या विरोधात नसून ती परस्परपूरक आहे. याचे भान त्यांना आले. त्यांचे साहित्य वंचित, शोषित समजला अन्यायाच्या विरोधात लढण्याची प्रेरणा देते आणि यापुढच्या काळातही देत राहील.

**अण्णा भाऊ साठेंच्या विचाराची वैशिष्ट्ये**

१. कमी शब्दात जादा आशय

२. मार्क्सवादी साहित्य विचार दृष्टी

३. मानव समुहाचा आदिम व्यवस्थेपासून मानव मुक्तीसाठीचा लढा अखंड चालू आहे.

४. मार्क्सवाद, माणूस इतिहासाचा केंद्रबिंदू. मानवतावाद यावर त्यांचा भर आहे.

५. मानवी इतिहास त्याच्या मुक्तीचा इतिहास आहे.

६. दलित माणसाची जीवन व्यवस्थेशी चाललेली झुंज हे त्यांच्या साहित्याचे मूलतत्व आहे .

अण्णा भाऊ साठे यांच्या साहित्यामध्ये पराक्रम, स्त्री प्रश्न, प्रेम, भल्याचा पुरस्कार, बुऱ्याचा तिरस्कार, ग्रामीण जीवन व्यवहार याचे दर्शन घडते.अण्णा भाऊ साठे यांनी साहित्याचा केंद्रबिंदू मध्यमवर्गीयांकडून बहुजन

वर्गाकडे शहरी भागाकडून ग्रामीण भागाकडे वळवला. आपल्या साहित्यातून सामाजिक व आर्थिक संघर्ष उभा केला. अण्णाच्या साहित्यात राष्ट्रप्रेम आहे, संघर्ष आहे पण हिंसा नाही.

**समारोप–**

अण्णा भाऊ साठेच्या साहित्याच्या अभ्यासिका डॉ.वैशाली भालसिंग म्हणतात 'सन १९३२ साली वाटेगाव ते मुंबई हा २०० मैलाचा प्रवास उपाशीपोटी आणि अनवाणी पावलानी करणाऱ्या अण्णा भाऊनी १९६२ मध्ये मुंबई ते मास्को (रशिया) हा प्रवास विमानाने करण्याची ही किमया केली. कष्टकऱ्याच्या मुलाची गाथा लिहिणाऱ्या मार्क्सवादाच्या वैश्विक दर्शनाने. अण्णा भाऊ साठे हे २ मार्च १९५३ च्या पहिल्या दलित संमेलन अध्यक्ष होते. अण्णाचे महाराष्ट्र राज्य निर्मितीत मोठे योगदान आहे.

अण्णा भाऊ साठेच्यासाहित्याचा हेतू देशात कष्टकरी व कामगाराच्या साह्याने क्रांती घडवून आणणे हा होता. म्हणूनच ते म्हणतात–

क्रांतीकार्य हे इथे राहिले
अपूर्णची आमुचे
पुढे नेऊनी पूर्ण करा ते
कर्तव्य तुमचे

अण्णाभाऊ साठेचं समाजवादी मन स्वातंत्र्य मिळाल्यावर त्याला पडलेल्या भांडवलशाहीच्या विळख्याने अस्वस्थ होतं. म्हणूनच स्वातंत्र्य मिळाल्यानंतर लगेच दुसऱ्या दिवशी म्हणजे १६ आगस्ट १९४७ रोजी त्यांनी 'ये आझादी झुटी हें क्या की देश की जनता भूखी हें? असा नारा देत मोर्चा काढला होता.

दलित कष्टकरी यांना न्याय मिळावा व खरी समता देशात या राज्यात प्रस्थापित व्हावी. हे त्याचं स्वप्नंही अंतिमत: विफलच झालं. हा कटू पण वास्तव इतिहास आहे हे मान्यच करावा लागेल.

**संदर्भग्रंथ**

१. अण्णा भाऊ साठे 'समाजविचार आणि साहित्य विचार' बाबुराव गुरव
२. मासिक युगांतर -२६ जुलै ते ०१ ऑगस्ट २०१८
३. दिवाळी अंक युगांतर २०१९ (एक सर्वहार वर्गाचा शाहीर तर दुसरा तरक्कीपसंद शायर ... लक्ष्मीकांत देशमुख, संपादक डॉ.भालचंद्र कानगो पृष्ठ २०-२९ )
४. सकाळ शनिवार १ ऑगस्ट २०२० अण्णा भाऊ साठे जंयती विशेषांक भीमराव पाटोळे आणि बाबुराव गुरव पृष्ठ– ८

# lkekftd fodklkr f'k{k.kkph Hkwfedk

**ik- 'kyun ctjx xM**
कर्मवीर हिरे महाविद्यालय
गारगोटी, ता. भुदरगड, जि. कोल्हापूर

**ik- foØe ckcklkk jkÅr**
कर्मवीर हिरे महाविद्यालय
गारगोटी, ता. भुदरगड, जि. कोल्हापूर

## çLrkouk

शिक्षण ही एक व्यापक आणि सातत्यपूर्ण प्रक्रिया मानवी जीवनामध्ये अत्यंत महत्त्वपूर्ण आहे. मानवाने साधलेला विकास आणि केलेली प्रगती शिक्षणामुळे शक्य झाले आहे. शिक्षण ही अखंडपणे चालणारी प्रक्रिया आहे. शिक्षणामुळे मानवी जीवन सुरक्षित व सुसंस्कृत बनले आहे. शाळा समाजाची छोटी प्रतिकृती आहे. असे म्हटले जाते. औपचारिक शिक्षण, अनौपचारिक शिक्षण व सहज शिक्षण अशा शिक्षण प्रकारांच्या माध्यमातून व्यक्तीबरोबर समाजाचा विकास होण्यास मदत होते. काही विचारवंतांच्या मते, शिक्षण हे समाज सुधारण्याचे साधन आहे.

## mfnn"V &

1. शिक्षण ही संकल्पना अभ्यासणे.
2. शिक्षण आणि समाज यांचा परस्पर संबंधाचा अभ्यास करणे.
3 सामाजिक विकासात शिक्षणाचे भूमिका अभ्यासणे.

## vH;kl i)rh &

प्रस्तुत संशोधनासाठी दुय्यम साधनांचा वापर करण्यात आला आहे. माहितीचे संकलन संदर्भग्रंथ, मासिके, पुस्तके, राष्ट्रीय व स्थानिक वर्तमानपत्रे तसेच विविध संकेतस्थळांचा वापर करण्यात आला आहे.

## fo"k; foospu &

शिक्षण या शब्दाला इंग्रजी मध्ये म्कनबंजपवद असे म्हणतात. म्कनबंजपवद हा शब्द म्कनबंतम आणि Educere या शब्दापासून तयार झाला आहे.

Educare – वाढवणे, पालन पोषण करणे, संवर्धन करणे.

Educere – जन्मजात गुणांना बाहेर काढणे

- जे मनुष्याला आत्मनिर्भर व निस्वार्थी बनविते तेच खरे शिक्षण होय.— ऋग्वेद
- उच्च प्रतीचे शिक्षण ते की जे केवळ माहितीच देत नाही, तर सर्व चराचर सृष्टीशी आपल्या जीवनाचा मेळ घालून देते. — रवींद्रनाथ टागोर
- संपूर्ण जीवनाची तयारी म्हणजे शिक्षण होय. — हर्बट स्पेनर
- शिक्षण म्हणजे अनुभवाचे पुनःसंयोजन होय. — जॉन डयुई
- शिक्षण म्हणजे मनुष्याचा आत्मा, मन व शरीर यांच्यातील सर्वोत्कृष्ठतेचा अविष्कार होय.—महात्मा गांधी
- सदगुणांच्या योगाने शाश्वत सुखाची प्राप्ती करून घेणे हे शिक्षणाचे प्रमुख ध्येय आहे. — ॲरिस्टॉटल
- भ्रमनिरास व सत्यान्वेषण म्हणजे शिक्षण होय. — साक्रेटीस

**lkekftd fodklkrhy f'k{k.kkph Hkwfedk &**

**1½ lkekthdj.k vkf.k f'k{k.k**

' ज्या प्रक्रियेद्वारे व्यक्ती आपल्या समाजाच्या श्रद्धा, मुल्य, नियमने व वर्तन प्रकार इत्यादी आत्मसात करून समाजाचा क्रियाशील सदस्य बनते त्या प्रक्रियेस समाजीकरण म्हणतात' — चंद्रकांत खंडागळे

समाजीकरणाच्या माध्यमातून शिस्तीचे संस्कार केले जातात, व्यक्तीच्या मनामध्ये प्रामाणिकपणा, सद्वर्तन, नीतिमत्ता ही मूल्ये रुजवली जातात. सामाजिक भूमिकांचे शिक्षण, विविध कौशल्यांचे शिक्षण दिले जाते. त्यामुळे संस्कृतीचे संक्रमण, समाज व्यवस्थेत सातत्य व स्थैर्य निर्माण होण्यास मदत होते. म्हणून सामाजीकरणाची प्रक्रिया अत्यंत महत्त्वाची आहे व समाजीकरण प्रक्रिया आणि शिक्षण यांचा जवळचा संबंध आहे शिक्षणाच्या माध्यमातून समाजीकरण साध्य होते.

**2½ lkekftd Lrjhdj.k vkf.k f'k{k.k**

''समाजातील विविध स्तरांची दर्जाच्या आधारे झालेली उतरंडी सारखी रचना म्हणजे सामाजिक स्तरीकरण होय.''

1) शिक्षणामुळे बंदिस्त स्तरीकरण मुक्त झाले.
2) शिक्षणामुळे व्यवसायिक गतिशीलता येते.
3) शिक्षणामुळे आंतरजातीय बंधने व मर्यादा कमी होतात.
4) शिक्षणामुळे जातीव्यवस्थेत बदल होतो

**3½ vk/kfudhdj.k vkf.k f'k{k.k**

' मानवी जीवनाच्या सर्व क्षेत्रात इष्ट व विवेकी परिवर्तन घडून येणे म्हणजे आधुनिकीकरण होय'

— चंद्रकांत खंडागळे

1) शिक्षणामुळे व्यक्तीच्या ज्ञानाच्या मनाच्या कक्षा विस्तारीत होतात.
2) शिक्षणामुळे विद्यार्थ्यांचे देशप्रेम निर्माण होण्यास मदत होते.
3) शिक्षण व्यवस्थेतून शास्त्रज्ञ, तंत्रज्ञ, प्रशासक निर्माण होतात.
4) शिक्षणामुळे लोकांच्या मनोवृत्ती व विचारात गतिशीलता येते.

**4½ lkekftd xfr'khyrk vkf.k f'k{k.k**

'व्यक्तीची एका सामाजिक दर्जा कडून दुसऱ्या सामाजिक दर्जा कडे जाण्याची क्रिया म्हणजे सामाजिक गतिशीलता होय' — हर्बर्ट

शिक्षणाचा आणि सामाजिक गतीशिलतेचा जवळचा संबंध आहे. शिक्षणाच्या माध्यमातून समाजामध्ये गतिशीलता निर्माण होऊन सामाजिक विकासात मोठा हातभार लागला आहे.

**5½ lkekftd ifjorZu vkf.k f'k{k.k**

मूलभूत अर्थाने सामाजिक परिवर्तन म्हणजे सामाजिक संरचनेत बदल होय.

1) शिक्षणामुळे सामाजिक परिवर्तनाच्या विकासासाठी मदत होते.
2) समाजात घडून येणाऱ्या बदलाचे विश्लेषण शिक्षणामुळे शक्य होते.
3) शिक्षणामुळे सामाजिक बदलासाठी योग्य नेतृत्व निर्माण होते.
4) सामाजिक परिवर्तनाला विरोध करणाऱ्या घटकांवर शिक्षणाच्या माध्यमातून मात करता येते.
5) शिक्षणामुळे सामाजिक सुधारणा चळवळीला प्रारंभ होतो.

**6½ lkekftd fu;=.k o f'k{k.k**

व्यक्तीच्या आचार—विचारांना समाज नियंत्रण करीत असतो या प्रक्रियेला सामाजिक नियंत्रण असे म्हणतात.

1. शिक्षणाच्या माध्यमातून संस्कृती संक्रमण होण्यास मदत होते.
2. सामाजिक अभिवृत्ती व सामाजिक मूल्यांचा विकास शिक्षणामुळे होतो.
3. शिक्षणामुळे परंपरा व मूल्यांची डोळसपणे चिकीत्सा होते.

**7½ jk"Vªh; ,dkRerk o f'k{k.k**

लोकमानसात दृढ ऐक्याच्या भावनेचा विकास करणे म्हणजे राष्ट्रीय एकात्मता होय. विद्यार्थ्यांचे राष्ट्रीय एकात्मतेची भावना दृढ करण्यासाठी शिक्षण एक महत्त्वाचे साधन आहे.

डॉ. राधाकृष्णन म्हणतात राष्ट्रीय एकात्मता ही काही इमारती प्रमाणे चुना आणि विटांनी व चिनी हातोडी ने बांधण्याची बाब नव्हे. राष्ट्रीय एकात्मतेचे संस्कार लोकांच्या अंतकरणात हळुवारपणे रुजविणे गेले पाहिजे शिक्षणाच्या मदतीने हे कार्य होऊ शकते.

**fu"d"kZ**

1) शिक्षण ही व्यापक प्रक्रिया आहे.
2) शिक्षण ही गतिशील प्रक्रिया या आहे.
3) शिक्षण व समाज यांचा अत्यंत जवळचा संबंध आहे.
4) समाजाच्या विकासात शिक्षणाचे महत्त्वाचे योगदान आहे.
5) शिक्षण ही निरंतर चालणारी प्रक्रिया आहे.
6) शिक्षणामुळे राष्ट्रीय ऐक्याची भावाना समाजामध्ये निर्माण होते.
7) शिक्षण आणि सामाजीकरण, सामाजिक स्तरीकरण, सामाजिक नियंत्रण, सामाजिक परिवर्तन सामाजिक गतिशीलता, आधुनिकीकरण यांचा जवळचा संबंध आहे.

**lanHkZ xzaFk &**

1. कुंडले म.बा (1973) शैक्षणिक तत्वज्ञान व शैक्षणिक समाजशास्त्र, विद्या प्रकाशन,पुणे.
2. दुनाखे अरविंद (2005) प्रगत शैक्षणिक तत्वज्ञान, नित्य नूतन प्रकाशन, पुणे.
3. के.यु.घोरमोडे (2007) शैक्षणिक संशोधनाची मुलतत्वे. नागपुर
4. मुळे, रा . शं. आणि उमाटे वि . तु (1998).नित्यनूतन प्रकाशन पुणे.
5. खंडागळे चं.र, दूरशिक्षण, छत्रपती शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापूर
6. भिंताडे वी.रा. (1989),शैक्षणिक संशोधन पध्दती, नित्यनूतन प्रकाशन पुणे.
7. https://www.pragationline.com/competitive-exams/shaikshanik-tattvadnyan-va-samajshastra/

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www.aiirjournal.com

# Lkekftd o lkaLd`frd fodklkrhy f'k{k.kkph Hkwfedk

**Jh- foihu ukjk;.k ojkV**
सहयोगी प्राध्यापक
शंकरराव जगताप आर्टस् ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज, वाघोली
ता. कोरेगाव, जि. सातारा

---

## iLrkouk %&

आजच्या एकविसाव्या शतकात भारत देशाची वाटचाल महासत्ता होण्याकडे चालू आहे. दळणवळण, औद्योगिक, माहिती तंत्रज्ञान, संशोधन अशा अनेक क्षेत्रात नव–नवे शोध लागत आहेत. त्यायोगे प्रत्येक क्षेत्राचा विकास जोमाने होतो आहे. मानवी जीवन भौतिक सुखांनी अधिक सुलभ व सुखमय होत आहे. ह्या परीवर्तनाबरोबर देशात, समाजात काही प्रश्न निर्माण होत आहे, तर काही प्रश्न होऊ घातले आहेत. विविध क्षेत्रातील विकास देशातील युवकांना रोजगार देण्याऐवजी बेकार करताना दिसतो आहे. गुणतत्ता आणि क्षमतेच्या नावाखाली प्रत्येक क्षेत्रात जीवघेणी स्पर्धा सुरू आहे. सुशिक्षित बेकारी हा देशापुढील भविष्यातील सर्वात भयाण व मोठा प्रश्न असणार आहे. अशा बेकार परिस्थितीत भारतीय समाजामध्ये आधुनिक संस्कृतीचे संक्रमण जलद होताना जाणवते आहे. ह्या संक्रमनाने अनेक दाहक प्रश्न निर्माण केले आहेत. सारे जग जवळ आले असताना वाढणारा मानवांमधील एकाकीपणा, सुखसोयी हात जोडून पुढे उभ्या असताना येणारी मानसीक दुर्बलता, सारे मिळूनही वाढत जाणारी स्पर्धा, लोभीवृत्ती, भौतिकवादी विचारांतून निर्माण होणारा नैतिकतेवरचा अविश्वास, अपर्यावरणीय दृष्टीकोन हे सारे समाजमन अस्वस्थ करीत आहेत. समाजात असुरक्षिततेची भावना निर्माण करते आहे. म्हणून राष्ट्राची विकासाकडे वाटचाल सुरू असतानाही समस्त समाज परिवर्तनाचा सामाजिक व सांस्कृतिक पातळीवर पुनर्विचार अपेक्षीत आहे. हे करीत असताना सामाजिक व सांस्कृतिक विकासात शिक्षण क्षेत्राने कोणती भूमिका बजावली आहे? शिक्षणाने कोणती भूमिका स्विकारली पाहिजे याचे विचारमंथन अपरिहार्य ठरते.

## f'k{k.k ladYiurhy 0;kidrk %&

सर्वसाधारणपणे शिक्षण म्हणजे प्राथमिक, माध्यमीक, उच्च माध्यमीक, महाविद्यालयीन या सर्व ठिकाणी चाललेले ज्ञान दान डोळ्यासमोर येते. अर्थातच शिक्षणाची ही रूढ संकल्पना फार मर्यादित अर्थाने व्यक्त होताना दिसते. खरे तर शिक्षण ही संकल्पना खूप व्यापक आहे. केवळ शाळेत, महाविद्यालयात जाणे म्हणजेच शिक्षण नव्हे, केवळ अध्यापन किंवा अध्ययन म्हणजेच शिक्षण नव्हे, शिक्षक हे केवळ शाळेत घडते असे नाही तर शाळेबाहेरील जगातही विद्यार्थ्याला भरपूर शिकायला मिळते. म्हणूनच "आयुष्यभर आत्मसात न झालेला व मेंदूत अस्ताव्यस्तपणे कोंबलेला असा ज्ञानाचा भारा म्हणजे काही शिक्षण नव्हे! आपल्याला जीवन घडविणारे, 'माणूस' निर्माण करणारे, चारि़त्र्य घडविणारे व चांगले विचार आत्मसात करविणारे शिक्षण हवे आहे"[१] म्हणजे समस्त संस्कार व अनुभव म्हणजे शिक्षण असते. सर्व शैक्षणिक उपक्रमांचे ध्येयच 'माणूस' निर्माण करणे हेच असले पाहिजे. असा विवेकानंदांचा ठाम विश्वास होता. ज्यामुळे माणसांचे चारित्र्य संवर्धन होईल, मानसिक शक्तीचा विकास होईल, बुध्दीच्या कक्षा रूंदावल्या जातील. व मनुष्य स्वतःच्या पायावर उभा राहील अशा

प्रकारचे शिक्षण विवेकानंदांना अपेक्षीत होते. 'माणसा, माणूस बन' या इब्सेनच्या उक्तीमध्ये खऱ्या शिक्षणाचा अर्थ सामावलेले आहे. शिक्षणातून केवळ 'साक्षर' निर्माण करावयाचे नसून, 'माणसे' निर्माण करावयाची आहेत. म्हणजेच मनुश्याची बुध्दी हृदय आणि आत्मा यांच्या विकासालाच डॉ. राधाकृश्णन् शिक्षण म्हणतात."[२] त्याचबरोबर "महात्मा गांधीजींनीही शिक्षण म्हणजे बालकाच्या शरीर, मन आणि आत्मा या त्रयींमध्ये जे सुप्त उन्नमन्व आहे त्याचा सर्वांगीण विकास घडवून आणणे होय."[3] जसे एखाद्या कळीचे फुलात रूपांतर नकळत स्वाभाविकपणे होते तसा विकास मुलांच्या शारीरिक, बौध्दिक, मानसिक स्थितीत घडला पाहिजे. अशा प्रकारे विविध विचारवंतांनी, शिक्षणतज्ञांनीही शिक्षणाच्या व्याख्या करण्याचा प्रयत्न केला आहे.

व्युत्पत्ती शास्त्रानुसार संस्कृत भाषेतील 'शास्' या धातूपासून शिक्षण हा शब्द निर्माण झाला आहे. शास् याचा अर्थ ताब्यात ठेवणे, नियंत्रित करणे, शिस्त लावणे, शिकविणे असा आहे. तसेच 'शिक्षण' शब्दाकरीता 'विद्या' हा समान अर्थी शब्द उपयोगात आणला जातो. 'विद्या' हा शब्द 'विद्; या संस्कृत धातूपासून तयार झाला आहे. विद् याचा अर्थ जाणणे, समजणे, माहीत करून घेणे, ज्ञान मिळविणे असा होतो. शिक्षण प्रक्रियेत ज्ञान हा शब्द अत्यंत व्यापक अर्थाने वापरला जातो. इंग्रजी भाषेत शिक्षणास वापरला जाणारा हा शब्द मूळ लॅटिन भाषेतील आहे. Education वरून इंग्रजीत आला आहे. Educare म्हणजे to bring up किंवा to draw out व्यक्तीच्या अंगी जे उपजतच सुप्त गुण असतात. त्या गुणांना चालना देऊन, जागृत केले जातात. त्यांचा विकास करणे म्हणजे शिक्षण होय. शिक्षणामुळे अशा गुणांचा विकास झाला पाहिजे. ते गुण प्रकट झाले पाहिजे. अशाप्रकारे शिक्षण म्हणजे व्यक्तींचा सर्वांगीण विकास होय. ह्यामध्ये ज्ञानाची प्राप्ती करणे. विविध कौशल्य संपादन करणे वैचारिक व बौध्दीक आणि भावनात्मकतेचा विकास घडवून आणणे. व्यवहारातील शहाणपण आत्मसात करणे. शरीर सुदृढ ठेवणे समाजिक, नैतिक मूल्यांचा विकास करणे, अभिरूचीमध्ये उच्यतम दर्जा निर्माण करणे, रसिकता वृद्धींगत करणे, नागरिक म्हणून माणूस म्हणून विश्व बंधुत्त्वाची जाणिव निर्माण झाली पाहिजे अशा अनेक गुणांचा विकास करणारे त्याद्वारा व्यक्तिमत्त्व संपन्न करणारे समृध्द करणारे शिक्षण सर्वश्रेष्ठ शिक्षण होय.

शिक्षण ही अखंड चालणारी गोष्ट आहे. मनुष्याच्या जन्मापासून ते त्याच्या मृत्यूपर्यंत शिक्षणाची प्रक्रिया निरंतर चालू असते. प्राथमिक, माध्यमिक, महाविद्यालयीन पातळी पुरतीच मर्यादित नसते. या क्षेत्राच्या बाहेर पडल्यानंतर सूध्दा घर, शाळा, मंदिरे, ग्रंथालये, रेडिओ, दूरदर्शन, भ्रमनध्वनी, आंतरजाल, क्रिडांगणे, व्यावसायिक केंद्र, विविध संस्थांतील सहभाग, अवती भेवतीचा परिसर या साऱ्या साऱ्यांतून सतत शिक्षण सुरू असते. शिक्षण ही सहज, सरळ प्रक्रिया आहे. नैसर्गिकरित्या त्यांना येणाऱ्या वेगवेगळ्या अनुभवातून तो आपल्यात बदल घडवत असतो. स्वअनुभवाने त्याला कळत असते. त्यानुसार आवश्यक बदल करीत असतो. ही प्रक्रिया केवळ ज्ञानात्मक पातळीवर चालते असे नाही. भावनात्मक पातळीवर तसेच क्रियात्मक पातळीवरील ज्ञानाचा शिक्षणात समावेश होतो. शिक्षण प्रक्रिया जशी शास्त्रीय पध्दतीने सुरू असते, तशी ती कलात्मक बाजूने सुरू असते. म्हणून शास्त्र आणि कला यांचा सुरेख संगम शिक्षणात झालेला दिसतो. परिवर्तनीय, प्रगतशील बदल शिक्षण प्रक्रियेतून अपेक्षीत आहे. सकारात्मक चांगला बदल शिक्षणाने घडला पाहिजे. म्हणून व्यक्तीविकासासाठी पर्यायाने समान विकासासाठी शिक्षण ही अपरिहार्य गोष्ट आहे. ती एक अत्यंत मूलभूत गरज असलेली स्पष्ट होते.

प्राचीन भारतीय शिक्षणव्यवस्थेत गुरूचे स्थान सर्वश्रेष्ठ होते. गुरू जनांना आदराने वागविले जात. छात्र गुरूच्या आश्रमात राहायला जात. गुरूंची सेवा करणे, ज्ञान ग्रहण करणे तसेच गुरूगृही पडेल ते काम करून व्यापक अनुभव गुरूच्या सहवासात घेत. शिक्षण म्हणजे त्याकाळी तप साधना मानली जात. “तप म्हणजे बारा वर्षाचा काळ आणि या काळात शिष्यांच्या पंचेद्रियांना कामे असत. ही पंचंद्रिये म्हणजे ज्ञानाची महाद्वारे होती, डोळ्यांनी पाहावे, कानांनी ऐकावं, रसनेनं चव घ्यावी, त्वचेनं स्पर्शज्ञान व्हाव आणि नासिकाने गंध घ्यावा. या रूपानं शब्द–स्पर्श–रूप–गंध या जाणिव समृध्द व्हायच्या. हे सहज कार्य होता होता चांगले–वाईट, योग्य–आयोग्य म्हणजेच सुगंध–दुर्गंध, गोड–कडू, मुलायम–खरखरीत, सुंदर–असुंदर या भिन्न–भिन्न घटकांचे विवेकी शिक्षण व्हायचे. स्वतः गुरू याबाबत मार्गदर्शन कारायचे आणि शिष्याच्या व्यक्तिमत्त्वाला आकार येत राहायचे”[४] या काळात ज्ञानाला, विद्येला विषेश महत्त्व होते. ज्ञान साधनेतून भारतीय तत्त्वज्ञान निर्माण झाले. वेद, उपनिवेद, पुराणे, महाकाव्ये इत्यादी ग्रंथातून ज्ञान संपादन करण्याचा प्रयत्न प्राचीन काळी शिक्षणाच्या माध्यमातून झालेला दिसतो. विविध ग्रंथांचे अध्ययन करावे, ज्ञान वृध्दींगत करावे, पांडित्य मिळवावे ही इच्छा ज्ञानधारणेस कारणीभूत ठरत. भक्तियोग, कर्मयोग या प्रमाणे ज्ञानयोग ही आत्मोन्नतीचा एक परम मार्ग मानला जात. त्याकरीता शिक्षण घेणे आद्य कर्तव्य मानले जात. मात्र ”या शिक्षणाचा लाभ फार थोड्या विद्यार्थ्यांना मिळत असे. या शिक्षणाचा भर प्रामुख्याने मोक्षप्राप्तीवर होता. या प्राचीन भारतीय शिक्षणात अध्यात्मिक विचार प्रकर्षाने मांडला गेलेला दिसून येतो. त्यामुळे हे शिक्षण प्रवृत्तीपेक्षा निवृत्तीचा संदेश अधिक प्रमाणात देणारे होते असे म्हटल्यास अतिशयोक्ती होणार नाही.”[५] हा विचार प्राचीन शिक्षण प्रक्रियेवर वास्तव प्रकाश टाकताना दिसतो. मात्र काळ पुढे पुढे जाऊ लागला आणि मानवी जीवनात प्रगती झाली. विज्ञान, तंत्रज्ञान, औद्योगिक क्रांतीमुळे शिक्षणाचे ध्येय व स्वरूप बदलत गेले. सुरूवातीला राजाराम मोहन रॉय, लोकहितवादी, महात्मा ज्योतिबा फुले, डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर, स्वामी दयानंद सरस्वती, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, बंकिमचंद्र चटर्जी, श्री रामकृष्ण परमहंस, त्याचबरोबर स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य टिळक, महात्मा गांधी, रविंद्रनाथ टागोर, योगी अरविंद घोष, कर्मवीर भाऊराव पाटील, धोंडो केशव कर्वे, बापूजी साळुंखे या शिक्षण महर्षीनी शिक्षण व्यवस्थेला प्रंचड मोठी गती दिली. त्यातून समाजामध्ये शिक्षणाचा प्रसार, प्रचार वेगाने होऊ लागला. नवी पिढी शिकू लागली, विचार करू लागली. विकासाचे वारे वाहू लागले. सामाजिक विकासात शिक्षणाने महत्त्वपूर्ण भूमिका बजावलेली त्यामुळेच ती जाणवते.

## lkekftd fodkl o f'k{k.k 0;oLFkk

प्राचीन काळी समजा रचना ही चातुवर्ण्यावर आधारित होती. प्रत्येक वर्णाचे कार्य ठरले होते. ब्राहण क्षत्रिय, वैश्य व क्षुद्र हे चार वर्ण संपूर्ण गावगाडा चालवीतं होते. कालांतराने लवचिक वर्णव्यवस्था लोप पावली व जन्मावर आधारित जाती निर्माण झाल्या. उच्च नीच्चतेचा भाव जातीजातीमध्ये निर्माण झाला. त्यामुळे सामाजिक ऐक्य धोक्यात आले. ही जातीयता नष्ट करण्यासाठी महात्मा फुले, महात्मा गांधीजी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर अशा अनेक विचारवंतांनी मोठे कार्य केले. स्वातंत्र्य मिळाल्यानंतर भारत देशाने स्वातंत्र्य समता, बंधुता व सामाजिक न्याय मूल्यांचा स्वीकार केला. ह्या मूल्यांची जपवणूक करण्याचे काम शिक्षणाने केले. नवी पिढी शिकू लागली. त्यांच्यात आत्मभान निर्माण झाले. आपणही भारतीय नागरिक आहोत आपल्याला ही इतर समाजातील नागरिकांप्रमाणे अधिकार आहे. हक्क आहे. याची जाणिव शिक्षणाने करून दिली. दलित चळवळ उभी

राहिली. नव्या शिकलेल्या दलित पिढीने लेखनी हातात घेतली व आपल्या दुःखाचा हुंकार शब्दबध्द करून जगाला दलित साहित्य बहाल केले. न्याय हक्काचा लढा त्याकरवी समाजापुढे मांडला. पुढे ग्रामीण साहित्य असो, स्त्री वादी साहित्य असो, अदिवासी साहित्य असो शिक्षण क्षेत्रातल्या झालेल्या क्रांतीमुळे, प्रसारामुळे ग्रामीण पिढीला जाग आली. नव स्त्री लेखीका निर्माण झाल्या. अदिवासींचे प्रश्न प्रथम समाजापुढे मांडले जावू लागले. देशाची ऐंशी टक्क्यावरून जास्त लोकसंख्या शेती करते. शेतकरी देशाचा कणा आहे. तो सुखी झाला पाहिजे तर समाज सुखी होईल. राष्ट्राचा, समाजाचा खऱ्या अर्थाने विकास होईल. हा विचार शिक्षण प्रक्रियेचे फलित मानावे लागेल. राजर्षी शाहू महाराजांनी नाशिकच्या भाषणात उद्‌गार काढले होते. ”खालच्या वर्गाच्या लोकांच्या बुध्दीवर व ज्ञानावर हे जे जड व जुलमी जू लादले गेले आहे. ते झुगारून देण्याची शक्ती बहुजन समाजाच्या अंगी येण्यास सक्तीच्या व मोफत प्राथमिक शिक्षणाची फार जरूरी आहे.“[६]

हीच प्रक्रिया स्त्रीला स्त्रीम्हणून मिळणारी हीन वागणूक, दुय्यम दर्जा याबाबत न्याय मिळवून देणारी ठरली. शिकलेल्या स्त्रीया समाजात पुरूषांच्या खांद्याला खांदा लावून दैदीप्यमान कामगिरी पार पाडू लागल्या. आपण अबला नाही सबला आहेत हे केवळ आणि केवळ शिक्षणाच्या जोरान जगाला दाखवून दिले. हे सारे यश शिक्षण क्षेत्राचे आहे. तळागाळा पर्यंत, दऱ्या–डोंगरात, झाडे–जंगलात शिक्षणाचा प्रसार झाला आणि सामाजिक प्रश्नांनी नवे वळण घेतले. सामाजिक मने ढवळून निघाली. प्रश्नांवर उत्तरे शोधू लागली. मिळालेल्या उत्तरातून, बदलत चाललेल्या प्रश्नांतून समतेचे वारे वाहू लागले. संविधानात अपेक्षीत विकास जलद गतीने नसेल पण नोंद घेण्या इतपत होऊ लागला. ”समाजातील विविध समूह संपर्क साधने देखील सामाजिक बदल व परिवर्तन घडवून आणू शकतात. वृत्तपत्रे, आकाशवाणी, दूरदर्शन वा शासनाने केलेले कायदे समाजात परिवर्तन करीत असतात. परंतु हे बदल दीर्घकाळ टिकत नाहीत. कारण हे परिवर्तन लोकांनी शासन दबावाखाली किंवा भीतीपोटी स्वीकारलेले असतात. तसेच दूरदर्शनच्या जाहिरातीद्वारे होणारा बदल हा तात्पुरता असतो. पण शिक्षणाने समाजात होणारा बदल अतिशय संथ गतीने होत असतो व तो चिरकाल टिकणारा असतो.“[७]

भारतीय राज्यघटनेत धर्मनिरपेक्ष समाज असा उल्लेख करून हे तत्त्व स्विकारले आहे. धर्मनिरपेक्षता म्हणजे कोणत्या धर्माला विरोध नव्हे, तर आपल्या धर्म आचरणाचा इतर दुसऱ्या धर्मीयांना त्रास होऊ नये. अशी भूमिका होय. प्रत्येकाला आपल्या धर्माचे स्वातंत्र्य राहील. धर्म म्हणजे कर्तव्य, जगण्याची रित, कोणताच धर्म हा राष्ट्रीय धर्म नसेल हे तत्त्वज्ञान समाजमाणसात रूजवण्याचे यशस्वी काम शिक्षणाने केलेले स्वतंत्र भारतात दिसते. धर्म, धर्मनिरपेक्षता, धर्मस्वातंत्र्य त्याबाबतची सहिष्णुता, त्यांच्यात सामंजस्य वाढविण्याचे काम शिक्षण करातना दिसते. राष्ट्राच्या ऐक्यासाठी उज्जवल भविष्यासाठी शिखण व्यवस्थेचे फार मोठे योगदान मिळालेले दिसते. भारत हा खंडप्राय देश असून बहुविध भाषा, धर्म, पंथ असलेले, बहुविध संस्कृती असलेले लोक राहतात. या साऱ्यांना न्याय, समता, स्वातंत्र्य, बंधुता ह्या तत्वांवर एकत्रीत बांधण्याचे काम शिक्षणाने केले आहे. त्यातून राष्ट्रीयत्वाची भावना, सामाजिक ऐक्य वृध्दींगत होताना दिसते.

लोकशाही प्रणाली रूजवण्याचे काम शिक्षणाने करणे अपेक्षीत आहे. विचार स्वातंत्र्य, व्यक्तीस्वातंत्र्य, सामाजिक, नैतिक मूल्यांचे आचरण, अधिकारांबरोबर कर्तव्यांची जाणिव शिक्षणाने करून दिली पाहिजे. लोकशाहीत सर्वांना समान संधी विकासाची, शिक्षणाची दिलेली आहे. त्याची

अमंलबजावणी साठी समाजास सकारात्मक करण्याची भूमिका शिक्षण पार पाडते. लोकशाही हा राष्ट्राचा पाया आहे आणि जास्ती जास्त मजबूत करण्याचे काम शिक्षण करीत असते.

स्वातंत्र्योत्तर काळात देशात अनेक उद्योग–धंद्यांची वाढ झाली व अर्थिक सुधारणा झाल्या. सामाजिक दर्जा हा त्या व्यक्तीला त्याच्या अर्थिक परिस्थितीवर मिळू लागला. अर्थव्यवस्थेने अर्थिक विषमता निर्माण केली. कष्टकरी कष्ठ करीत राहिला, त्याची अर्थिक उन्नती झाली नाही. आणि दारिद्रय रषेखाली गेल्याने जगण असह्य झालं. श्रीमंत अधिक श्रीमंतच होत राहिला. आहे रे नाही रे ची दरी वाढत चालली. अशा परिस्थितीत अर्थिक समता आणि संपन्न अर्थिक जीवन समाजातील सर्व घटकांच्या वाट्याला यावे याकरीता विविध शिक्षण आयोगाने आपल्या भूमिका, ध्येय, धोरणे यात काळानुसार बदल केले. समाजवाद रूजवण्याचा प्रयत्न सुरू झाला. सर्वांना रोजगार उपलब्ध व्हावेत. मूठभर लोकांच्या हातात आर्थिक सत्ता जाऊ नये याकरिता शिक्षण प्रक्रिया काम करू लागली. त्याचे फलित असे की, उशीरा का होईल. समाजाचे राहिमानात बदल होऊ लागला, जीवनमान उंचावू लागले, आरोग्य, शिक्षणबाबत प्रश्नांची पूर्तता हळुहळहू का होईना होऊ लागली. शैक्षणिक धोरणातून सामाजिक प्रश्नांची उकल करण्याचा यशस्वी प्रयत्न शासनाकडून, सत्ताधाऱ्यांकडून होऊ लागला.

विज्ञाननिष्ठ दृष्टी, निरक्षरता निर्मलून, भ्रष्टाचार निर्मलन, पर्यावरण पूरक दृष्टी, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक राष्ट्रीय परंपरा विषयी जागृती, सामाजिक बांधिलकी, नव स्विकृतीची मानसिकता, विविध रोजगार कौशल्य, विविध सामाजिक समस्यांची जाणिव व निराकरणासाठीचे प्रयत्न या साऱ्या साऱ्या घटकांवर शिक्षण आपली महत्त्वपूर्ण भूमिका पार पाडत असते. समाजात आवश्यक जागृती करून, गरज पडेल तेव्हा आवश्यक मूल्यांची स्थापना करण्याचे काम शिक्षण करीत असते. प्रस्तूत सर्व घटकांच्या संर्वधनासाठी समाजातील व्यक्तिचा दृष्टीकोन तयार करण्यासाठी शिक्षणासारखा दुसरा रामबाण उपाय नाही. दुसरे कुठलेही साधन नाही. आणि ह्या शिक्षण रूपी साधनाच्याद्वारे कालचा, आजचा आणि उद्याचा समाज विकास करतो आहे.

## lkLd`frd fodkl vkf.k f'k{k.k %&

प्राचीन काळात गुरूकुल शिक्षण पध्दती अस्तित्वात होती. शील, संवर्धन आणि चारित्र्याचा विकास ही ध्येय घेऊन गुरूकुल शिक्षण पध्दतीत ज्ञानदानाचे काम चालत होते. भारताची उज्वल संस्कृती एका पिढीतून दुसऱ्या पिढीकडे संक्रमीत केली जात. आजही भारतीय समाज रचनेत विविधता असून ऐकता टिकून आहे. याचे कारणच सांस्कृतिक मूल्यांचे संवर्धन, संगोपन इथला शिक्षण व्यवस्थेने समाजात केलेले जाणवते. गुरूकुल आश्रमात विद्यार्थ्यांचे शरीर, मन, आणि आत्मा यांनी संपन्न होणाऱ्या संपूर्ण व्यक्तिमत्त्वाचा विकास साधला जाई. नागरी आणि सामाजिक कर्तव्य, कार्यक्षमता आणि मानवी मूल्यांची शिकवण दिली जात. अशा प्रकारचे नैतिकतेचे शिकवण एक प्रकारचे सांस्कृतीक शिक्षणच होते.

प्राचीन शिक्षणाची परंपरा लक्षात घेऊन पुढे स्वातंत्र्य पूर्वकाळात आणि स्वातंत्र्यानंतर सुध्दा विविध शिक्षण आयोगातून शिक्षण विषयक भूमिका ठरवताना सांस्कृतिक मूल्याला महत्त्व दिले गेलेले दिसते. १937 सालची वर्धा शिक्षण परिषदेत महात्मा गांधीजीच्या मार्गदर्शनानूसार शिक्षण पध्दतीची तत्त्वे निश्चित करण्यात आली. ”या परिषदेने नैतिक, धार्मिक शिक्षणाचे स्वरूप स्पष्ट केले. धार्मिक शिक्षणामुळे कदाचित एकतेस तडा जाईल आणि संघर्ष निर्माण होईल यासाठी शैक्षणिक योजनेपासून धार्मिक शिक्षण दूर ठेवण्यात आल्याचे आपणास दिसून येईल. सर्व धर्मातील समान तत्त्वे, मूलभूत

मूल्ये शोधून काढून त्यांचे शिक्षणातून संवर्धन व्हावे असे ठरविण्यात आले. सत्य आणि न्याय यांसारख्या मूल्यांची जोपासना शिक्षणातून व्हावी यावर भर देण्यात आला."[‡८] पुढे वि व, बंधुता, धर्म तत्त्वज्ञान यांद्वारा आधारित व्यक्तिमत्त्व विकासास आवश्यक वाटणाऱ्या नैतिक व अध्यात्मिक शिक्षणावर भर देण्यात आला.

१959 साली धार्मिक व नैतिक शिक्षण विषयक समितीने धार्मिक व नैतिक शिक्षण विषय सखोल आणि व्यापक मार्गदर्शन श्रीप्रकाश यांच्या अध्यक्षतेखाली केले. "या समितीने नैतिकमूल्य आणि अध्यात्मिक मूल्य यांच्या व्याख्या केल्या आहेत. इतरांशी योग्य रीतीने वर्तन करण्यास जे मदत करते ते नैतिक मूल्य आणि इतरांकरिता किंवा श्रेष्ठ व उदात्त कारणाकरिता कल्याण बुध्दीने व स्वार्थ रहित वृत्तीने जे त्यागाची प्रेरणा देते ते अध्यात्मिक मूल्य होय. या समितीने प्रार्थना, समूह गीते, आदर्श जीवन, चरित्रे, नैमित्तिक स्वरूपाचे सांस्कृतिक कार्यक्रम, शिस्त आणि संयम यासाठी उपयुक्त असणारे शारीरिक शिक्षण, क्रीडा, गीते, कथाकथन, श्रेष्ठ दर्जाच्या वाङमयाचा अभ्यास यांचा शिक्षणात आवर्जून समावेश केला."[९] पुढे कोठीरी आयोगानेही भारतात अनेक धर्मीय लोक राहतात. त्यामुळे धर्म, धर्मनिरपेक्षता या संकल्पना स्पष्ट झाल्या पाहिजे. नैतिक व अध्यात्मिक आणि आत्म संयमातून चैतन्यशक्ती मिळते. अशा मूल्यांचा संस्कार शिक्षणातून झाला पाहिजे अशी भूमिका घेण्यात आली.

जीवनास पायाभूत असणारी मूल्ये ही संस्कृतीची शाश्वत मूल्ये असतात. ह्या मुल्यांचा अंगिकार जीवनाच्या सुयोग्य व्यवस्थापनेसाठी आवश्यक असतात. म्हणून प्रत्येक संस्कृती त्या त्या समाजाचा अविभाज्य भाग असतो. संस्कृतीचे संवर्धन, रक्षण आणि परीवर्तन प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष समाज करीत असतो तर संस्कृतीच्या माध्यमातून समाजाचे क्षमता विकसन व नियमन घडत असते. संस्कृतीमुळे समाजाला सुख, समृध्दी प्राप्त होत असते. ज्ञान, नियमने, श्रध्दा, मूल्ये अशा अनेक गोष्टींचा समावेश गरजांच्या पूर्ततेचे प्रत्यक्ष—अप्रत्यक्ष साधन असते. संस्कृतीमध्ये समाज वर्तन विषयक काही नियम असतात. त्याचे स्वरूप सकारात्मक ही असते. आणि निषेधात्मकही असते. नियमने म्हणजे सामूहिक वर्तनाचे प्रमाणिकरण असते. नियमने सामाजिक वर्तनावर निर्बंध घालत असतात. तसेच आदर्श वर्तन प्रकाराचे मार्गदर्शन करीत असतात. ही संस्कार क्षमता समाजाला अनेक ठिकाणांहून मिळत असते. त्या अनेक ठिकाणांपैकी महत्त्वाचे केंद्र शिक्षण होय. जीवनमूल्यांचे संवर्धन शिक्षण करीत असते. सर्वात्रिक विकास हा शिक्षणद्वारे होत असतो. विधायक व सर्जनशील समाजाची निर्मिती करण्याकामी सांस्कृतिक मूल्यांची जोपासना शिक्षणाकरवी समाजात होत असते. शिक्षण हे मूल्याधिष्ठीत असते. त्यातून समाजपरिवर्तन, समाजाचा विकास होत असतो.

आजच्या धकाधकीच्या काळात मोबाईल, इंटरनेट विविध प्रसार माध्यमांतून नवी पिढी वाहत चालली आहे. व्यसनाधीनता, गुन्हेगारी बाबतच्या गोष्टी सहज पाहायला, ऐकायला मिळत आहे. दिवसातील चार—चार, पाच—पाच तास विकृत, पाशवी मोबाईल गेम खेळण्यात नवी पिढी, बालमने घालवीत आहे. अनैतिकतेचा प्रसार करणाऱ्या मालिका, भावना चाळवणारे चित्रपट, खून मारामाऱ्या यातून नैतिकते ऐवजी गुन्हेगारीचे संस्कार युवापिढीवर होत आहे. वाचन संस्कृती लोप पावत चालली आहे. कुटुंबातील वरीष्ठांचा आदर, धाक राहिला नाही. नको ते आदर्श, नको ते अनुकरण युवकांचे भविष्य उद्ध्वस्त करीत आहे. अशा सामाजिक, विदारक परिस्थितीमध्ये समाजाचे मोठे नुकसान होत आहे. सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यांचा ऱ्हास ही आजची शोकांतिका ठरत आहे. अशा भयावह परिस्थिती समस्त राष्ट्राला आशेचा किरण दिसतो तो म्हणजे आजच्या शिक्षणव्यवस्थेत. शिक्षणांतून

आजच्या नव्या पिढीला संस्कारीत करता येऊ शकेल असा आशावाद समस्त समाजाला आणि शासनाला आहे. शिक्षण व्यवस्थाही अवघड जबाबदारी लिलया पार पाडत आहे. प्राथमिक पासून अगदी उच्च शिक्षणापर्यंतचे शिक्षण प्रक्रियेतील घटकांची जागृती समाजाला विकासाकडे घेऊन जाणार आहे.

## lekjksi %&

सांस्कारीत करण्याची जबाबदारी शिक्षण उचलत आहे. शिक्षणाने युवापिढीला आपल्या भविष्याविषयी भान आणण्याचे काम केले आहे. व्यसनाधीनतेपासून होणारे व्यक्तीगत, सामाजिक नूकसान, त्याबाबतची जणजागृती शिक्षण करते आहे. विज्ञानदृष्टी जोपासून अंधश्रध्देपासून समाजाला दूर ठेवण्यासाठी विविध उपक्रमांच्या माध्यमातून शिक्षण व्यवस्था सांस्कृतिक विकासात हातभार लावत आहे. न्याय, स्वातंत्र्य, समता, बंधुभाव यांसारख्या शाश्वत मूल्यांचे संवर्धन समाजात शिक्षणाशिवाय दुसरे कोणीच करू शकत नाही. न्यायप्रियता, वचनबध्दता, प्रामाणिकपणा, सत्याची कास, सचोटी, शीलसंपन्नता, त्याग, प्रेम, निस्पृहता इत्यादी विविध गुणांचा संस्कार विद्यार्थ्यावर पर्यायाने भावी समाजावर शिक्षण करीत असते. त्यायोगे संपन्न समाज आणि निरोगी समाज मन करण्याचे कार्य प्राचीन काळापासून निरंतनपणे शिक्षण करीत आले आहे.

आजच्या विज्ञान युगात तंत्रशिक्षणाचे महत्त्व वाढले आहे. मूल्य शिक्षणाला या व्यवस्थेत महत्त्व कमी दिल्याने त्याचा परिणाम सामाजिक परिस्थिती नाजूक होत गेली. आज मूल्यशिक्षणाची समाजाला आणि समाजहिताला गरज सिध्द होऊ लागली आहे. अध्यात्म, धर्म, नीती ह्या गोष्टी कालबाह्य झाल्या नाहीत. उलट सांस्कृतिक मूल्याचा हा ठेवा समाज जीवनास स्थैर्य देऊ शकतो हा विचार शिक्षणाने सर्वमान्य होत चालला आहे. सांस्कृतिक मूल्याअभावी मानवी जीवन समाज दिशाहीन होईल, सैरभैरता वाढेल, समाजाचा समतोल बिघडेल हे घडू नाही म्हणून शिक्षणाचे योगदान फार मोठे आहे हे विसरता कामा नये. भारताने आजपर्यंत जगाला हेवा वाटावा अशा सांभाळलेल्या परंपरा, अभिमान वाटावा असा वारसा आणि मार्गदर्शक अशी संस्कृती केवळ मूल्य शिक्षणात समावलेली आहे. त्याद्वारा समाज आपला विकास आणि राष्ट्र उन्नती साधत आहे. हे निर्विवाद सत्य आहे.

## lanHkZ %&

१) तरूणंना आवाहन, स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण मठ नागपूर, आठवी आवृत्ती २००६, पृ १30
२) शिक्षणातील थोर विचारवंत, प्राचार्य रा. तु. भगत, चैतन्य प्रकाशन, साकोळी कॉर्नर, कोल्हापूर, तृतीय आवृत्ती २००९, पृ. २०२
३) उद्योन्मुख भारतीय समाजातील शिक्षण, संपा–डॉ. सुरेश करंदीकर, मीना मंगरूळकर, फडके प्रकाशन, कोल्हापूर, व्दितीय आवृत्ती, पृ. ९
४) तुम्ही–आम्ही पालक, संपा–हरीश बुटले, बदलत्या काळातील शिक्षकांची भूमिका, बहुरूपी शिक्षक – डॉ. न. म. जोशी, सप्टें २०१७ पृ, ८
५) उद्योन्मुख भारतीय समाजातील शिक्षण, संपा–डॉ. सुरेश करंदीकर, मीना मंगरूळकर, पृ.४६
६) राजर्षी शाहू छत्रपती जीवन व कार्य, डॉ. जयसिंगराव पवार, ताराराणी बुक सर्व्हिस, कोल्हापूर, प्रथमावृत्ती २०१४ पृ. ९६
७) तत्रैव पृ. २१६
८) उद्योन्मुख भारतीय समाजातील शिक्षण संपा–डॉ. सुरेश करंदीकर, मीना मंगरूळकर – पृ. ७३
९) तत्रैव पृ. ७३

# सामाजिक परिवर्तनात शिक्षणाची भूमिका

**प्रा. शारदा शामराव पाटील .**
कर्मवीर हिरे महाविद्यालय, गारगोटी
शिक्षणशास्त्रविभाग

**गोषवारा**

मानव हा समाजप्रिय प्राणी आहे. कोणत्याही समाजात सतत बदल होत असतो. काही बदल हे विधायक तर काही बदल विघातक असतात. समाजाला जर प्रगतीपथावर न्यायचं असेल तर समाजात विधायक बदल झाले पाहिजेत. मग ते आर्थिक असो वा सामाजिक, राजकीय, नैतिक. हे विधायक परिवर्तन जर घडवायचे असेल तर त्यासाठी जाणीवपूर्वक प्रयत्न करावे लागतात. असे प्रयत्न शासन, सेवाभावी संस्था, समाजसुधारक, वैज्ञानिक, संत-महात्मे करत असतात. याशिवाय शिक्षण ही समाज परिवर्तन घडवणारी फार मोठी शक्ती आहे. शिक्षणामुळे व्यक्तीचे त्याचबरोबर समाजाचेही परिवर्तन होते. समाजातील सर्व घटक बदलतात. त्यामुळे समाजाची प्रगती होते. प्रस्तुत शोधनिबंधात शिक्षण, समाज ,औद्योगिकीकरण, ग्रामीण पुनर्रचना, शहरीकरण, कुटुंब-विवाह संस्थेत बदल यासंदर्भात चर्चा केली आहे.

**प्रस्तावना** -

समाज परिवर्तनशील असतो.समाजात अनेक प्रकारचे बदल घडून येत असतात. भौतिक पर्यावरण , जैविक परिस्थिती, यांत्रिक व तांत्रिक शोध, सांस्कृतिक घटक सामाजिक परिवर्तनाला कारणीभूत आहेत. आधुनिक युगात शिक्षण हे देखील सामाजिक परिवर्तनाचे प्रमुख साधन आहे असे अनेक शिक्षण तज्ञ म्हणतात .समाज परिवर्तनाचे उद्दिष्ट समोर ठेवूनते साध्य करण्यासाठी इष्ट दिशेने व प्रामाणिकपणे कार्य करणाऱ्या ज्या ज्या शक्ती व संस्था आहेत त्यांना शिक्षण उत्तम प्रकारे सहकार्य देऊ शकते. शिक्षण हे शासनसंस्थे प्रमाणे प्रत्यक्ष परिवर्तन घडवून आणू शकत नाही परंतु कोणत्याही क्षेत्रातील परिवर्तनाला आवश्यक व पूरक अशी वैचारिक पार्श्वभूमी निर्माण करण्याचे कार्य शिक्षण करते. म्हणूनच शिक्षण हे समाज परिवर्तनाचे महत्त्वाचे साधन मानले आहे.

**संशोधन संज्ञा-** शिक्षण, समाज परिवर्तन, औद्योगीकरण, शहरीकरण, कुटुंब, विवाह.

**संशोधन पद्धती-**

प्रस्तुत शोधनिबंधासाठी दुय्यम सामग्रीचा वापर करण्यात आलेला आहे. त्यामध्ये प्रामुख्याने पुस्तके, वर्तमानपत्रे, इंटरनेटवरील वेबसाईट इत्यादींचा उपयोग करण्यात आलेला आहे.

**उद्दिष्टे-**

१. शिक्षणामुळे समाजात कोणते परिवर्तन घडते याची माहिती करून देणे.

२. आधुनिक समाजाचे वास्तव स्वरूप स्पष्ट करणे.

३. शहरीकरणामुळे कुटुंब रचनेत कोणता बदल झाला ते सांगणे.

४. शिक्षणामुळे स्त्रियांच्या दर्जात कोणत्या सुधारणा झाल्या हे स्पष्ट करणे.

५. शिक्षणामुळे ग्रामीण पुनर्रचना कशी झाली ते स्पष्ट करणे.

६. सामाजिक परिवर्तनात शिक्षणाची भूमिका स्पष्ट करणे.

**शिक्षण आणि समाज**

भारतात शिक्षण आणि विकास यांचा चांगला संबंध प्रस्थापित झाला आहे.७ते १४या वयोगटातील सर्वांना प्राथमिक शिक्षण सक्तीचे व मोफत केले आहे. महाविद्यालयीन, तंत्र व व्यवसाय शिक्षण यातही खूप वाढ झाली आहे.प्रौढ साक्षरता मोहीम देशात खूप मोठ्या प्रमाणात राबवली गेली. देशाच्या विकासात संख्यात्मक वाढ कमी असली तरी गुणात्मक वाढ मोठ्या प्रमाणात झाली आहे. 'लोकशाही' देशात आज खऱ्या अर्थाने रुजत आहे. परंपरागत आचार-विचार, रूढीपासून देश हळूहळू मुक्त होत आहे लोकसंख्येला पूर्णपणे आळा बसला नसला तरी तिचा वेग रोखण्याचा प्रयत्न यशस्वी होत आहे. हे सर्व होत असताना त्यामध्ये अडथळे भरपूर आले पण मार्गातील अडथळे दूर करण्याचे काम शिक्षणाने होत आहे.

**शिक्षण आणि औद्योगिकीकरण-**

स्वातंत्र्योत्तर काळात भारतात औद्योगिकीकरणाला सुरुवात झाली. औद्योगिकरणामुळे अनेक उद्योगधंदे देशात मोठ्या प्रमाणावर सुरू झाल्यामुळे कारखान्यांसाठी तसेच उद्योगांसाठी आवश्यक असणारे कामगार, तंत्रज्ञ यांची जरूर भासू लागली. म्हणूनदेशात तंत्रनिकेतने आणि अभियांत्रिकी महाविद्यालय सुरू झाली. त्यातून अनेक तंत्रज्ञ व अभियंते तयार झाले. त्यांना रोजगार मिळाले. स्वयंरोजगार वाढले. व्यापारात वाढ झाली. आयात निर्यात वाढली. एकूणच देशातउद्योग- धंद्यांना ऊर्जितावस्था प्राप्त झाली.

**शहरीकरण-** ग्रामीण भागातील लोक अनेक कारणास्तव शहरात येऊन राहतात. हे स्थलांतर मोठ्या प्रमाणात होत आहे. आपल्या मुलांचे भवितव्यचांगले घडावे, त्यांना उत्तम शिक्षण मिळावे, नोकरी मिळावी यासाठी अनेक लोक शहराकडे वळतात. शहरातील क्षेत्र मर्यादित असल्यामुळे शहरात जागेची टंचाई भासू लागते. जागांचे दर गगनाला भिडतात. त्यामुळे उंच उंच इमारती बांधल्या जातात. त्याचबरोबर ज्यांची आर्थिक परिस्थिती चांगली नसते अशा लोकांना झोपडपट्टीचा आश्रय घ्यावा लागतो. त्यामुळे अनेक समस्या निर्माण होतात.

**कुटुंब रचनेत बदल-** शहरीकरणामुळे परंपरागत कुटुंब रचनेत बदल होत आहे. एकत्र कुटुंब पद्धतीची जागा विभक्त कुटुंब पद्धतीने घेतली आहे. त्यामुळे घरातील वृद्धांची समस्या निर्माण झाली. त्यांच्यासाठी गावाकडचे घर किंवा वृद्धाश्रम याशिवाय पर्याय उरला नाही. शहरात राहणाऱ्या कुटुंबात पती-पत्नी दोघेही नोकरी करतात. त्यामुळे स्त्रियांना आर्थिक स्वावलंबनमिळते. तिच्या मताला महत्त्व प्राप्त होत आहे. पुरुष प्रधान संस्कृती हळूहळू कमी होऊ लागलेली आहे.

**विवाह संस्थेत बदल-** विवाह संस्थेच्या बाबतीतही शिक्षणामुळे अनेक परिवर्तने झालेली दिसून येतात. बालविवाहाचे ऐवजी प्रौढविवाह होऊ लागले आहेत. आंतरजातीय विवाहांचे प्रमाण वाढत आहे. नोकरी करणारी मुलगी सून म्हणून स्वीकारण्याकडे कल होऊ लागलेला आहे

**बदललेले स्त्री जीवन-**आज मुलींच्या शिक्षणाचे प्रमाण हे वाढताना दिसत आहे. अनेक आई-वडील आपल्या मुलींना उत्तम प्रकारचे उच्चशिक्षण देताना दिसत आहेत. त्यामुळे अनेक क्षेत्रात स्त्रिया अधिकारपदे भूषवताना

दिसत आहेत. स्त्रीचा अर्थार्जनात सहभाग वाढल्यामुळे तिचा दर्जा सुधारला आहे. आई वडिलांना आता म्हातारपणी मुलांप्रमाणे मुलीचाही आधार वाटू लागला आहे. राजकारण व समाजकारणात आता स्त्रीसक्रिय सहभागी होऊ लागलेली आहे. नोकरीस जात असल्यामुळे स्त्रीच्या परंपरागत जबाबदाऱ्या कमी होत आहेत. प्रसार माध्यमांमुळे तिच्या ज्ञानाच्या कक्षा विस्तारल्या आहेत. स्त्रीआपल्याला समाजात पुरुषांबरोबर स्थान मिळावे यासाठी प्रयत्नशील आहे.

**ग्रामीण पुनर्रचना-** ग्रामीण भागात शिक्षणामुळे परिवर्तनाला सुरुवात झाली. परंपरागत जीवनपद्धती संपुष्टात आली. खेड्यांचे स्वरूप पालटू लागले. अनेक योजनांमुळे शेती सुधारू लागली. बारमाही पाण्यामुळे बरीच जमीन पिकाखाली आली. त्यामुळे उत्पन्न वाढले. लोकांचे राहणीमानात फरक होऊ लागला. बँकाकडून शेतीसाठी आर्थिक उपलब्धता मिळाली. त्यामुळे शोषण करणाऱ्या सावकारांना आळा बसला. ग्रामीण भागात इंग्रजी शिक्षणाची सोय झाली. त्यामुळे वातावरण बदलू लागले. खेडेगावात नवीन व्यवसायांचा प्रारंभ झाला. नवीन कायद्याची जाणीव ग्रामीण जनतेला हळूहळू होऊ लागली. लोकशाही मूल्यांचा ग्रामीण जीवनात प्रसार झाला.

**सामाजिक परिवर्तनात शिक्षणाची भूमिका-** सामाजिक परिवर्तन आणि शिक्षण यांचा निकटचा संबंध आहे . सामाजिक बदलाच्या प्रक्रियेत शिक्षणाला महत्त्वाचे स्थान आहे. शिक्षणाच्या मदतीने सामाजिक बदलाची पार्श्वभूमी तयार होते. समाजात काही प्रमाणात बदल घडून आले की शिक्षणाच्याच माध्यमातून त्याचा प्रसार केला जातो व त्यात सुसंगतता आणली जाते. शिक्षणाने केलेले संस्कार दूरगामी व चिरस्थायी असतात. त्यामुळे सामाजिक परिवर्तनाच्या संबंधात शिक्षणाला अत्यंत महत्त्वाची भूमिका पार पाडावी लागते. शिक्षणाचा कालखंड सामान्यतः दहा ते पंधरा वर्षाचा असतो. नवसमाज निर्मितीला आवश्यक अशी मुल्ये, विचार व सवयी निर्माण करून पिढी घडविण्याचे कार्य शिक्षण करते.

शाळा-महाविद्यालयात लोकशाहीच्या तत्त्वानुसार कार्य करण्यावर भर दिल्यास लोकशाहीचे महत्त्व व आवश्यकता विद्यार्थ्यांच्या लक्षात येईल. वर्ग प्रतिनिधीच्या निवडणुकीमुळे आपल्या मताला महत्त्व आहे याची जाणीव विद्यार्थ्यांना होते. तसेच त्यांच्या नेतृत्व गुणांचा विकास होतो.

सामाजिक बदल घडवून आणण्याच्या संदर्भात शिक्षणाला एक महत्त्वाचे साधन म्हणून कार्य करावे लागते. वेगवेगळ्या विषयात समाज- सुधारक यांच्या कार्याचा विद्यार्थी अभ्यास करतो. सामाजिक समस्या कोणत्या आहेत त्यावर कोणते उपाय करावेत यासंबंधी चर्चा करतो, विचार करतो. रूढी, परंपरा, धर्म, रीतीरिवाज यांचाही अभ्यास समाजपरिवर्तनासाठी मोलाचा ठरतो.

धर्मभेद, जातिभेद यासंबंधी विद्यार्थ्यांना केवळ सांगण्यापेक्षा हे भेद आता मानले जात नाहीत. त्याचे पाठ त्याला शाळा-महाविद्यालयात प्रत्यक्ष पहावयास मिळाले तर त्यातून संकुचितपणा नाहीसा होण्यास निश्चित मदत होते.

एकविसावे शतक हे विज्ञान व संगणकाचे आहे. शिक्षणाच्या माध्यमातून तंत्र विकासाकडे तसेच विज्ञाननिष्ठतेकडे लक्ष पुरवता येते. वैज्ञानिक दृष्टिकोन समाजाला नवजीवन प्राप्त करून देऊ शकतो. त्यासाठी योग्य ते वातावरण शाळा, महाविद्यालये विविध उपक्रमातून निर्माण करू शकतात. नव्या वैज्ञानिक जीवनपद्धतीचा स्वीकार करणे शिक्षणामुळे सहज शक्य होते.

**निष्कर्ष**

१. शिक्षणामुळे समाजात विधायक परिवर्तन घडते.

२. शहरीकरणामुळे कुटुंबरचनेत बदल झालेला आहे.

३. शिक्षणामुळे स्त्रियांचा दर्जा सुधारला आहे.

४. शिक्षणामुळेग्रामीण भागातील लोकांच्या राहणीमानात सुधारणा झालेली आहे.

५ . सामाजिक परिवर्तनात शिक्षण महत्त्वाची भूमिका पार पाडत आहे.

**समारोप**

शिक्षणामुळे व्यक्तीचे वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, नैतिक, अध्यात्मिक जीवन संपन्न बनवता येते. त्यामुळे समाजाचा व पर्यायाने राष्ट्राचा विकास साधता येतो. समाजाचा विकास साधण्यासाठी संपन्न व प्रेरक नेतृत्वाची गरज असते. प्रभावी नेतृत्व शिक्षणातून उदयास येते. शिक्षणातून मिळालेले नवे विचार, मते तसेच दृष्टीकोण समाजात रुजवण्याचे काम नेते करू शकतात. त्यातून समाज परिवर्तन घडते. शाळा व महाविद्यालयातील अभ्यासानुवर्ती उपक्रमातून विद्यार्थ्यांच्या अंगी असलेल्या विविध गुणांचा परिपोष होतो. सहकार्य, बंधुता,सहानुभूती,सहिष्णुता, राष्ट्रप्रेम, धर्मनिरपेक्षता, विज्ञाननिष्ठा यासारखी मूल्ये विद्यार्थ्यात संक्रमित होतात. यातून समाजपरिवर्तन घडून विकास साधता येतो.

**संदर्भ**

१. डॉ. सुरेश करंदीकर, मीना मंगरूळकर - उदयोन्मुख भारतीय समाजातील शिक्षण: फडके प्रकाशन, कोल्हापूर (ऑक्टोबर २०१०)

२. डॉ. कुंडले मधुकर बाळकृष्ण- शैक्षणिक तत्वज्ञान व शैक्षणिक समाजशास्त्र: पुणे ३०(१९९०)

३. डॉ. सुरेश करंदीकर - शिक्षण आणि भारतीय समाज: फडके प्रकाशन कोल्हापूर (१९९५)

४. इंटरनेट वेबसाईट

ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com

# देश–कोकणचा रखवालदार : किल्ले प्रचितगड

**डॉ. डी.आर पाटील,**
देशभक्त आनंदराव बळवंतराव नाईक आर्टस् ॲण्ड सायन्स कॉलेज चिखली,
ता.शिराळा, जि.सांगली.

छत्रपती शिवाजी महाराजांच्या कालखंडात गड–कोटांना अनन्यसाधारण महत्त्व होते. त्यांनी किल्ल्यांच्या माध्यमातून राज्य अभेद्य ठेवले म्हणूनच राजांना ‘ किल्ल्यांचा राजा ’ (The King of Fort) असे संबोधले जाते. खरे तर प्राचीन काळापासूनच किल्ल्यांना महत्व होते. परंतु मध्ययुगीन काळापासून किल्ल्यांना अधिक महत्त्व प्राप्त झाले. छत्रपती शिवाजी महाराजांनी दुर्गम व अवघड जागा निवडून किल्ले बांधले. विशेषत: सह्याद्रीच्या कपारीतील किल्ल्यांची भव्यता व भक्कमता अधिक आहे. यापैकीच एक असलेला देश व कोकणचा रखवालदार म्हणजे किल्ले प्रचितगड होय. कोल्हापूर जिल्ह्यातील शाहूवाडी, सांगली जिल्ह्यातील शिराळा, रत्नागिरी जिल्ह्यातील संगमेश्वर व सातारा जिल्ह्यातील पाटण तालुक्यांच्या हद्दीवर हा छोटा किल्ला वसला आहे. सध्या सह्याद्री व्याघ्र प्रकल्पामुळे या किल्ल्यावर परवानगी शिवाय जाता येत नाही. घनदाट जंगल, खोल दऱ्या यामुळे हा किल्ला अधिक दुर्गम व अवघड आहे. मराठा काळात याच त्याच्या खासियतेमुळे सैनिकीदृष्ट्या अत्यंत महत्त्वाचा म्हणून हा किल्ला ओळखला जात होता.

**प्रचितगडचे वैशिष्ट्यपूर्ण स्थान, बांधणी व मार्ग :-**

सांगली जिल्ह्याच्या अगदी पश्चिम टोकाला, कोल्हापूर जिल्ह्याच्या उत्तर टोकाला तर रत्नागिरी जिल्ह्याच्या आग्नेयेस आणि साताऱ्याच्या दक्षिणेस हा किल्ला वैशिष्ट्यपूर्ण असा वसला आहे. सह्याद्रीच्या पर्वतरांगेत हा किल्ला वसल्याने व देश आणि कोकणच्या हद्दीवर असल्याने या किल्ल्यास भौगोलिकदृष्ट्या इतिहासात अत्यंत महत्वाचे स्थान आहे. गडाच्या तीन बाजू तासलेल्या कड्यासारख्या आहेत. यामुळे या किल्ल्याचे महत्त्व अधिक अधोरेखित होते. गडावरून तळकोकणाचा शेकडो मैलाचा परिसर नजरेखाली येतो. त्याचबरोबर तेंव्हाच्या देशावर अर्थात सध्याच्या कोल्हापूर, सांगली, साताररच्या प्रदेशावरही लक्ष ठेवता येत होते. विशाळगड, रांगणा ते मकरंदगड मधील प्रदेशावरही तेंव्हा या किल्ल्यावरून लक्ष ठेवले जायचे. प्रचितगडाचे असे वैशिष्ट्यपूर्ण भौगोलिक स्थान असल्याने या गडाला विशेषत: शिव काळात अत्यंत महत्त्वाचे स्थान होते.

प्रचितगडाची रचना ही वैशिष्ट्यपूर्ण अशी आहे. गडाची लांबी सुमारे ४०० मीटर तर रूंदी सुमारे ५० मीटर आहे. गडाच्या तिन्ही बाजू ताशीव असल्याने गड भक्कम व तितकाच अवघड आहे. गडावर पोहचण्यासाठी एकूण पाच मार्ग आहेत. परंतु सध्या सह्याद्री व्याघ्र प्रकल्पामध्ये हा किल्ला येत असल्याने गडावर जाण्यास परवानगी नाही. खास परवानगी घेऊनच येथे जाता येते. शिवाय या व्याघ्र प्रकल्पात सध्या पट्टेरी वाघ, बिबटे, गवे, कोल्हे, रानकुत्रे, अस्वल असे हिंस्त्र प्राणी असल्याने सध्याचा प्रवास अवघड, अडचणीचा व तितकाच जिवघेणा आहे. या जोडीलाच घनदाट जंगल असल्याने दिशा व वाट चुकल्यास मोठी फसगत होवू शकते.

सध्या गडावर पर्यटकांना जाणे बंद आहे. खरे तर येथे पर्यटक कमी पण ट्रेकर, इतिहासप्रेमी आणि साहसी लोकच जास्त यायचे आणि गडाची दुर्गमता अनुभवायचे. या गडावर चढता-उतरताना काही साहसी व निष्णात लोकांनाही आपला प्राण गमवावा लागला आहे. या गडाची बांधणी कोणी केली याविषयी निश्चित माहिती मिळत नाही. मात्र हा किल्ला छत्रपती शिवाजी महाराजांच्या ताब्यात असल्याने या किल्ल्यास अत्यंत महत्वाचे स्थान आहे. गडावर कोणतेही जंगली श्वापद पोहोचणार नाही अथवा हल्ला करणार नाही अशी वैशिष्ट्यपूर्ण रचना या गडाची आहे. सध्या हा गड निर्मनुष्य असाच असला तरी आपल्या भव्यतेची आणि भक्कमतेची साक्ष देतो.

प्रचितगडावरून दक्षिणेकडील महीपतगड, सुमारगड दिसतो. उत्तरेला गहिवरगड व कोकणचा नायरी, संगमेश्वरचा सुंदर देखावा दिसतो. पूर्वेला असणारा तिवऱ्यांचा घेरा इतिहासाची साक्ष देतो. छत्रपती संभाजी महाराजांना तिवऱ्याच्या घेऱ्यातूनच सिध्देश्वर घाटमार्गे येऊन मुघल सरदार शेख निजाम उर्फ मुकर्रबखान याने संगमेश्वर मुक्कामी कैद केली होती.

**छत्रपती शिवाजी महाराज, छत्रपती संभाजी महाराज व प्रचितगड :**

छत्रपती शिवाजी महाराजांना एकूण तीन ठिकाणी सोन्याच्या मोहरा सापडल्या असे मानले जाते. पहिल्यांदा तोरणा किल्ल्यावर, दुसऱ्या वेळी कल्याणच्या दुर्गारीच्या किल्ल्यावर तर तिसऱ्यावेळी प्रचितगडावर मोहरांनी भरलेला हंडा सापडला होता असे मानले जाते. मात्र इतिहासकारांमध्ये याविषयी मतभेद आहेत. छत्रपतींनी हा किल्ला २९ एप्रिल १६६१ ला जिंकला होता. छत्रपती शिवाजी महाराजांनी आपल्याकडील बराचसा खजिना या किल्ल्यावर लपवून ठेवला होता. कारण या किल्ल्यावर कोणत्याही बाह्य शत्रूंना चढाई करणे सोपे नव्हते. या किल्ल्याचे भौगोलिक स्थान पाहता अन्य कोणत्याही शत्रूला या किल्ल्यावर प्रवेश करणे केवळ अशक्य होते. छत्रपती शिवाजी महाराजांनी या किल्ल्यावर खजिना लपवून ठेवल्याने या किल्ल्याला खजिन्याचा किल्ला असेही संबोधले जात होते. शिवछत्रपतींच्या पदस्पर्शाने हा किल्ला पुनित झाला आहे.

छत्रपती शिवाजी महाराजांचा राज्याभिषेक ६ जून १६७४ ला झाल्यानंतर महाराजांनी दक्षिण दिग्विजय म्हणून कर्नाटकची मोहिम निश्चित केली. तेंव्हा या मोहीमेत युवराज संभाजी राजांनाही आघाडीवर सामील करून घेण्याचे ठरले. मात्र या मोहिमेत संभाजी महाराजांना दगाफटका होण्याचा सुगावा हेरखात्याचे प्रमुख बहिर्जी नाईक यांच्यामार्फत लागल्याने संभाजी राजांना या मोहिमेतून वगळून येसुबाईंचे माहेर असलेल्या श्रृंगारपूर येथे तळकोकणात पाठवण्यात आले. प्रचितगडाच्या पायथ्याशीच श्रृंगारपूर असल्याने संभाजी राजांचा प्रचितगडाशी संबंध आला होता.

**प्रचितगड आणि ब्रिटीश :**

इ.स. १८१७ मध्ये हा अवघड प्रचितगड चतुरसिंग या गोसाव्याने हा किल्ला जिंकल्याचा उल्लेख इतिहासात आढळतो. हा स्वत:ला सातारचा दुसऱ्या शाहू महाराजांचा लहान भाऊ समजत असे. मात्र हा तोतया चतुरसिंग होता. खऱ्या चतुरसिंगास पेशव्यांनी इ.स. १८१२ च्या सुमारास कैद करून कोकणातील कांगोरी किल्ल्यावर ठेवले होते. पुढे १८१८ मध्ये त्याचा मृत्यू झाला. मात्र तत्पूर्वी इ.स. १८१७ मध्ये आपण कैदेतून सुटून आलो आहोत असे सांगून तोतया चतुरसिंगने सैन्यासह वेशांतर करून प्रचितगड ताब्यात घेतला होता.

कर्नल कॅनिंगहॅम याने हा किल्ला ताब्यात घेण्यासाठी योजना आखली व त्यानुसार कार्यवाही केली. चतुरसिंगाने हा किल्ला आपल्या ताब्यात द्यावा असा निरोप त्याला दिला. यासाठी कॅनिंगहॅम या ब्रिटीश अधिकाऱ्याने

कॅप्टन स्पिल्हर यास चतुरसिंगाच्या भेटीस पाठवले होते. पहिल्यांदा चतुरसिंग किल्ला ब्रिटीशांच्या ताब्यात देण्यास तयार झाला. परंतु नंतर त्याने कारस्थान केले. ब्रिटीशांनी या किल्ल्याच्या दरवाज्यावर तोफांचा मारा केला. बऱ्याच शिकस्तीनंतर हा किल्ला ब्रिटीशांच्या ताब्यात आला, हा दिवस १० जून १८१८ होता. किल्ल्याबरोबरच तोतया चतुरसिंगही कुटूंब कबिल्यासह ब्रिटीशांच्या कैदेत सापडला.

**किल्ल्याची सद्यस्थिती :**

सद्यस्थितीत किल्ल्याची देखभालीअभावी पडझड होत चालली आहे. १९६८ च्या भूकंपाने किल्ल्याची मोठी हानी झाली. दरवाजाही ढासळला आहे. काही वर्षापूर्वी विश्वास उद्योग समुहाचे अध्यक्ष स्वर्गीय फत्तेसिंगराव नाईक यांनी ६० फुट उंचीची लोखंडी शिडी याठिकाणी जाण्यासाठी उभी केली आहे. किल्ल्यावर भवानीदेवीचे भग्नावस्थेतील मंदीर आहे. देवीची मूर्ती व चौथरा शाबूत आहेत. गडावर चार तोफा आहेत. गडाच्या पूर्वेला असणाऱ्या पाण्याच्या दोन टाक्या वर्षभर पाण्याने भरलेल्या असतात. गडावर जीवंत पाण्याच्या अकरा टाक्या आहेत. त्या साधारण ३० फूट खोल आहेत. पडका महाल, धान्य साठवण्याचे पेव ही येथे आढळून येतात.

**निष्कर्ष :**

या इतिहास प्रसिध्द प्रचितगडाची दुर्गमता पाहिल्यानंतर गडाचा उपयोग अल्प वास्तव्य, देश व कोकणावर लक्ष ठेवण्यासाठी आणि खजिना लपवून ठेवण्यासाठीच केला जात असावा. सह्याद्री व्याघ्र प्रकल्पामुळे कोल्हापूर, सांगली, सातारा जिल्ह्याच्या हद्दीतून गडावर जाणे जवळपास अवघड आहे. वन्य विभागाचे नियम व शर्थी पाहता येथून यापुढे प्रचितगड भ्रमंती करणे शक्य नाही. मात्र रत्नागिरी जिल्ह्यातील संगमेश्वर तालुक्यात असलेल्या श्रृंगारपूर येथून ऐतिहासिक पर्यटनासाठी परवानगी देवून अनेकांना अज्ञात असलेला हा किल्ला पाहण्यासाठी परवानगी मिळणे गरजेचे आहे. शिवाय या गडाच्या डागडुजी व संवर्धन होण्यासाठी पुरातत्व खात्याने विशेष प्रयत्न करणे गरजेचे आहे. जोडीला पर्यटन महामंडळानेही प्रयत्न करणे गरजेचे आहे.

**संदर्भ :**

१) चौधरी कि.का., सांगली जिल्हा गॅझेटीअर, १९६९.
२) चिले भगवान, दुर्गसंपदा महाराष्ट्राची, कोल्हापूर, २००९.
३) डॉ. हवलदार तानाजी, शिवकालीन दुर्लक्षीत किल्ला : प्रचितगड (प्रकाशित शोधनिबंध), The Trends in Historiography with Special References to Deccan, मार्च २०१३.
४) चांदोली अभयारण्य माहिती पुस्तिका, वनविभाग, महाराष्ट्र राज्य.
५) दैनिक तरूण भारत, २००५.
६) दैनिक सकाळ, २ जून, २००२.

# सांस्कृतिक विकासातील शिक्षणाचे योगदान

प्रा. शुभांगी राहूल जाधव
कर्मवीर हिरे महाविद्यालय गारगोटी
ता. भुदरगड, जि. कोल्हापूर

प्रस्तावना :–

शिक्षण ही जीवनभर चालणारी प्रक्रिया आहे. शिक्षण म्हणजे ज्ञान असे म्हंटले जाते. येथे ज्ञानाचा अर्थ समजून घेतला पाहिजेत. ज्ञान म्हणजे फक्त पुस्तकी ज्ञान किंवा शब्दज्ञान असा अर्थ होत नाही. तर यामध्ये बौध्दीक, नैतिक, अध्यात्मिक अंगाचा, मूल्यांचा समावेश होतो. त्याचप्रमाणे सांस्कृतिक विकासांचा देखील समावेश होतो. शिक्षण म्हंणजे समजणे, शिक्षण म्हणजे स्वत:चा विचार करणे होय. माणसाला एक आदर्श जीवन जगण्यासाठी शिक्षणाची खूप गरज असते. शिक्षणामुळे आत्मविश्वास निर्माण होतो. शिक्षण म्हणजे बदल किंवा विकास होय.

उद्दीष्टे :–

१) शिक्षण या संकल्पनेचा अभ्यास करणे.

२) सांस्कृतिक विकास या संकल्पनेचा अभ्यास करणे.

३) सांस्कृतिक विकासातील शिक्षणांची योगदान अभ्यासणे

अभ्यासपध्दती :–

प्रस्तुत संशोधनासाठी दुय्यम साधनांचा वापर करण्यात आला आहे. माहितीचे संकलन संदर्भग्रंथ, मासिके, पुस्तके, राष्ट्रीय व स्थानिक वर्तमानपत्रे तसेच विविध संकेतस्थळांचा वापर करण्यात आला आहे.

विषयविवेचन :–

१) शिक्षण :– आपले भविष्य घडविण्याचे महत्वाचे साधन म्हणजे शिक्षण होय. शिक्षण हे सामाजपरिवर्तनाचे प्रभावी माध्यम आहे. शिक्षण म्हणजे संस्कार होय. संस्कार करून घडवून आणलेला बदल म्हणजे शिक्षण होय. शिक्षणामुळे संपुर्ण व्यक्तिमत्त्वाचा विकास घडून येतो. शिक्षण ही एक व्यापक प्रक्रिया आहे. शिक्षणाचे प्रमुख ध्येय म्हणजे ज्ञानदान, विद्यार्थ्यांना ज्ञानसमृध्द करणे. नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विदयेत असे भगवान श्रीकृष्ण गीतेत म्हणतात तर ज्ञदवूसमकहम पे चवूमत असे बेकन म्हणतो.

महात्मा गांधी :–

“माणसाच्या शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक अंगामधील उत्कृष्टतेचा विकास व अभिव्यक्ती म्हणजे शिक्षण होय.”

प्लेटो :–

“प्रत्येक माणसात काही विशिष्ट प्रमाणात जन्मजात, निसर्गदत्त शक्ती असतात. त्यांना जागृत करून पुर्णत्वाप्रत नेणे म्हणजे शिक्षण.”

जॉन ड्युई :–

शिक्षण म्हणजे अनुभवाचे पुन:संयोजन होय.

सॉक्रेटीस :–

भ्रमनिरास व सत्यान्वेषण म्हणजे शिक्षण होय.

रविंद्रनाथ टागोर :—

उच्च प्रतीचे शिक्षण ते की जे केवळ माहितीच देत नाही, तर सर्व चराचर सृष्टीशी आपल्या जीवनाचा मेळ घालून देते.

मनुष्यात अधिपासूनच असणाऱ्या पुर्णतेचा अविष्कार म्हणजे शिक्षण होय. शिक्षण म्हणजे बदल होय. पण तो बदल इष्ट व सुयोग्यय दिशेनेच घडून न आणलेला असावा. शिक्षण म्हणजे उपदेश करणे व बदल घडवून आणणे. व्यक्तीमध्ये संस्कार करून घडवून आणलेला बदल होय. माणसातील सुप्त बुध्दीमत्ता गुण बाहेर काढणे म्हणजे शिक्षण होय. शिक्षण हे मानसिक, वैचारिक, शारिरीक व नैतिक विकासाची कला आहे. मुलाचा विकास हा स्वयंचालीत होत नाही. त्यासाठी विशेष ज्ञान व अनुभवाची गरज आहे. मुलामधील सुप्त गुण व बुध्दिमत्तेचा उत्तम विकास साधण्या अगोदर त्यांना ज्ञान व अनुभव देण्याची आवश्यकता आहे.

मानवाचा सर्वांगीण विकास म्हणजे शिक्षण होय. शिक्षण ही दुहेरी प्रक्रिया आहे. शिक्षण ही जीवन भर चालणारी प्रक्रिया आहे. शिक्षणाशिवाय जीवनहे अर्थहीन आहे. संपुर्ण मानव जातीसाठी शिक्षण ही एक शक्ती आहे. शिक्षणामुळे व्यक्ती आत्मनिर्भर व निस्वार्थी बनू शकते. शिक्षण हे प्रगतीचे पहिले पाऊल आहे. शिक्षण म्हणजे स्व—समाधान होय. शिक्षण हे जीवन आहे. शिक्षण ही एक पध्दतशीर प्रक्रिया आहे. शिक्षण ही एक कला आहे. दैनंदिन जीवनामध्ये येणाऱ्या समस्यांचे निराकरण करण्याची शक्ती शिक्षण देते.

सांस्कृतिक विकासात शिक्षणाचे योगदान :—

सांकृतिक विकास व शिक्षण याचा निकट संबंध आहे. सांस्कृतिक विकासात कला, साहित्य विविध प्रकारच्या रूढी, परंपरा, चालिरीती, विचार, श्रध्दा मूल्ये यांचा समावेश होतो. शिक्षणाच्या माध्यमातून सांस्कृतिक विकासाचे शिक्षण मिळते. आपल्या संस्कृतिचा प्रसार होतो. इतर संस्कृतीची देखील माहिती मिळते. शारिरीक, भावनिक, ज्ञानात्मक, बौध्दीक, विकासाप्रमाणे सांस्कृतिक विकास देखील होतो. सांस्कृतिक विकासाच्या शिक्षणामुळे कलागुणांचा विकास होतो.

सांस्कृतिक विकासाच्या शिक्षणामुळे सांस्कृतिक मुल्ये मूलांच्या मनावर ठसवली जातात. आपल्या संस्कृती विषयी आत्मीयता, आदर, अभिमान मनात निर्माण होतो. त्याचप्रमाणे इतर देशातील संस्कृतीची माहिती मिळते. शिक्षाणामुळे विद्यार्थी सक्षम बनला पाहिजे. त्यांच्या व्यक्तिमत्वाचा सर्वांगीण विकास झाला पाहिजे. हस्तकाम, हस्तकला, बैठे खेळ, पारंपारिक खेळ, क्रिडांगणावर किंवा मैदानावर नियमितपणे खेळ, योगासने, वेगवेगळया कला नाट्य, चित्रकला, साहित्य यांचे विद्यार्थ्यांना शिक्षण द्यावे. स्नेहसंमेलनातून अभिनय, चित्रकला, रंगकाम, मुर्तिकला, संगीत, वक्तृत्व, सुत्रसंचालन, कार्यशाळा, शिबिरे, गिर्यारोहणासाठी न्यावे, सहभोजनाचा अनुभव द्यावा.

स्वभाषेतून बोलणे, संभाषण यांचा अनुभव द्यावा. अभिनय, कला प्रदर्शित करण्यास वाव द्यावा. सामाजिक उपक्रम राबवावेत. ज्ञान—विज्ञानावर आधारित एका नव्या विश्वकल्याणकारी संस्कृतीची देणगी जगाला देण्याची तयारी भारताने दखविली पाहिजे. विविध उपक्रमांमुळे सांस्कृतिक विकास तर होतोच पण शिक्षण पुढील मुल्ये देतो.

१) प्रामाणिकपणा  २) सहकारी वृत्ती  ३) संघप्रवृत्ती
४) आज्ञापालन  ५) खरे बोलणे

सांस्कृतिक शिक्षणामुळे विविधतेत एकतेचा विकास होतो. सांस्कृतिक वारसा पिढ्यापुढे पाठविला जातो. संस्कृती ही स्थिर नाही व बदल ही सततची प्रक्रिया आहे. आधुनिकीकरणामुळे संस्कृतीवर परिणाम घडून येतो.

भारतातील सांस्कृतिक वारसा न विचारात घेत भारतात एक परकी शिक्षण पध्दती सुरू केली गेली. ती भारतीय सांस्कृतिक परंपरेपासून कापली गेली आहे आणि जनतेसाठी तिऱ्हाईत आहे. स्वतःच्या संस्कृतीपासून शिक्षणाचा विकास करण्याकरता शिक्षणाचे आधुनिकीकरण आणि सांस्कृतिक पुनरूज्जीवन करणे गरजेचे आहे. सांस्कृतिक मुल्ये व आदर्श आत्मासात केलेली आहेत. फक्त हेच शिक्षण मुलांच्या मनात उच्च तत्वे आणि नैतिक मुल्ये बिंबवू शकतात. शाळेतील एकूणच सर्व कृती आणि कार्यक्रम हे समाजाचे सांस्कृतिक आदर्श व मूल्ये यानुसार आयोजित केली जातात. म्हणूनच शाळा ही समाजाच्या सांस्कृतिक नमुन्यांना वाढविण्याचे आकार देण्याचे सुधारण्याचे व विकसित करण्याचे केंद्र आहे. संस्कृती व शिक्षण एकमेकांशी घनिष्ठपणे निगडीत आहे. शिक्षण हे संस्कृतीला पिढी दर पिढी जतन करते व संप्रेरित करते आणि चिरस्थायीपणा आणण्याकडे योगदान देते. शिक्षण ही सांस्कृतिक मुल्यांची निर्मिती, चिरस्थायीपण संप्रेषण व समृध्दिची प्रक्रिया आहे. शिक्षण हे तंत्र आहे तर संस्कृती ही मूल्ये आहे.

निष्कर्ष :–

१. शिक्षण ही एक गतिशील प्रक्रिया आहे.
२. शिक्षण आणि समाज यांचा जवळचा परस्पर संबंध आहे.
३. शिक्षण ही एक व्यापक व निरंतर चालणारी प्रक्रिया आहे.
४. शिक्षण आणि सर्वांगिण विकासात शिक्षणाचे महत्व अन्यसाधारण आहे.
५. राष्ट्रीय एकात्मतेची भावना वाढिव लावण्यात शिक्षणाचे महत्वपुर्ण योगदान आहे.

संदर्भ ग्रंथ :–

१. के. यु. घोरमोडे (२००७) शैक्षणिक संशोधनाची मुलतत्वे, नागपूर
२. मुळे रा. रा. आण्णि उमाटे वि. नु. (१९९९) नित्यनुतन प्रकाशसन पुणे
३. भितांडे वि.रा. (१९९९) शेक्षणिक संशोधन पध्दती, नित्यनुतन प्रकाशन पुणे
४. कुंडले म.बा. (१९७३) शैक्षणिक तत्वज्ञान व शैक्षणिक समाजशास्त्र, विद्या प्रकाशन पुणे
शिक्षणातील नवविचार प्रवाह उज्वला डोणे

# स्त्रीवादी चळवळींमुळे स्त्रीची बदलती भूमिका व स्त्रीच्या सद्यस्थितीचा अभ्यास

**प्रा. डॉ. प्रतिभा सदाशिव देसाई**
सहयोगी प्राध्यापक
आचार्य जावडेकर शिक्षणशास्त्र महाविद्यालय, गारगोटी
ता. भुदरगड जि. कोल्हापूर , महाराष्ट्र

**सारांश –**

*स्त्रियांच्या समान हक्कांची व्याख्या करणाऱ्या, सिद्ध करणाऱ्या, मागणी करणाऱ्या अनेक चळवळी आणि विचारप्रणालींचा समूह म्हणजे 'स्त्रीवाद'*

*'स्त्रीवाद' म्हणजे लिंगभेद झुगारून स्त्री-पुरुष समानतेकडे वाटचाल करणारा विचार प्रवाह सामान्यतः स्त्रीवाद ही पुरुष विरोधी चळवळ समजली जाते. त्यामुळे ही चळवळ स्त्रियांचे ऐतिहासिक दुय्यमत्व उजेडात आणून हे शोषण संपवण्याचा प्रयत्न करते. ही एक सामाजिक, राजकीय जाणीव आहे. स्त्रीवाद ही संकल्पना जरी पाश्चात्य आधुनिकतेत उदयास आली. अशी सामान्य समजूत असली तरी ही जाणीव त्यापूर्वी ही वेगवेगळ्या कालखंडात आणि वेगवेगळ्या ठिकाणी आढळून आलेली दिसते. म्हणूनच एकच स्त्रीवाद नसून अनेक स्त्रीवाद दिसून आले आहेत. या प्रत्येक कालखंडात स्त्रियांच्या आत्मसन्मानासाठी, हक्कांसाठी अनेकांनी प्रयत्न केले. यामध्ये सावित्रीबाई फुले, ताराबाई शिंदे, जिजाबाई, गार्गी, मैत्रेयी, डॉक्टर आनंदी जोशी, विजयालक्ष्मी पंडित, किरण बेदी, मेधा पाटकर अशी कितीतरी नावे घेता येतात. स्त्रीमुक्ती संघटना स्त्रियांच्या हक्कांसाठी, स्त्री सबलीकरणासाठी झटत आहेत. पण आज एकविसाव्या शतकात सुद्धा स्त्रीची अवहेलना, विटंबना, चारित्र्य हनन, शोषण हे थांबले आहे का? नाही. असे का? यावर विचार मंथन करून जनजागरण करण्याच्या हेतूने संशोधिकेने प्रस्तुत विषयाची निवड केली आहे.*

*Keywords- स्त्रीवादी चळवळ, स्त्रीची बदलती भूमिका, स्त्रीची सद्यस्थिती.*

**प्रस्तावना-**

धर्म आणि जात पातळीवर स्त्रियांचा उपयोग मोहरा म्हणूनच झाला पुरुषी चष्म्यातून जगाकडे बघणाऱ्या स्त्रिया, रस्त्यावर उतरूनही आपलं स्वभान हरवून बसल्या.

भक्ती चळवळीचे स्त्रीमुक्ती चळवळीपर्यंत वेगवेगळ्या कालखंडात मानवी अस्तित्वाची पायाभरणी करणाऱ्या ज्या ज्या चळवळी झाल्या, त्या प्रत्येक चळवळीतील स्त्रियांच्या सहभागाची, त्यांच्या संस्कृतिक हस्तक्षेपाची आणि साहित्यनिर्मितीची नोंद अपरिहार्यपणे घेणे आवश्यक आहे. त्या प्रत्येक चळवळीत स्त्रियांनी दिलेला सहभाग म्हणजे त्यांनी केलेली मानवी अधिकाराची मागणीच आहे. पण या सगळ्या चळवळींवर पुरुषी वर्चस्व असल्याने स्त्रियांचे योगदान डावलले गेले. संत साहित्यातील मुक्ताबाई पासून सोयराबाई पर्यंत साहित्यामध्ये माणूस म्हणून आपल्या मुक्तीच्या जाणिवा आणि सामाजिक परीस्थिती विरुदधचा विद्रोह यांनी प्रखरपणे मांडला. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांनी दलित स्त्रियांचे स्वभान जागृत केले, पण तरी आजपर्यंत दलित चळवळीत अग्रभागी स्त्रिया असलेले चित्र दिसत नाही. आजपर्यंत परिवर्तनासाठी जो संघर्ष उभारला गेला त्या संघर्षाला धर्म, जात, सांस्कृतिक राजकारण व लिंगभेद यांना सामोरे जावे लागले. व यात स्त्रियांसह स्त्रियांचे प्रश्न पात्र अनुत्तरीत राहिले. आज स्त्री शिकली. सर्व क्षेत्रे तिने पादाक्रांत केली. भू, जल, वायू, अवकाश या सर्व क्षेत्रात ती मोठ्या दिमाखाने स्वकर्तृत्व बजावते आहे पण तरीही ती स्वतः सुरक्षित आहे का ? 'माणूस' म्हणून स्वतंत्रपणे जगते आहे का? आर्थिक स्वातंत्र्य असले तरी मानसिक, भावनिक स्वातंत्र्य आहे का? आजही

सामाजिक, शैक्षणिक, राजकीय क्षेत्रातील वखवखलेल्या नजरांना तिला सामोरे जावे लागते. हेच आजपर्यंतच्या स्त्रीवादी चळवळीचे फलित आहे का? याची जाणीव जागृती व्हावी या हेतूने संशोधिकेने संशोधनासाठी प्रस्तुत विषय निवडला आहे.

**संशोधनाची उद्दिष्टे** – प्रस्तुत संशोधनाची उद्दिष्टे पुढील प्रमाणे-

1. 'स्त्रीवाद' चा अर्थ अभ्यासणे.
2. स्त्रीवादी चळवळींचा अभ्यास करणे.
3. स्त्रियांच्या सद्यस्थितीचा अभ्यास करणे.

**विश्लेषणात्मक विषय विवेचन -**

**'स्त्रीवाद' अर्थ** - 'स्त्रीवाद' म्हणजे लिंगभेदाचा विचार न करता एक माणूस म्हणून स्त्रीचा विचार करणे होय. ढोबळ मानाने ही चळवळ पुरुष विरोधी वाटली तरी ती मूलतः समानतेच्या तत्त्वाचा पुरस्कार करते.

पितृसत्ताक कुटुंब व्यवस्थेमुळे केवळ भारतातच नव्हे तर जगाच्या इतिहासात स्त्रिया दीर्घकाळ शोषित व उपेक्षित राहिल्या. पाश्चात्य देशात 18 व्या शतकात स्त्रीवादी विचारसरणीचा उदय झाला. तथापि, विकसित व विकसनशील देशात स्त्री चळवळ व स्त्री अभ्यास वेगवेगळ्या टप्प्यांवर आहे. स्त्रीवाद ही पाश्चिमात्य देशाकडून आपल्याकडे आलेली संकल्पना आहे. असे म्हटले तरी स्त्रीवाद म्हणजे समान हक्क, समान दर्जा व समान संधी होय.

स्त्री शिक्षण, अन्यायी परंपरांचा विरोध व समाज सुधारणा या स्वरूपात स्त्रीमुक्तीची बीजे सापडतात. म्हणून सामाजिक सुधारणा चळवळ व स्त्री मुक्ती यांचे अतूट नाते आहे. इतिहास या बाबींचा चिकित्सक इतिहास लिहितो. भारतात समाज सुधारणेच्या चळवळी व स्वातंत्र्याच्या चळवळीतून स्त्रीवादाचा विचार रुजू लागला. सुरुवातीला साहित्यातून व नंतर मोर्चे, चळवळी, अभ्यास केंद्र आदी माध्यमातून स्त्री वादाचे भारतात बीजारोपण झाले. 1975 हे 'जागतिक महिला वर्ष' व 1975 ते 1985 'जागतिक महिला दशक' म्हणून घोषित करण्यात आले. भारतात वाढणाऱ्या चळवळी लक्षात घेऊन 1981 साली मुंबईच्या एस. एन.डी. टी. विद्यापीठात पहिली स्त्रीविषयक अभ्यासाची परिषद भरली. या परिषदेतून स्त्री अभ्यास केंद्राची संकल्पना जन्माला आली व हळूहळू विस्तारत गेली.

स्त्रीवादी चळवळीच्या व्याख्येची मांडणी वेगवेगळ्या सिद्धांतकांनी वेगवेगळ्या पद्धतीने केली आहे. तरीही त्याचा गाभा 'स्त्री-पुरुष समानता' असाच आहे.

**स्त्रीवाद** – 'स्त्रियांचे दुय्यमत्व आणि त्यासाठी कराव्या लागणाऱ्या संघर्षाचे विश्लेषण म्हणजे स्त्रीवाद होय.'

\- लिंडा गॉर्डन

**'स्त्रीवाद' (फेमिनिझम)-** 'स्त्रीवाद म्हणजे वर्ग, जात, लिंग, वर्चस्व या तिन्हींचा निःपात करून खऱ्या अर्थाने समतेवर आधारित समता प्रस्थापित करणे.' छाया दातार

स्त्रियांच्या समान, राजकीय, सामाजिक, आर्थिक आणि सांस्कृतिक हक्कांची व्याख्या करून त्यासाठी लढणारे व हे हक्क कायम ठेवण्यासाठी लढणाऱ्या वेगवेगळ्या विचारसरणी व आंदोलने त्यांना एकत्रितपणे 'स्त्रीवाद' म्हणता येईल.

विकिपीडिया ऑक्सफर्ड शब्दकोश

वरील सर्व विवेचनावरून स्त्रीवाद म्हणजे स्त्री-पुरुष समानता होय.

**स्त्रीवादी चळवळी** –

17 व्या शतकापासून धर्म सत्तेचे वर्चस्व कमी होऊन राष्ट्र, राजकीय हक्क व कर्तव्ये, राज्यघटना या गोष्टी प्रभावी होऊ लागल्या. इंग्लंड, फ्रान्स, अमेरिका या देशात जी राजकीय स्थित्यंतरे झाली, ती स्त्री वर्गात चळवळ सदृश्य परिस्थिती निर्माण करणारी ठरली. समान हक्क, समान दर्जा, व स्वातंत्र्य या स्त्रीमुक्तीच्या मूळ कल्पना फ्रेंच राज्यक्रांतीचे उद्गाते रुसो, लॉक व बेंथॅम यांच्या विचारसरणीतून उगम पावल्या आहेत.

**1.स्त्रीवादी चळवळीचा पहिला टप्पा -** इ.स.1792 मेरी वुल स्टोन क्राप्ट यांच्या- 'स्त्रियांच्या हक्कांची पायमल्ली' हा ग्रंथ, 1807- 58 ब्रिटिश विचारवंत हॅरिऐट टेलर मिल यांच्या 'ऑन लिबर्टी' ग्रंथ, यातून स्त्री हक्कावर प्रकाश टाकला.

**2.स्त्रीवादी चळवळीचा दुसरा टप्पा-** 1920 नंतर जहाल स्त्रीवादाची मांडणी केली 1960 नंतर या चळवळीला गती मिळाली. सिमॉ दि बोव्हार यांनी 'दि सेकंड सेक्स' मधून स्त्रियांच्या वरील अन्यायाला वाचा फोडली. स्त्री अस्मिता जागृत केली.

**3. स्त्रीवादाचा तिसरा टप्पा** –1990 नंतर वसाहतवाद व साम्यवाद यांचा शेवट व मुक्त अर्थव्यवस्थेची सुरुवात अशा काळात स्त्रीवाद विषयक नवीन दृष्टिकोन विकसित झाला.

अशा प्रकारे स्त्रीवादाच्या चळवळीच्या पहिल्या टप्प्यात स्त्री विरोधी कायदे व परंपरा यांच्या विरोधी चळवळी झाल्या. दुसऱ्या टप्प्यात पुरुषांप्रमाणे स्त्रियांना सर्व नागरी व राजकीय हक्क मिळावेत यासाठी प्रयत्न झाले. तिसऱ्या टप्प्यामध्ये स्त्री स्वातंत्र्याच्या व्यक्तिकेंद्रित विचाराला महत्त्व प्राप्त झाले. त्यामुळे स्त्रीवादाचे स्वरूप बदलत गेले.

बाळशास्त्री जांभेकर यांनी इस 1832 मध्ये 'दर्पण' नावाचे पहिले मराठी वृत्तपत्र सुरू केले. यामधून त्यांनी सुधारणावादी विचारांचा प्रसार केला. बालविवाह, सतीप्रथा, स्त्रियांवर होणारे अन्याय या विरोधात त्यांनी समाज जागृती केली.

गोपाळ गणेश आगरकरांनी इस 1888 मध्ये सुधारक वर्तमानपत्र काढले त्यांनी बालविवाहाची चाल कायद्याने बंद व्हावी म्हणून प्रयत्न केले आगरकरांनी स्त्री पुरुषांसाठी समान स्वातंत्र्याची व समान संधीची मागणी केली.

इस 1848 मध्ये महात्मा फुलेंनी पुण्यात मुलींसाठी पहिली शाळा काढली. त्यांचे क्रांतिकार्य स्त्रियांच्या आत्मसन्मानाला जागृत करणारे आहे. इस 1863 मध्ये त्यांनी बालहत्या प्रतिबंधक गृहाची स्थापना केली. विधवांच्या केशवपनाला विरोध म्हणून न्हाव्यांचा एक दिवसाचा संप घडवून आणला. स्त्रीला जर अपत्यप्राप्तीसाठी दुसरा नवरा करता येत नाही तर पुरुषाला दुसरी पत्नी करण्याचा अधिकार का असावा? असा प्रश्न त्यांनी केला. अशा अनेक प्रयत्नातून महात्मा फुले यांनी स्त्री-पुरुष समानतेचा पुरस्कार केला. महात्मा गांधी, विनोबा भावे, महर्षी कर्वे यांनीही स्त्रीमुक्तीचा पुरस्कार केला. महर्षी कर्वे यांनी विधवे बरोबर विवाह केला व तिला स्त्री शिक्षणाच्या कार्यात सहभागी करून घेतले. त्यांनी पुण्यात हिंगणे येथे महिला आश्रमाची सुरुवात केली. 1906 साली त्यांनी महिला महाविद्यालय सुरु केले. व इस 1916 साली महिलांसाठी महिला विद्यापीठ सुरू केले.

ताराबाई शिंदे यांनी स्त्रीचे विविध स्तरावर होणारे शोषण, पुरुष संस्कृतीची वर्चस्व राखण्याची रानटी वृत्ती यावर आपल्या खास शैलीत प्रहार केले.

सतीच्या चाली विरुद्ध आंदोलन करणारे राजाराम मोहन रॉय हे पहिले कृतिशील स्त्रीवादी विचारवंत म्हणून पुढे आले. सतीप्रथे बरोबरच स्त्रियांवर होणाऱ्या सर्वच प्रकाराच्या अन्यायाविरुद्ध त्यांनी आंदोलन छेडले. मृत पतीच्या मालमत्तेत मुलांसोबत पत्नीलाही वाटा मिळाला पाहिजे असा विचार त्यांनी मांडला. त्यांनी विधवा विवाहाचा पुरस्कार केला. समाजातील स्त्रियांची गुलामी ही पुरूषांच्या अहंकारामुळे निर्माण झालेली असून जोपर्यंत त्या शिक्षण घेत नाहीत तोपर्यंत ही गुलामी नष्ट होणार नाही असे विचार त्यांनी मांडले. पुढे ईश्वरचंद्र विद्यासागर यांच्या प्रयत्नातून विधवा पुनर्विवाहाचा कायदा संमत झाला. अशा प्रकारे अनेक पुरुष व स्त्रियांचे स्त्रीवादी चळवळींमध्ये भरीव योगदान आहे. तरीही आज स्त्रीला स्वातंत्र्य, समानता, सुरक्षा आहे का? हा मोठा गहन प्रश्न आहे.

**स्त्रियांच्या सद्यस्थितीचा अभ्यास-**

अनेक विचारवंतांनी स्त्री-पुरुष समानतेसाठी चळवळी केल्या. म्हणून आज कल्पना चावला, सुनीता विल्यमस् अवकाशात भरारी मारू शकल्या. इंदिरा गांधी, किरण बेदी, मेधा पाटकर अशा अनेक स्त्रियांनी स्वकर्तृत्वाने समाजात आदर्श निर्माण केले. पण आजही 'निर्भया' (दिल्ली), कोपर्डी सारखी घटना घडते. सामाजिक, राजकीय, शैक्षणिक क्षेत्रातून स्त्रियांची निर्भत्सना केली जाते. त्यांचे शोषण केले जाते. वृत्तपत्रात रोज बलात्कार, खून, अन्याय अशा अनेक बातम्या वाचायला मिळतात. शासनस्तरावर लैंगिक छळ प्रतिबंधक कायदा लागू केला आहे. पण समाज त्यातूनही पळवाट शोधतो. इ.स. 1990 मध्ये राजस्थानमधील भँवरी देवी अत्याचार प्रकरणामुळे विशाखा मार्गदर्शक तत्त्वे शासनाने लागू केलेली

प्रत्येक कार्यालयात लैंगिक छळ विरोधी समिती, महिला तक्रार निवारण समिती नेमली जाते व स्त्रियांच्या वरील अत्याचाराला आळा घालण्याचा प्रयत्न केला जातो. तरीही कुटुंब, समाज, कामाचे ठिकाण, कार्यालय, शाळा, महाविद्यालय या ठिकाणी स्त्रियांवर होणारे अत्याचार सुरूच आहेत व स्त्री अब्रूला भिऊन समाज काय म्हणेल? म्हणून आजही अन्याय, अत्याचार सहन करताना दिसते समाज जागृतीसाठी 'फूलनदेवी', 'मेरीकोम' यासारख्या चित्रपटांची निर्मिती केली गेली. महिला शास्त्रज्ञ मेरी क्युरी, डॉक्टर आनंदी गोपाळ जोशी, वैमानिक, संरक्षण क्षेत्र ,अंतराळ क्षेत्र, राजकीय, शैक्षणिक क्षेत्र यामध्ये महिलांचे योगदान अभूतपूर्व आहेच पण तळागाळातल्या महिलांपर्यंत शिक्षण पोहोचणे व त्यातून घरातल्या जबाबदारींचे विकेंद्रीकरण, स्वतःच्या होणाऱ्या शोषणाबाबतची जागरूकता, कुठेच दुय्यमत्व न स्वीकारण्याचे आव्हान पेलण्याची ताकद, आत्मभान, स्वातंत्र्य, स्वावलंबन, स्त्री-पुरुष समानतेची तत्वे प्रत्यक्ष आचरणात आणणे आवश्यक आहे व यासाठी 'घर' हा एक 'पिंजरा' न होता स्त्रीसाठी आधार, स्वास्थ्य आणि साहाय्य यांचा भरारी घेण्यासाठी एक खंबीर पाया होणे आवश्यक आहे. तरच खऱ्या अर्थाने स्त्रीवादी चळवळी यशस्वी झाल्या असे म्हणता येईल.

**निष्कर्ष उद्दिष्ट क्रमांक 1,2,3 नुसार निष्कर्ष**

1. स्त्रीवादाचा अर्थ समजून घेऊन, स्त्रीवादी चळवळींचा अभ्यास केल्यास सद्यस्थिती मधील स्त्रीयांवर होणारे अन्याय, अत्याचार दूर करून स्त्रियांमधील अस्मिता जागृत करून त्यांच्यामध्ये आत्मभान आणणे शक्य आहे. त्यांना न्याय, स्वातंत्र्य, समता, समानता मिळवून देणे शक्य आहे.

**शिफारशी** – संशोधिकेने पुढील शिफारशी मांडल्या आहेत-

1. प्रत्येक घरात स्त्रीचा सन्मान, आदर, स्त्री-पुरुष समानतेची वागणूक यांचे आचरण करावे.
2. शासनस्तरावर स्त्रीवर अत्याचार करणाऱ्याला तात्काळ कठोर शासन करावे.
3. कामाच्या ठिकाणी स्त्रीला स्वातंत्र्य, समता, न्याय, सुरक्षितता यासाठी शासन नियम कडक करावेत.
4. समाजाने स्त्री बाबतची स्त्री पुरुष समानता ही भावना पूर्णता रुजवावी.

**संदर्भ** –

1. कर्वे, स्वाती (2015) स्त्री परीषदांचा इतिहास महाराष्ट्र: अभिजीत प्रकाशन
2. देसाई,प्रतिभा (8 मार्च 2018) महिलांच्या लैगिक छळ विरोधी कायदा, भूमिका व मार्गदर्शन Chronicle of Humanities and Cultural Studies- A By monthly Refered International Journal
3. धोंगड, अश्विनी (19 May2019) स्त्रीचा लेखा जोखा : महाराष्ट्र टाइम्स
4. महाजन, वंदना (15oct2017) Maharashtratimes.com Retrived On 15 March2021
5. lib.unipune.ac.inRetrivedOn18March2021
6. www.modernpoliticalconceptBAIIIPaper12Retrived On 20 March2021
7. https://mr.wikipedia.org/wiki/स्त्रीवाद Retrived On 15 March2021

# अंधश्रद्धा निर्मूलन चळवळ आणि नरेंद्र दाभोलकरांची विचारधारा

**डॉ. आर. के. शानेदिवाण**
प्राचार्य,
श्री शहाजी छत्रपती महाविद्यालय, कोल्हापूर

माणूस किंवा जगाला बदलवणाऱ्या गोष्टींची सुरुवात बऱ्याच वेळेला लहानशा घटना, प्रसंगांतून होते. जेव्हा कार्याचा पसारा मोठा होतो, त्यातून संघटन बनते आणि लोकमानस खूप मोठ्या प्रमाणात उभे राहते. तेव्हा मागे वळून पाहताना घडलेला प्रवास अचंबित करणारा वाटतो. मिळालेले यश मनाला समाधान देते. हे यश अपवादाने चाललेल्या वाटेवरील असेल तर त्यातून मिळणारा आनंद वर्णनातीत असतो. कारण ज्यांनी सुरुवात केलेली असते त्यांना पुढील काळात लोक प्रतिसाद कसा मिळेल याची कसलीही कल्पना नसते. पण ध्येयाच्या दिशेने पुढे जाताना, 'लोग आते रहे और कारवाँ बनता गया' असा अनुभव येत राहतो. काहीशी अशीच स्थिती डॉ. नरेंद्र दाभोलकरांची होती. १९८५ च्या दरम्यान त्यांनी एका अशा 'मिशन'कडे वळायचा निर्णय घेतला ज्या वाटेवर जाण्यासाठी बहुतांश सर्व नाखूष असतात. जिथं व्यक्ती आणि समूहाच्या श्रद्धा, भावना यांच्याशी सातत्याने संबंध येतो आणि संवादापेक्षा विसंवादच घडण्याची शक्यता अधिक असते. पण त्यांनी या वाटेवरून जाण्याचा निर्णय घेतला आणि पंचवीस वर्षांच्या काळात केवळ महाराष्ट्रच नव्हे, तर देश विदेशातील अनेकांना या वाटेवरचे प्रवासी बनविले. ही वाट अंधश्रद्धा निर्मूलनाचा विचार मांडणारी आणि प्रत्यक्ष कृतीने लोकमानस घडविणारी ठरली.

'महाराष्ट्र अंधश्रद्धा निर्मूलन समिती' स्थापन झाली, पण एवढ्याने चळवळीचे कार्य सातत्याने पुढे जाईल असे नव्हते. त्यासाठी चळवळीचा वैचारिक पाया घट्ट असणे जरुरी होते. अगदी समितीच्या नावातील 'अंधश्रद्धा निर्मूलन' या दोन्ही शब्दांतून व्यक्त होणारा अर्थ काय आहे याची चर्चा कार्यकर्त्यांच्या पातळीवर होणे गरजेचे होते. कारण 'अंधश्रद्धा' या शब्दाच्या उच्चाराबरोबर धर्मसंस्थेचा निकटचा संबंध प्रस्थापित होत होता. श्रद्धा, अंधश्रद्धा कशास म्हणावे इथपासून निर्मूलन म्हणजे संपविणे, नाहीसे करणे, समूळ नष्ट करणे असेही म्हटले जात होते. याचा अर्थ 'अंनिस' काय करू पाहते आहे हे लोकांसमोर नीटपणे येणें गरजेचे आहे अशी खूणगाठ नरेंद्र दाभोलकरांनी आपल्या मनाशी घट्टपणे बांधली. अगदी सुरुवातीला त्यांच्याबरोबर असणाऱ्या कार्यकर्त्यांना ही बाब समजावून सांगणे अपरिहार्य होते. त्यांच्या मनातील शंका, कुशंकांचे निरसन करूनच पुढची वाट सुकर होणार होती. त्यामुळे त्यांनी 'अंनिस'ची वैचारिक भूमिका वेगवेगळ्या व्यासपीठांवरून सातत्याने मांडली. त्याचा सतत पुनरुच्चार केला.

डॉ. नरेंद्र दाभोलकरांनी अंधश्रद्धामुक्त समाजनिर्मितीचा ध्यास घेतला होता. त्यांनी लोकांना सोसावा लागलेला त्रास प्रत्यक्ष पाहिला होता. त्यामुळे त्यांचे लेखन वस्तुनिष्ठतेच्या अंगाने येत असले तरी त्यामागे अपार करुणेचा भाव आहे हे लक्षात घ्यावयास हवे. आपण का लढतो आहेत याचे हरघडी भान असणाऱ्या दाभोलकरांनी चळवळीसह सर्वांना विचार व शब्दांच्या माध्यमातून कृतिशील आराखडा दिला. अर्थात, साहित्याची समीक्षा करणारी मंडळी यामध्ये कलात्मकता, सौंदर्य, आशय शोधण्याचा प्रयत्न करून त्यातील मर्यादा दाखवतीलही. पण ती चिंता त्यांना नव्हती. त्यांना शब्दांचे फुलोरे निर्माण करून कल्पनेतले सुख, समाधान निर्माण करायचे नव्हते तर अंधश्रद्धेने मानवी जीवन कुरूप, उद्ध्वस्त होत आहे ती कुरूपता नष्ट करून त्या ठिकाणी समाधानाचे ताटवे निर्माण करायचे होते. जे जग आपल्या वाट्याला आलेले आहे त्या जगासह आपणही आनंदी व्हावे अशा प्रामाणिक प्रेरणेतून डॉ. नरेंद्र दाभोलकरांनी लेखन केले आहे.

नरेंद्र दाभोलकर यांनी अंधश्रद्धा निर्मूलन समितीची (अंनिस) स्थापना करण्यापूर्वी अंधश्रद्धा विषयाच्या अनुषंगाने मूलगामी चिंतन सुरू केले होते. त्यातून समाजाला विज्ञानाच्या अंगाने विचार करायला लावून सकारात्मक ऊर्जा निर्माण करण्याच्या हेतूने त्यांची अंधश्रद्धाविरोधी चळवळ उभी राहिली. खरं तर या चळवळीचा सकृतदर्शनी चेहरा धर्मचिकित्सा करून लोकांना शहाणे करणे असा आहे. त्यामुळे चळवळ पुढे नेण्यासाठी सातत्य, चिकाटी, सहनशीलता याबरोबर प्रबोधन करण्याची मनापासूनची तयारी आवश्यक ठरते. त्यांनी अशी तयारी ठेवूनच या आव्हानाचा मुकाबला केला. अंधश्रद्धा

पसरविणारी अनेक माध्यमे आहेत. मनुष्याच्या दैनंदिन व्यवहारात हरघडी अंधश्रद्धारूपी राक्षस दबा धरून बसलेला असतो. कोणत्याही क्षणी त्याची झेप मानवी बुद्धीवर पर्यायाने विचारशक्तीवर पडू शकते. अशावेळी सजगतेने व्यवहार करणे क्रमप्राप्त ठरते. ही निकड लक्षात घेऊन त्यांनी अंधश्रद्धा या विषयाचा सखोल विचार मांडला. अगदी सुरुवातीला १९८५ साली या दृष्टीने त्यांनी उचललेले पहिले पाऊल म्हणजे 'भ्रम आणि निरास'[१] हे पुस्तक होय.

'भ्रम आणि निरास'च्या निमित्ताने समाजातील संवेदनशील विषयाच्या अनुषंगाने डॉ. नरेंद्र दाभोलकरांनी लेखन सुरू केले. या लेखनाची वैचारिक बैठक ठाम आणि बांधीव आहे. आपल्याला काय करायचे आहे याची पुरेपूर जाणीव त्यांना होती. हजारो वर्षे ज्या कल्पनांच्या आधारे मनुष्य वर्तन करीत आहे, त्या कल्पनांना बाजूला करा आणि कार्यकारणभाव तपासून वर्तन करा असे सांगणे सोपे नव्हते आणि नाही. पण प्रयत्न तरी व्हायलाच हवा. या दृष्टीने 'भ्रम आणि निरास'चा पहिला प्रयत्न निश्चितपणे सकारात्मक आशावाद निर्माण करणारा ठरला. एका अर्थी प्रस्तुत मांडणीने भविष्यातील आव्हानांचा मुकाबला करण्यासंबंधाने पाया मजबूत झाला असे म्हणता येते.

डॉ. नरेंद्र दाभोलकर आणि प्रा. प्र. रा. आर्डे यांनी 'अंधश्रद्धा : प्रश्नचिन्ह आणि पूर्णविराम'[२] या नावाने दुसरे पुस्तक प्रकाशित केले. या पुस्तकाचे स्वरूप 'प्रश्नोत्तर' असे आहे. दाभोलकरांचे वेगवेगळ्या ठिकाणी श्रोते आणि वाचक यांच्यासोबत संवाद होत असत. व्याख्यान ऐकल्यानंतर काही लोक मनातील शंका बोलून दाखवित. त्या प्रश्नांना दाभोलकर उत्तर देत. प्रश्नांतून प्रश्न निर्माण होत असताना संबंधित विषय खोलवर समजून घेणे शक्य असे. श्रोत्यांच्या मनातील शंकांचे पूर्ण निरसन करणे हाच या संवादाचा हेतू असायचा. तसेच काही जाणकार उत्सुकतेपोटी प्रश्न पाठवायचे. त्यांना नवे जाणून घेण्याची इच्छा असायची. या सर्व प्रश्नांना एकत्रित करून लोकांच्या मनातील गोंधळ कमी करण्याच्या हेतूने प्रस्तुत पुस्तकाची मांडणी झाली आहे. अर्थात, संबंधित विषय परिपूर्णरित्या मांडण्यात आले आहेत असा दावा त्यांनी केलेला नाही; उलट उत्तरासंदर्भात मतभेद असतील तर चर्चेसाठी स्वागत असल्याची भावना व्यक्त करून, 'चळवळ समर्थ बनावी व अंधश्रद्धेच्या प्रश्नावर जनमानस डोळस बनावे' हा उद्देश असल्याचे म्हटले आहे.

या लेखनाचे आणखी एक वैशिष्ट्य म्हणजे दाभोलकर सहजपणे सुभाषितवजा विधानांची रचना करतात. उदा. सामाजिक परिवर्तन हे अक्रोडाचे झाड लावल्याप्रमाणे आहे. बुवांचे खरे सामर्थ्य लोकांच्या अगतिकतेत आहे. बुवा भीती वाढवित असतात, अज्ञान वाढवित असतात. मन ही एक अमूर्त कल्पना आहे. इ. अशा विधानांनी प्रस्तुत लेखनाला प्रवाहीपणा प्राप्त झाला आहे. एकूणच 'अंनिस'ने सुरू केलेल्या चळवळीतील विविध प्रश्नांचा मागोवा घेऊन लोकमानस घडविण्याचा सुजाण प्रयत्न म्हणजे 'अंधश्रद्धा : प्रश्नचिन्ह व पूर्णविराम' हे पुस्तक होय.

'अंधश्रद्धा विनाशाय'[३] या पुस्तकातील मजकुरातून अंधश्रद्धा निर्मूलन चळवळीचे दर्शन घडविण्याचा हेतू आहे. एका अर्थी, चळवळ सुरू झाल्यापासूनच्या काळातील अनेक घटना प्रसंगांचा घेतलेला धांडोळा असे याचे स्वरूप आहे. डॉ. नरेंद्र दाभोलकरांनी चळवळीचे नेतृत्व केले ही बाब खरी आहे. बहुतांश लढ्यामध्ये त्यांनी Leading from the front ने चढाई केली. पण हे केवळ आपल्यामुळे घडले हे मानायला ते नकार देतात. संघटितपणे विशिष्ट ध्येयाने, एकदिलाने कार्यकर्ते प्रश्नाला भिडले व त्यातून नवे मार्ग निर्माण झाले अशी त्यांची भूमिका आहे. त्यामुळे प्रस्तुत लेखन म्हणजे कार्यकर्त्यांच्या बळावर वेगवेगळ्या अंधश्रद्धाविषयक प्रश्नांना भिडलेला लेखाजोखा आहे.

डॉ. दाभोलकर समकालीन प्रश्नांच्या दाहकतेने अस्वस्थ होतात. महाराष्ट्राचा उल्लेख पुरोगामी असा होतो, पण खरोखरीच अशी स्थिती आहे का असा प्रश्न विचारून परंपरानिष्ठ समाज कधीही पुरोगामी ठरत नाही असे चिंतन त्यांनी मांडले. एखादा समाज व त्याची स्थिती समजून घ्यायची असेल तर त्यासाठी समाजाचे, मनाचे, वास्तवाचे ताणेबाणे समजून घ्यायला हवेत असाही विचार ते मांडतात. त्यांना अंधश्रद्धाविरोधी लढाईचे अवाढव्यत्व माहीत होते. त्यामुळे याचे वर्णन करताना त्यांनी 'कठीणीकरण झालेले अज्ञान' असे म्हटले आहे. त्यामुळे प्रस्तुत पुस्तकाचे वाचन करताना या अज्ञानातून बाहेर पडण्यासाठी कोणकोणते दिव्य दाभोलकरांनी केले याचे ज्ञान होते.

'विचार तर कराल?'[४] या शीर्षकातून डॉ. नरेंद्र दाभोलकर एक आवाहन करीत आहेत. व्यक्तीची ओळख मेंदू आणि त्याआधारे होणारा विचार यांतून होते. पण बऱ्याच वेळेला या दोन्ही गोष्टी केवळ दिखाव्यासाठी आहेत की काय असे वाटण्यासारखी परिस्थिती असते. याचे कारण आपल्या आजूबाजूला घडणाऱ्या घटनांच्या संदर्भातील आपल्या प्रतिक्रियेमध्ये आढळते. विशेषत: अंधश्रद्धेची वाढ किंवा लोकमान्यता मिळवून देणाऱ्या अनेक गोष्टी सर्रास घडतात. त्याकडे पाहताना कधी

विस्मय तर कधी गूढ शक्तीचा वास आहे असे मानले जाते. जेव्हा काहीच सुचत नाही तेव्हा तर्कापलीकडील, विज्ञानाच्या कक्षेबाहेरील असा शिक्का मारून माणसं मोकळी होतात. एवढेच नव्हे, तर या गूढत्वाला दैवी मानू लागतात. एका अर्थी, 'हे असं कसं' हा प्रश्नच निर्माण होऊ देत नाहीत. प्रश्न विचारून सत्य तपासावे असे त्यांना वाटत नाही. याची अनेक कारणे असू शकतात. जसे आळस, अज्ञान, परंपरावादी वृत्ती, भीती, स्वार्थ, फायदा इ. यामुळे व्यक्ती आणि समाजही कुंठित बनतो. दाभोलकरांनी ही सर्व परिस्थिती अगदी जवळून पाहिलेली, अनुभवलेली होती. त्यामुळे 'सत्यान्वेषण' हा हेतू ठेवून त्यांनी 'विचार तर कराल' या नावाने वृत्तपत्रामध्ये सदर लेखन केले. लोकांना विचार कसा करायचा याचे प्राथमिक धडे या निमित्ताने त्यांनी दिले. मार्गदर्शन किंवा उपदेशाचा आव न आणता दिलेल्या सल्ल्यांनी वाचक अंतर्मुख बनू लागल्याची जाणीव दाभोलकरांना होऊ लागली. प्रस्तुत पुस्तक अशा वृत्तपत्रीय सदर लेखांचे संकलन आहे. अर्थात, त्यामध्ये काही सुधारणांसह नवी मांडणीही त्यांनी केली आहे.

आजच्या गतिमान काळात माणसं फक्त धावताहेत. आपण कुठं जात आहोत याचे भान न ठेवता पळताहेत. क्षणभर थांबून स्वत:ला 'का' हा प्रश्न विचारण्यासही वेळ नाही. याचा परिणाम हिंसा, द्वेष, चंगळवाद, धर्मांधता यामध्ये वाढ होण्यात झाला आहे. माणसाची मूळ ओळख पुसट होत असून संपूर्ण विश्वाला व्यापून राहिलेली बेचैनी, अस्वस्थता व त्यातून आलेली असुरक्षितता भयावह आहे. अशावेळी व्यक्तीने स्वत:चा शोध घ्यावयास हवा. आपण जे काही करीत आहोत त्याचे अंतिम ईप्सित काय हे तपासून पाहावयास हवे. यासाठी बुद्धी, भावना, विचार याचा तारतम्याने उपयोग करून मूल्यभावनेला प्राधान्य द्यावयास हवे. दाभोलकरांनी 'विचार तर कराल' अशी साद घालून लोकांच्या विवेकाला आवाहन केले आहे. माणूसच माणसाचे भलं करू शकतो. फक्त हे करण्यासाठी आपल्या मनाची तयारी करायला हवी, असा विचार प्रस्तुत मांडणीतून प्रबळ होतो.

'श्रद्धा-अंधश्रद्धा'[५] या पुस्तकामध्ये 'अंनिस'ची वैचारिक भूमिका वेगवेगळ्या विषयांना नजरेसमोर ठेवून स्पष्ट करण्यात आली आहे. एक बाब लक्षात घ्यावयास हवी की, या चळवळीसंदर्भात लोकांना खूप कमी माहिती आहे. कर्णोपकर्णी ज्या गोष्टी प्रसृत होतात त्याआधारे ही चळवळ नकारात्मक मांडणी करते असा प्रवाद पसरविला जातो. वस्तुत: तशी परिस्थिती नाही. मनुष्यप्राणी विचाराने कृती करतो असे सामान्यपणे मानले जात असेल तर नशीब, नियती, प्रारब्ध, संचित अशा गोष्टींवर अविचाराने विश्वास कसा बरे ठेवतो? याची शास्त्रीय चिकित्सा या चळवळीने सुरू केली. जी गोष्ट अस्तित्वातच नाही किंवा तिचं असणं सिद्ध करता येत नाही त्याला मुख्य आधार बनवून जीवनाचे आराखडे बांधणे योग्य नाही अशी 'अंनिस'ची भूमिका आहे. त्यामुळे 'दैव ही कल्पना मानसिक गुलामगिरीतून निर्माण होते व अंधश्रद्धांचे मूळ तेथेच आहे' या वैचारिक पायावर चळवळीची बांधणी झाल्याचे स्पष्टपणे जाणवते. दाभोलकरांनी ही भूमिका अगदी विस्ताराने प्रस्तुत पुस्तकात मांडली आहे. विशेषत: देव कल्पना, नीती विचार, व्यापक वैचारिक भूमिका यातून या चळवळीचा मूळ गाभा समजून येण्यास मदत होते. स्वत: विज्ञानाचे विद्यार्थी असणाऱ्या दाभोलकरांनी वैज्ञानिक दृष्टिकोनाच्या वेगवेगळ्या पैलूंना लोकांसमोर मांडले. त्याआधारे फलज्योतिष, भूत, मनाचे आजार, देवी अंगात येणं यामागील शास्त्रीय सत्यही प्रस्तुत मांडणीत अधोरेखित केले आहे. दीर्घकाळ या चळवळीचे नेतृत्व करणाऱ्या दाभोलकरांची निरीक्षणे अफलातून आहेत. त्याआधारे स्त्रिया अंधश्रद्धेच्या सर्वांत मोठ्या वाहक असल्याचे सत्य ते मांडतात. ही सर्व मांडणी चळवळीची कार्यप्रणाली व वैचारिक भूमिका समजून घेण्याच्या दृष्टीने महत्त्वपूर्ण आहे.

महाराष्ट्राच्या पातळीवर संत, सुधारकांनी लोकांनी अंधश्रद्धांपासून दूर राहावे यासाठी वेगवेगळ्या माध्यमांतून प्रबोधन केले. पण दुर्दैवाने या भूमीतच अंधश्रद्धांना खतपाणी घालणारी हवा निर्माण झाली. नरेंद्र दाभोलकर यांनी प्रस्तुत पुस्तकात ज्यांची माहिती दिली आहे असे गुरव बंधू, शेषराव महाराज, पार्वती माँ, नवसासाठी पशुहत्या, शनी शिंगणापूरची मोहीम, जागृत डुंगेश्वराचा प्रकोप, ज्योतिषविरोधी लढा, नाडीचे थोतांड, वास्तुशास्त्राचा अनर्थ आदितून अंधश्रद्धामागील दाहक सत्य समजून येते. पण येथे एक गोष्ट समजून घ्यायला हवी की अशा थोतांडामागे जाणाऱ्यांची संख्याही प्रचंड आहे. याचा अर्थ, अंधश्रद्धांची मुळं खूप खोलवर रुजलेली आहेत. अशा परिस्थितीत नेतृत्व करणाऱ्यांसह कार्यकर्त्यांचा कस लागतो. प्रसंगी जिवावर बेतणारे प्रसंग निर्माण होतात. दाभोलकरांनी या पुस्तकाच्या माध्यमातून लढ्यासह प्रत्यक्ष सहभागी असणाऱ्या कार्यकर्त्यांच्या कामगिरीचा लेखाजोखा मांडला आहे. ही सर्व मांडणी वेधक आणि प्रसंगाचे गांभीर्य गडद करणारी आहे.

विज्ञानानेच आपण पुढचे पाऊल आश्वासकपणे टाकू शकतो याचे भान यातील लेखांतून येते. विशेषत: आंतरजातीय विवाहासंदर्भातील त्यांनी केलेली मांडणी शास्त्रीय संकल्पनांचा अर्थ समजून सांगणारी आहे. जात, धर्म, वंश, पंथ यापेक्षाही माणूस म्हणून आपण आपली जबाबदारी नीटपणे पार पाडतो का याचे भान आणवून देणारा विचार प्रस्तुत मांडणीतून स्पष्टपणे जाणवतो. ते समाजाच्या वर्तनाने अस्वस्थ, बेचैन आहेत. त्यामुळे 'हे सारे कसे बदलेल' याचा सततचा विचार त्यांच्या मनामध्ये सुरू असून विवेकवादी चळवळीपुढे भविष्यात खूप मोठी आव्हाने असणार आहेत याची जाणीव त्यांच्या लेखनातून सतत जाणवत राहते. एकूणच विवेकाचा विचार किंवा पताका खांद्यावर घेऊन सतत, सातत्याने चालत राहिले तरच ईप्सितापर्यंत पोहचणे सुकर होईल असा आशावादी विचार प्रस्तुत पुस्तकातून अधोरेखित होतो.

दैनंदिन व्यवहारात अनेक गोष्टी घडतात. या गोष्टी का, कशा, कुणामुळे घडतात याचा धांडोळा न घेता त्याचा स्वीकार करण्याची वृत्ती सर्रास आढळते. अंधश्रद्धांची निर्मिती अशा आंधळेपणातून होते. डॉ. नरेंद्र दाभोलकर यांनी प्रस्तुत पुस्तकात खग्रास सूर्यग्रहण, भुताचा वावर, कावळ्याचे अशुभ असणे, घुबडाचे तोंड पाहणे, सहावे इंद्रिय, फलज्योतिषातील अशास्त्रीयता, संमोहन कसे होते, वैभवलक्ष्मीच्या व्रतातील फोलपणा, सत्यनारायणातील असत्यपणा, शनी ग्रहासंदर्भातील लोकसमज, कुबेरी महालक्ष्मी यज्ञ, मुहूर्त कशासाठी, वास्तुशांत कोणासाठी आदी अनेक विषयांना ऐरणीवर घेतले आहे. वृत्तपत्रीय लेखनाच्या मर्यादा लक्षात घेऊनही असे म्हणता येते की या विषयांना वाचकांपर्यंत पोहचवण्यात त्यांना यश आले आहे.

'ऐसे कैसे झाले भोंदू'[६] या पुस्तकामध्ये त्यांनी बुवाबाजीरूपी ऑक्टोपसच्या हजार पायातील काहींचे तपशीलवार वर्णन केले आहे. असं म्हणतात की, 'दुनिया झुकती है झुकानेवाला चाहिए'. दाभोलकरांनी ही मांडणी करताना वेगवेगळे विभाग केले आहेत. यामध्ये 'बुवाबाजी कोणत्या थराला?' या विभागात चोवीस घटनांच्या नोंदी आहेत, 'चमत्कार शोधताना' या विभागात तीस, 'हे तो प्रचितीचे बोल' या भागात तेवीस, 'आव्हानांच्या रिंगणात' या भागात सहा, 'चमत्कार : मानसिक गुलामीचे हत्यार' या भागात चोवीस, 'संघर्षाच्या आघाडीवर' या भागात आठ, 'आक्रमक जनजागरण' मध्ये दहा, 'ऐन रणधुमाळीत' मध्ये सोळा व 'विवेकाचा कौल' या अखेरच्या भागात पस्तीस घटनांचे तपशीलवार विवेचन आहे. दाभोलकरांनी या घटना-प्रसंगांमध्ये बहुतांश ठिकाणी आपला सहभाग नोंदविला आहे. त्यामुळे प्रत्यक्ष घटना घडताना, घटने अगोदर व नंतरचे लोकमानस मांडण्यात त्यांना कमालीचे यश प्राप्त झाले आहे.

दहा पुस्तकांतून अंधश्रद्धाच्या विविध पैलूंचे तपशीलवार विवेचन करूनही अकरावे बृहद पुस्तक लिहावे असे त्यांना वाटले. याचे कारण या विषयासंबंधी 'एकसंध मांडणी करणारे पूर्वसुरी नाहीत' अशी नम्र भावना त्यांची होती. पंचवीस वर्षांच्या प्रवासानंतर अंधश्रद्धांसंदर्भातील विचार अजूनही अपुरा आहे अशी त्यांची भावना होती. त्यामुळेच ही चळवळ का? व कशी उभी राहिली? कशासाठी उभी राहिली? तिचा पाया काय? पूर्वसुरींचे योगदान कसे होते? विज्ञानाने मानवी जीवनात कोणती क्रांती केली? अंधश्रद्धा कशा निर्माण होतात? त्या वेळची मानवी स्थिती कशी असते, त्यातून बाहेर पडले नाहीतर त्याचे काय परिणाम संभवतात? त्यातून बाहेर कसे पडायचे? समाजाची जबाबदारी कोणती? अशा अनेक प्रश्नांचे चिंतन घडत होते. स्वाभाविकपणे प्रत्येक नवा दिवस नवे प्रश्न घेऊन यायचा. त्या वेळी पूर्वाश्रमीची उत्तरे बोथट झालेली असायची. नवी मांडणी करून त्याला शास्त्रीय आधार द्यावा लागायचा. ही प्रक्रिया अक्षरश: रात्रंदिन सुरू होती. एकाच वेळी अनेक आघाड्यांवर लढावे लागत होते. प्रत्येक वेळी सगळ्यांचे समाधान होईल असे घडत नव्हते. त्याचवेळी संघटनेच्या कामाकडे आस्थेने पाहणारेही होते. त्यांना एकत्रितपणे, एकसंधपणे चळवळीची भूमिका, वैचारिक भूमिका समजून घ्यायची होती. पण तशी यंत्रणा नव्हती. अशावेळी दाभोलकरांनी चळवळीचे सम्यक व सैद्धांतिक रूप समोर येण्याच्या दृष्टीने प्रस्तुत पुस्तकाची मांडणी केली आहे.[७]

अंधश्रद्धा विषयाशी संबंधित लोकांमध्ये भय निर्माण करणारा प्रकार म्हणजे भानामती होय. 'अंनिस'ने पंचवीस वर्षे या प्रकाराशी मुकाबला केला. घरावर अचानक दगड पडणे, कपडे फाटणे किंवा पेटणे, बंद कपाटातून पैसे गायब होणे, अंगावर ओरखडे उठणे, अन्नात विष्ठा आढळणे, घराची तावदाने वाजणे अशा गोष्टी घडू लागल्या की भानामती झाली असे म्हटले जाते. 'अंनिस'ने अशा शेकडो गोष्टींची शहानिशा करून भानामतीचे प्रकार पूर्णपणे थांबविले. हा सर्व प्रकारच मुळी रहस्यमय असतो. डॉ. नरेंद्र दाभोलकरांनी 'मती-भानामती' या पुस्तकामध्ये काही निवडक भानामती निर्मूलनाच्या घटनांचा वेध घेतला आहे. यामध्ये मराठवाड्यातील काही भानामतींचा उल्लेख तपशीलवार आहे. ही मांडणी करून भानामती म्हणजे

काय, करणीचे स्वरूप, रहस्यभेद कसा करावा याचीही माहिती दिली आहे. एकूणच माणसाच्या मनात भीती निर्माण करणाऱ्या भानामती संदर्भातील गैरसमज संपून जावेत या दृष्टीने सदर मांडणी लक्षवेधी आहे.

डॉक्टरांच्या साहित्य संपदेकडे पाहिल्यानंतर एक बाब स्पष्ट होते की त्यांच्या पुस्तकांची शीर्षके वैशिष्ट्यपूर्ण आहेत. उदा. ठरलं... डोळस व्हायचंय, ऐसे कैसे झाले भोंदू, विवेकाची पताका घेऊ खांद्यावरी, लढे अंधश्रद्धेचे, अंधश्रद्धा विनाशाय, तिमिरातूनी तेजाकडे, मती-भानामती इ. शीर्षक वाचताक्षणी वाचक त्याकडे आकृष्ट होतो. अकारण काव्यात्मकता निर्माण करण्याऐवजी आशयाकडे थेटपणे नेणारी शीर्षके वाचकाला पटकन आशयाशी जोडतात. त्याचबरोबर पुस्तकातील विविध लेख किंवा प्रकरणांची मांडणी करतानाही समर्पक मथळे देण्याची कला डॉ. दाभोलकरांना नेमकेपणाने साधली आहे. शनि शिंगणापूर, मांढरदेवी, नरेंद्र महाराज, साईबाबा, नांदोसचे हत्याकांड, मुख्यमंत्री-गृहमंत्र्यांना लिहिलेली पत्रे, विद्यार्थ्यांना केलेले आवाहन अशा प्रत्येक वेळी त्यांनी वैशिष्ट्यपूर्ण मथळे किंवा शीर्षके दिली आहेत. वाचकाची नजर शीर्षकांवर पडल्याबरोबर त्याने आशयाशी भिडावे असा हेतू ठेवून या शीर्षकांची मांडणी झाली आहे.[८]

एक गोष्ट कायमपणे लक्षात घ्यावयास हवी की डॉक्टरांना कथा, कादंबरी, कविता लिहूनही अंधश्रद्धा संदर्भातील वस्तुस्थिती सांगता आली असती. त्यामध्ये शब्द, विचार, शैलीच्या अंगाने नवनवे प्रयोग करून मान्यवर लेखक बनता आले असते. पण असे करण्याने मूळ हेतू साध्य झाला असता काय? मला वाटते, ज्या तीव्रतेने आज उपलब्ध पुस्तकांच्या माध्यमातून साध्य होत आहे ते कदाचित साध्य झाले नसते. कारण त्यांना कल्पनेच्या साहाय्याने घटना, प्रसंग रंगवून वाचकांना काही काळ समाधान द्यायचे नव्हते तर आपल्या मांडणीने वाचक अस्वस्थ व्हायला हवा, त्याने विचार करायला हवा यासाठीची धडपड होती. वैचारिक लेखनाचा बाज गंभीर असतो. या पुस्तकांमध्येही तसे जाणवते. पण डॉ. नरेंद्र दाभोलकरांनी वेगवेगळ्या विचारवंतांचे दाखले, काव्यपंक्ती, संतवचने यांचा यथोचित वापर करून गंभीर विषयांना सहजपणे मांडले आहे. त्यांची शास्त्रीय संकल्पना मांडतानाही सोप्या शब्दांचा वापर केला आहे. त्यांची शैली वाचकांना भिडणारी जशी आहे तशीच उपरोधातून चिंतनही मांडते. एका निश्चित दिशेने समाजमनाला नेणारी ही साहित्यसंपदा बुद्धीला आवाहन करीत विचारप्रवृत्त बनविण्यात कमालीची यशस्वी ठरते.

डॉ. नरेंद्र दाभोलकरांनी लिहिलेल्या आणि वाचकांसाठी सहज उपलब्ध होणाऱ्या पुस्तकांचा सर्वसाधारण आशय वरीलप्रमाणे आहे. पण या व्यतिरिक्त महाराष्ट्रातील वेगवेगळ्या वृत्तपत्रांतून केलेले प्रासंगिक अथवा सदर लेखन, प्रसारमाध्यमांना दिलेल्या मुलाखती, शाळा, महाविद्यालयांतून विद्यार्थ्यांशी साधलेला संवाद, सार्वजनिक क्षेत्रातील मान्यवरांशी साधलेल्या चर्चा व संवाद, 'अंनिस' संदर्भात विशेष आस्था ठेवणाऱ्या डॉ. श्रीराम लागू यांच्याशी झालेले वादसंवाद, निळू फुले, वसंत गोवारीकर आदी प्रभृतींसह केलेले विचारमंथन, राजकीय नेत्यांशी केलेला पत्रव्यवहार यांबरोबर लाखो लोकांशी साधलेल्या संवादातून त्यांनी आपल्या विचारांना मांडले. शास्त्रीय सत्य काय आहे हे सांगून लोकप्रबोधनाचा ध्यास घेतलेल्या या अवलियाचे संपूर्ण जीवन अंधश्रद्धामुक्त समाजाच्या निर्मितीसाठी प्रयत्नशील राहिले. आज डॉ. दाभोलकर आपल्यामध्ये नाहीत पण त्यांची साहित्यसंपदा उपलब्ध आहे. या आधारे शोषणमुक्त, निर्भय समाजाची उभारणी करणे निश्चितपणे शक्य आहे. पुढील काळात तर या ग्रंथांचा आधार घेऊन वाटचाल करावी लागेल एवढे निश्चितपणे म्हणता येते.

## संदर्भ ग्रंथ


१. डॉ. दाभोलकर नरेंद्र, भ्रम आणि निरास, राजहंस प्रकाशन, पुणे, १२ वी आवृत्ती, २०१३.
२. डॉ. दाभोलकर नरेंद्र, अंधश्रद्धा : प्रश्नचिन्ह आणि पूर्णविराम, राजहंस प्रकाशन, पुणे, १६ वी आवृत्ती, २०१३.
३. डॉ. दाभोलकर नरेंद्र, अंधश्रद्धा विनाशाय, राजहंस प्रकाशन, पुणे, १० वी आवृत्ती, २०१३.
४. डॉ. दाभोलकर नरेंद्र, विचार तर कराल, राजहंस प्रकाशन, पुणे, १० वी आवृत्ती, २०१३.
५. डॉ. दाभोलकर नरेंद्र, श्रद्धा-अंधश्रद्धा, राजहंस प्रकाशन, पुणे, ११ वी आवृत्ती, २०१३.
६. डॉ. दाभोलकर नरेंद्र, ऐसे कैसे झाले भोंदू, मनोविकास प्रकाशन, पुणे, ६ वी आवृत्ती, २०१३.
७. डॉ. दाभोलकर नरेंद्र , तिमिरातूनी तेजाकडे, राजहंस प्रकाशन, पुणे, ६ वी आवृत्ती, २०१४.
८. डॉ. शानेदिवाण राजेखान, नरेंद्र दाभोलकर : व्यक्ति आणि विचार, अक्षर दालन प्रकाशन, कोल्हापूर, २०१७.

# कोरोना साथीचा (Covid 19) सामाजिक परीणाम

**सौ. सुप्रिया अ. शिंदे**
(M.S.W)
कर्मवीर हिरे महाविद्यालय,गारगोटी

**सारांश**

*कोरोना संसर्गाच्या पार्श्वभूमीवर देशात २४ मार्च २०२० पासुन लॉकडाऊनला सुरूवात झाली. कोरोना विषाणू संसर्गाची साखळी तोडण्यासाठी जगभरात लॉकडाऊनचा पर्याय अवलंबला जात आहे. भारतात ही ३१मे पर्यंत लॉकडाऊन वाढवले आहे. यामुळे प्रचंड आर्थीक फटका बसणार असला, तरी हा निर्णय घेणे अपरीहार्य होते. याचे कारण आज चीन, दक्षीण कोरीया, जपान, हॉगकॉग आणी तैवान या कोरोनावर नियंत्रण मिळवल्याचा दावा करणाध्या देशांत कोरोनाची तिसरी लाट आली आहे.*

*आगामी काही दिवसामध्ये जगभरात कोरोनाच्या आणखीन काही लाटा येण्याची शक्यता वर्तविण्यात येत आहे. त्यामुळे कोणत्याही देशाने लॉकडाऊन उठवीताना आणी लादलेले नीर्बंध मागे घेताना खुप सावधगिरी बाळगण्याची आवश्यकता आहे असा इशारा जागतीक आरोग्य संघटनेने दिलेला आहे. जागतीक आरोग्य संघटनेने स्पष्ट केले आहे की, जगभरात कोरोनाचा कहर काही प्रमाणात आटोक्योत येताना दिसत असला तरी, त्या पाठोपाठ कोरोनाची परत लाट येण्याचा धोका आहे, आणी ती लाट तीव्र स्वरूपाची असण्याची शक्यता आहे. कोरोनाची लस ( Covid 19 Vasccin) ाोधन्यात यश आलेले आहे. जगभरात आणि देशात वयोगटाप्रमाणे दोन टप्यात लस देण्याचे कार्य प्रगतीपथावर आहे. भवि यात याचे काय परिणाम होतील आणि कोरोना समुळ न ट करण्यासाटी किती काळाने यश येईल ते आताच सांगणे अवघड आहे. कोरोनाचा मुकाबला करताना देशाला व जगाला जे अनुभव आले आहेत, त्या अनुभवातून काही धडा घेवून कोरोनाच्या पुढील टप्प्यांचा मुकाबला करण्यासाठी सज्ज राहण्याची गरज आहे.*

*काही देशांमध्ये आर्थिक आणी औद्योगीक कारणांवरून लॉकडाऊन उठविण्याबरोबरच नागरीकांवरील काही निर्बंध हि शिथील करण्याचे प्रयत्न सुरू केले आहेत. त्याबाबत जागतिक संघटनेने चिंता व्यक्त केली आहे. जे देश लॉकडाऊन उठवून निर्बंध मागे घेत आहेत, त्यांनी याबाबतीत अतिशय सावधानता बाळगण्याची गरज आहे. कारण सद्य परिस्थितीत लोकांना अशा कोणत्याही प्रकारची सवलत देणे धोकादायक ठरू शकते, कोरोनाचा पुन्हा फैलाव होऊ शकतो. पुन्हा एकदा कोरोनाचा प्रसार होऊ नये याची दक्षता घेण्याची गरज आहे. लॉकडाऊन आणी नीर्बंध उठविल्यानंतर ही सोशल डिस्टन्सींगचे तत्व पाळले गेले पाहिजे.*

***शिर्षक शब्द –***
*लॉकडाऊन, सोशल डिस्टन्सींग, सॅनिटायझर, हात धुणे, घरीच राहणे, मास्क वापरणे,संपर्क टाळणे, आजाराशी लढणे.*

**प्रस्तावना**

कोरोनाचे संकट मानवनिर्मीत आहे की, निसर्ग निर्मीत? याचा शोध आणी बोध आज अखेर झालेला नसला तरी भविष्यात घ्यावाच लागणार आहे. २० व्या शतकात घडून गेलेल्या दोन जागतीक महायुद्धानंतर २१ व्या शतकाच्या प्रारंभी हे अदृश्य स्वरूपाचे हे ''व्हायरल वॉर तर नसेल ना? अणूबॉम्ब ऐवजी व्हायरल बॉम्ब वापरून आपल्या स्पर्धकांचे बळी घेण्यासाठी स्वःताला बलवान समजणाऱ्या काही व्यक्तींचे किंवा राष्ट्रांचे हे कारस्थान असणाऱ्याचेही शक्यता नाकारता येत नाही. त्याचबरोबर मानव जातीच्या आहार–विहारामध्ये निर्माण झालेला हा अनीर्बंध अवस्थेचा किंवा अनावस्थेचा हा परीणाम असेल असा ही काही जणांचा अंदाज आहे. कोरोनाचा जन्म मासांहाराचा अतिरेक असणाऱ्या चायना मध्येच झाला आहे. याचे कारण माणूस सोडून सर्व प्राणी तेथे खाले जातात. एवढेच नव्हे तर काही दिवसापूर्वी काही लोकांनी चीन मध्ये जावून 'याची देही याची डोळा ' बघीतलेले आहे की, त्या देशात स्नेक्स हॉटेल म्हणजे सर्पआहारगृहे चालविली जातात. सापाच्या

शरीरातील पुढचा दिड–दोन इंच भाग कापून टाकून उर्वरीत सर्व भाग छान पैकी भाजून किंवा तळून मिटक्या मारत खाल्ला जातो. 'स्नेक सुप किंवा 'स्नेक्स टी' हे तर त्यांचे आवडते पेय बनले आहे. विंचू, पाली, घुशी आणी वटवाघळासह सर्व पक्षी आणी कीडे, मुंग्या हे देखील चवीने चघळणारे दिडशे कोटी हिंस्त्र मानव प्राणी चीन मध्ये राहतात, म्हणूनच, वटवाघूळ खाण्याने चीनमधील मानवाच्या पोटात प्रथम कोरोनाने प्रवेश केला आणी त्यानंतर सगळया जगभर कोरोनाचा मुक्त संचार व प्रसार सुरू झालेला आहे, असे काही शास्त्रज्ञांचे मत आहे.

प्राप्त परीस्थीतीत कोरोनाचे संकट निसर्ग निर्मीत असो किंवा मानव निर्मीत असो, त्यातुन आपण स्वतरूला वाचवीलेच पाहीजे यासाठी सगळी मानव जात आता झटून आणी एकजूट होऊन कार्यरत झालेली आहे याबद्दल दुमत नाही. प्रसीद्धीच्या माध्यमांकडून तर या संदर्भात खरोखरच अतीशय चांगले योगदान दीले जात आहे. गेले महीनाभर वृत्तपत्र असो किंवा शॉटस ॲप सगळ्यांचे लक्ष या एकाच संकटाच्या दीशेन वळवीलेले आहे. यामुळे स्वतरूला बुद्धीमान समजणारी मानव जात आपल्या बुद्धीप्रमाणे वीचार करू लागली आहे. आजतागायत मानव जात जशी येणाध्या अनेक संकंटावर मात करीत जशी टीकून राहीलेली आहे. तशी कोरोनाच्या संकंटापासुन स्वतरूला वाचवीण्यास यशस्वी होईल असे वाटते.

- **कोरोना संकट येणाची कारणे**

एक वेगळ्या दृष्टीकोनातून वीचार केला तर हे संकट येण्याचे कारण बेबंद, अनीर्बंध व बेदरकार बनलेल्या मानवजातीला एकाच वेळी बंदीस्त करण्याची ताकद आतापर्यंत कोणतीच व्यक्ती किंवा शक्ती दाखवू शकलेली नव्हती. एकवीसाव्या शतकाच्या पूर्वार्धात तर कोणी, कुणाचे काहीही ऐकायचेच नाही असे ठरवूनच मानवजात वावरत होती. यापूर्वी काही महापुरूषांनी मानवजातीला संयमीत करण्याचा आपआपल्या परीने प्रयत्न केला होता. यापैकी काही जणांना याच मानवजातीने सुळावर चढवीले, वाळवंटात गाटून मारले, वाळूत पुरले, नदीत बुडवीले आणी नंतर त्यांचीच मंदीरे बांधून पुन्हा मानवजात नेहमीप्रमाणे बेबंद वागू लागली. वीशेषतरू वैज्ञानीक शोध व संशोधनामुळे काही साधने हातात आल्यानंतर कोणच कोणाचे ऐकेना, अशी परीस्थीती नीर्माण झाली. जातीपातीच्या, धर्माच्या भिंती व राष्ट्राच्या टोळ्या परस्परावर तुटून पाडण्यामागे किंवा तोंडून पाडण्यामध्ये स्वतरूला पराक्रमी समजू लागल्या या आणी अशा अनीर्बंध अवस्थेमध्ये कोरोना नावाच्या या अदृ श्य शक्तीने गेला महीनाभर सगळ्यांना ज्याच्या त्याच्या घरात कोंडून ठेवलेले आहे. पृथ्वी तलावावरील प्रत्येक घर हा स्वयंनीमीर्त तुरूंग बनलेला आहे. लहान मोठे सर्व मानव स्वतरूवर मर्यादा घालून आपले काय चुकले आणी आपल्याला वाचायचे असेल तर आपल्याला काय करायला पाहीजे, याचा विचार करू लागले आहेत. अवीचारी बनलेल्या मानव जातीला वीचार करायला भाग पाडण्यासाठीच कोरोनाचे भयानक संकट आले की काय असे वाटते.

- **सामाजीक परीणाम**

या प्राप्त परीस्थीतीमुळे सध्या संपूर्ण जगाचे सर्व व्यवहार गप्प आणी ठप्प झालेले आहेत. अजून काही काळ ही परीस्थीती टीकली तर उत्पादनाच्या व वीतरणाच्या प्रक्रीयेवर याचे दुष्परीणाम नीश्चीतच घडून येणार आहेत. हे भवीष्य लक्षात घेवून आपले पुढील नीयोजन नीश्चीत करण्यासाठी संकट मुक्ती नंतरच्या काळात असेच संघटीत राहून शीस्त पाळून व समाज व्यवस्थेला योग्य दीशेने गती देऊन नीर्माण झालेली प्रश्न सोडवीणे शक्य आणी आवश्यक आहे.

**१) रोजगारात मोठी घट**

कोरोना नियंत्रणात आणण्यासाठी स्विकारलेली टाळेबंदी अनेक देशांनी व प्रदीर्घ कालावधीसाठी असल्याने त्यातून अल्पकालीन व दिर्घकालीन अशी मोठी रोजगार घट झाली आहे. कोरोनामुळे जागतिक उत्पादन वाढीचा वेग अर्ध्या टक्यापर्यंत तर काही देशांना उणे असा अंदाजित असून, त्याच्या फटका रोजगारावरच बसणार आहे. उत्पादन घटीतून मागणी घट व त्यातून उत्पादन घट असे दुष्टचक्र रोजगार घट करते. अनेक वस्तूंच्या उत्पादनास लागणारा कच्चा माल ठप्प झालेल्या आंतरराष्ट्रीय व्यापाराने उपलब्ध होत नसल्याने तयार झालेला माल बाजारपेठेत न गेल्याने पुरवठा साखळी खंडित झाली. मागणी आणि पुरवठा या दोन्ही बाजुने रोजगार घट होत असल्याने एकूण रोजगार घट गतिमान झाली.

जागतिक पर्यटन संस्थेने केलेल्या अंदाजानुसार पर्यटन व्यवसायात ४० टक्के घट झाली आहे. सरकारने जरी कामगारांना कमी केले जावू नये, त्यांना वेतन द्यावे, अशी आग्रही भुमिका घेतली असली तरी कामगार कपात, वेतन कपात

होतच आहे. अर्थव्यवस्था व उत्पादन व्यवस्था पूर्णत: पूर्णपदावर येण्याबाबत असणारी अनिश्चितता रोजगार संकट गंभीर करते. विशेषता सुक्ष्म, लघु व मध्यम उद्योगांचे उत्पादन थांबल्याने होणारे नुकसान त्यांच्या अर्थक्षमतेपलीकडील असल्याने रोजगार कपात अपरिहार्य ठरते. रोजगार संख्यात्मक व गुणात्मक अशा दोन्ही पद्धतीने घटत आहे.

**२) दुर्बल व महिला घटकावर परिणाम**

टाळेबंदीच्या आर्थिक भार रोजगार आणी उत्पन्न यांची किंमत देत संख्येने मोठा परंतु विखुरलेला असहाय्य कामगार वर्ग सोसत आहे. टाळेबंदीचा रोजगारावरील प्रतिकूल परिणाम कामगारातील दुर्बल घटकांवर अधिक तिव्रतेने होतो. यामध्ये ज्यांना आधिच आजारपण आहे. ते सहजपणे याचा बळी पडतात, विशेषत: पन्नाशीच्या पुढे गेलेले किंवा वृद्धत्वाकडे झुकलेले यांचे रोजगार पुन्हा प्राप्त होणे अवघड ठरते. कोणत्याही आपत्तिची सर्वाधिक किंमत ही स्त्रियांना द्यावी लागते. कोरोनाचा रोजगार घटीवरील अधिक तीव्र परिणाम महिला रोजगार घटीवर दिसतो. बचत गटामार्फत, सुक्ष्म वित्त पुरवण्यातुनच नुकतेच व्यवसाय सुरू केलेल्या महिला कर्जबाजारी होवून नव्या संकटात ढकलल्या जातात. ज्या कामगारांना कोणतीही सामाजिक सुरक्षितता योजना नाही असे ९४ टक्के कामगार अस्तित्वासाठी लढत राहतात. सर्व प्रकारच्या समस्यांना तोंड देणारा स्थलांतरित कामगार हा रोजगार, उत्पन्न सोडून गावी निघालेला हताश वर्ग हे सर्वांत दयनीय चित्र कामगारांबाबत कोरोनाने दिले.

**३) लॉकडाऊन मुळे नात्यांमध्ये दुरावा**

लॉकडाऊन दरम्यान भारतात मानसिक आजारांशी संबंधीत प्रकरणांत तब्बल २० टक्यांनी वाढ झाल्याची धक्कादायक माहिती समोर आली आहे. देशात दर पाच व्यक्तिंपैकी एकाला मानसिक तणावाचा सामना करावा लागत असुन, विशेषत: जोडप्यांमध्ये ताण, चिंता आणि नैराश्येचे प्रमाण वाढले आहे. लॉकडाऊनचा सर्वांधिक परिणाम ३५ ते ३९ वयोगटातील व्यक्तींवर झाला असल्याचे इंडियन सायक्यास्ट्रिक सोसायटीने केला आहे. गुगल ट्रेंड डाटानुसार, लॉकडाऊन दरम्यान भारतीय मानसिक ताण आणि त्यावरील उपचारांसंबंधी माहितीचा इंटरनेटवर सर्वाधिक शोध घेत आहेत यामागे आर्थिक स्थिती, आरोग्य, काम आणि तणाव कारणीभूत असल्याचे तज्ञांचे म्हणणे आहे. लॉकडाऊन दरम्यान घरात जास्त वेळ राहिल्याने पती–पत्नीमध्ये चिडचिड वाढत असून, यामुळे नात्यांमध्ये दुरावा येत आहे. सासु सुनामध्ये ही पहिल्यापेक्षा अधिक खटके उडत असुन, जोडपी सोशल मिडीयावर जास्त वेळ व्यतीत करत आहेत.

ताण आणि नैराश्येशी संबंधित प्रकरणांत मोठी वाढ झाली असून, जोडप्यामधील तणावाची हि अनेक प्रकरणे समोर येत आहेत. आपल्या जोडीदाराला समजून घेण्याचा अभाव असेल, त्या ठिकाणी तणाव स्वाभावीक असून यात हाताला काम नसल्याने आणखी भर पडत आहे. ज्या व्यक्तींना बसुन राहायला आवडत नाही अशामध्ये तणाव आणी नैराश वाढीस लागते. कोरोनामुळे जीवनशैली आणी विचारांमध्ये मोठा बदल झाला आहे. जर तुम्हाला खूश राहायचे असेल तर अशा बिकट काळात मिळते–जुळते घेण्याची कला आत्मसात करा.

**४) कल्पकतेला वाव**

कोरोनाच्या भयानक अशा परिणामावर मानवाने आपल्या बौद्धिक कौशल्याचा वापर करताना प्रगत तंत्रज्ञानाच्या मदतीने काही उपाय शोधले आहेत. जसे की ऑनलाईन कामकाजावर भर देताना बँक, व्यापार, उद्योग, शैक्षणिक कामे व इतर सेवा पार पाडताना दिसत आहेत तरी हि भारतासारख्या देशात तांत्रीक अडचणीमुळे (नेटवर्क) त्यावर खुपच मर्यादा पडतात हे विसरून चालणार नाही. कोव्हिड–१९ मुळे सायबर गुन्हात वाढ झाल्याचे दिसुन येते. सध्याच्या कोरोनाच्या भिती मुळे प्रत्येकजण घरीच थांबला आहे अशा वेळी लोप पावत चाललेल्या खेळांना वाव देवून ते खेळ नव्याने खेळले जात आहेत. आधुनिक तंत्रज्ञानाचा वापर करून काही सामाजिक माध्यमांचा उपयोग करून शैक्षणिक तसेच सांस्कृतिक स्पर्धा, चर्चासत्र, परिषदा, सभा आयोजित केल्या जात आहेत. याकरिता सामाजिक व शैक्षणिक संस्था, युवक मंडळे पुढाकार घेत आहेत. यासारख्या विविध कार्यक्रमातुन लॉकडाऊनचा काळ आनंदीत घालविण्याचा प्रयत्न केला जात आहे.

## निष्कर्ष

कोरोनाच्या तडाख्यात अनेक उद्योग तग धरू शकणार नाहीत. आर्थिक मंदिची टांगती तलवार आहे. परप्रांतिय कामगार गावी परतत आहेत. त्यांच्या कौशल्याचा वापर करून चीनसारखे विकेंद्रीत उद्योगांचे प्रारूप त्या त्या भागात उभे करण्याची ही संधी आहे. या आपत्तीला इष्टापती मानून भविष्याच्या सुखी आणी समृद्ध भारताचे स्वप्न यातून साकारू शकते. त्यामुळे खेड्यतील माणसाने शहरात येण्यापेक्षा शहरातल्या आधुनिक सुविधा गावापर्यंत पोहचविणे या पुढच्या काळातला मंत्र असायला हवा. इंटरनेटमुळे ज्ञानाचे सार्वत्रीकिकरण झाले आहे. त्यामुळे सर्वांगीण विकासासाठी मोठ्या शहरातच जायला पाहिजे हा विचार तरूणांनी त्यागायला हवा तरच आपण आपल्या छोट्य गावाला जगाच्या बाजारपेठेत उतरवू शकू. कोरोनामुळे भारतीय अर्थव्यवस्थेला जबर तडाखा बसला असल्याचे जागतीक बँकेने देखील ताज्या अहवालात म्हटले आहे. परिस्थिती कधी सुधारणार, याचे उत्तर जागतीक बँकेलाही अहवालात देता आलेले नाही. आगामी काळात यापूर्वी आलेल्या आर्थिक संकंटावेळी कामाचा अनुभव असलेल्या आणी सध्या विरोधी पक्षात असलेल्या सदस्याची मदत घेतली पाहीजे यासाठी राजकारणापलीकडे पाहणे गरजेचे आहे. सरकारने केवळ पंतप्रधान कार्यालयातल्या लोकांच्या जीवावरच हा प्रश्न सोडवायचा आग्रह धरला तर त्यातून काहिच साध्य होणार नाही आणि आपल्याला फार उशीर होईल. आशा आहे की, भारतातले उष्ण तापमान आणी आद्रतेमुळे या व्हायरसचे संक्रमण दुर्बल होईल आणी परिस्थिती सरकारच्या नियंत्रणात ती पूर्वपदावर येईल असे म्हटले जात आहे की, भारतात केवळ संकट काळातच सुधारणा होतात. या संकंटामुळे आपण किती दुर्बल झालो आहोत, हे लक्षात येईल आणी येत्या काळात राजकारणाचा फोकस हा गंभीर स्थितीत असलेली अर्थव्यवस्था आणी आरोग्य सेवांच्या सुधारणावर राहील.

जागतिक आरोग्य संघटनेने चार मार्गदर्शक तत्वे घालून दिलेली आहेत, यामध्ये शोध घेणे, तपासणी, विलगीकरण आणी उपचारासाठी मदत या तत्वाचा काटेकोरपणे अंगीकार केला तर कोरोना साथीवर सहज मात करता येते, हे केरळ सारख्या लहान राज्याने जगाला दाखवून दिले आहे. डॉक्टर, परिचारीका, पोलीस दल, सफाई कामगार, आशाताई, ग्रामसेवक, ग्राम व नगरपंचायत कर्मचारी शिक्षक, समाजसेवक या देवदुतांवर हल्ला न करता त्याचा सन्मान व मानवंदना देवून त्यांच्या कार्याला हातभार लागेल अशी मानव जातीने आपले वर्तन ठेवणे गरजेचे आहे.

## संदर्भ

१) डब्ल्यू. एच. ओ. (World Health Organization website) वेबसाईट
२) सकाळ, लोकमत, लोकसत्ता, पुढारी, महाराष्ट्र टाईम्स, पुण्यनगरी इ. पेपरची कात्रणे.
३) कोरोना सूची संदर्भ ग्रंथ.
४) प्रसार माध्यमांकडून येणारी माहीती.

# वासणोली धनगरवाड्याचे भौगोलीक, सामाजिक व सांस्कृतिक पैलु

**प्रा.गौतमी वसंत कांबळे,**
भूगोल विभाग,
कर्मवीर हिरे कला, वाणिज्य, विज्ञान आणि शिक्षणशास्त्र महाविद्यालय, गारगोटी.

## १. प्रस्तावना :

मानव व पर्यावरण यांच्यातील परस्पर संबंध व परस्पर आंतरक्रिया अभ्यासणारे शास्त्र म्हणून भूगोल शास्त्राकडे पाहिले जाते. भूगोलाच्या अभ्यासाचे पारंपरिक वर्णनात्मक स्वरूप कालबाह्य झाले असून, सामाजिक सांस्कृतिक उद्दिष्टानुसार त्याचे अभ्यासक्षेत्र बदललेले आहे.

मानवी जीवनाला प्रत्यक्ष भेडसावणाऱ्या समस्या मांडून त्याचे निराकरण करण्यासाठी स्वतःची भूमिका मांडण्याचे काम या संशोधनाच्या माध्यमातून करण्यात आले आहे.

मानवी जीवनाच्या सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक क्षेत्रात मोठ्या प्रमाणात प्रादेशिक पातळीवर भिन्नता आढळते. त्यातही एकाच समाजाच्या अनेक जाती धर्मात ही मोठी भिन्नता आढळते.

भारताच्या बलाढ्य लोकसंख्या असलेल्या देशात प्रदूषण, पाणीटंचाई, विजेचा तुटवडा, झोपड्या, आरोग्य, शिक्षण, रस्ते वाहतूक, भूमी उपयोजन, नैसर्गिक आपत्ती यासारख्या अनेक समस्या आहेत. त्यांच्या निराकरणात किंवा त्यांची तीव्रता कमी करण्यात अनेक शास्त्रे आपल्या परीने योगदान देत आहेत. भूगोल शास्त्र ही त्याला अपवाद नाही किंबहुना भूगोल शास्त्र हे या प्रकारच्या माध्यमातून वास्तव चित्र मांडते.

## २. विषयाचे महत्व :

कोणत्याही देशातील सामाजिक-आर्थिक जीवनात एकजिनसीपणा आढळत नसतो. यामध्ये प्रदेशा प्रदेशानुसार जाती धर्मानुसार काळानुसार भिन्नता आढळते. काही प्रदेश तसेच समाजातील काही घटक आर्थिक दृष्ट्या अत्यंत विकसित असून काही घटक स्वतःच्या अन्न,वस्त्र व निवारा या मूलभूत गरजा ही भागवू शकत नाहीत समाजातील हा आर्थिक असमतोल प्रदेशाचे संतुलित आर्थिक चित्र उभे करीत नाही. भारतासारख्या देशात ही आर्थिक दरी वाढतच चाललेली दिसते.

सामाजिक पातळीवरही भारतीय समाजात भिन्नता आढळते. लोकसंख्येची रचना, शैक्षणिक स्थिती ,आरोग्य, चालीरीती इत्यादी बाबतीत समाजा समाजा नुसार भिन्नता आढळते.

या पार्श्वभूमीवर आदिवासींचे सामाजिक जीवन कसे असते या उत्सुकतेपोटी हा विषय अभ्यासासाठी निवडला आहे. भारतामध्ये सहाशेहून अधिक आदिवासी जमाती असून त्यांची दहा कोटींहून अधिक लोकसंख्या आहे.बहुतांशी जमाती या अत्यंत दुर्गम डोंगराळ प्रदेशात वास्तव्य करीत असून त्यांच्या एकाकी जीवनाचा तथाकथित आधुनिक जगाशी फार कमी संबंध आहे त्यांचे सामाजिक जीवन कसे असते याचा अभ्यास करण्यासाठी प्राथमिक स्वरूपात 'वासणोलीवाडा' हे डगे आदिवासी गाव निवडून त्याचा अभ्यास करण्यात आला आहे.

**३. उद्दिष्टे :**

I. वासनोली वाडा गावातील प्राकृतिक भौगोलिक परिस्थिती चे सर्वसाधारण स्वरूप अभ्यासणे.

II. वासणोलीवाड्यातील सामाजिक जीवनाच्या अभ्यासात स्त्री-पुरुष प्रमाण, साक्षरता, वैवाहिक स्थिती विवाह खर्च या प्रमुख घटकांचे वैवाहीक स्थिती विवाह खर्च या प्रमुख घटकांचे विश्लेषण करणे.

III. वासणोली वाड्यातील सांस्कृतिक घटकांचे सण-उत्सव यांचा अभ्यास करणे.

**४. गृहीतके :**

I. वासणोली धनगरवाड्यावर भौगोलिक परिस्थितीचा प्रभाव पडलेला आहे.

II. वासणोली धनगर वाड्यावर सामाजिक घटकांचा प्रभाव आहे.

III. वासणोली धनगरवाड्यावर सांस्कृतिक घटकांचा प्रभाव आहे.

**५. संशोधन पध्दती :**

वासणोलीवाडा या गावच्या सामाजिक मागासलेपणाचा अभ्यास करण्यासाठी संशोधनपर शास्त्रीय पद्धती अवलंबिली आहे. यामध्ये सर्वेक्षण पद्धती वापरली आहे. त्यासाठी प्रश्नावली, मुलाखती, निरीक्षण पद्धतींचा वापर केला आहे.

**६. वासणोलीवाडा : एक भौगोलिक स्थान :**

डंगे ही भटकी आदिवासी जमात म्हणून ओळखली जाते. परंतु आज ही जमात जंगलांमध्ये घरे बांधून स्थाई जीवन जगत आहे. पश्चिम महाराष्ट्रात 'पश्चिम घाट' (सह्याद्री) प्रदेशात जंगल,डोंगर कपारीत वास्तव्य करणारी ही जमात आहे. आर्थिकदृष्ट्या यांचे जीवन अत्यंत मागसलेले असून गुरे पाळणे, शेळ्या पाळणे, लाकडांच्या मोळया विकणे, जंगलातील पदार्थ गोळा करून विकणे,औषधी वनस्पती विकणे, इत्यादी व्यवसायांवर ते आपली उपजीविका करतात अलिकडे ते काही प्रमाणात शेती करू लागले आहेत.

'वासणोलीवाडा' हे 'डंगे' आदिवासी गाव गारगोटी पासून सुमारे २० किलोमीटर अंतरावर पश्चिमेला दूधगंगा डोंगर रांगेच्या मध्यावर वसले आहे.

हे गाव शासनाच्या जंगलक्षेत्रात वसले असुन वासणोली गावच्या ग्रामपंचयातीमध्ये त्याचा समावेश होतो. गारगोटी तालुक्याच्या ठिकाणाहून १५ की.मी. अंतरावर वासणोली गावापर्यंत एसटी ने जाता येते व पुढे डोंगरावर, जंगलातून पायवाटेने सुमारे ५की.मी. अंतर या वाड्यापर्यंत चालावे लागते. दूधगंगा डोंगररांगेवर ८३० मीटर उंचीवर गाव असून रांगेच्या मध्यभागावरील सपाट विस्तृत पठारावर ते वसले आहे. गावाच्या उत्तरेला डोंगररांगेचा भाग असून त्यावर विस्तृत पठार (Table land) आढळते. तर पूर्वेला खोल दरी असून त्यातून वेदगंगा नदी वाहते.

वासणोलीवाडा ही कोणतीही आकार नसलेली वस्ती असून गावात ३५ कुटुंबे आहेत. हा समाज एकजीनसी असुन इतर कोणतीही जात या गावात नाही. आदिवासींची वैशिष्ट्ये या वस्तीवर असून इतर प्रगत समाजापासुन हा समाज खूपच मागे असलेला आढळतो. अलिकडे दूरवरच्या अंतरावरुन या गावाजवळून रस्ता जातो. गावाच्या वरच्या बाजूस दूधगंगा डोंगररांगेवर पठार आहे. गावाच्या अवती भोवती जंगल असून त्यामधे गवतापासुन ते अनेक पानझडी वृक्ष आढळतात.

**अ) प्राकृतिक पर्यावरण :** भुदरगड तालुक्याच्या पश्चिमेला पश्चिम घाट किंवा सह्याद्री डोंगररांग आहे या मुख्य डोंगरांची उत्तर-पश्चिम उपशाखा दूधगंगा डोंगर रांग म्हणून ओळखली जाते. या डोंगररांगेवर वासणोलीवाडा ही वस्ती असून ती पूर्णता जंगलक्षेत्रात आहे. डोंगर रांगेच्या गावाजवळील उंची 870 मीटर असून वासणोलीवाडा हे गाव 830 मीटर उंचीवर आहे. गावाच्या पूर्व- दक्षिण बाजूस वेदगंगेच्या खोऱ्याचा भाग असून तो तीव्र उताराचा आहे.

**ब) हवामान:** उष्ण व दमट हवामानात हे गाव येते. उन्हाळा, पावसाळा व हिवाळा हे तीन ऋतू येथे आढळतात. मान्सून हवामानाची सर्व वैशिष्ट्ये येथे आढळत असून या गावचे हवामान अत्यंत आल्हाददायक आहे. या गावा दरम्यान तापमान व पर्जन्यमान दर्शविणारी स्वतंत्र व्यवस्था नाही. त्यामुळे गावापासून 12 किलोमीटर अंतरावर असलेल्या कडगाव या गावचे तापमान व पर्जन्य उपलब्ध असून ते गृहीत धरलेले आहे. एप्रिल व मे हे महिने वर्षातील सर्वाधिक तापमानाचे असून डिसेंबर व जानेवारी हे सर्वाधिक थंड महिने आहेत. वर्षातील तापमानात फार मोठी तफावत आढळत नाही.

**क) जंगले :** वासणोलीवाडा गाव जंगलाच्या सान्निध्यात आहे. अनेक प्रकारच्या वेली, झुडपे, गवत, वृक्ष यांनी व्याप्त समृद्ध प्रकारचे निमसदाहरित प्रकारचे मोसमी जंगल या गावच्या परिसरात आहे. जंगलात मोसमी वृक्ष असून गवत, औषधी वनस्पती, विविध प्रकारची फळे आहेत. हे जंगल सरकारी मालकीचे असून जंगलातील विविध पदार्थ गोळा करून ते विकणे हा तेथील लोकांच्या उदरनिर्वाहाचा एक भाग आहे. त्याबरोबर या जंगलात या गावच्या लोकांची जनावरे, शेळ्या यांची उपजीविका होते.

**७. वासनोलीवाडा सामान्य माहिती:**

भुदरगड तालुक्यात डंगे आदिवासी पंधरा वर्षे असून तालुक्याच्या पश्चिम भागात उत्तर व दक्षिण डोंगर रांगांवर व पश्चिमेकडील डोंगराळ जंगल व्याप्त प्रदेशात त्यांचे वास्तव्य आहे. यापैकी वासणोलीवाडा ही वस्ती असून या गावात एकूण 17 कुटुंबे राहतात या छोट्या गावची एकूण लोकसंख्या 107 असून त्यामध्ये 47 पुरुष व 60 स्त्रिया यांचा समावेश आहे. गावातील कुटुंबांची सरासरी सदस्य संख्या 6.30 इतकी आहे.

**अ ) सामाजिक जीवन :** संकलित केलेल्या माहितीच्या आधारे वासणोलीवाडा या आदिवासी खेड्यातील सामाजिक जीवन हे लोकसंख्या, स्त्री-पुरुष प्रमाण, साक्षरता, वैवाहिक स्थिती या प्रमुख घटकांच्या आधारे मांडण्याचा प्रयत्न केला आहे.

**ब) लोकसंख्या,स्त्री-पुरुष प्रमाण :** गावची एकूण लोकसंख्या 107 इतकी असून त्यात 60 स्त्रिया व 47 पुरुष आहेत. स्त्री पुरुषांच्या संख्येत वाढत्या वयोगटानुसार घट होत गेली आहे. यामध्ये पुरुषांपेक्षा स्त्रियांच्या संख्येत वयोगटानुसार घटअत्यंत लक्षणीय असल्याचे दिसून येते. तसेच असे निदर्शनास येत की कर्ती कार्यक्षम लोकसंख्या कमी असून अवलंबित अकार्यक्षम लोकसंख्या जास्त असल्यामुळे अवलंबितांच्या भार मोठा असल्याचे दिसून येते.

**क) साक्षरता :** कोणत्याही प्रदेशातील सामाजिक आर्थिक विकासाचा स्तर हा त्या प्रदेशातील साक्षरतेशी निगडित असतो. विकसित प्रदेशातील, देशातील साक्षरता ही जास्त असते. तर साक्षरता कमी असलेले प्रदेश मागासलेले असतात असे समीकरणच आढळते. यादृष्टीने या गावचा साक्षरते संबंधीचा अभ्यास खालील मुद्यांना धरून केला आहे.

१) **सर्वसाधारण साक्षरता:**

वासणोली वाड्यातील साक्षरता 61.45% इतकीआहे. (0 ते 7 वयोगटातील लोकसंख्या वगळून) गावातील एकूण 51 साक्षर लोकसंख्या असून त्यात 27 स्त्रिया (52.94% व 24 पुरुष) ( 47.06%) आहेत.

गावातील एकूण स्त्रियांपैकी (60) 45 टक्के स्त्रिया साक्षर आहेत. यामुळे गावातील पुरुषांपेक्षा स्त्रियांची साक्षरसंख्या जास्त असली तरी त्यांच्या एकूण संख्येशी होणाऱ्या प्रमाणात पुरुषातील साक्षरतेहून थोडी अधिक आहे.

२) **वयोगटानुसार साक्षरता :**

साक्षरतेचा अभ्यासात केवळ एकूण साक्षरता ही महत्त्वाचा निकष ठरत नसून त्याची वयोगटानुसार विभागणी ही महत्त्वाची ठरते. वासणोली वाड्यातील शिक्षणाचा प्रसार अगदी अलीकडच्या काळात झाला आहे. 62 टक्के इतके साक्षर 15 वर्षाच्या आतील आहेत. आश्चर्याची बाब म्हणजे या गावातील 25 वर्षाच्या वरील वयोगटात केवळ एकच साक्षर असल्याची नोंद झाली आहे. गावात प्राथमिक शाळेची अथवा वस्ती शाळेची सोय उपलब्ध नाही. गावापासून तीन किलोमीटर अंतरावर प्राथमिक शाळा उपलब्ध आहे. डोंगरातील जंगलातील पायवाटेने शाळेसाठी लहान मुलांना प्रवास करावा लागतो. पावसाळ्यात प्रचंड पावसामुळे शाळेला जाणे खूपच कठीण होऊन जाते. स्तरानुसार साक्षरता संख्यात्मक साक्षरता ही कमी महत्त्वाचे असून गुणात्मक साक्षरता असायला हवी.

वासणोली वाड्यावरील एकूण साक्षरतेच्या 80 टक्के साक्षर हे प्राथमिक स्तरापर्यंत चे साक्षर असून वरच्या स्तरात कडे साक्षर यांची संख्या लक्षणीय घटलेली आढळते. गावात केवळ एकच व्यक्ती पदवी शिक्षण घेत असून माध्यमिक स्तरावर च्या पुढे स्त्रियांची कमी साक्षरता ही चिंतनीय बाब आहे.

ड) **वैवाहिक स्थिती :** आदिवासींच्या सामाजिक जीवनामध्ये विवाह संस्थेची वेगळी वैशिष्ट्ये आढळतात. वासणोली वाड्यातील डंगे यांच्या वैवाहिक स्थितीची काही वैशिष्ट्ये पुढीलप्रमाणे बालविवाह पद्धती डंगे जमातीत बालविवाह पद्धती प्रचलित आहे. अलीकडच्या दहा वर्षाच्या काळापासून परिस्थिती बदलत असली तरी आजही ही पद्धत प्रचलित आहे. 25 वर्षांपूर्वी पाळण्यात विवाह होत असत काळानुसार लग्नाचे वय वाढत गेले तरी आजही अठराव्या वर्षापूर्वीच मुलींचे विवाह होतात. वासणोली वाड्यावर असे विवाह झाले असले तरी त्यांचे खरे वय सांगण्यास पालक नकार देतात असे आढळले.

**इ) हुंडा पद्धती :** डंगे समाजात हुंडा पद्धत प्रचलित आहे मात्र या समाजात मुलाकडून मुलींकडे हुंडा देण्याची पद्धती आहे. त्यामुळे स्त्रियांच्या या समाजात सन्मान होतो असे आढळले. हुंड्याला 'दयाज' असे म्हटले जाते. वासणोलीवाडा गावात गेल्या दोन वर्षात झालेल्या लग्नात मुलग्याने मुलीच्या घरच्यांना दिलेले 'दयाज' 5000 ते 30 हजार पर्यंत आढळते.

डंगेच्या लग्नातील खर्च त्यांच्या आर्थिक परिस्थितीच्या तुलनेत मोठा असतो. गावातील 17 कुटुंबांपैकी तेरा कुटुंबात झालेल्या लग्नाचा खर्च रुपये दहा हजार ते एक लाखापर्यंत आढळला. रुपये एक लाखाहून अधिक खर्च करणारी ही दोन कुटुंबे आहेत. हा प्रचंड खर्च करण्यासाठी घरातील जनावरे विकणे, खाजगी सावकाराकडून कर्ज घेणे, इत्यादी प्रकारे पैशाची उभारणी केली जाते. असे कुटुंब प्रमुखाने सांगितले कर्जबाजारी झालेले कुटुंब पुढे अनेक वर्षे ते कर्ज फेडत राहतात.

**फ)** **सण** : धर्माने डंगे हिंदू आहे. गावात कोणतीही देवालय नाही. विठ्ठलाचे भक्त आहेत. सर्वात मोठा सण दसरा आहे. हा सण नऊ दिवस चालतो. बाकीचे सण अगदी कमी प्रमाणात साजरे केले जातात.

## ८. निष्कर्ष :

वासनोली वाड्यातील डंगे धनगर समाजाचे सामाजिक जीवन अभ्यासले असता असे आढळून येते की हे लोक जंगल भागात वास्तव्य करून राहात असून त्यांच्याकडे स्वतःच्या मालकीची अशी जमीन नाही. तसेच त्यांच्यामध्ये कमालीचे दारिद्रय व अज्ञान आहे .या समाजाचा अभ्यास करत असताना असे दिसून आले की डंगे समाजाचे सामाजिक जीवन इतर समाजापासून वेगळे आहे त्यांची स्वतःची अशी सामाजिक जीवनपद्धती आहे या त्यांच्या जीवनावर अलीकडच्या काळात अवतीभवतीच्या बदलत्या परिस्थितीचा परिणाम होऊ लागला आहे. त्यामुळे डग्यांची तरुण पिढी पारंपरिक सामाजिक जीवन पद्धती नाकारत असताना दिसत आहे.तसेच या समाजातील वैवाहिक जीवनाचा अभ्यास जेव्हा केला तेव्हा असे दिसून आले की या समाजामध्ये बालविवाहाची पद्धती प्रचलित आहे परंतु ही प्रथा आज बंद झालेली असली तरी अल्पवयीन विवाह आजही होत आहेत. विशेष बाब म्हणजे मुलग्याच्या बाजूकडून मुलीच्या पालकांना इथे हुंडा दिला जातो. व या हुंड्याची रक्कम पाच हजार ते तीस हजार पर्यंत असते यांच्याकडे जरी आर्थिक कमतरता असली तरी हे लोक लग्नांमध्ये अतिशय खर्च करत असताना दिसून येतात त्यासाठी ते सावकाराकडून कर्ज घेऊन हा लग्नाचा उत्सव, सण साजरे करतात. या समाजावर येथील भौगोलिक परिस्थितीचा परिणाम झालेला प्रकर्षाने दिसून येतो.

## ९. संदर्भ :

१. मुळे, उमाटे (१९८७,आवृत्ति-२). शैक्षणिक संशोधन पद्धती. नागपुर : महाराष्ट्र राज्य विद्यापीठ ग्रन्थ निर्मिति मंडळ.
२. दांडेकर आणि जगताप (१९५७). महाराष्ट्राची ग्रामीण समाजरचना. पुणे : गोखले अर्थशास्त्र संशोधन संस्था.
३. आगलावे, प्रदिप (२००१). आधुनिक भारतातील सामाजिक समस्या. नागपूर : विदया प्रकाशन.
४. सामाजिक न्यायालय आणि विशेष सहायता विभाग, महाराष्ट्र शासन २००९-१० वाटचाल सामाजिक न्यायाच्या दिशेने या विषयावर प्रकाशित केलेली माहिती पुस्तिका.
५. नागपुरे, व.रा. (संपा) (१९८९).समानतेसाठी शिक्षण. पुणे : महाराष्ट्र राज्य शैक्षणिक संशोधन व प्रकाशन परिषद.
६. लोटे, रा.ज. (१९८९). सामाजिक समस्या. नागपूर : पिंपळापुरे अँड कंपनी पब्लिशर्स.
७. Dr. Chauhan S.S.( July, 1982). Study of Academic motivation in Relation to Intelligence & social Economic status Journal of Education Research and Extension Vo-19, No. 1.
८. www.vishwakosh.marathi.gov.in
९. www.wikipedia.org

# सामाजिक व सांस्कृतिक विकासातील शिक्षणाची भूमिका

**डॉ. गोविंदराव शंकरराव कांबळे**
सहयोगी प्राध्यापक,
आझाद कॉलेज ऑफ एज्युकेशन सातारा.

---

सारांश

शिक्षणाची समाजाच्या विकासात महत्त्वाची भूमिका आहे हे स्पष्ट होते किंबहुना शिक्षण हेच कोणत्याही विकास प्रक्रियेचे मूलभूत माध्यम आहे कोणत्याही समाजाच्या वा राष्ट्राच्या अर्थकारण, राजकारण, आणि समाजकारणाला गतिमानता प्रदान करण्यामागे शिक्षणाची भूमिका मध्यवर्ती आहे. हे देखील स्पष्ट झालेले आहे. कोणत्याही राष्ट्राची आर्थिक प्रगती ही त्या राष्ट्राच्या सर्वंकष प्रगतीचा कणा असतो शिक्षण आणि अर्थकारण यांच्यातील परस्पर संबंध त्या त्या देशाच्या आर्थिक ध्येयधोरणे, पत व्यापार यांच्याविषयीचा दृष्टीकोण, कर्ज पुरवठा, कर्ज घेण्याची प्रवृत्ती इत्यादी बाबींना प्रभावित करते. शिक्षणामुळे व्यक्ती आपल्या व्यक्तिगत आर्थिक विकासाबरोबरच कौटुंबिक व व्यापक अशा राष्ट्रीय अर्थ विकासाला गती देऊ शकते. शिक्षणामुळेच नवीन तंत्रज्ञान विकसित वा आत्मसात करता येते त्याद्वारे उत्पादनाच्या क्षेत्रात प्रगतीचा टप्पा गाठता येतो आर्थिक सुधारणा करता येतात. मनुष्यबळ विकासाला देखील शिक्षणामुळे चालना मिळते. विकसित मनुष्यबळ हे आर्थिक विकासासाठी चे भांडवल ठरते. अर्थकारणा प्रमाणेच राजकारणात देखील शिक्षणाची भूमिका महत्त्वाची ठरते एकोणिसाव्या शतकातील शैक्षणिक प्रगती मुळेच आपल्या राजकीय अधिकाराची जाणीव विविध राष्ट्रांमधील जनतेला झाली आणि लोकशाहीचा पुरस्कार केला जाऊ लागला. लोकशाही मूल्यांची जोपासना, प्रचार नि प्रसार निव्वळ शिक्षणामुळेच साध्य करता आला आहे. शिक्षणामुळेच व्यक्तींना अभिव्यक्ती स्वातंत्र्याची जाणीव होते लोकशाहीने त्यांना प्रदान केलेल्या एका मोठ्या अधिकाराचा वापर शिक्षणामुळेच सहज साध्य झाला आहे लोकशाहीस पूरक अशा राष्ट्रीयत्वाच्या भावनेचा पुरस्कार शिक्षणाद्वारेच केला जातो व त्याही पलीकडे जाऊन अंतरराष्ट्रीय सामंजस्याची भावना निर्माण होते तीही शिक्षणामुळेच. शिक्षण व्यवस्थेचा समाजव्यवस्थेशी देखील घनिष्ठ संबंध असून शिक्षणाच्या माध्यमातून समाजात विकासास पूरक नि पोषक अनुकूल निर्णय घेता येतात. सामाजिक परिवर्तनास चालना मिळते. शिक्षणामुळेच समाज सदस्यांच्या सामाजिक गतिशीलतेत वाढ होते व ते आपली उन्नती साध्य करू शकतात. समाज सदस्यांतील परस्पर सामाजिक संबंधावर देखील शिक्षणाचा अनुकूल प्रभाव पडतो. अनिष्ट सामाजिक प्रथांना तिलांजली देऊन समाज विकास व मानतेस पोषक अश्या गुणांचा समाज सदस्यांमध्ये विकास होतो. सामाजिक नियंत्रण, संस्कृतीचे हस्तांतरण, समाजीकरण अशा प्रक्रिया शिक्षणामुळेच अधिक सुदृढ बनतात त्याचा फायदा पर्यायाने समाजालाच होत असतो. समाज सदस्यांना आपल्या समाजाच्या या संस्कृतीचा परिचय किंवा शिक्षण देण्याचे कार्य शिक्षणाद्वारे केले जाते. कोणत्याही समाजाची संस्कृती ही त्या समाजाचा दर्पण असते त्याचप्रमाणे च्या त्या सामाजिक समूहासाठी ती आदर्श असते सांस्कृतिक मूल्य मध्ये नेहमी आदर्शांचा च समावेश होत असतो. त्यामुळे संस्कृती शिक्षणाच्या माध्यमातून आदर्श मूल्यांचे प्रशिक्षण व त्याद्वारे सुसंस्कृत समाज सदस्यत्वाची जडणघडण व्यक्ती मध्ये केली जाते आपल्याच समाजाच्या परंपरा, मूल्ये, आदर्श इत्यादीचे ज्ञान व्यक्तीला प्राप्त होते त्यामुळे आपल्याच

सामाजिक परिवेशाशी व्यक्तींचा परिचय होतो व त्याचा परिणाम समाज सदस्यांमधील सहसंबंध दृढ होण्यास मदत होते शिक्षणाच्या संस्कृती भूमिकेमुळे समाजीकरण व्यक्तिमत्व विकास यासारख्या सामाजिक दृष्ट्या महत्वाच्या प्रक्रियांना देखील गती मिळते समाजात आदर्श निर्माण करण्यासाठी सत्य, अहिंसा, शांती, स्नेह, प्रेम, सुचिता ही मूल्य शिक्षणाद्वारे रुजविता येतात आणि ती रुजवण्याची भूमिका शिक्षणा द्वारे केली जाते यावरून सामाजिक व सांस्कृतिक विकासात शिक्षणाची भूमिका अनन्य साधारण आहे हेच दिसून येते.

**विकास म्हणजे काय? .**

विकासाचा अर्थ-

विकास ही सज्ञा वाढ किंवा वृद्धि, प्रगती किंवा उन्नती, विस्तार, परिवर्तन किंवा बदल इत्यादी अर्थाने वापरली जाते, त्यामुळे एखाद्या गोष्टीचा विकास होणे म्हणजे तिची वाढ होणे असा अर्थ सांगता येतो. विकास ही एक प्रक्रिया असून कोणत्याही गोष्टीचा विकास हा विविध अवस्थांमधून किंवा टप्प्यातून होत असतो त्यामुळे विकास म्हणजे एखादी विशिष्ट अवस्था किंवा टप्पा गाठणे असाही अर्थ होतो. विकासाच्या प्रक्रियेतील पुढची अवस्था की अगोदरच्या अवस्थे पेक्षा अधिक उन्नत किंवा प्रगत असते त्यामुळे विकास म्हणजे अधिक प्रगत गोष्ट करण्याची प्रक्रिया होय असे म्हणता येते.

ऑक्सफर्ड शब्दकोशात-

"विकास ही अधिक मोठे, अधिक सामर्थ्यवान होण्याची, अधिक चांगले होण्याची प्रक्रिया आहे किंवा काहीतरी असे करण्याची प्रक्रिया आहे." "समाजाच्या कोणत्याही क्षेत्रात इच्छित किंवा अपेक्षित दिशेने परिवर्तन घडून येणे म्हणजे विकास होय". असा अर्थ सामाजिक शास्त्रांमध्ये घेतलेला दिसतो आर्थिक विकास, सामाजिक विकास, राजकीय विकास, शैक्षणिक विकास, सांस्कृतिक विकास इत्यादी. अमेरिकन समाजशास्त्रज्ञ टालकाॅट- "विकासाला संबंध हा आशा बदलांशी आहे जे बदल आर्थिक, सामाजिक व राजकीय संस्थांमध्ये झालेले दिसून येतात". "विकास म्हणजे प्रगतशील बदल ". असाच थोडक्यात अर्थ सांगता येईल आज विकास ही सज्ञा अत्यंत व्यापक अर्थाने वापरली जाते यादृष्टीने संयुक्त राष्ट्रसंघाच्या तज्ञ समितीने केलेली व्याख्या- "विकासाला संबंध मानवाच्या जीवनाच्या सामाजिक स्थितीतील सुधारणेशी आहे त्यामुळे विकास म्हणजे केवळ आर्थिक वृद्धी नव्हे तर बुद्धी बरोबरच सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थात्मक तसेच आर्थिक बदल होय".

**सामाजिक विकास म्हणजे काय? .**

व्याख्या- (१) डॉक्टर राम अहुजा- एका बाजूने मानवी गरजा व आकांक्षा आकांक्षा आणि दुसऱ्या बाजूने सामाजिक धोरणे व कार्यक्रम यांच्यात अधिक चांगली तडजोड घडवून आणणारी नियमबद्ध संस्थात्मक परिवर्तनाची प्रक्रिया म्हणजे सामाजिक विकास होय. (२) डब्ल्यू डब्ल्यू राष्टो - सामाजिक विकास हे सामाजिक संबंधात होणाऱ्या परिवर्तनाचे दुसरे नाव आहे ज्याची अभिव्यक्ती ही आर्थिक विकासाद्वारे होत असते. (३) व्हीएस डिसूझा - सामाजिक विकास ही एक प्रक्रिया असून तिच्यामुळे सापेक्षतः साध्य असलेल्या समाजाचे सापेक्षतः सुधारीत समाजात रूपांतरण होत असते.

**सामाजिक विकासाची वैशिष्ट्ये-** (१) सामाजिक परिवर्तनाची प्रक्रिया- निश्चित केला जातो . परंतु यातील अंधश्रद्धेचा भाग वगळून डोळस पणे सांस्कृतिक विकासात शिक्षण आणि उत्तम भूमिका बजावली पाहिजे तरच

जुन्या खुळचट रूढीत बदल होऊन होऊन नवीन मूल्याधिष्ठित समाज निर्माण होण्यास मदत होईल व राष्ट्रीय विकासातील अडथळे दूर होतील. व्हाईट हेड च्या मते सांस्कृतिक शिक्षणाचा संबंध मूलतः वैचारिक विकास, कला भिरुची, सौंदर्यानुभूती यांच्याशी असतो "ते उच्चभ्रू लोकांची शिक्षण होय, फुरसतीच्या वेळातील शिक्षण होय." . वैशिष्ट्ये (१) सुसंस्कार करून सुसंस्कृत मानव निर्माण करणे. (२) ज्ञान संवर्धन, बौद्धिक विकास, चारित्र्य संवर्धन, सौंदर्या भिरुची व रसिकतेचा विकास, व सद भिरुचीचा विकास.(३) सत्य, सौंदर्य व शिव या जीवनमूल्यांचा विकास.(४) भावनांचे पोषण व उन्नयन करणे. (५) साहित्य, संगीत, नाट्य व तमाशा यांनादेखील सांस्कृतिक अधिष्ठान देणे.

व्याख्या- इरावती कर्वे - मनुष्य समाजाची डोळ्यांना न दिसणारी पण विचारांना आकलन होणारी मनोमय संस्कृती वस्तुरूप निर्मितीमुळे दृढ रूप व दृढमूल होते आणि मनोमय संस्कृतीचे ज्ञान अथवा कल्पना आल्याशिवाय द्रव्य रूप संस्कृतीचे कार्य कळणार नाही . संस्कृती नेहमी परंपरागत व म्हणून दीर्घकाळ. संस्कृती समाजाची असते व्यक्तीमध्ये संस्कृती साकारते, जिवंत होते, नव्याने निर्माण होते किंवा लय पावते पण कोणतीही व्यक्ती कोणत्याही संस्कृतीचे स्वरूप पूर्णांशाने दाखवूच शकत नाही. संस्कृतीला व्यक्तिनिरपेक्ष असे एक निराळेच स्वतंत्र जीवन असते. व्यक्ती जन्माला आल्यापासून एका परंपरागत वस्तुरूप संस्कृतीने वेढलेली व अव्यक्त पण अशा सामाजिक परंपरेत गुरफटलेली असते व्यक्तीच्या जीवन विकासाच्या मर्यादा संस्कृतीच्या या दोन अंगांनी निश्चित केलेल्या असतात". लिटन म्हणतो " संस्कृती म्हणजे सामाजिक अनुवंशिकता होय, तर सामाजिक परंपरेचे साम ग्य म्हणजे संस्कृती " एडवर्ड टायलर विशाल तर मानव वंशीय भौगोलिक दृष्टिकोनातून पाहिल्यास, ज्ञान, धर्म विश्वास, कला, नीती, कायदे, आचार आणि मानवाने समाजाचा सदस्य म्हणून जे संस्कार, समर्थता व सवयी आत्मसात केलेल्या असतात त्या सर्वांचा समग्र व संमिश्र परिपाक म्हणजे संस्कृती उर्फ सभ्यता होय".

सामाजिक विकास ही सामाजिक परिवर्तन घडवून आणण्यासाठी एक प्रक्रिया आहे या प्रक्रियेत समाजातील लोकांच्या सामाजिक संबंधात व सामाजिक संस्थांमध्ये परिवर्तन घडवून आणले जाते सध्या समाजाचे प्रगत समाजात रूपांतरण घडून येते.

(२) सुधारणात्मक परिवर्तन-

सामाजिक विकास ही समाजास सुधारून परिवर्तन घडवून आणणारी परिवर्तन प्रक्रिया आहे सामाजिक विकासाच्या प्रक्रियांच्या समाजातील विविध समस्यांची व प्रश्नांची ( उदाहरणार्थ बेकारी, कुपोषण, अनारोग्य, अज्ञान, निरक्षरता, अंधश्रद्धा, दैववादी वृत्ती, रूढीप्रियता, शोषण, दमन, अन्याय, अत्याचार इ.,) सोडवणूक करून लोकांच्या जीवनमानाचा दर्जा सुधारण्याचा वा उंचावण्याचा प्रयत्न केला जातो म्हणजेच त्यांच्या भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक, मानसिक गरजांची व आकांक्षाची पूर्तता करून त्यांच्या जीवन जगण्याच्या परिस्थितीत सुधारणा घडवून आणली जाते. त्यामुळे समाजास प्रगत अवस्था प्राप्त होते.

(३) नियोजनबद्ध परिवर्तन-

सामाजिक विकासाची प्रक्रिया ही नियोजनबद्ध असते या प्रक्रियेमध्ये जय सुधारणात्मक परिवर्तन घडवून आणले जाते ते अत्यंत नियोजनबद्ध पणे घडवून आणले जाते त्यासाठी सामाजिक विकासाला आराखडा तयार केला जातो. (अ) समाजातील लोकांच्या गरजा व आकांक्षा ओळखून त्यांचे मूल्यमापन करणे. (ब)

समाजात काही संस्थात्मक बदल घडवून आणणे त्यासाठी काही जुन्या व टाकाऊ झालेल्या संस्थाचा त्याग करणे किंवा सध्या अस्तित्वात असलेल्या संस्थांत बदल करणे.

(४) विविध पद्धती-

सामाजिक विकासासाठी विविध पद्धतीचा अवलंब केला जातो साधारणपणे सामाजिक विकासाच्या आराखड्यात पुढील पद्धतीचा अवलंब केला जातो. (अ) धोरण निर्धारण- सामाजिक विकासाच्या प्रक्रियेत सर्वप्रथम धोरण निर्धारित केले जाते म्हणजेच विकासाची ध्येये, उद्दिष्टे, प्राधान्यक्रम, व्युह रचना, इत्यादी बाबी निश्चित किंवा निर्धारित केल्या जातात. (ब) कार्यक्रम आखणी- निर्धारित केलेली ध्येयधोरणे व उद्दिष्टे साध्य करण्यासाठी कार्यक्रमाची आखणी केली जाते. (क) प्रशासन- आखलेल्या कार्यक्रमाची अंमलबजावणी करण्यासाठी प्रशासकीय यंत्रणा उभारून तिच्यात विविध व्यक्ती व समूहांना सहभागी करून घेतले जाते. (ड) संघटन- सेवा व संसाधने यांचा जास्तीत जास्त फायदा घेण्यासाठी लोकांना संघटित केले जाते गरज भासल्यास प्रचलित व्यवस्था मध्ये बदल केला जातो. (ई) मूल्यमापन- ध्येय व ती साध्य करण्यासाठी केलेली कृती यांच्यातील अंतराचे मूल्यमापन केले जाते व पुढील नियोजनासाठी प्रत्याभरण मिळवले जाते.

(५) सामाजिक विकासाची निदर्शके-

सामाजिक विकासासाची काही मी दर्शके मानली आहेत. (अ) लोकांच्या जीवन जगण्याच्या परिस्थितीत किंवा स्तरात बदल/ सुधारणा होणे. (ब) दारिद्र्याचे निर्मूलन होणे. (क) रोजगाराच्या संधी वाढणे. (ड) लोकांना समान संधी उपलब्ध होणे म्हणजेच सामाजिक न्याय प्रस्थापित होणे. (इ) दुर्बल घटकांची उन्नती होणे म्हणजे समाज कल्याण. (फ) जीवनात आकस्मिकपणे घडणाऱ्या घटनांपासून लोकांना सुरक्षा प्राप्त होणे. (ग) सर्व प्रकारची विषमता नष्ट होणे. (घ) शिक्षणाचा प्रसार होणे. (च) लोकांच्या समुदायाच्या या आरोग्याचे संरक्षण व संवर्धन होणे. (छ) पर्यावरणाचे संरक्षण व संवर्धन होणे. (ज) विस्तार कार्यक्रमात लोकांचा सहभाग वाढविणे.

(६) लोकशाही तत्त्वांशी सुसंगत-

सामाजिक विकासाची प्रक्रिया ही लोकशाही तत्वांशी सुसंगत असते. कारण या प्रक्रियेत स्वातंत्र्य, समता, बंधुत्व ,सामाजिक न्याय इत्यादी लोकशाही तत्वांनुसार सामाजिक संबंधात सामाजिक संस्थात व समाजातील सर्व लोकांच्या जीवन जगण्याच्या परिस्थितीत प्रागतिक बदल किंवा सुधारणा घडवून आणल्या जातात समाजातील मानवनिर्मित भेदभाव ( विषमता) शोषण, दमण, अन्याय नष्ट करणे तसेच मानवी संबंधातील असंतोष नष्ट करणे हे सामाजिक विकासाचे लक्षण मानले जाते लोकशाही व्यवस्थेत ही हीच गोष्ट अपेक्षित असते त्यामुळे सामाजिक विकासाची प्रक्रिया ही लोकशाही तत्वांशी सुसंगत ठरते.

(७) सामाजिक उत्क्रांतीहू न भिन्न-

सामाजिक विकास व सामाजिक उत्क्रांती या दोन्ही संज्ञा समान अर्थाने वापरलेल्या आढळतात तथापि आज या दोन्ही सौ संज्ञा वेगवेगळ्या अर्थाने वापरल्या जातात हर्बर्ट स्पेन्सर व इतर काही विचारवंतांनी असे मत मांडले आहे की समाज व सामाजिक संस्था या साध्या अवस्थे कडून संकीर्ण अवस्थेकडे क्रमाक्रमाने परिवर्तित किंवा रूपांतरित होत आलेल्या आहेत.

सांस्कृतिक विकास म्हणजे काय?

जागतिकीकरणाच्या प्रवाहात आज संपूर्ण संस्कृती एक होऊ पाहत आहे. भारतासारख्या सांस्कृतिक वारसा लाभलेल्या राष्ट्रांना भीती वाटत आहे की या प्रवाहात आपली संस्कृती टिकते का? नाही. आज तरी असेच म्हणावे लागेल की भारतात काही प्रमाणात का होईना संस्कृतीचे जतन करून ठेवले आहे जगात सर्वत्र औद्योगीकरण औद्योगिकीकरणाच्या व नागरीकरणाच्या माध्यमातून प्रत्येक जण विकास साधण्याचा प्रयत्न करत आहे. ज्या राष्ट्रांकडे नैसर्गिक साधन संपत्ती असलेले राष्ट्र त्यांना संपत्तीत आधुनिकीकरणाची सांगड घालून विकास करण्याचा प्रयत्न करत आहेत. नवनवीन आधुनिक यंत्र तंत्राचा वापर करून घेऊन विकास साधण्याचा प्रयत्न सर्वत्र होत आहे. जगात औद्योगिकीकरणामुळे मुक्त बाजारपेठेमुळे, मुक्त सामाजिक ते मुळे सर्वांच्या विचारांच्या कक्षा रुंदावल्या मुळे स्वतःच्या संस्कृतीचा त्याग करून हळूहळू जागतिक संस्कृतीचा स्वीकार केला जात आहे. परिणामी जगात सारख्याच परिवर्तनाची नांदी निर्माण झाली आहे यामुळे प्रत्येक राष्ट्राची स्वतःची संस्कृती अस्तित्वात राहील का? नाही अशी भीती प्रत्येक राष्ट्रांना व त्यातील लोकांना वाटत आहे. प्रत्येक राष्ट्राची मुल्ये, प्रथा, परंपरा, रूढी, चालीरीती, श्रद्धा व संस्कृती इतके खोलवर रुजलेले असतात भौतिक संस्कृती प्रमाणे बदलत नाहीत उदाहरणार्थ भारतीय समाजात आज आधुनिक युगातील संगणक घरात आणला तर घरातील उच्च सुशिक्षित डॉक्टर, प्राध्यापक, वकील, महिला या संगणकाला हळद कुंकू लावून पेढा ठेवून अगरबत्ती लावून नारळ फोडतात आणि नंतर चालू करतात अर्थातच भारतीय समाज आर्थिक दृष्ट्या कितीही विकसित झाला तरी आपल्या सांस्कृतिक मूल्याचे जतन करताना यावरून असे म्हणता येईल की राष्ट्राचा व राष्ट्रातील जनतेचा कितीही विकास झाला तरी आपल्या राष्ट्रातील संस्कृतीला जतन करुन ठेवण्याचा व पुढे चालू ठेवण्याचा प्रयत्न कोण

सारांश

शिक्षणाची समाजाच्या विकासात महत्त्वाची भूमिका आहे हे स्पष्ट होते किंबहुना शिक्षण हेच कोणत्याही विकास प्रक्रियेचे मूलभूत माध्यम आहे कोणत्याही समाजाच्या वा राष्ट्राच्या अर्थकारण, राजकारण, आणि समाजकारणाला गतिमानता प्रदान करण्यामागे शिक्षणाची भूमिका मध्यवर्ती आहे. हे देखील स्पष्ट झालेले आहे. कोणत्याही राष्ट्राची आर्थिक प्रगती ही त्या राष्ट्राच्या सर्वंकष प्रगतीचा कणा असतो शिक्षण आणि अर्थकारण यांच्यातील परस्पर संबंध त्या त्या देशाच्या आर्थिक ध्येयधोरणे, पत व्यापार यांच्याविषयीचा दृष्टीकोण, कर्ज पुरवठा, कर्ज घेण्याची प्रवृत्ती इत्यादी बाबींना प्रभावित करते. शिक्षणामुळे व्यक्ती आपल्या व्यक्तिगत आर्थिक विकासाबरोबरच कौटुंबिक व व्यापक अशा राष्ट्रीय अर्थ विकासाला गती देऊ शकते. शिक्षणामुळेच नवीन तंत्रज्ञान विकसित वा आत्मसात करता येते त्याद्वारे उत्पादनाच्या क्षेत्रात प्रगतीचा टप्पा गाठता येतो आर्थिक सुधारणा करता येतात. मनुष्यबळ विकासाला देखील शिक्षणामुळे चालना मिळते. विकसित मनुष्यबळ हे आर्थिक विकासासाठी चे भांडवल ठरते. अर्थकारणा प्रमाणेच राजकारणात देखील शिक्षणाची भूमिका महत्त्वाची ठरते एकोणिसाव्या शतकातील शैक्षणिक प्रगती मुळेच आपल्या राजकीय अधिकाराची जाणीव विविध राष्ट्रांमधील जनतेला झाली आणि लोकशाहीचा पुरस्कार केला जाऊ लागला. लोकशाही मूल्यांची जोपासना, प्रचार नि प्रसार निव्वळ शिक्षणामुळेच साध्य करता आला आहे. शिक्षणामुळेच व्यक्तींना अभिव्यक्ती स्वातंत्र्याची जाणीव होते लोकशाहीने त्यांना प्रदान केलेल्या एका मोठ्या अधिकाराचा वापर शिक्षणामुळेच सहज साध्य झाला आहे लोकशाहीस पूरक अशा राष्ट्रीयत्वाच्या भावनेचा पुरस्कार शिक्षणाद्वारेच केला जातो व त्याही पलीकडे जाऊन

अंतरराष्ट्रीय सामंजस्याची भावना निर्माण होते तीही शिक्षणामुळेच. शिक्षण व्यवस्थेचा समाजव्यवस्थेशी देखील घनिष्ठ संबंध असून शिक्षणाच्या माध्यमातून समाजात विकासास पूरक नि पोषक अनुकूल निर्णय घेता येतात. सामाजिक परिवर्तनास चालना मिळते. शिक्षणामुळेच समाज सदस्यांच्या सामाजिक गतिशीलतेत वाढ होते व ते आपली उन्नती साध्य करू शकतात. समाज सदस्यांतील परस्पर सामाजिक संबंधावर देखील शिक्षणाचा अनुकूल प्रभाव पडतो. अनिष्ट सामाजिक प्रथांना तिलांजली देऊन समाज विकास व मानतेस पोषक अश्या गुणांचा समाज सदस्यांमध्ये विकास होतो. सामाजिक नियंत्रण, संस्कृतीचे हस्तांतरण, समाजीकरण अशा प्रक्रिया शिक्षणामुळेच अधिक सुदृढ बनतात त्याचा फायदा पर्यायाने समाजालाच होत असतो.समाज सदस्यांना आपल्या समाजाच्या या संस्कृतीचा परिचय किंवा शिक्षण देण्याचे कार्य शिक्षणाद्वारे केले जाते. कोणत्याही समाजाची संस्कृती ही त्या समाजाचा दर्पण असते त्याचप्रमाणे च्या त्या सामाजिक समूहासाठी ती आदर्श असते सांस्कृतिक मूल्य मध्ये नेहमी आदर्शांचा च समावेश होत असतो. त्यामुळे संस्कृती शिक्षणाच्या माध्यमातून आदर्श मूल्यांचे प्रशिक्षण व त्याद्वारे सुसंस्कृत समाज सदस्यत्वाची जडणघडण व्यक्ती मध्ये केली जाते आपल्याच समाजाच्या परंपरा, मूल्ये, आदर्श इत्यादीचे ज्ञान व्यक्तीला प्राप्त होते त्यामुळे आपल्याच सामाजिक परिवेशाशी व्यक्तींचा परिचय होतो व त्याचा परिणाम समाज सदस्यांमधील सहसंबंध दृढ होण्यास मदत होते शिक्षणाच्या संस्कृती भूमिकेमुळे समाजीकरण व्यक्तिमत्व विकास यासारख्या सामाजिक दृष्ट्या महत्त्वाच्या प्रक्रियांना देखील गती मिळते समाजात आदर्श निर्माण करण्यासाठी सत्य, अहिंसा, शांती, स्नेह, प्रेम, सुचिता ही मूल्य शिक्षणाद्वारे रुजविता येतात आणि ती रुजवण्याची भूमिका शिक्षणा द्वारे केली जाते यावरून सामाजिक व सांस्कृतिक विकासात शिक्षणाची भूमिका अनन्य साधारण आहे हेच दिसून येते.

**संदर्भ ग्रंथ.**


1. अकोलकर ग.वि. (१९७३) समाज संस्कृती आणि शिक्षण, विद्या प्रकाशन, नागपूर.
2. प्रा.एल.जी देशमुख(१९९८) शिक्षणाचे तत्वज्ञान व समाजशास्त्र फडके प्रकाशन ,कोल्हापूर.
3. डॉ. म. बा. कुंडले ,(१९९६) शैक्षणिक तत्वज्ञान व शैक्षणिक समाजशास्त्र, श्री विद्या प्रकाशन, पुणे.
4. डॉ. न. रा. पारसनीस (१९९०) शिक्षणाची तात्विक आणि समाजशास्त्रीय भूमिका नूतन प्रकाशन ,पुणे.
5. घोडके अमोल (२०१३) भारतातील मानव संसाधन विकास ,द युनिक अकॅडमी ,पुणे .
6. शहा घनश्याम (२००८) भारतातील सामाजिक चळवळी, अनुवाद प्राची चिकटे, पुणे, डायमंड पब्लिकेशन.
7. विरकर प्रतिभा (१९९१) उदयन्मुख भारतीय समाजाचे शिक्षण व शिक्षक, पुणे, द्वारका प्रकाशन
   वाघमारे जे .एस (१९८४) शिक्षण: समाज परिवर्तन आणि राष्ट्रीय विकास, मुंबई केशव गोरे स्मारक ट्रस्ट प्रकाशन
8. माळी मा. गो. (१९८३) आधुनिक शिक्षणाच्या समस्या: उपाय आणि नियोजन, कोल्हापूर पुस्तकालय
9. पुंडलिक विद्याधर गंगाधर (२०००) विकासाचे समाजशास्त्र आणि आधुनिकीकरण नागपूर, श्री गजानन प्रकाशन.
10. दोशी एस एल (२००५) भारतीय समाज, जयपुर, नॅशनल पब्लिकेशन
11. त्रिपाठी श्री शंभू रत्न,(१९६३) भारतीय संस्कृती और समाज, किताब घर आचार्य नगर कानपूर
12. डॉ.पेंडसे प्रतिभा, (२००६) उदयन्मुख भारतीय समाजातील शिक्षण, श्री मंगेश प्रकाशन, पुणे.

# समाज शिक्षणातील समूह संपर्क माध्यमांची भूमिका

प्रा. प्रदीप बळवंत पाटील
सहाय्यक प्राध्यापक,
कर्मवीर हिरे महाविद्यालय, गारगोटी.

---

सध्याचे युग हे माहिती तंत्रज्ञानाचे युग आहे. त्यामुळे माहितीला अनण्यसाधारण महत्त्व प्राप्त झालेले आहे. माहितीच्या योग्य वापरातून आपण आपले इच्छित ध्येय साध्य करू शकतो. तसेच भविष्यातील प्रगतीसाठी वर्तमानकालीन माहिती उपयोगात आणली जाते. मानवाने आपल्या प्रगतीच्या विविध टप्प्यांवर माहितीची देवाण–घेवाण करण्यासाठी विविध साधनांचा व माध्यमांचा शोध लावलेला आहे. पूर्वी ही माध्यमे मर्यादित स्वरूपातील माहिती पाठवण्यासाठी वापरण्यात येत होती, परंतु सध्या मोठ्या प्रमाणात माहितीची देवाण–घेवाण करण्यासाठी आधुनिक माध्यमांचा वापर केला जातो. या वापरातून समाजघटकांना शिक्षित करण्याचे कार्य प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्षपणे घडून येते. मानवी समाजाच्या प्रगतीतील शिक्षण हा घटक महत्त्वाचा आहे, आणि हे शिक्षण देण्यासाठी विविध माध्यमांचा उपयोग हा करावाच लागतो. माध्यमे ही विविध स्वरूपाची असून त्यांच्यामार्फत सामाजिक जाणीव जागृती व लोक शिक्षण यांसारख्या बाबी माध्यमांच्या व्यापक स्वरूपातील वापरामुळे घडून येत असतात.

सदर विवेचनात समूह संपर्क माध्यमे समाज शिक्षणावर कशा पद्धतीने प्रभाव टाकतात याचा विचार करण्यात आलेला आहे. अनेक व्यक्तींशी संपर्क संबंध प्रस्थापित करण्याचे सामर्थ्य ज्या माध्यमात आहे त्या माध्यमांना समूह संपर्क माध्यमे म्हणतात . या माध्यमांचा समाजावर, समाजातील व्यक्तींच्या मनावर, विद्यार्थ्यांच्या मनावर देखील जबरदस्त प्रभाव पडत आहे. त्यांची व्यक्तिमत्व घडवण्याला ही माध्यमे हातभार लावीत आहेत. ब्राऊन या तज्ञांच्या मते समूह संपर्क माध्यमांचे कार्य खालील प्रमाणे आहे.

१. करमणूक करणे.
२. विविध विषयांवर अचूक माहिती देणे.
३. विविध मुद्द्यांवर विविध प्रकारचे दृष्टिकोन व्यक्त करणे.

अर्थात ज्ञानसमृद्धी, अभिरूची, जीवन विषयक दृष्टिकोन निर्माण करण्याचे कार्य समाज माध्यमे करत असतात.

पुढील प्रमाणे आपल्याला समूह संपर्क माध्यमे सांगता येतील.

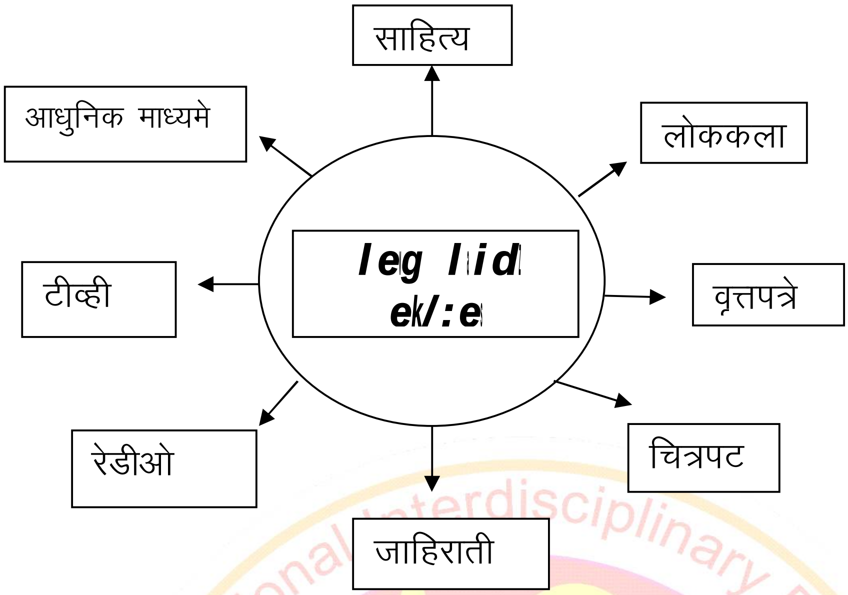


- साहित्य :

साहित्याची निर्मिती प्राचीन काळापासून होत आलेली आहे. मुद्रण कलेचा शोध लागल्यानंतर त्यामध्ये मोठ्या प्रमाणात वाढ झालेली आहे. आज विविध प्रकारचे साहित्य वाचण्यासाठी उपलब्ध आहे. समाजातील सुशिक्षित पालक असतील विद्यार्थी, शिक्षक, या सर्वांनी आपल्या अभिरूची प्रमाणे कथा, कादंबऱ्या, वैज्ञानिक पुस्तके, रहस्यकथा ,जीवन चरित्र वाचून त्याचा आपल्या जीवनामध्ये चांगल्या गोष्टीसाठी वापर करणे अपेक्षित आहे.

- लोककला :

लोककलेतून समूह मनातील भाव—भावनांचा, त्यांच्या आवडीनिवडीचा आणि जीवनाकडे पाहण्याचा दृष्टिकोन याचा आविष्कार होत असतो. लोक कलेमध्ये लोकगीते, लोककथा गीते, लोककथा, लोकनाट्य, तमाशा अशा कलांचा समावेश होतो. या कलांच्या माध्यमातून समाजामध्ये घडणाऱ्या घटना मांडल्या जातात. समाजामध्ये एखादी चुकीची गोष्टी घडत असेल तर त्याच्यावर भाष्य करण्याचे काम व जागृती करण्याचे काम लोककलेच्या माध्यमातून होत असते. सध्याच्या काळामध्ये या लोककला लोप पावत चाललेल्या आहेत.

- वृत्तपत्रे :

सध्याच्या माहिती—तंत्रज्ञानाच्या युगात अचूक व योग्य माहिती लोकांच्या पर्यंत पोहोचणे अत्यंत महत्त्वाचे आहे. वृत्तपत्रे समाजामध्ये घडणाऱ्या चांगल्या वाईट घटना लोकांच्या पर्यंत पोहचविण्याचे काम करीत असतात. वृत्तपत्रांमध्ये प्रसिद्ध होणारी माहिती विश्वसनीय व खात्रीशीर असते. म्हणून इलेक्ट्रॉनिक माध्यमांच्या युगात वृत्तपत्रे आपले स्थान टिकवून आहेत. वृत्तपत्रांमध्ये राजकीय, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, क्रीडाविषयक, मनोरंजन विषयक माहिती प्रसारित होत असते. वाचकांनी आपल्याअभिरुची नुसार व ज्ञान अद्ययावत करण्यासाठी वृत्तपत्राचे वाचन करणे आवश्यक आहे.

- चित्रपट :

मानवाची मनोरंजनाची गरज भागवण्यासाठी या माध्यमाची निर्मिती झाली आहे. मूकपटापासून सुरुवात झालेले हे माध्यम बोलपट/चित्रपट ते थ्रीडी तंत्रज्ञानापर्यंत येऊन पोहोचलेले आहे. चित्रपटाच्या माध्यमातून

समाजामध्ये घडणाऱ्या घटना, प्रसंग यांचे चित्रण दाखवले जाते. तसेच या विरुद्ध समाजाला मार्गदर्शक व दिशादर्शक ठरणारे चित्रपटही निर्माण होत असतात. उदा. दहावी फ, तारे जमीन पर, इ. चित्रपटांच्या माध्यमातून समाज मनोरंजन व शिक्षण असे दुहेरी कार्य होत असते.

- जाहिरात :

जाहिरात हे माध्यम मुखेत्वेकरून वस्तू व सेवा यांची माहिती ग्राहकापर्यंत पोहोचविण्यासाठी वापरले जाते. परंतु समाज शिक्षणासाठी देखील जाहिरातीचा प्रभावी वापर होऊ शकतो. उदा. लहान कुटुबांचे महत्व, राष्ट्रीय एकात्मतेचा संदेश, वृक्ष संवर्धन, विजेची बचत इ. जाहिरात हे एक प्रभावी माध्यम आहे. शालेय शिक्षण, सामाजिक नियम, कायद्याची जाणीव जागृती, भ्रष्टाचार प्रतिबंध, आरोग्य विषयक सुविधांची माहिती इत्यादी घटकांची माहिती देण्यासाठी प्रभावीपणे जाहिरातीचा उपयोग करता येऊ शकतो

- रेडिओ :

समाज शिक्षणासाठी रेडिओ एक प्रभावी माध्यम आहे. खाजगीकरण व जागतिकीकरण व आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक युगात रेडिओ हे माध्यम मानवाच्या खिशात पोहोचलेले आहे. या माध्यमाद्वारे आपल्याला काम करता करता, प्रवासात श्रवणाचा आनंद लुटता येतो. निरक्षरांना उपयुक्त असे हे माध्यम आहे. वेळेनुसार, परिस्थितीनुसार रेडिओ केंद्रावरून योग्य कार्यक्रम प्रसारित केले तर त्याचा लाभ सर्व वयोगटातील सर्व थरातील लोकांना घेता येतो.

- टी.व्ही./टेलिव्हिजन :

आज ज्ञान व माहिती संक्रमणाचे एक प्रभावी व सर्वोत्कृष्ट असे आधुनिक माध्यम म्हणजे टी.व्ही होय. या माध्यमाद्वारे ग्रामीण विकास, कृषी विकास, शैक्षणिक विकास इत्यादी कार्यक्रम राबवले जातात. तसेच टीव्ही वर प्रसारित होणाऱ्या बातम्या द्वारे जगामध्ये घडणाऱ्या घटना प्रत्यक्ष पहावयास मिळतात. भारत सरकारने शैक्षणिक विकासासाठी कंट्री वाईड क्लासरूम ही योजना राबविली आहे राबविली आहे. टी. व्ही. हे एक दृकश्राव्य माध्यम आहे त्याचा योग्य वापर केल्यास समाज शिक्षणाचे कार्य प्रभावीपणे होऊ शकते.

- आधुनिक माध्यमे :

सध्याचे युग हे माहिती तंत्रज्ञानाचे युग आहे. वर उल्लेख केलेली माध्यमे ही काळाच्या ओघात थोडीशी पाठीमागे राहिली आहेत.सध्याच्या काळात माहितीच्या जलद देवाण—घेवाण करण्याला महत्व प्राप्त झाले आहे. ही जी मानवाची गरज निर्माण झाली आहे ती गरज आधुनिक माध्यमे भरून काढत आहेत. आधुनिक माध्यमांमध्ये इंटरनेट, व्हॉट्सऍप, टेलिग्राम, फेसबुक, ट्विटर इत्यादी माध्यमांचा समावेश होतो. ही माध्यमे समाज शिक्षण शिक्षणासाठी प्रभावीपणे कार्य करू शकतात. फक्त वापरकर्त्याने या माध्यमांचा वापर सुयोग्य कारणांसाठी करणे अपेक्षित आहे.

संदर्भ :

१. डॉ.येवले, शैक्षणिक तंत्रविज्ञान आणि माहिती तंत्रविज्ञान, नित्य नूतन प्रकाशन,सप्टेंबर आवृत्ती
२. जगताप ह.ना. (१९९४)प्रगत शैक्षणिक तंत्रविज्ञान, नूतन प्रकाशन, पुणे.
३. नीलिमा सप्रे— गतिमान शिक्षणासाठी विचारप्रवाह, फडके प्रकाशन कोल्हापूर.
४. इंटरनेट वेबसाईट.